KALYAN

Year 85 No. 8 - 12 2011

Sarayu Trust / Samaj Foundation Chennai and eGangotri ... Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'जसोदा हरि पालनैं झुलावै'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर भाद्रपद, वि० सं० २०६८, श्रीकृष्ण-सं० ५२३७, अगस्त २०११ ई०

विषय-सूची

विषय — पृष्ठ-संख्या

चित्र-सूची

131852

Central Library
Gurukul Kangri University
Hardwar-249404 (U.A.)

वार्षिक शुल्क
अजिल्द १७० रु०
सजिल्द १९० रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$45 (Rs.2000) (Air Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

विदेशके लिये पञ्चवर्षीय ग्राहक नहीं बनाये जाते।

पञ्चवर्षीय शुल्क
भारतमें
अजिल्द ८५० रु०
सजिल्द ९५० रु०

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**
आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**
सम्पादक—**राधेश्याम खेमका**, सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **www.gitapress.org** | e-mail : **Kalyan@gitapress.org** | ✆ **(0551) 2334721**

(स)दस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

Central Library
Gurukul Kangri University
Haridwar-249404 (U.A.)

कल्याण

दानाय लक्ष्मीः सुकृताय विद्या चिन्ता परब्रह्मविनिश्चिताय।
परोपकाराय वचांसि यस्य वन्द्यस्त्रिलोकीतिलकः स एकः॥

वर्ष ८५ | गोरखपुर, सौर भाद्रपद, वि० सं० २०६८, श्रीकृष्ण-सं० ५२३७, अगस्त २०११ ई० | संख्या ८
पूर्ण संख्या १०१७

'जसोदा हरि पालनैं झुलावै'

जसोदा हरि पालनैं झुलावै।
हलरावै, दुलराइ मल्हावै, जोइ-सोइ कछु गावै॥
मेरे लाल कौं आउ निंदरिया, काहैं न आनि सुवावै।
तू काहैं नहिं बेगहिं आवै, तोकौं कान्ह बुलावै॥
कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत हैं, कबहुँ अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन ह्वै कै रहि, करि-करि सैन बतावै॥
इहिं अंतर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरैं गावै।
जो सुख सूर अमर-मुनि दुरलभ, सो नँद-भामिनि पावै॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर आश्विन, वि० सं० २०६८, श्रीकृष्ण-सं० ५२३७, सितम्बर २०११ ई०

विषय-सूची

चित्र-सूची

वार्षिक शुल्क
अजिल्द १७० रु०
सजिल्द १९० रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$45 (Rs.2000) (Air Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

पञ्चवर्षीय शुल्क
भारतमें
अजिल्द ८५० रु०
सजिल्द ९५० रु०

विदेशके लिये पञ्चवर्षीय ग्राहक नहीं बनाये जाते।

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : www.gitapress.org | e-mail : Kalyan@gitapress.org | ✆ (0551) 2334721

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

दानाय लक्ष्मीः सुकृताय विद्या चिन्ता परब्रह्मविनिश्चिताय।
परोपकाराय वचांसि यस्य वन्द्यस्त्रिलोकीतिलकः स एकः॥

Gurukul Kangri University, Hardwar-249404

वर्ष ८५ | गोरखपुर, सौर कार्तिक, वि० सं० २०६८, श्रीकृष्ण-सं० ५२३७, अक्टूबर २०११ ई० | संख्या १०
पूर्ण संख्या १०१९

सर्वतीर्थमयी मुक्तिदायिनी गोमाता

सर्वे देवा गवामङ्गे तीर्थानि तत्पदेषु च। तद्गुह्येषु स्वयं लक्ष्मीस्तिष्ठत्येव सदा पितः॥
गोष्पदाक्तमृदा यो हि तिलकं कुरुते नरः। तीर्थस्नातो भवेत् सद्यो जयस्तस्य पदे पदे॥
गावस्तिष्ठन्ति यत्रैव तत्तीर्थं परिकीर्तितम्। प्राणांस्त्यक्त्वा नरस्तत्र सद्यो मुक्तो भवेद् ध्रुवम्॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णजन्म० २१। ९१—९३)

गौके शरीरमें समस्त देवगण निवास करते हैं और गौके पैरोंमें समस्त तीर्थ निवास करते हैं। गौके गुह्यभागमें लक्ष्मी सदा रहती हैं। गौके पैरोंमें लगी हुई मिट्टीका तिलक जो मनुष्य अपने मस्तकमें लगाता है, वह तत्काल तीर्थजलमें स्नान करनेका पुण्य प्राप्त करता है और उसकी पद-पदपर विजय होती है। जहाँपर गौएँ रहती हैं उस स्थानको तीर्थभूमि कहा गया है, ऐसी भूमिमें जिस मनुष्यकी मृत्यु होती है वह तत्काल मुक्त हो जाता है, यह निश्चित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर मार्गशीर्ष, वि० सं० २०६८, श्रीकृष्ण-सं० ५२३७, नवम्बर २०११ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या

चित्र-सूची

वार्षिक शुल्क
अजिल्द १७० रु०
सजिल्द १९० रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$45 (Rs.2000) (Air Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

विदेशके लिये पञ्चवर्षीय ग्राहक नहीं बनाये जाते।

पञ्चवर्षीय शुल्क
भारतमें
अजिल्द ८५० रु०
सजिल्द ९५० रु०

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : www.gitapress.org | e-mail : Kalyan@gitapress.org | ✆ (0551) 2334721

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

दानाय लक्ष्मीः सुकृताय विद्या चिन्ता परब्रह्मविनिश्चिताय।
परोपकाराय वचांसि यस्य वन्द्यस्त्रिलोकीतिलकः स एकः॥

वर्ष ८५

गोरखपुर, सौर मार्गशीर्ष, वि० सं० २०६८, श्रीकृष्ण-सं० ५२३७, नवम्बर २०११ ई०

संख्या ११

पूर्ण संख्या १०२०

Central Library Gurukul Kangri University Hardwar

'कन्हैया गाय चरावन जात'

कन्हैया गाय चरावन जात।
लाल काछिनी, कटि कल किंकिनि, पग नूपुर झननात॥
मोर-मुकुट सिर, कानन कुंडल, गल मुक्तामनि-माल।
बाजूबंद विचित्र, सुकंकन, तिलक सुसोभित भाल॥
पीत बसन दामिनि-दुति-निंदित, घूँघरवारे केस।
स्वर्न लकुटिया कमल लिये कर-कमलन्हि अतिहि सुबेस॥
धौरी, धूमरि, कारी, पीरी, सुंदर कबरी धेनु।
सखा सुबल-श्रीदाम-संग कटि राजत सींगा-बेनु॥

[पद-रत्नाकर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर पौष, वि० सं० २०६८, श्रीकृष्ण-सं० ५२३७, दिसम्बर २०११ ई०

विषय-सूची

चित्र-सूची

वार्षिक शुल्क
अजिल्द १७० रु०
सजिल्द १९० रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$45 (Rs.2000) (Air Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

पञ्चवर्षीय शुल्क
भारतमें
अजिल्द ८५० रु०
सजिल्द ९५० रु०

विदेशके लिये पञ्चवर्षीय ग्राहक नहीं बनाये जाते।

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : www.gitapress.org | e-mail : Kalyan@gitapress.org | ✆ (0551) 2334721

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

Central Library Gurukul Kangri University Hardwar-249404 (U.A.)

कल्याण

दानाय लक्ष्मीः सुकृताय विद्या चिन्ता परब्रह्मविनिश्चिताय।
परोपकाराय वचांसि यस्य वन्द्यस्त्रिलोकीतिलकः स एकः॥

वर्ष ८५ | गोरखपुर, सौर पौष, वि० सं० २०६८, श्रीकृष्ण-सं० ५२३७, दिसम्बर २०११ ई० | संख्या १२
पूर्ण संख्या १०२१

गोवर्धनपूजन

कृष्णस्त्वन्यतमं रूपं गोपविश्रम्भणं गतः।
शैलोऽस्मीति ब्रुवन् भूरि बलिमादद् बृहद्वपुः॥
तस्मै नमो व्रजजनैः सह चक्रेऽऽत्मनाऽऽत्मने।
अहो पश्यत शैलोऽसौ रूपी नोऽनुग्रहं व्यधात्॥
एषोऽवजानतो मर्त्यान् कामरूपी वनौकसः।
हन्ति ह्यस्मै नमस्यामः शर्मणे आत्मनो गवाम्॥

भगवान् श्रीकृष्ण गोपोंको विश्वास दिलानेके लिये गिरिराजके ऊपर एक दूसरा विशाल शरीर धारण करके प्रकट हो गये तथा 'मैं गिरिराज हूँ' इस प्रकार कहते हुए सारी सामग्री आरोगने लगे। भगवान् श्रीकृष्णने अपने उस स्वरूपको दूसरे व्रजवासियोंके साथ स्वयं भी प्रणाम किया और कहने लगे—'देखो, कैसा आश्चर्य है! गिरिराजने साक्षात् प्रकट होकर हमपर कृपा की है। ये चाहे जैसा रूप धारण कर सकते हैं। जो वनवासी जीव इनका निरादर करते हैं, उन्हें ये नष्ट कर डालते हैं। आओ, अपना और गौओंका कल्याण करनेके लिये इन गिरिराजको हम नमस्कार करें।' [श्रीमद्भागवत]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

याद रखो—यदि सुख और शान्ति पाना चाहते हो तो पहले मनमें सुख और शान्तिकी मूर्तियाँ स्थापित करनेकी चेष्टा करो। अपने मनके विचारके अनुसार तुम्हें वस्तु प्राप्त होगी और तुम भी वैसे ही बन जाओगे। यदि तुम निश्चय कर लो कि पाप-ताप न तो हमारे अन्दर हैं और न कभी हमारे समीप आ सकते हैं तो निश्चय समझो कि पाप-ताप तुम्हारे पाससे भाग जायँगे—इतना ही नहीं, तुम जहाँ भी जाओगे, वहाँ दूसरोंके पाप-तापोंको भी भगा सकोगे।

तुम अपने मनमें निश्चय करो कि मैं सदा-सर्वदा भगवान्‌की संरक्षकतामें हूँ। भगवान् कभी भी मुझको अकेला नहीं छोड़ते, वे निरन्तर मेरे बाहर-भीतर सर्वत्र विराजते रहते हैं। भगवान्‌की इस नित्य संनिधिके प्रभावसे पाप-ताप मेरे पास आ ही नहीं सकते। काम-क्रोधादिका प्रवेश मेरे मनमें कभी हो ही नहीं सकता। मैं नित्य शुद्ध हूँ, निष्पाप हूँ, दुर्विचार और दुर्गुणोंसे सर्वथा रहित हूँ, मन तथा शरीरसे नीरोग एवं बलवान् हूँ और नित्य आनन्दित हूँ—इस प्रकारकी धारणा बारम्बार करते रहो। कुछ ही समयमें देखोगे—तुम वास्तवमें ऐसे ही बनते जा रहे हो।

याद रखो—यह सत्य है, और ध्रुव सत्य है कि भगवान् नित्य तुम्हारे साथ हैं, वे सर्वथा तुम्हारा संरक्षण करते हैं और आत्मदृष्टिसे तुम्हारा स्वरूप भी नित्य-शुद्ध-बुद्ध एवं निष्पाप है। तुम इस सत्य तत्त्वको भूलकर अपनेको पापात्मा, दोष और कुविचारोंसे युक्त निर्बल और निर्विण्ण मान बैठे हो और ऐसा मानते-मानते वस्तुतः ऐसे ही हो भी चले हो। अब इसके विपरीत अभ्यास करो; प्रतिपल भगवान्‌का, भगवान्‌की कृपाका और भगवान्‌की शक्तिका अपने अन्दर अनुभव करो।

इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम पाप करते रहो, दुष्ट विचार और दुर्गुणोंमें प्रीति करके उन्हें बढ़ाते रहो, भगवान्‌को न मानकर पार्थिव पदार्थोंपर अभिमान करो और ऐसा करते हुए भी अपनेको शक्तिमान् और बलवान् मान बैठो और भगवान्‌को भूलकर केवल अहंकारमें ही डूबे रहो। मनके शुभ निश्चयके अनुसार ही शुभ आचरण भी करो। यह सत्य है कि भगवान्‌की कृपाके बलसे तुम्हारे मनका निश्चय अटल हो जायगा और तुम्हारे आचरण अपने-आप शुभ बनने लगेंगे; परंतु तुम नित्य उस कृपाका अनुभव करते रहो और कृपाके बलसे समस्त बुराइयोंको हटाते हुए कल्याणके मार्गमें बढ़ते रहो। दुष्ट विचार, दुर्गुण और दुष्कर्मोंको त्यागकर प्रभुस्मरण, अहिंसा, सत्य, क्षमा, सन्तोष, प्रेम, दया, सेवा, समता, सरलता और परहित-रति आदि शुभ भावों, सद्गुणों और सत्कर्मोंके ग्रहण करनेपर कहीं विपत्ति आ जाय, बड़े भारी संकटका सामना करना पड़े तो घबराकर इन्हें छोड़ मत दो; मनमें जरा भी सन्देह न आने दो कि अशुभको छोड़कर शुभको ग्रहण करनेसे ऐसा हुआ है। विश्वास रखो—ये विपत्ति और संकट वास्तवमें विपत्ति और संकट नहीं हैं, ये तो भगवान्‌के भेजे हुए तुम्हारे सहायक हैं; जो विपत्ति और संकटका स्वाँग भरकर कसौटीमें कस-कसकर तुम्हें सर्वथा निर्दोष बनानेके लिये आये हैं। इन्हें देखकर घबराओ मत। इनका स्वागत करो और अपनी सरल, शुभ, शुद्ध और अटल साधनासे अपने पथपर सुदृढ़ रहकर—इनके नकली स्वाँगको हटाकर इन्हें अपने सच्चे सहायकके रूपमें प्राप्त कर लो।

याद रखो—साधन मार्गके ये संकट तुम्हें शीघ्र-से-शीघ्र मुक्ति-मन्दिरमें ले जानेवाले, भगवान्‌के शीघ्र दर्शन करानेवाले और तुम्हारी साधनाको पूर्णतया सफल बनानेवाले हैं। घबराहट, विषाद, भय, आलस्य और संशय आदि ही वास्तविक विघ्न हैं, उन्हींसे बचो। **'शिव'**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परम सेवासे कल्याण

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

संसारके प्रायः सभी प्राणी दुःखमें निमग्न हैं। दुःखके दो भेद हैं—(१) लौकिक और (२) पारलौकिक। लौकिक दुःख भी तीन प्रकारके होते हैं—(१) आधिभौतिक, (२) आधिदैविक और (३) आध्यात्मिक। मनुष्य, पशु-पक्षी, कीट, पतंग आदि प्राणियोंके द्वारा जो दुःख प्राप्त होता है, वह 'आधिभौतिक' दुःख है। वायु, अग्नि, जल, वृष्टि, देश, काल, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्रमा आदिके अभिमानी देवताओंद्वारा जो दुःख प्राप्त होता है, वह 'आधिदैविक' दुःख है। 'आध्यात्मिक' दुःख दो प्रकारका होता है—(१) आधि एवं (२) व्याधि। आधिके भी दो भेद हैं—(१) मन-बुद्धिमें पागलपन, मृगी, उन्माद, हिस्टीरिया आदि रोग तथा (२) काम-क्रोध, लोभ-मोह, मद-मत्सर, राग-द्वेष, ईर्ष्या-भय, छल-कपट, अहंता-ममता आदि अध्यात्म-विषयक हानि करनेवाले दुर्गुण। इन सबको तथा इसी प्रकारके अन्य मानसिक रोगोंको 'आधि' कहा जाता है। शरीर और इन्द्रियोंमें होनेवाले रोगोंको 'व्याधि' कहते हैं। एवं पारलौकिक दुःख है—मरनेके बाद परलोकमें या पुनः इस लोकमें आकर नाना प्रकारकी योनियोंमें भ्रमण करना। परमात्माके यथार्थ ज्ञानसे इन सभी प्रकारके दुःखोंका सर्वथा अभाव होता है। परमात्माके यथार्थ ज्ञानसे ही परमात्माकी प्राप्ति भी होती है। परमात्माकी प्राप्ति होनेपर उपर्युक्त सभी दुःखोंका अत्यन्त अभाव होकर सदाके लिये परम शान्ति और परमानन्दकी प्राप्ति हो जाती है।

यद्यपि परमात्माको प्राप्त हुए पुरुषके शरीरमें भी प्रारब्धके कारण उपर्युक्त दुःखोंकी प्राप्ति लोगोंके देखनेमें आ सकती है, तथापि वास्तवमें उसकी आत्मा सब दुःखोंसे रहित ही है। उसमें राग-द्वेष, हर्ष-शोक आदि विकारोंका अत्यन्त अभाव हो जाता है एवं शरीर, इन्द्रिय और अन्तःकरणके साथ उसकी आत्माका किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं रहता, अतः उसके प्रारब्धसे होनेवाले शरीर-सम्बन्धी दुःखोंका होना कोई मूल्य नहीं रखता।

वह परमात्माका यथार्थ ज्ञान ईश्वरकी भक्ति, सत्पुरुषोंके संग, गीतादि शास्त्रोंके स्वाध्याय, निष्काम कर्म, ध्यानयोग और ज्ञानयोग आदिके साधनसे होता है। इनमेंसे ईश्वर-भक्तिपूर्वक निष्काम कर्मका कुछ विषय नीचे बतलाया जाता है। श्रीभगवान् सम्पूर्ण भूतप्राणियोंमें विराजमान हैं। इसलिये सबकी सेवा भगवान्की सेवा है। गीता (१८।४६)-में कहती है—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

'जिस परमेश्वरसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वरकी अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा पूजा करके मनुष्य परम सिद्धिको पा लेता है।'

उपर्युक्त सेवा सिद्ध पुरुषोंद्वारा तो स्वाभाविक ही होती रहती है। साधकके लिये सिद्ध पुरुषके गुण और आचरण ही अनुकरणीय हैं। अतः साधकको उनके गुण और आचरणोंका लक्ष्य रखकर उनके अनुसार साधन करना चाहिये। ऐसे सिद्ध प्रेमी भक्तोंके लक्षण भगवान्ने गीताके बारहवें अध्यायके १३वेंसे १९वें श्लोकतक बतलाये हैं तथा उनके अनुसार चलनेवाले भक्तको भगवान्ने अपना 'प्रियतम' कहा है—

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः॥
(१२।२०)

'परंतु जो श्रद्धायुक्त पुरुष मेरे परायण होकर इस ऊपर कहे हुए धर्ममय अमृतका निष्काम प्रेमभावसे सेवन करते हैं, वे भक्त मुझको अतिशय प्रिय हैं।'

अतः सबमें भगवान्को व्याप्त समझकर भगवान्की आज्ञाके अनुसार उनके नाम-रूपको याद रखते हुए निष्कामभावसे सबकी सेवा करनी चाहिये। उस सेवाके दो रूप होते हैं—(१) सामान्य सेवा और (२) परम सेवा।

भूकम्प, बाढ़, अकाल, अग्निकाण्ड आदिसे कष्ट प्राप्त होने या रोग आदिसे ग्रस्त होने अथवा अन्य किसी कष्टके कारण जो दुःखी, अनाथ और आर्त हो रहे हैं, उन स्त्री-पुरुषोंका दुःख निवृत्त करनेका और उनको सुख पहुँचानेका नाम 'सेवा' है। इस लौकिक सेवाके अनेक प्रकार हैं; जैसे—(१) कोई बीमार—आतुर व्यक्ति सड़कपर पड़ा है। उसके पास खाने-पीनेको भी कुछ नहीं है, वस्त्र भी नहीं है और स्थान भी नहीं है तथा न दवा और पथ्यका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधन ही है। ऐसे व्यक्तिको चिकित्सालयमें भर्ती करवाकर या कहीं भी रखकर अन्न-वस्त्र और चिकित्सा, दवा, पथ्य आदिका प्रबन्ध स्वयं कर देना अथवा करवा देना। इस प्रकार धनहीन, गरीब, अनाथ बीमारोंकी सेवा करना बहुत ही उत्तम है। अतः प्रत्येक भाईको यह सेवाकार्य करना चाहिये। धर्मार्थ चिकित्सा-संस्थाओंमें काम करनेवाले एवं निष्कामी वैद्योंको ऐसा नियम रखना चाहिये कि बीमार आदमियोंसे संस्थामें तो फीस लें ही नहीं, घरपर जाकर भी फीस न लेनेकी उदारता बरतें।

(२) किसी अग्निकाण्ड या बाढ़के कारण जिसका घर-द्वार जल गया या बह गया हो और जिसके खाने-पीने-पहननेका कोई प्रबन्ध न हो, उसका प्रबन्ध स्वयं कर देना या दूसरोंसे करवा देना।

(३) भूकम्पके कारण जिनके मकान और सारी सम्पत्ति नष्ट हो गयी हो, स्त्री-बाल-बच्चे दबकर मर गये हों या स्त्रियाँ एवं बाल-बच्चे बिना स्वामीके हो गये हों, उनके खान-पान और स्थान आदिका प्रबन्ध स्वयं कर देना या करवा देना।

(४) जिनके न माता-पिता हैं, न कोई अन्य अभिभावक हैं, ऐसे नाबालिग लड़के-लड़कियोंको अनाथालयमें या और कहीं रखकर उनके खान-पान और पढ़ाई आदिकी व्यवस्था कर देना।

(५) गरीबीके कारण यदि कोई अपनी कन्याका विवाह करनेमें असमर्थ हो तो उसे अपनी शक्तिके अनुसार सहायता देना या दिलवाना।

(६) किसी विधवा स्त्रीके खाने, पीने, पहनने आदिकी व्यवस्था न हो तो उसके खान-पान आदिकी व्यवस्था कर देना या करवा देना।

आजकल गरीब घरोंकी विधवा माता-बहनोंको तो खान-पान और जीवन-निर्वाहका कष्ट है ही, बहुत-सी धनी घरोंकी विधवा स्त्रियोंका भी ससुराल या नैहरमें आदर नहीं है। घरवालोंका उनके प्रति सेवाभाव न होनेके कारण उनको वे भाररूप प्रतीत होती हैं। इसलिये उनका सभी जगह तिरस्कार होता है। उन विधवाओंके पास जो भी गहना या नकद रुपया होता है, उसे यदि वे ससुराल या नैहरमें जमा करा देती हैं तो कोई-कोई तो उनके रुपयों और गहनोंको हड़प ही जाते हैं। यह परिस्थिति कई जगह देखी जाती है। इसलिये माता-बहनोंको अपना गहना बेचकर रुपया बैंकमें जमा रखना चाहिये या अच्छे डिवेंचर ले लेने चाहिये, चाहे उनका ब्याज कम ही मिले।

विधवा माता-बहनोंसे प्रार्थना है कि उनको अपना जीवन विरक्त पुरुषोंकी भाँति ज्ञान-वैराग्य-सदाचारमें और भजन-ध्यान आदि ईश्वरकी भक्तिमें तथा मन-इन्द्रियोंके संयमरूप तपमें बिताना चाहिये एवं नैहर और ससुरालमें सबकी निष्काम सेवा करना—जैसे घरमें रसोई बनाना, सीने-पिरोने आदिका काम करना उनके लिये परम उपयोगी है। घरका काम-धन्धा किये बिना भोजन करना अनुचित है। इस प्रकार निष्काम सेवाभावसे कार्य करनेपर अन्तःकरण भी शुद्ध होता है और नैहर तथा ससुरालके लोग भी प्रसन्न रहते हैं। विधवाओंके लिये प्रधान बात है—प्रातःकाल और सायंकाल एकान्तमें बैठकर जप, ध्यान और स्वाध्याय आदि करना तथा शयनके समय भगवान्‌का नाम, रूप, गुण, प्रभावको याद करते हुए सोना एवं काम करते समय भी उस कामको भगवान्‌का काम समझते हुए निःस्वार्थ भावसे हर समय भगवान्‌को याद रखते हुए ही भगवत्प्रीत्यर्थ काम करनेका अभ्यास डालना। भगवान्‌ने गीता (८।७)-में कहा है—

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥

'इसलिये हे अर्जुन! तू सब समय निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर। इस प्रकार मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिसे युक्त होकर तू निःसन्देह मुझको ही प्राप्त होगा।'

इसी प्रकार अन्य स्त्री-पुरुषोंको भी विधवा माता-बहनोंके साथ उत्तम व्यवहार एवं उनकी सेवा करनी चाहिये; क्योंकि अपने धर्मका पालन करनेवाली विधवा स्त्रीकी सेवा दुःखी, अनाथ, आतुर और गायकी सेवासे भी बढ़कर है। इसके विपरीत उसको कष्ट देना तो महान् हानिकर है; क्योंकि दुःखी विधवा स्त्रीकी दुराशिष खतरनाक होती है। इसी तरह और भी जो किसी भी कारणसे दुःखी हैं, उनका दुःख दूर करनेका प्रयत्न करना सेवा है।

(७) गाय, बैल, साँड़ आदि जो मूक पशु चारा, पानी, स्थान आदिके अभावमें दुःखी हों या रोगी और वृद्ध हो जानेके कारण जिनका पालन उनका स्वामी नहीं कर रहा हो, उनका प्रबन्ध करना भी उत्तम सेवा है। (मूक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणीकी सेवा मुखरकी सेवासे महत्तर है।)

इसी प्रकार मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि जीवमात्रकी रक्षा करना, उनको दु:खसे बचाकर सुख पहुँचाना—यह सब 'लौकिक सेवा' है। यह 'लौकिक सेवा' भी अभिमान और स्वार्थका त्याग करके भगवत्प्रीत्यर्थ निष्कामभावसे करनेपर 'परम सेवा'के रूपमें परिणत हो जाती है। अस्तु!

'परम सेवा' वह है, जो नाना प्रकारकी योनियोंमें भटकते हुए मनुष्यको सदाके लिये सभी दु:खोंसे रहित करके परमात्माको प्राप्त करा देती है। भगवत्-प्राप्त महापुरुषोंके द्वारा तो यह सेवा स्वाभाविक होती रहती है, साधक पुरुष भी उन महापुरुषोंके द्वारा स्वाभाविक होनेवाली परम सेवाको साधन मानकर कर सकता है। यद्यपि किसी भी मनुष्यका कल्याण करनेकी सामर्थ्य साधकोंमें नहीं होती, फिर भी सर्वशक्तिमान् भगवान्‌की आज्ञा, दया और प्रेरणाका आश्रय लेकर, कर्तापनके अभिमानसे रहित हो वह 'परम सेवा'में निमित्त तो बन ही सकता है।

इस 'परम सेवा' के भी कई प्रकार हैं; जैसे—

(१) संसारमें भटकते हुए मनुष्योंको जन्म-मरणसे रहित होनेके लिये शास्त्रके या महापुरुषोंके वचनोंके आधारपर ज्ञानयोग, ध्यानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग आदिकी शिक्षा देना।

(२) जो मरणासन्न मनुष्य गीता, रामायण आदि या भगवन्नाम सुनना चाहता हो, उसे वह सब सुनाना।

यह कार्य यज्ञ-दान, तप-सेवा, जप-ध्यान, पूजा-पाठ, सत्संग-स्वाध्यायकी अपेक्षा भी अधिक महत्त्वका है; क्योंकि ये सब साधन तो हम दूसरे समय भी कर सकते हैं। किंतु जो मरणासन्न है, उसे भगवद्विषयक बातें सुनानेका काम उसके मरनेके बाद तो हो नहीं सकता। किसी मरणासन्न मनुष्यको जप-ध्यान, पूजा-पाठ, सत्संग-स्वाध्याय आदि करानेसे उसका मन यदि भगवान्‌में लग जांय तो उसका कल्याण उसी समय हो सकता है। भगवान्‌ने (गीता ८।५)-में कहा है—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥

'जो पुरुष अन्तकालमें मुझको ही स्मरण करता हुआ शरीरको त्याग कर जाता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूपको प्राप्त होता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है।' अत: इस प्रकार प्रयत्न करते-करते यदि एक मनुष्यका भी कल्याण हमारे द्वारा हो गया तो हमारा यह जन्म सफल हो गया; क्योंकि मनुष्यका जन्म आत्माका कल्याण करनेके लिये ही है। हम अपना कल्याण नहीं कर सके, किंतु हमारे द्वारा किसी एक मनुष्यका भी कल्याण हो गया तो हमारा यह जीवन भी सफल हो गया। हम भगवान्‌से कुछ भी नहीं माँगेंगे, तो भी भगवान् हमारा कल्याण ही करेंगे; क्योंकि हम यह कार्य अभिमान, स्वार्थ और अहंकारसे रहित होकर केवल भगवत्प्रीत्यर्थ निष्कामभावसे कर रहे हैं। यदि हमारा बार-बार जन्म हो और हमें भगवान् यह काम सौंपें तो हमारे लिये यह मुक्तिसे भी बढ़कर होगा। इसलिये ऐसा अवसर प्राप्त हो जाय तो उसे छोड़ना नहीं चाहिये। लाख काम छोड़कर यह काम सबसे पहले करना चाहिये; क्योंकि इस प्रकारके अत्यन्त आतुर मनुष्यकी परम सेवासे बढ़कर मनुष्यके लिये कोई भी कर्तव्य नहीं है।

(३) गीता, रामायण, भागवत आदि धार्मिक ग्रन्थ, कल्याण आदि धार्मिक मासिक पत्र तथा महापुरुषोंके लेख, व्याख्यान, जीवन-चरित्र या उनके दिये हुए उपदेश-आदेशमय प्रवचन इत्यादि आध्यात्मिक साहित्यको विवाह, द्विरागमन आदि अवसरोंपर देना-दिलाना, साधु-महात्मा, विद्यार्थी आदिको देना-दिलाना अथवा उचित मूल्यपर या बिना मूल्य लोक-हितार्थ वितरण करना-कराना, ऋषिकुल, गुरुकुल, ब्रह्मचर्याश्रम, हाईस्कूल, कालेज, विद्यालय, पाठशाला, जेलखाना, अस्पताल और आयुर्वेदिक चिकित्सालय आदिमें उपर्युक्त आध्यात्मिक साहित्यको मूल्य लेकर या बिना मूल्य वितरण करना-करवाना, दूकान खोलकर या लारियोंद्वारा ठेलोंद्वारा या स्वयं झोलेमें लेकर शहरों, गाँवों और बाहरी बस्तियोंमें अथवा मेला आदिमें उनका प्रचार करना—यह भी एक परमार्थ-विषयकी सेवा है। यह भी यदि अभिमान और स्वार्थका त्याग करके निष्कामभावसे भगवत्प्रीत्यर्थकी जाय तो 'परम-सेवा' में परिणत हो जाती है।

इसलिये प्रत्येक मनुष्यको इस प्रचार-कार्यको अपने कल्याणके लिये परमात्माकी प्राप्तिके साधनका रूप देकर बड़ी तत्परता और उत्साहके साथ करना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योगवासिष्ठका वैराग्य-प्रकरण

(श्रीरघुनाथप्रसादजी सराफ)

[देवराज इन्द्र राजा अरिष्टनेमिको महर्षि वाल्मीकिके पास भेजते हैं। अरिष्टनेमि महर्षिसे मोक्षका साधन पूछते हैं। वाल्मीकिजी उसके उत्तरमें राजाको अपने शिष्य भरद्वाजके साथ हुए संवादका वर्णन करते हुए भगवान् श्रीरामके प्राकट्यकी बात सुनाते हैं तथा बताते हैं कि एक दिन—]

महातेजस्वी विश्वामित्रजी राजा दशरथके दरबारमें आते हैं। दशरथजी उनका विनयपूर्वक सत्कार करके स्तुति करते हैं। ऋषि विश्वामित्रजी उन्हें बताते हैं कि राक्षसगण उनके यज्ञ-अनुष्ठानोंको दूषित करते रहते हैं। मैं आर्त होकर आपके पास शरण पानेकी इच्छासे आया हूँ। आप अपने ज्येष्ठ पुत्र शूरवीर श्रीरामको मुझे सौंप दीजिये। कमलनयन श्रीराम कोई साधारण पुरुष नहीं हैं। वे साक्षात् परमात्मा हैं। मैं इन्हें जानता हूँ। महातेजस्वी वसिष्ठजी जानते हैं तथा दूसरे-दूसरे दीर्घदर्शी महर्षिगण भी जानते हैं।* उनके सायकोंसे राक्षससमूह धूल-धूसरित हो जायगा।

राजा दशरथने दीनतापूर्वक कहा—श्रीराम अभी बालक हैं। आप मेरे साथ मेरी चतुरंगिणी सेनाको ले चलिये।

इस बातको सुनकर विश्वामित्र कुपित हो उठे। तब धैर्यवान् और बुद्धिमान् वसिष्ठजीने दशरथजीको समझाया—राजन्! विश्वामित्रजी नाना प्रकारके अस्त्रोंके स्वामी हैं, जिन्हें दूसरा कोई पुरुष न तो जानता है और न भविष्यमें जान सकेगा। ये जिस पुरुषके समीप खड़े हों, वह पुरुष मृत्युके आ जानेपर भी अमरत्वको ही प्राप्त होगा। अतः आप मनमें दीनताको स्थान न दीजिये।

गुरुजीकी ऐसी उक्ति सुनकर राजा दशरथका चित्त प्रसन्न हो गया। उन्होंने श्रीरामको बुला भेजा। प्रतीहारोंने लौटकर बताया कि श्रीरामचन्द्रजी अपने भवनमें अनमने होकर बैठे हुए हैं। श्रीरामजीके निजी सेवकोंने खुलासा किया कि श्रीराम अपने भाई लक्ष्मणजी और शत्रुघ्नजी तथा ब्राह्मणोंके साथ जबसे तीर्थयात्रासे लौटकर आये हैं, तभीसे उदास रहते हैं। वे भोगोंसे उपराम हो गये हैं और कहते हैं—'धन आपत्तियोंका एकमात्र स्थान है। धनकी इच्छा करना व्यर्थ है।' वे अपना सारा धन दीन-याचकोंमें बाँट देते हैं। श्रीरामजी वैराग्यकी मूर्ति ही बन गये हैं।

विश्वामित्रजीने कहा—राजन्! श्रीरामको आप शीघ्र बुलवा लें। वे वैराग्य और विवेकसे सम्पन्न हैं। उन्हें मोह नहीं, बोध प्राप्त हुआ है।

इसी समय श्रीराम अपने थोड़ेसे सेवकों तथा सौमित्र-द्वयके साथ राजसभामें आ गये। उन्होंने सबका यथोचित अभिवादन किया। दोनों महर्षियोंने उन्हें आशीर्वाद दिये। भूपाल दशरथजीने पुत्रको हृदयसे लगाया तथा उनका मस्तक सूँघा। रामजी पृथ्वीपर ही परिजनोंद्वारा बिछाये गये वस्त्रके ऊपर बैठ गये।
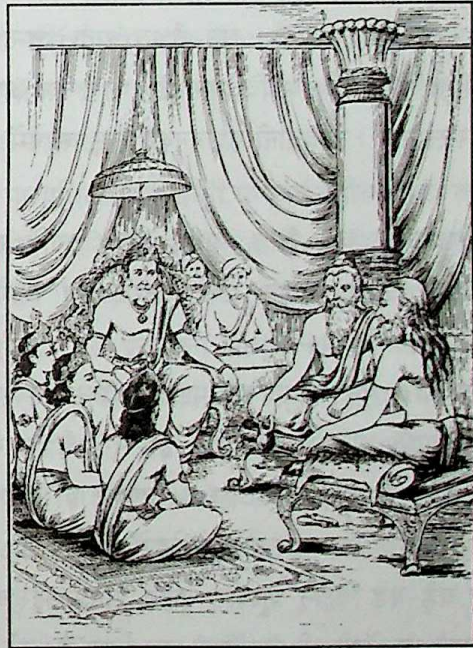
राजा बोले—बेटा! तुम्हें विवेक प्राप्त हो गया है। मोहका अनुसरण करनेसे पवित्र परमपद प्राप्त नहीं होता। मोह आपत्तियोंको बुलाता है।

वसिष्ठजीने कहा—तुम विषयोंपर विजय पा लेनेवाले शूरवीर हो। क्यों अज्ञानी मनुष्यकी भाँति जड़ता धारण

* अहं वेद्मि महात्मानं रामं राजीवलोचनम्। वसिष्ठश्च महातेजा ये चान्ये दीर्घदर्शिनः॥ (योग०वै० ७।२१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके व्यामोहके समुद्रमें डूबे जा रहे हो?

विश्वामित्रजीने पूछा—राजकुमार! अपने चित्तकी व्यग्रताको त्यागकर शीघ्र बताओ कि इस मोह अथवा भ्रमका कारण क्या है? अपनी अभिलाषा शीघ्र बताओ। तुम्हारे सारे मनोरथ पूर्ण होंगे, जिससे मानसिक व्यथाएँ फिर तुम्हें कष्ट नहीं पहुँचायेंगी।

इस प्रकार पूछे जानेपर श्रीरामका खेद जाता रहा। उन्होंने धैर्य धारण करके मनोहर वाणीमें कहा—मुनीश्वर! मैं यहाँ महलमें उत्पन्न हुआ, बड़ा हुआ, विद्या पायी और सदाचारका पालन करते हुए सारी पृथ्वीपर मैंने तीर्थयात्रा की। तीर्थयात्राके मध्य मन-बुद्धि विवेकसे पूर्ण हो गये। भोगोंसे विरक्त हुआ मैं विचारने लगा—'संसारके विस्तारमें कुछ भी सुख नहीं है। फिर भी हम बिके हुएके समान परवश हो रहे हैं। मुक्त होनेका प्रयत्न नहीं करते। ये भोग हमको जर्जर बना रहे हैं। धन-वैभव सदा चिन्ताओंके चक्करमें डालनेवाले हैं तथा विवेकरूपी श्रेष्ठ रत्नका अपहरण करनेमें संलग्न हैं। तत्त्वज्ञानी ही उनको नष्ट करनेमें समर्थ हैं।'

श्रीरामजीने धन, चित्त, शरीर, काल आदि सबकी निस्सारताका अलग-अलग वर्णन करते हुए आगे इस प्रकार विवेचन किया—

धन—हे मुने! मूढ़जन समझते हैं कि धन-सम्पत्ति यदि चिरस्थायी हो जाय तो सुख-ही-सुख है। वास्तवमें न वह स्थिर रह सकती है और न उत्कृष्ट ही कहलाने-योग्य है; क्योंकि वह सबको व्यामोहमें डालती है। धन-सम्पत्तिने बड़े-बड़े विद्वान्, शूरवीर, कृतज्ञ, सुन्दर और कोमल स्वभाववाले पुरुषोंको भी कलंकित कर दिया है। जो धन-सम्पत्तिसे युक्त होकर भी जनताकी निन्दाका पात्र न हो; शूरवीर होकर भी अपने ही मुँहसे अपनी बढ़ा-चढ़ाकर प्रशंसा न करता हो तथा स्वामी होकर भी सेवकों अथवा प्रजाजनोंपर समान दृष्टि रखता हो—ये तीन तरहके पुरुष संसारमें दुर्लभ हैं। धन-सम्पत्ति पानीकी लहर और दीपककी लौके समान चंचल एवं मनोरम होनेके कारण चित्तवृत्तिको अपनी ओर खींच लेती है। यह प्रायः अनर्थकारी कर्मोंसे प्राप्त होती है तथा प्राप्त होकर भी शीघ्र नष्ट हो जानेवाली है।

आयु—जीवकी आयु पत्तेके सिरेपर लटकते हुए जलबिन्दुके समान अस्थिर है। ब्रह्मनिष्ठ (ब्रह्मचारी) महापुरुषोंके लिये सुखदायिनी है और विषयोंमें रत पुरुषोंके लिये क्लेश देनेवाली है। वही जीवन उत्तम-जीवन कहलाता है, जिससे 'अवश्य पानेयोग्य वस्तु' अर्थात् परमात्मज्ञानकी प्राप्ति होती है, जिससे फिर शोकमें नहीं पड़ना पड़ता। जो इस अपवित्र देहको ही आत्मा माने बैठे हैं, उनके लिये आयु भारस्वरूप है; क्योंकि रोगरूपी भीषण सर्प उनकी आयुका पान करते रहते हैं और मृत्यु अपना ग्रास बनानेके लिये सदा ताकमें बैठी रहती है।

अहंकार—हे मुनिश्रेष्ठ! अहंकारके वशीभूत होकर विषयलम्पट लोग दुश्चेष्टाएँ करते हैं। वे शारीरिक कष्ट, मानसिक व्यथाएँ, अशान्ति, पुण्यक्षय तथा चारित्र्य-पतन-रूपी अनेक आपत्तियोंको पाते हैं। मैं अहंकारके अधीन न होऊँ।

चित्त—यह चंचल चित्त सदैव दुर्वासनाओं एवं क्षोभमें जकड़ा हुआ और नये-नये विषयोंकी खोजमें भाँति-भाँतिके मनसूबे बाँधता हुआ सदा अतृप्त रहता है। इस चित्तरूपी रोगकी यत्नपूर्वक चिकित्सा करनी चाहिये, जिससे शम, दम, क्षमा, दया, समता, शान्ति, सन्तोष और सरलता आदि सद्गुणोंकी आशा बने।

तृष्णा—धन आदिकी प्राप्तिके लिये 'तृष्णा' कष्टप्रद उत्साहको बढ़ावा देती है, जिससे हम लोग अपने पारमार्थिक स्वरूपको प्राप्त करनेमें असमर्थ होकर मोहमें डूबे रहते हैं। तृष्णा सदा विक्षुब्ध बनी रहती है। विषयचिन्तनका त्याग ही इसके निवारणका मन्त्र है। श्रेष्ठतम मनुष्यको भी यह असह्य तृष्णा पलभरमें याचक बनाकर तृणवत् कर देती है।

शरीर—श्रीरामजी कहते हैं—हे महामुने! यह शरीर मल-मूत्र और नानाविध नस-नाड़ियोंसे बना अहंकाररूपी गृहस्थका विशाल गृह है, जो मृत्युके समय जीवका साथ छोड़ देता है। मैं, न तो इस शरीरका कोई सम्बन्धी हूँ और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न शरीर हूँ, न यह मेरा है—ऐसा विचारवान् पुरुष उत्तम है। शरीर पतनशील है। इसमें नित्यत्वका विश्वास रखनेसे ही सुबुद्धि ठगी जाती है। मेरा क्षणभरके लिये भी 'शरीर' में विश्वास नहीं है।

बाल्यावस्था—यह बाल्यावस्था भयका, परवशताका, दीनताका, मनोरथोंका, संकटोंके निवारणमें असमर्थताका, देखी-अनदेखी वस्तुओंकी लालसाका तथा मूकता एवं मूढ़बुद्धित्व आदि दोषोंका विलास-भवन है। बाल्यावस्था किसीके लिये भी पूर्ण सन्तोषदायक नहीं है।

युवावस्था—भोग भोगनेके उत्साहसे अथवा कामरूप पिशाचसे दूषित-चित्त होकर नरकमें गिरनेके लिये ही मनुष्य यौवनारूढ़ होता है। विषयचिन्तन और दुर्गुण-दुराचाररूप अनेक दोषोंसे भरे हुए इस निन्दनीय यौवनके पार जाना बहुत ही कठिन है। विनयसे अलंकृत, श्रेष्ठ पुरुषोंको आश्रय देनेवाला, करुणासे प्रकाशित तथा शम, दम, क्षमा, दया आदि विविध गुणोंसे युक्त उत्तम यौवन इस संसारमें उसी तरह दुर्लभ है, जैसे आकाशमें वन।

स्त्री-शरीर—कामरूपी बहेलियेने मूढ़चित्त मानवरूपी पक्षियोंको फँसानेके लिये ही स्त्रीरूपी जालको फैला रखा है। नारीके स्तनमें, नेत्र, नितम्ब अथवा भौंहमें सार वस्तुके नामपर केवल मांस है। वह भी कुछ ही दिनोंमें जीर्ण-शीर्ण हो जाता है। हे संसारके मनुष्यो! क्यों भ्रमके पीछे दौड़ रहे हो?

वृद्धावस्था—जरावस्था आनेपर परलोकका भय सताने लगता है, फिर भी तृष्णा बढ़ती ही जाती है। कभी दाँत हैं तो आँत नहीं और कभी आँत है तो दाँत नहीं। दोनों भी नहीं तो भी, भोगकी इच्छा प्रबल हो उठती है। उपभोगकी असमर्थतामें हृदय जलता रहता है। सब ओरसे उपहासका पात्र हुआ जर्जर शरीर मृत्युका ग्रास बन जाता है। समस्त एषणाओंका तिरस्कार हो जाता है। वृद्धावस्था बहुत दुःखरूप होती है।

कालके स्वरूपका विवेचन—युग, वर्ष और कल्पके रूपमें काल ही प्रकट होता है। तिनका, धूल, इन्द्र, सुमेरु, पत्ता और समुद्र—सबको यह अपने अधीनकर निगल जानेके लिये उद्यत रहता है। व्यावहारिक अवस्थामें संसारका कर्ता, भोक्ता, संहारक और स्मरणकर्ता आदि सभी पदोंपर काल ही प्रतिष्ठित होता है। विस्तृत जगन्मण्डल कालकी नृत्यशाला है। काल ही बारम्बार चौदह भुवन, सप्तवन, लोक-लोकान्तर, जीव-समुदाय तथा उनके नाना प्रकारके आचार-विचारोंकी सृष्टि करते कभी थकता नहीं।

मानव-जीवनकी अनित्यता—श्रीरामजी कहते हैं—प्रारब्धद्वारा निर्मित सुख-दुःख, हर्ष-क्लेश आदिसे मोहित हुए हम लोग बिके हुए दासों तथा पशुओंकी भाँति क्रूर कालके पराधीन हो रहे हैं। प्राणियोंकी आयु अत्यन्त अस्थिर है। मृत्यु निर्दय है। जवानी चंचल होती है और बाल्यावस्था मोहमें ही बीत जाती है। धैर्य शिथिल हो गया है। पापकी बारम्बार स्फुरणा होती है। सत्संग दुर्लभ हो गया है। व्यर्थ ही अनेक संकल्प-विकल्पोंका जाल रचते हुए, सब लोग एक दिन कालके गालमें चले जाते हैं।

जागतिक पदार्थोंकी परिवर्तनशीलताका वर्णन—यह संसार प्रतिदिन नष्ट होता है। प्रतिदिन पुनः उत्पन्न होता है। स्थावर-जंगमरूप दृश्य जगत् मेलेके समान अस्थिर है। सब प्रकारकी शोभाएँ (चमक-दमक) धूमिल होकर समाप्त होती जाती हैं। मनुष्य शरीर, वनस्पति तथा अन्य शरीरधारी सब एकरूप कहाँ रहते हैं? काल स्थितियोंमें परिवर्तित करनेमें अत्यन्त कुशल है। प्रायः सब लोगोंको आपत्तिमें ढकेलकर यह काल क्रीड़ा करता रहता है।

सांसारिक वस्तुओंकी निस्सारता—मुनीश्वर! इस जगत्‌में कोई ऐसा पदार्थ मेरी दृष्टिमें नहीं आता, जिसके प्राप्त होनेसे चित्तको परम-सुख मिल सके। हमारा मन सांसारिक कामनाओंपर भटकता है। इसीमें आयु नष्ट हो रही है। युद्धस्थलमें बल-विक्रम दिखलानेवाले मेरी दृष्टिमें शूरवीर नहीं है। मैं तो उन्हींको शूरवीर मानता हूँ, जो विवेक-वैराग्य आदिके द्वारा मनकी तरंगोंसे पूर्ण इस देहको और इन्द्रियरूपी समुद्रको लाँघ जाते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'शूरास्त एवेह मनस्तरङ्गं देहेन्द्रियाम्भोधिमिमं तरन्ति।'

(यो० वै० २७। ९)

सत्कर्म करते-करते जिनके धैर्यका बन्धन कभी टूटता नहीं। *'छिति जल पावक गगन समीरा'* इन्हीं पाँचोंके परस्पर मिलनसे सारे पदार्थ हमें प्रतीत होते हैं। चेतनकी सन्निधिके कारण ही दृश्यमान होते हैं। यह जगत् पाँच महाभूतोंसे अधिक दूसरी कोई वस्तु नहीं है। सब कुछ मिथ्या है।

श्रीरामकी प्रबल वैराग्यपूर्ण जिज्ञासा तथा तत्त्वज्ञान-उपदेशकी प्रार्थना

हे मुनीश्वर! विषयोंमें दोष-दर्शनरूपी दावानलके द्वारा मेरा चित्त दग्ध होकर निर्मल हो गया है। अब तीव्र वैराग्यके कारण मैं सब संतापोंसे रहित होकर स्थित हूँ। ऐसा कौन-सा चिन्तन है, क्या आश्रय है अथवा कौन-कौनसे साधन हैं, जिनका अवलम्बन करनेसे भावी जीवन अमंगलकारी न हो? पहले किसने-किसने किन-किन युक्तियोंसे मोहका निवारण किया, जिससे उनके मनोंको परम शान्ति प्राप्त हुई?

महान् तत्त्वविचारसे विकसित चित्तवाले श्रीराम अपने गुरुजनों वसिष्ठ-विश्वामित्र आदिके समक्ष उपर्युक्त बातें कहकर चुप हो गये।

श्रीरामके भाषण एवं वचनोंका चतुर्दिक् अभिनन्दन

कमलनयन राजकुमार श्रीरामके वक्तव्यसे सबके नेत्र आश्चर्यसे खिल उठे। सब लोग अमृतमय समुद्रकी तरंगोंमें डूबने-उतराने लगे। निश्चलताके कारण सब चित्रलिखितसे दिखे। जिन श्रवण-समर्थ पुरुषोंने श्रीरामकी बातें सुनीं, वे थे—वसिष्ठ-विश्वामित्र आदि मुनि, मन्त्रणाकुशल जयन्त तथा धृष्टि आदि मन्त्रीगण, दशरथ आदि नरेश, विभिन्न सामन्त, पारशव आदि संकर जातिके लोग, लक्ष्मण आदि राजकुमार, वेदवेत्ता ब्राह्मण, पुरवासी, भृत्य और अमात्य। महारानी कौसल्या आदि वनिताएँ भी खिड़कियोंमें बैठी श्रीरामकी बातें सुन रही थीं। आकाशचारी सिद्ध-गन्धर्व-किन्नर तथा नारद, व्यास और पुलह आदि मुनियोंने, देवताओं, देवराज इन्द्र, विद्याधरगण एवं दिव्य नागोंने भी विचित्र अर्थसे परिपूर्ण वे परम बातें सुनी थीं।

सामने नतमस्तक होकर बैठे हुए श्रीरामका सब लोगोंने अपने-अपने मधुर भाषणसे, फूलोंकी वर्षासे और साधुवादद्वारा (इस प्रकारसे) परिपूर्ण सत्कार किया—'अहो! बड़े आश्चर्यकी बात है कि राजकुमार श्रीरामने अनेक कल्याणमय गुणोंसे सुशोभित वैराग्य-रससे पूर्ण बातें कही हैं। श्रीरामके भाषणमें व्यक्त अर्थ **'इदमित्थम्'** रूपसे व्यवस्थापूर्वक निहित है। तीनों लोकोंमें श्रीरामके समान विवेकशील और उदारचित्त पुरुष कोई नहीं। यह हमारी मान्यता है।'

योगवासिष्ठ ग्रन्थमें आगे विश्वामित्रमुनिके अनुरोधपर श्रीवसिष्ठजी राजकुमार श्रीरामको उपदेश करते हैं। ये उपदेश पाँच प्रकरणोंमें विस्तृत हैं, जिनके नाम हैं—मुमुक्षु-व्यवहार-प्रकरण, उत्पत्ति-प्रकरण, स्थिति-प्रकरण, उपशम-प्रकरण और निर्वाण-प्रकरण।

'यह बिनती रघुबीर गुसाईं'

यह बिनती रघुबीर गुसाईं।
और आस-बिस्वास-भरोसो, हरो जीव-जड़ताई॥ १॥
चहौं न सुगति, सुमति, संपति कछु, रिधि-सिधि बिपुल बड़ाई।
हेतु-रहित अनुराग राम-पद बढ़ै अनुदिन अधिकाई॥ २॥
कुटिल करम लै जाहिं मोहि जहँ जहँ अपनी बरिआई।
तहँ तहँ जनि छिन छोह छाँड़ियो, कमठ-अंडकी नाईं॥ ३॥
या जगमें जहँ लगि या तनुकी प्रीति प्रतीति सगाई।
ते सब तुलसिदास प्रभु ही सों होहिं सिमिटि इक ठाईं॥ ४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धान्तको लेकर मत लड़ो

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

अभिमानवश यह मत कहो कि भगवान् ऐसे ही हैं और शास्त्रका तत्त्व यही है। भगवान्का यथार्थ ज्ञान पुस्तकें पढ़नेसे, तर्कयुक्तियोंकी प्रबलतासे या केवल दर्शनोंकी मीमांसासे नहीं हो सकता। इनसे बुद्धिकी प्रखरता तो बढ़ती है, परंतु आगे चलकर वही बुद्धि ऐसे तर्कजालमें फँसा देती है कि फिर बाध्य होकर अभिमान और राग-द्वेषादिके प्रभावमें आ जाना पड़ता है और जीवन ही जंजाल बन जाता है।

× × ×

भगवान्ने सारी गीता कह-सुनानेके बाद अठारहवें अध्यायके अन्तिम भागमें अपने यथार्थ ज्ञानकी प्राप्तिके उपाय बतलाये हैं। गीता तो सुना ही दी थी, फिर आवश्यकता क्या थी उपाय बतलानेकी? उपाय बतलानेका यही तात्पर्य है कि केवल पढ़नेसे काम नहीं होता, पढ़-सुनकर वैसा करना पड़ेगा, तब भगवान्की पराभक्ति मिलेगी और पराभक्ति मिलनेपर भगवत्कृपासे भगवान्का यथार्थ ज्ञान होगा। वे उपाय ये हैं—

सारी पाप-तापकी, छल-छिद्रकी, दम्भ-दर्पकी और ऐसे ही अन्यान्य दोषोंकी भावनाको मिटाकर बुद्धिको परम शुद्ध करो; एकान्तमें रहकर वृत्तियोंको संयत करो; परिमित और शुद्ध आहार करके शरीरका शोधन करो; मन, वाणी और शरीरपर अपना अधिकार स्थापित करो; दृढ़ वैराग्य धारण करो; नित्य भगवान्का ध्यान करो; विशुद्ध धारणासे अन्तःकरणका नियमन करो; शब्दादि सब विषयोंका त्याग करो; राग-द्वेषकी जड़ काटो; अहंकार, बल, दर्प, काम, क्रोध और परिग्रहका त्याग करो। सब जगह ममताको हटा लो और ऐसा करके चित्तको सर्वथा शान्त कर लो, तब ब्रह्मकी प्राप्तिके योग्य होओगे। इसके बाद ब्रह्मीभूत अवस्था, अखण्ड प्रसन्नता, शोक और आकांक्षासे रहित सम स्थिति और सब भूतोंमें सम—एकात्मभावके प्राप्त होनेपर, तब भगवान्के तत्त्वका—अर्थात् भगवान् कैसे हैं, क्या हैं—यह ज्ञान होगा और तब ऐसा यथार्थ ज्ञान होते ही तुम भगवान्में प्रवेश कर जाओगे।

सोचो, जिनको भगवान्का ऐसा ज्ञान हो गया, वे तो भगवान्में प्रवेश कर गये। जिनको ज्ञान नहीं हुआ, वे भगवान्को जानते नहीं। ऐसी अवस्थामें यह कहना कि 'मैं भगवान्का तत्त्व जानता हूँ'—अहंमन्यता है; विडम्बना है।

लड़ना छोड़ो—यह मत कहो कि भगवान् निर्गुण ही हैं, निराकार ही हैं, सगुण ही हैं, साकार ही हैं। वे सब कुछ हैं, उनकी वे ही जानें। हमें तो उन्हें मानकर चलना है; वे चाहे जो हों।

तुम पहले यह सोचो कि ऊपर बतलाये हुए उपायोंमेंसे तुमने कौन-कौन-सा उपाय पूरा साध लिया है। जब रास्ते ही नहीं चले, तब लक्ष्यस्थानका रूप-रंग बतलाना कैसा? राह चलो, साधन करो। चलकर वहाँ पहुँच जाओ, फिर आप ही जान जाओगे, वहाँका रूप-रंग कैसा है।

× × ×

चलना तो शुरू ही नहीं किया और लड़ने लगे नक्शा देखकर। इससे बताओ तो क्या लाभ होगा? नक्शेमें ही रह जाओगे, असली स्वरूप तो सामने आयेगा ही नहीं। इसलिये विचार करो और अकड़ छोड़कर साधन करो; याद रखो—साधनकी पूर्णता होनेपर ही साध्यका स्वरूप सामने आता है।

भगवान्को जाननेके जो उपाय ऊपर बतलाये गये हैं, वे न हो सकें तो श्रद्धाके साथ भगवान्के शरणागत हो जाओ। कहोगे—'हम तो भगवान्को जानते ही नहीं, फिर किस भगवान्की शरण हो जायँ?' इसीलिये तो भगवान्ने अर्जुनसे पहले ही कह दिया है—तुम एकमात्र मेरी शरणमें आ जाओ। बस, भगवान्की इस बातको मानकर अर्जुनको उपदेश देनेवाले सौन्दर्य-माधुर्यके अनन्त समुद्र परमप्रिय परम गुरु परम ईश्वर पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णकी शरण हो जाओ। उनके इन शब्दोंको स्मरण रखो—'मुझमें मन लगाओ, मेरे भक्त बन जाओ, मेरी पूजा करो, मुझे नमस्कार करो, मैं शपथ करके कहता हूँ कि तुम मुझको ही प्राप्त होओगे—याद रखो, तुम मुझे बड़े प्यारे हो।'

× × ×

और क्या चाहिये? बस, यदुकुलभूषण नन्दनन्दन आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी शरण हो जाओ,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके कृपाकटाक्षमात्रसे अपने-आप ही तुम सारे साधनोंसे सम्पन्न हो जाओगे; तुम्हें पराभक्ति प्राप्त हो जायगी और तब तुम उन्हें यथार्थरूपमें जान सकोगे।

× × ×

गीतामें उन्होंने जो दिव्य वचन कहे हैं, उनके अनुसार अपनेको योग्य बनानेकी चेष्टा करते रहो; दैवीसम्पत्ति और भक्तोंके गुणोंका अर्जन करो और करो उन्हींकी कृपाके भरोसे। और मन, वाणी, शरीरसे बारम्बार अपनेको एकमात्र उन्हींके चरणोंमें समर्पण करते रहो। जिस क्षण तुम्हारे समर्पणका भाव यथार्थ समर्पणके स्वरूपमें परिणत हो जायगा, उसी क्षण वे तुम्हें अपनी शरणमें ले लेंगे—बस, उसी क्षण तुम निहाल हो जाओगे। शरणागत होना ही परागति है—'**सा निष्ठा सा परागतिः।**'

× × ×

इसलिये तर्कजालमें मत पड़ो, सिद्धान्तको लेकर मत लड़ो, साध्य तत्त्वकी मीमांसा करनेमें जीवन न लगाओ। जिनको पाण्डित्यका अभिमान है, उन्हें लड़ने दो, तुम बीचमें मत पड़ो। तुम तो बस श्रीकृष्णको ही साध्यतत्त्व मानकर उनका आश्रय ले लो। गीतामें भगवान्‌ने इसीको सर्वोत्तम उपाय बतलाया है। गीता पढ़कर तुमने यदि ऐसा कर लिया तो निश्चय समझो—गीताका परम और चरम तत्त्व तुम अवश्य ही जान जाओगे। नहीं तो झगड़ते रहो और नाक रगड़ते रहो, न तत्त्व ही प्रकाशित होगा और न दुःखोंसे ही छूटोगे। संसारचक्रके चक्केके नीचे पिसते रह जाओगे और यातना-यन्त्रणासे सदा संपीडित होते जाओगे। चेतो और चेतो; सोचो और बार-बार सोचो। सिद्धान्तकी लड़ाई न लड़कर व्यवहारकी विजय प्राप्त करो। व्यवहार-वर्जित सिद्धान्त निष्प्राण है, निष्प्रयोजन है।

प्रेमाभक्तिका विलक्षण माधुर्य

(श्रीभँवरलालजी परिहार)

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं
रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्
श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नापरः॥

हमारे शास्त्रोंमें मनुष्य-जीवनके चार पुरुषार्थ माने गये हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, किंतु भक्तोंने भगवत्प्रेमको इनसे भी बड़ा और सर्वश्रेष्ठ पाँचवाँ पुरुषार्थ माना है—'**प्रेमा पुमर्थो महान्।**' इस भगवत्प्रेमके आगे मुक्तिकी भी कोई गणना नहीं है, अन्य पदार्थोंकी तो बात ही क्या है। भगवत्प्रेमसे रहित ज्ञान भी शोभाजनक नहीं होता—

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं
न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्।

(श्रीमद्भा० १।५।१२)

गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजके मतानुसार तो भगवत्प्रेमसे रहित योग कुयोग तथा ज्ञान अज्ञान है। जहाँ भगवत्प्रेम नहीं है और जो भगवत्प्रेमप्राप्तिमें सहायक नहीं है, उस सुख, कर्म, धर्म, सम्पत्ति, घर-परिवार, सुहृद, माता-पिता और भाईमें आग लग जाय—

सो सुखु करमु धरमु जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ॥
जोगु कुजोगु ग्यानु अग्यानू। जहँ नहिं राम पेम परधानू॥
जरउ सो संपति सदन सुखु सुहृद मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो राम पद करै न सहस सहाइ॥

(रा०च०मा० २।२९१।१-२, २।१८५)

प्रेमाभक्तिकी महिमा अवर्णनीय है। जिस प्रेमके कारण अखिलब्रह्माण्डपति स्वयं भगवान् भक्तके प्रति खिंचे रहते हैं, उसकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है? यह प्रेमाभक्ति अमृतस्वरूपा, परमानन्दस्वरूपा, अतिशय मधुर और प्रतिक्षण वर्धमान है। इसमें नये-नये विचित्र, परम सुखद भावोंकी तरंगें उच्छलित होती रहती हैं। इसको प्राप्तकर भक्त पूर्णकाम, आप्तकाम, तृप्त हो जाता है। वह प्रेमको ही देखता है, प्रेमको ही सुनता है तथा प्रेमका ही अनुभव करता है। देवर्षि नारदने इस प्रेमाभक्तिकी विलक्षणता और मधुरताका बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है—

यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति। यत्प्राप्य न किञ्चिद्वाञ्छति न शोचति न द्वेष्टि न रमते नोत्साही भवति। यज्ज्ञात्वा मत्तो भवति स्तब्धो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवति आत्मारामो भवति॥ (नारदभक्तिसूत्र ४—६)

जिस प्रेमाभक्तिको पाकर मनुष्य सिद्ध हो जाता है, अमर हो जाता है, तृप्त हो जाता है। जिसके प्राप्त होनेपर मनुष्य न किसी वस्तुकी इच्छा करता है, न शोक करता है, न द्वेष करता है, न किसी वस्तुमें आसक्त होता है और न उसे विषयभोगोंकी प्राप्तिमें उत्साह होता है। जिस प्रेमाभक्तिको प्राप्तकर मनुष्य उन्मत्त हो जाता है, शान्त हो जाता है और आत्माराम बन जाता है।

इस प्रेमाभक्तिसे बढ़कर विश्व-ब्रह्माण्डमें कौन-सी वस्तु हो सकती है? अर्थात् कुछ भी नहीं। गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने प्रेमाभक्तिप्राप्त सुतीक्ष्णमुनिकी स्थितिका वर्णन करते हुए लिखा है—

निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी। कहि न जाइ सो दसा भवानी॥
दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा। को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा॥
कबहुँक फिरि पाछें पुनि जाई। कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई॥
अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई। प्रभु देखैं तरु ओट लुकाई॥
अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा। प्रगटे हृदयँ हरन भव भीरा॥
मुनि मग माझ अचल होइ बैसा। पुलक सरीर पनस फल जैसा॥

(रा०च०मा० ३।१०।१०—१५)

इस प्रेमाभक्तिका माधुर्य '**मूकास्वादनवत्**' (नारदभक्तिसूत्र ५२)—गूँगेके स्वादकी भाँति अनिर्वचनीय है। इसका वाणीद्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता। यह प्रकट होते ही साधकको पागल बना देती है। उसको भगवन्नामजप, भगवान्के स्वरूपका ध्यान एवं भगवच्चर्चाके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं सुहाता। कभी-कभी वह बाह्यज्ञानशून्य भी हो जाता है। उसको न किसीका भय रहता है, न लज्जा। शास्त्रीय विधि-निषेधका पालन करते हुए भी इसका भार उसके सिरसे उतर जाता है। सन्तोंने इस सम्बन्धमें लिखा है—

न लाज तीन लोककी, न वेदको कह्यो करै।
न संक भूत-प्रेतकी, न देव-जच्छतें डरै॥
सुनै न कान औरकी, द्रसै न और इच्छना।
कहै न बात औरकी, सुभक्ति प्रेमलच्छना॥

श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या
जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति गाय-
त्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः॥

(११।२।४०)

इस प्रकारका व्रत धारणकर वह अपने प्रियतम भगवान्का नाम-संकीर्तन करनेसे उनमें अत्यन्त प्रेम हो जानेके कारण द्रवितचित्त हुआ उन्मत्तके समान कभी अलौकिक भावसे खिलखिलाकर हँसता है, कभी रोता है, कभी चिल्लाता है, कभी ऊँचे स्वरसे गाने लगता है और कभी नाच उठता है।

जैसे श्वास लेनेमें कोई कठिनाई नहीं होती और न इसके लिये कोई प्रयास ही करना पड़ता है तथा श्वास लिये बिना कोई जीवित भी नहीं रह सकता, उसी प्रकार भगवान्का प्रेमी भक्त भजनके बिना जीवित नहीं रह सकता और न उसको भजनके लिये कोई प्रयास ही करना पड़ता है। उसके लिये श्वासकी भाँति भजन स्वाभाविक हो जाता है। वह भजनके अमृत-समुद्रमें गोता लगाता हुआ इससे कभी भी तृप्त नहीं होता, बल्कि उसकी भजनकी प्यास निरन्तर बढ़ती ही जाती है। भगवान्के नाम-जपमें उसको अनुपम मधुरताका अनुभव होता है।

सकल कामना हीन जे राम भगति रस लीन।
नाम सुप्रेम पियूष ह्रद तिन्हहुँ किए मन मीन॥

(रा०च०मा० १।२२)

श्रीहनुमान्जी महाराज भगवान्से कहते हैं कि आपका नाम जप करते हुए मेरा मन कभी तृप्त ही नहीं होता है—

त्वन्नामजपतो राम न तृप्यते मनो मम।

भगवान् रसस्वरूप हैं—'**रसो वै सः।**' इस परम दिव्य अलौकिक रसको प्राप्तकर भक्त परमानन्दस्वरूप बन जाता है—'**रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति।**' भक्त और भगवान् दो होकर भी एक '**तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्**' (नारदभक्तिसूत्र ४१) हो जाते हैं—

प्रान भये कान्हमय, कान्ह भये प्रानमय,
हियमें न जानि परै प्रान है कि कान्ह है।

भगवान्का ऐसा प्रेमी भक्त त्रिलोकीको पवित्र कर देता है—'**मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति।**' (श्रीमद्भा० ११।१४।२४) वह तीर्थोंको सुतीर्थ, कर्मोंको सुकर्म तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्रोंको सत्शास्त्र बना देता है। वह जहाँ रहता है, वह स्थान तीर्थ बन जाता है, वह जो कर्म करता है, वह संसारके लिये अनुकरणीय आदर्श बन जाता है तथा वह जो कुछ उपदेश देता है, वह सत्शास्त्र बन जाता है।

इस विलक्षण प्रेमाभक्तिका प्रादुर्भाव किसी बिरले पात्र—व्यक्तिमें ही होता है, जहाँ सुदृढ़ वैराग्यकी पूर्व भूमिका तैयार रहती है। लोक-परलोकके सम्पूर्ण सुखों, मुक्ति और सर्वस्वका त्याग भी इस प्रेमाभक्तिका मूल्य नहीं है; क्योंकि यह अमूल्य है। इसकी प्राप्ति तो उसीको होती है, जिसको भगवान् कृपापूर्वक देते हैं। हृदयमें भुक्ति-मुक्तिकी इच्छा रहते हुए तो प्रेमाभक्तिका अंकुर भी प्रस्फुटित नहीं होता—

भुक्तिमुक्तिस्पृहा यावत् पिशाची हृदि वर्तते।
तावद् भक्तिसुखस्यात्र कथमभ्युदयो भवेत्॥

इतनी दुर्लभ होनेपर भी यह प्रेमाभक्ति उस साधकको सुगमतापूर्वक प्राप्त हो जाती है, जो अपनेमें निर्बलताका अनुभव करते हुए एकमात्र भगवत्कृपापर ही आश्रित हो जाता है। साधक जब सम्पूर्ण साधनोंको करता हुआ भी प्रेमाभक्ति प्राप्त नहीं कर पाता, तब उसमें स्वयंकी निर्बलताका भाव पैदा होता है। इस स्थितिमें वह प्रेमाभक्तिकी अतिशय लालसासे भगवान्के सामने रो पड़ता है। भक्तके क्रन्दनसे भगवान्का कृपालु हृदय पिघल जाता है और वे उसको अपने खजानेकी परम दुर्लभतम वस्तु—प्रेमाभक्ति प्रदान कर देते हैं। यह बात बड़ी विचित्र लगती है, किंतु सर्वथा सत्य है कि प्रेमाभक्तिकी प्राप्ति निरन्तर भजन करते रहनेपर भी केवल रोनेसे होती है।

'बिन रोए क्यों पाइये, पेम पियारा मीत'

साधकको जबतक अपने बलका विश्वास रहता है, तबतक भगवत्कृपा क्रियाशील नहीं होती। गजेन्द्र और द्रौपदीके उपाख्यानोंसे यह बात अच्छी तरह समझमें आ जाती है। गजेन्द्र और द्रौपदीने जबतक अपना जोर लगाया, तबतक भगवान् नहीं आये, किंतु जब वे अपने बलसे निराश हो गये और उन्होंने अपनेमें निर्बलताका अनुभवकर भगवान्को पुकारा तो भगवान् तत्काल आ गये।

भगवान्के लिये रोना उसी व्यक्तिको आता है, जिसने भगवान्के साथ अपने वास्तविक सम्बन्धको पहचान लिया है, जिसको संसारके भोग और ऐश्वर्य सुहाते नहीं हैं तथा जिसको भगवान्का भजन प्राणोंसे भी बढ़कर प्यारा लगता है। यह रोना परम सौभाग्यकी चरम सीमा है। यह रोग जिसको हो जाता है, उसपर कोई दवाई काम नहीं करती। रात-दिवस सिसकना और आँसू बहाना उसके जीवनके अंग बन जाते हैं। भगवद्विरहकी यह परम दुर्लभ स्थिति प्रेमाभक्तिका विशेष लक्षण है—

सनमकी मोहनी मूरत, बसी दिल बीचमें मेरे।
न मनमें चैन है तनकी, खबर सारी बिसारी है॥
असर करती नहीं कोई, दवाई कीमिया तेरी।
बिना दिलदार दरसनके, मिटे नहीं बेकरारी है॥

सम्पूर्ण साधनोंका फल प्रेमाभक्ति है, किंतु प्रेमाभक्तिका फल स्वयं प्रेमाभक्ति ही है, क्योंकि इससे बड़ी कोई वस्तु है ही नहीं। यह स्वयं फलरूपा है—**'स्वयं फलरूपतेति ब्रह्मकुमाराः'** (नारदभक्तिसूत्र ३०)। गोस्वामीजीने लिखा है—

तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग बिराग ग्यान निपुनाई॥
नाना कर्म धर्म ब्रत दाना। संजम दम जप तप मख नाना॥
भूत दया द्विज गुर सेवकाई। बिद्या बिनय बिबेक बड़ाई॥
जहँ लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरि भगति भवानी॥

(रा०च०मा० ७।१२६।४—७)

यदि रामप्रेमका फल कोई अन्य होता हो तो उसमें आग लग जाय, मुझे उसकी आवश्यकता नहीं है। मैं नरकमें गिर जाऊँ, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंको मौतरूपी डाकिनी खा जाय, यदि मुझे रामप्रेमके अलावा किसी अन्य फलकी चाहना हो तो—

परौं नरक फल चारि सिसु मीच डाकिनी खाउ।
तुलसीराम सनेह को जो फल सो जरि जाउ॥

यह प्रेमाभक्ति कर्म, ज्ञान और योगसे भी श्रेष्ठतर है—**'सा तु कर्मज्ञानयोगेभ्योऽप्यधिकतरा'** (नारदभक्तिसूत्र २५)। ज्ञानयोगी जिस तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिके लिये अथक प्रयास करता है, भगवान्का प्रेमी भक्त अपनी प्रेमाभक्तिके सामने उस तत्त्वज्ञानका कुछ भी मूल्य नहीं रखता। यह अलग बात है कि भगवान्की कृपासे उसे तत्त्वज्ञान बिना ही प्रयास किये स्वतः ही प्राप्त हो जाता है—**'ददामि**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते' (गीता १०। १०)। प्रेमीभक्त अपने जीवनमें समता आदि दिव्य गुणोंको देखकर आश्चर्य करता है कि ये कहाँसे आ गये, मैंने तो इनके लिये कोई प्रयास किया ही नहीं। वह तो भगवान्‌के भजनमें ही इतना अधिक तल्लीन रहता है कि उसको इसके अलावा न किसी वस्तुका भान रहता है और न आवश्यकता ही।

प्रेमीभक्त भजनके लिये ही भजन करता है, क्योंकि भजन किये बिना रहा नहीं जाता। यह भजन ही साधन है और भजन ही साध्य है। साधन भक्ति अथवा गौणी भक्तिसे ही साध्य भक्तिकी प्राप्ति है। साध्य भक्ति पराभक्ति, प्रेमाभक्ति एक ही वस्तु है। गीतामें भगवान्‌ने इसको पराभक्ति कहा है, जिसकी प्राप्ति ब्रह्मभूत होनेके बाद होती है—

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥

(गीता १८। ५४)

सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममें एकभावसे स्थित हुआ प्रसन्नचित्तवाला पुरुष न तो किसी वस्तुके लिये शोक करता है और न किसीकी आकांक्षा ही करता है। सब भूतोंमें समभाववाला वह मेरी पराभक्तिको प्राप्त कर लेता है।

यह पराभक्ति तत्त्वज्ञानकी पराकाष्ठा है—**'निष्ठा ज्ञानस्य या परा'** (गीता १८। ५०) इस पराभक्तिके द्वारा साधक भगवान्‌को तत्त्वसे भली प्रकार जान लेता है और उनमें प्रविष्ट भी हो जाता है—

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥

(गीता १८। ५५)

भगवान्‌के दिव्य गुणोंसे आकृष्ट होकर सनकादि-जैसे परमज्ञानी महात्मा भी भगवान्‌से अहैतुक प्रेम करते हैं और अहर्निश उनके ध्यानमें निमग्न रहते हैं—

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः॥

(श्रीमद्भा० १। ७। १०)

भगवान्‌के दर्शन करते ही तत्त्वज्ञानी महात्माओंका ज्ञान भी तिरोहित हो जाता है और भगवान्‌के प्रति प्रेम उमड़ पड़ता है। प्रभु ऐसे ही प्रभावशाली हैं। जनकपुरीमें भगवान्‌के दर्शन करते समय ब्रह्मज्ञानी जनकजीकी ऐसी ही स्थिति हुई थी। भगवान्‌को देखते ही जनकजीके मनमें अपार प्रेम उमड़ पड़ा। अपने मनको रोकनेके लिये जनकजी ज्ञानको खोजने लगे, किंतु वह तो भगवान्‌के सामने होते ही तिरोहित हो चुका था और प्रेमदेवता प्रकट हो गये थे। अन्ततः जनकजीको बरबस कहना ही पड़ा—

कहहु नाथ सुंदर दोउ बालक। मुनिकुल तिलक कि नृपकुल पालक॥
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय बेष धरि की सोइ आवा॥
सहज बिरागरूप मनु मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा॥
ताते प्रभु पूछउँ सतिभाऊ। कहहु नाथ जनि करहु दुराऊ॥
इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा॥

(रा०च०मा० १। २१६। १—५)

ऐसे भगवद्भक्त प्रेमी महात्मा प्रवृत्तिपरायण भी होते हैं और निवृत्तिपरायण भी। सांसारिक कार्य करते हुए भी उनमें कर्तृत्वाभिमान नहीं होता—मैं कुछ करता हूँ—ऐसी लेशमात्र गन्ध भी नहीं रहती। स्वयं भगवान् ही उनके हृदय-मन्दिरमें बैठकर सब कुछ करते-करवाते हैं। भगवत्प्रेममें डूबे हुए ये भक्त समुद्रकी भाँति गम्भीर होते हैं। इनको पहचानना बहुत कठिन होता है, क्योंकि ये अपना परिचय किसीको भी नहीं देते। संसारको न तो अपना परिचय देना और न संसारका परिचय लेना—यह इनका सहज स्वभाव होता है। ऐसे भक्तको पाकर कुल पवित्र हो जाता है, माता कृतार्थ हो जाती है एवं पृथ्वी पुण्यवती हो जाती है—

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था
वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।
अपारसंवित्सुखसागरेऽस्मिँ-
ल्लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः॥

(स्कन्दपुराण)

सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत।
श्रीरघुबीर परायन जेहिं नर उपज बिनीत॥

(रा०च०मा० ७। १२७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधकोंके प्रति—

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

भगवान्‌की स्मृति और सेवाकी बड़ी भारी आवश्यकता है। सेवाकी भावना बन जाय। ऐसी भावना सत्संगी ही बना सकते हैं। बड़े-बूढ़ोंकी सेवा की जाय। गायोंकी सेवा की जाय। समय बहुत भयंकर आया है। आगे और अधिक भयंकर समय आनेकी सम्भावना है। इसलिये आपको अधिक सावधान हो जाना चाहिये।

× × ×

वास्तवमें रुपये अच्छे नहीं हैं, पर लोभके कारण रुपये अच्छे (प्रिय) लगते हैं। ऐसे ही मोहके कारण संसार, कुटुम्बी अच्छे लगते हैं। प्रेमके कारण भगवान् अच्छे, मीठे लगते हैं। गोपियोंको, मीराबाईको भगवान् मीठे लगते थे। प्रेमके कारण ही मित्रसे मिलनेमें आनन्द आता है। गायके प्रेमके कारण बछड़ेको गायके दूधसे जो पुष्टि होती है, वह केवल दूधसे नहीं।

नाशवान्‌में 'मोह' होता है, अविनाशीमें 'प्रेम' होता है। मूलमें चीज (आकर्षण) एक है। मोहसे पतन होता है।

लेना-ही-लेना जड़ता है, देना-ही-देना चेतनता है। लेना और देना—दोनों चिज्जड़ग्रन्थि हैं।

× × ×

लेनेकी इच्छावाला साधक नहीं होता। साधकके स्वभावमें देना-ही-देना होता है। त्याग और संग्रह सभीमें होता है, पर साधकमें त्याग-ही-त्याग होता है।

लेना-ही-लेना पशुमें होता है। लेना-देना साधारण मनुष्यमें होता है। देना-ही-देना साधक और सिद्धमें होता है। साधक अपने लिये कुछ नहीं करता।

स्वार्थ और अभिमानके त्यागसे ही साधक होता है और साधकको ही सिद्धि होती है। सुख-सुविधा, आराम चाहनेवाला साधक नहीं हो सकता। साधककी दृष्टि सुख-सुविधामें नहीं रहती।

जबतक असत्‌का संग है, तबतक सत्संगी नहीं है। यदि भोग और संग्रहकी रुचि है तो वह साधकोंमें भरती नहीं हुआ। उसकी गिनती संसारीमें ही होगी। साधक साधनके लिये जीता है, सुख-सुविधाके लिये नहीं।

× × ×

देखनेमें स्वार्थ अच्छा दीखता है, पर परिणाममें पतन ही होता है। लड़ाईमें दोनों ही पक्षोंकी हार (अहित) है और प्रेममें दोनों ही पक्षोंका उद्धार है।

सबकी मुक्ति चाहनेसे अपनी मुक्ति जल्दी होती है। केवल अपनी मुक्ति चाहनेसे देरी लगती है।

दूसरेके हितके लिये अपने सुखका त्याग कर दे। अपने सुखको रेतीमें मिला दे तो खेती हो जायगी।

× × ×

संसारका सुख हम छोड़ते नहीं और उसे छोड़े बिना पारमार्थिक (अक्षय) सुख मिलता नहीं।

दुःख, अशान्तिकी अवस्थामें 'काम' पैदा होता है।

ममता रखनेसे वस्तुओंका सदुपयोग नहीं होता। अपना न माननेसे ही वस्तुओंका सदुपयोग होता है। वस्तुओंको अपना न माननेसे और सबको अपना माननेसे उदारता आती है। वस्तु अपनी माननेसे और सबको अपना न माननेसे उदारता नहीं आती। वस्तुको चाहे संसारकी मानो, चाहे प्रकृतिकी मानो, चाहे भगवान्‌की मानो। उसे अपनी मानना बेईमानी है। केवल 'तू' और 'तेरा' है, 'मैं' और 'मेरा' है ही नहीं।

× × ×

विचारसे विवेक होता है और चिन्तनसे स्थिति होती है। चिन्तन अभ्यास है। अभ्याससे विवेक तेज है। चिन्तन मनसे होता है। मन अपरा प्रकृति है। शरीरको संसारसे अलग मानना अविवेक है।

सत्संग सुनकर विचार नहीं करते। 'विचार करना' वैराग्यमें हेतु होता है और 'विचार उदय होना' तत्त्वप्राप्तिमें हेतु होता है।

अपने लिये कोई अपना नहीं है, पर सेवाके लिये सभी अपने हैं। चाहे किसीको अपना मत मानो, चाहे संसारको अपना मानो—दोनोंका परिणाम एक होगा। अधूरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीज ही बाधक होती है। अधूरा वैद्य रोगीको मार देता है। अत: या तो बिल्कुल न जाने, या पूरा जाने। सुख लेनेके लिये शरीर भी अपना नहीं है और सेवा करनेके लिये पूरा संसार अपना है।

× × ×

अपनी गौणता और शरीरकी मुख्यता मान लेना गलती है। इस तादात्म्यसे साधन क्रियाप्रधान होता है और भाव तथा विवेक-प्रधान साधनमें कठिनता पड़ती है। शरीरको ही अपना स्वरूप माननेके कारण शास्त्रोंमें क्रियाप्रधान साधनकी मुख्यता बतायी गयी है। ज्ञानके साधनमें भी श्रवण, मनन आदि साधन बताये गये हैं, जिनमें शरीरकी प्रधानता रहती है। यदि पहले ही तादात्म्य तोड़ दें तो बहुत जल्दी काम होता है। जबतक जड़के साथ सम्बन्ध माना हुआ है, तबतक चिन्मयताकी प्राप्ति कठिन है। अत: पहले तादात्म्य तोड़नेकी बड़ी जरूरत है।

विचार करें कि शरीर और मैं (स्वरूप) एक नहीं हैं। 'मैं हूँ'—इसमें 'मैं' भाग शरीरका और 'हूँ' भाग चेतनका है। सुषुप्तिमें 'मैं' लीन होता है, 'हूँ' लीन नहीं होता।

× × ×

शरीर 'मैं' नहीं और 'मेरा' नहीं—यही असली त्याग है। यह होनेसे सभी साधन बहुत सुगम हो जायँगे। शरीरके साथ एकता माननेसे ही साधन कठिन मालूम देता है। शरीरको मैं-मेरा न मानना वर्तमानकी चीज है। आज चाहो तो आज कर लो। शरीरको मैं-मेरा मानना ही अविद्या है, अज्ञान है।

× × ×

जो आदि और अन्तमें नहीं है, वह वास्तवमें बीचमें भी है नहीं, पर दीखता है। वस्तु-व्यक्ति पहले भी नहीं थे, पीछे भी नहीं रहेंगे, फिर उनके जानेपर शोक कैसा? शोक-चिन्ता करना बेसमझी है और बेसमझी मिटानेके लिये सत्संग है। संसारकी वस्तु कितनी ही मिल जाय तो भी अभाव रहेगा ही।

आप अपनेको अयोग्य मानकर भगवत्प्राप्तिका अनधिकारी मत मानें। सभी परमात्माको प्राप्त कर सकते हैं। योग्य-अयोग्य सभी भगवानको अपना मान सकते हैं।

× × ×

श्रोता—हमारेमें योग्यता आ जाय, विद्या आ जाय—ऐसी इच्छा क्यों होती है?

स्वामीजी—ऐसी इच्छा होती है मान-बड़ाईकी इच्छासे। परमात्माकी प्राप्तिमें योग्यताकी जरूरत नहीं है। परमात्मप्राप्तिमें मोह भी बाधक है और विद्या भी—**'यदा ते मोहकलिलं०'** **'श्रुतिविप्रतिपन्ना ते०'** (गीता २।५२-५३)। अभिमान होनेसे विद्या आदिका दुरुपयोग होता है। यह अभिमान बाधक होता है। धन, विद्या आदि हों, पर उनका अभिमान न हो—यह कठिन है।

भगवत्प्राप्तिमें अभिलाषा मुख्य है, योग्यता नहीं। धनकी प्राप्तिमें एक नम्बरमें प्रारब्ध, दो नम्बरमें पुरुषार्थ और तीन नम्बरमें इच्छा है, परंतु भगवत्प्राप्तिमें इच्छा (अभिलाषा) एक नम्बरमें है।

यद्यपि योग्यता परमात्मप्राप्तिमें साधक नहीं है, पर अभिमान होनेसे वह बाधक हो जाती है। अभिमान अविवेकीको होता है, विवेकीको नहीं।

× × ×

वस्तुएँ काममें लेनेके लिये हैं, ममता करनेके लिये नहीं। ममताके रहते कभी शान्ति नहीं मिल सकती। वस्तु हमें छोड़ दे तो मौत है और हम उसे छोड़ दें तो त्याग है। वस्तुओंके साथ हमारा सम्बन्ध कितने दिन रहनेवाला है—इसका अनुभव करें।

मनुष्ययोनि साधनयोनि है। सुख-दु:खका भोग करेंगे तो हमें भोगयोनि मिलेगी, साधनयोनि नहीं।

× × ×

हमारा अनुभव, विचार आदि बदलनेवाले हैं, बचपनमें और अनुभव था, अभी और। अत: शास्त्रों और सन्तोंके अनुभव, विचार आदिको महत्त्व देना चाहिये।

कर्मयोग है—संसारमें रहनेकी बढ़िया रीति। कर्मयोगका स्वरूप है—निष्कामभावसे सेवा करना। सुख दें, पर लें नहीं। इससे हम संसारमें सुखपूर्वक, आदरपूर्वक रहेंगे। जो हमसे कुछ चाहे नहीं और सेवा करे, वह व्यक्ति सबको अच्छा लगता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्त-शुद्धि

(ठाकुर श्रीसुदर्शनसिंहजी)

साधकमात्रके सामने चित्त-शुद्धिका प्रश्न आता है। जहाँ संसारकी—विषयकी चर्चासे ऊपर उठकर परमार्थकी—परलोककी—परमात्माकी चर्चा आयी, चित्तशुद्धिका प्रश्न सामने आ गया। सभी धर्मों, सभी सम्प्रदायों, सभी साधनाओंमें चित्त-शुद्धिकी आवश्यकता—प्रथम एवं अनिवार्य आवश्यकता मानी गयी है। अतः इस विषयपर विचार कर लें।

हमारा शरीर पंचकोशोंसे बना हुआ है। १. अन्नमय कोश अर्थात् यह स्थूल शरीर, २. प्राणमय कोश अर्थात् क्रियाशक्ति, ३. मनोमय कोश अर्थात् इच्छाशक्ति, ४. विज्ञानमय कोश अर्थात् विचारशक्ति और ५. आनन्दमय कोश अर्थात् व्यक्तित्वकी अनुभूति।

हमारे पास जो कुछ साधन हैं, हम कोई भी कार्य उन्हीं साधनोंसे कर सकते हैं। जो हमारे पास नहीं है, वह हमारे किसी लक्ष्यपूर्तिका साधन नहीं हो सकता। हमारे पास ये पंचकोश हैं, अतः हमें इनको ही साधन बनाना होगा।

मेरा एक विश्वास है—मेरा विश्वास है, इसलिये आप उसे स्वीकार कर सकते हैं; किंतु उसे सुन अवश्य लें। मेरा विश्वास है कि हमें परमात्माकी ओरसे कुछ अनावश्यक नहीं मिला है। हमें जो कुछ मिला है, हमारे लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये है और हमारा—मनुष्यमात्रका लक्ष्य केवल परमात्माको प्राप्त करना है। इसके साथ ही हमें जो कुछ मिला है, उसमेंसे प्रत्येक उस परमात्माकी प्राप्ति करा सकता है।

अब हमें जो पंचकोश दिये हैं परमात्माने, वे हमें परमात्माको प्राप्त करानेवाले होने चाहिये और उनमेंसे प्रत्येक परमात्माको प्राप्त करानेवाला होना चाहिये। किंतु बात चित्त-शुद्धिकी है, क्योंकि परमात्मा तो नित्य प्राप्त है। वह हमारे भीतर ही बैठा है। इस चित्तके मल, विक्षेप, आवरण हमें दूर करते हैं—परमात्माकी प्राप्तिमें देर नहीं है। अतएव जब हम कहते हैं कि अमुक साधन परमात्माको प्राप्त करानेवाला है, तब उसका अर्थ यही होता है कि वह चित्तको सब दोषोंसे शुद्ध कर देनेवाला है।

संसारमें सब प्रकारके मनुष्य हैं। सबकी रुचि, सबके अधिकार, सबकी अहंता भिन्न-भिन्न है। इनमेंसे जो देहमें ही दृढ़ अहंता रखनेवाले—अन्नमय कोशके अभिमानी हैं, उनका चित्तशुद्धिका साधन अन्नमय कोशसे प्रारम्भ होता है।

'अन्नं वै मनः'

'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः।'

'जैसा खाये अन्न, वैसा बने मन।'

आहारके सूक्ष्मांशसे मन बनता है। यह मान्यता इस प्रक्रियाका आधार है और यह मान्यता शास्त्रीय है, प्रामाणिक है।

आहारमें स्वरूपदोष, संसर्गदोष तथा संस्कारदोष होते हैं। मांस, प्याज, लहसुन, सड़ा-बासी आदि आहार 'स्वरूप-दोष' से दूषित हैं। भोजन बनानेका स्थान, बर्तन आदि शुद्ध न हों, भोजनमें कोई अपवित्र वस्तु पड़ जाय, कौआ-कुत्ता आदि उसे जूठा कर दे, वह किसी अपवित्र व्यक्तिसे छू जाय तो ये सब 'संसर्ग-दोष' होंगे। भोजन बनानेवाला भोजन ठीक न बना पाये, रोते-रोते बनाये या पापकी कमाईसे प्राप्त पदार्थोंसे भोजन बना हो तो भोजनमें 'संस्कार-दोष' हुआ।

इन सब दोषोंसे रहित आहार ही ग्रहण किया जाय तो उस शुद्ध आहारसे निर्मित मन शुद्ध होगा। इस प्रकार चित्तकी शुद्धि हो जायगी। यह अन्नमय कोशको लेकर चलनेवाली साधनाका मार्ग हुआ।

'प्राणं वै मनः।'

'जैसा करो कर्म, वैसा रहे मन।'

'संस्कारात्मकं चित्तम्।'

चित्त संस्कारात्मक है। जैसा कर्म किया जाता है, चित्तपर उस कर्मका वैसा ही संस्कार पड़ता है। फिर वही संस्कार इच्छाके रूपमें जागता है और इच्छाके अनुसार कर्म होते हैं।

यदि हम अपनी पाप-वासनाओंको, बुरी प्रवृत्तियोंको बलपूर्वक रोके रहें और उत्तम कर्म ही करें, कानसे सत्संगकी—भगवान्की बात सुनें, मुखसे भगवान्का नाम लें, अच्छी बातें करें अर्थात् सब इन्द्रियोंसे पवित्र कर्म ही करते रहें तो हमारे चित्तके गोदाममें जो बुरे संस्कार हैं, वे नीचे दबते जायँगे। वे उठनेका अवसर ही नहीं पायेंगे और इन पुण्य-संस्कारोंसे चित्तका मल-विक्षेप दूर हो जायगा। इस प्रकार कर्मके द्वारा चित्त-शुद्धि होगी। यह प्राणमय कोशको लेकर चलनेवाली साधना—क्रियाशक्तिका मार्ग है।

'संकल्पविकल्पात्मकं मनः।'

मनका स्वभाव है संकल्प-विकल्प करते रहना। इच्छाशक्ति या वासनासे भिन्न उसका स्वरूप मिलता ही नहीं, अतः या तो वासनाको शुद्ध करना चाहिये या वासनाका निरोध करना चाहिये। इनमेंसे 'वासनाशुद्धि' का मार्ग है—उपासना-मार्ग और वासना-निरोधका मार्ग है—योगमार्ग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान्‌की बात सुनो, भगवान्‌का नाम-गुण-कीर्तन करो, भगवान्‌की पूजा करो, भगवान्‌के चरणोंमें मस्तक झुकाओ आदि जो शास्त्रके आदेश हैं, उनका तात्पर्य है कि मनको भगवान्‌के ही नाम-रूप-गुण-लीलाके चिन्तनमें लगाये रखो। मन केवल शुद्धका चिन्तन करे, शुद्धकी भावना करे और शुद्ध तो भगवान् ही हैं। इस प्रकार शुद्धकी निरन्तर भावनासे चित्त स्वतः शुद्ध हो जायगा। यहाँ मैं इतना स्पष्ट कर दूँ कि उपासना और भक्ति एक वस्तु नहीं है। आपको एक ही नाम पसन्द हो तो ध्यान रखना चाहिये कि यहाँ केवल साधन-भक्तिकी बात है। साध्य भक्ति या प्रेमकी कोई चर्चा यहाँ नहीं है।

दूसरी विचार-सरणि यह है कि मनका ठिकाना क्या कि कब हाथसे बाहर हो जाय। वह कभी शुद्ध सोचेगा, कभी अशुद्ध। अतः सबसे उत्तम यही है कि उसे सोचने ही न दिया जाय।

'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।'

—चित्तकी वृत्तियोंको सर्वथा रोक ही देना है। यह योगका मार्ग है। यम-नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—ये सब चित्तकी शुद्धि—चित्तवृत्तिका निरोध ही है।

चाहे इष्टकी भावना हो, चाहे चित्तवृत्ति-निरोध, दोनों ही मनोमय कोशको—इच्छाशक्ति—भावनाशक्तिको लेकर चलनेवाली साधनाएँ हैं।

विज्ञानमय कोशके आधारसे—विचारशक्तिसे चलनेवाली साधनाकी बात थोड़ी टेढ़ी है। इसलिये भी टेढ़ी है कि यह बुद्धिमानोंकी बात है और आप जानते ही हैं कि बुद्धिमानोंको सीधी बात कहना आता ही नहीं।

मन कोई वस्तु ही नहीं है। विषयकी प्रतीतिको ही मन कहते हैं। जगत् अपने विचारोंका ही प्रतिबिम्ब है। इस प्रकार अनेक दार्शनिक मत इस साधनाके अन्तर्गत हैं। बौद्धोंका क्षणिक विज्ञानवाद तथा शून्यवाद और श्रीशंकराचार्यजीका अद्वैतवाद, बुद्धिको—विचारको मुख्य बनाकर चलनेवाले सब मार्ग इसीके भीतर आयेंगे।

संसार और संसारके विषय दुःखरूप हैं, क्षणिक हैं, नश्वर हैं अथवा हैं ही नहीं। इनमेंसे कोई भी बात विचारके द्वारा बुद्धिमें बैठ जाय तो संसारमें जो राग-द्वेष है, वह निवृत्त हो जायगा; क्योंकि रस्सीमें साँप भले प्रतीत होता रहे; किंतु जब जान लिया कि वह रस्सी है, तब न डर लगेगा, न उसे मारनेको लाठी उठेगी। सीपमें चाँदी भले दीखे; किंतु उसे सीप जान लेनेपर लोभ स्वतः मर गया। इसी प्रकार मिठाईमें विष है, यह जान लेनेमात्रसे उसे खानेकी इच्छा नष्ट हो जाती है। जो मुखसे ऊँचे दर्शनकी बात करते हैं, किंतु जिनके मनमें वही राग-द्वेष है, उनकी बात मैं नहीं करता। उन्होंने तो केवल पढ़ा है। अपने निश्चयको वे स्वयं सत्य नहीं समझते और तब वे दम्भ करते हैं। आप जानते हैं कि दम्भ कोई सिद्धान्त नहीं; किंतु जिनकी बुद्धिमें सचमुच बैठ जायगा अद्वैतवाद, जगत्‌का मिथ्यात्व अथवा शून्यवाद—जगत्‌की दुःखरूपता, उनका राग-द्वेष शश-शृंगके समान लुप्त हो जायगा। उनकी चित्तशुद्धि तत्काल हो जायगी।

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥

(गीता)

विषयोंसे परे इन्द्रियाँ हैं, अतः आहारशुद्धि—विषयशुद्धिसे इन्द्रिय-निग्रह अधिक आन्तर एवं शक्तिशाली हुआ। इन्द्रियोंसे मन परे है, अतः इन्द्रियनिग्रहसे भी मनोनिग्रह अधिक आन्तर हुआ। इसीसे उपासनाके द्वारा स्वतः इन्द्रियनिग्रह होता है। मनसे बुद्धि परे है, अतः मनोनिग्रहसे भी बुद्धिनिग्रह—दृढ़ शुद्धिविचार अधिक आन्तर है और उसीसे मनोनिग्रह तथा इन्द्रिय-निग्रह स्वतः सम्पन्न हो जाय, इसमें कहीं शंका-सन्देहको स्थान नहीं।

अब जो बुद्धिसे परे है, उसकी चर्चा। गीताने उसे '**सः**' कहा और श्रुतिने भी '**रसो वै सः**' ही कहा है। उसे आलम्बन करके जो चले, वह सबसे आन्तर हुआ या नहीं? इन्द्रिय, मन तथा बुद्धिका भी स्वतः निग्रह केवल उसके आलम्बनसे सम्पन्न हो जायगा—यह बात अब कहनेकी रही नहीं। किंतु वह तो अवाङ्मनसगोचर है। उसका आलम्बन कैसे?

'**रसो वै सः**'—यह श्रुतिने कहा है। मैं भी रसकी—आनन्दकी बात कह रहा हूँ। आनन्दमय कोशको—अपने व्यक्तित्वकी अनुभूतिको उससे सम्बद्ध कर देनेकी बात। वैष्णव-सम्प्रदायके शब्दोंमें कहूँ तो इसे '**ब्रह्म-सम्बन्ध**' कहना चाहिये और सर्वसामान्य शब्दोंमें कहूँ तो यह है प्रेम, जो आनन्दका—रसका दूसरा नाम है।

यह उपासना नहीं है, साधना नहीं है—स्वभाव है। दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य—ये उसके चार रूप हैं। इसीको भक्ति कहते हैं। वह जो रसरूप है—परमानन्द-घन-मूर्ति है, हमारा कोई है—हमारा अपना है! अपनत्वकी यह अनुभूति जाग उठे मनमें, बस! चित्तशुद्धिकी चर्चा यहाँ छूट गयी। इसलिये छूट गयी कि अब हम अकेले नहीं हैं; हम जो नहीं कर सकेंगे, उसकी चिन्ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर लेनेवाला एक है और वह ऐसा है कि उसके स्मरणसे अशुद्धिकी सत्तातक समाप्त हो जाती है।

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि॥

—यह ज्ञानका माहात्म्य गीतामें है और उसी गीतामें है—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग् व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

दोनोंमें किंचित् अन्तर है। '**वृजिनं संतरिष्यसि**'—वह स्वयं ज्ञाननौकाके द्वारा समस्त तापसे पार हो जायगा। किंतु दूसरा तो अभी पार हुआ नहीं, किंतु आप पूरे विश्वको अभीसे सर्वेश्वर होकर आदेश दे रहे हैं—'**साधुरेव स मन्तव्यः।**' तुम सबको उसे अभीसे साधु मान लेना चाहिये! क्यों? इसलिये कि वह चाहे जैसा हो, उसके पीछे उसी नौकापर अब आप भी आकर खड़े हो गये हैं।

यहाँतक तो बात हुई पंचकोशोंमेंसे एक-एकके आलम्बनकी; किंतु हमें परमात्माने पाँचों एक साथ दिये हैं, अतः पाँचोंका ही उपयोग अधिक बुद्धिमत्ता होगी और इससे सुगमता भी अधिक होगी।

अन्नमय कोशकी—स्थूल देहकी शुद्धिके लिये आहारशुद्धिका ध्यान रखा जाय। प्राणशक्ति—क्रियाशक्तिकी शुद्धिके लिये शुद्ध कर्म ही किये जायँ, जिससे प्राणमय कोश शुद्ध हो। मनोमय कोश—इच्छाशक्ति—भावनाकी शुद्धिके लिये शुद्ध, पवित्र एवं भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, लीलादिकी ही भावना की जाय। विज्ञानमय कोशकी शुद्धि—विचारशक्तिकी पवित्रताके लिये—वैराग्यके लिये जगत्‌की दुःखरूपता एवं अनित्यताका बार-बार विचार किया जाय और आनन्दमय कोश—व्यक्तित्वकी शुद्धिके लिये अपने 'अहं' को उस रसरूपसे सम्बद्ध कर दिया जाय, उसे अपना बना लिया जाय। चित्तशुद्धिका यह सम्यक् पंचांगशुद्ध साधन हुआ। जैनोंके त्रिरत्न (सम्यक् आहार, सम्यक् आचार तथा सम्यक् समाधि)-से कुछ ऊपरकी वस्तु हुई यह।

जब शरीरत्रयका विचार किया जाता है, तब इन पंचकोशों तथा इनके कार्योंका तीन शरीरोंमें ही अन्तर्भाव हो जाता है। स्थूलशरीर अन्नमय कोश है। अतः आहारशुद्धि तथा शरीरसे होनेवाली क्रियाओंकी शुद्धिका यह माध्यम है। जिनमें स्थूलदेहकी आसक्ति प्रबल है और जिनमें भावनाशक्ति तथा विचारशक्तिका उदय नहीं हुआ है, उनके लिये हठयोग तथा निष्काम कर्मयोग सुगम पड़ सकें, ऐसे साधन हैं। वैसे साधन सब पवित्र हैं और सबके लिये लक्ष्यतक ले जानेवाले हैं।

स्थूलशरीरके अतिरिक्त हमें परमात्माने दो और शरीर दिये हैं—'सूक्ष्मशरीर' और 'कारण-शरीर'। पाश्चात्य ढंगके विचारक कहते हैं कि हमें तीन वस्तुएँ प्राप्त हैं—१. शरीर, २. हृदय (भावनाशक्ति), ३. मस्तिष्क (विचारशक्ति)। किंतु वे एक चौथी वस्तु छोड़ जाते हैं—हमारे व्यक्तित्वकी अनुभूति, हमारी अहंता और यह उपेक्षणीय नहीं, सर्वोपरि वस्तु है।

प्राणमय कोश—क्रियाशक्ति, मनोमय कोश—इच्छाशक्ति और विज्ञानमय कोश—विचारशक्ति, ये तीनों ही सूक्ष्म शरीरके अन्तर्गत हैं; किंतु क्रियाशक्ति बिना स्थूलदेहके व्यक्त नहीं होती। (स्वप्नकी क्रियाको मैं यहाँ छोड़ रहा हूँ।) अतः क्रियाशक्तिका उपयोग तो प्रथम अधिकारी—स्थूलदेहमें ही आबद्धके लिये प्रमुखरूपसे है। है अन्य सबके लिये, किंतु वहाँ यह अनिवार्य नहीं है।

अब जो अधिक भावनाशील हैं, उनका मार्ग उपासना-मार्ग है। वे हृदयप्रधान हैं। मनोमय कोश उनमें प्रबल है। अतः उनकी साधना वहींसे प्रारम्भ होनी चाहिये। जो तर्कशील हैं, बुद्धिप्रधान हैं, मस्तिष्क जिनमें मुख्य प्रेरणा-स्रोत है, उनमें विज्ञानमय कोश प्रबल है। उनकी साधना ज्ञानमार्गकी साधना होनी चाहिये।

अब तीसरे कारण-शरीरकी बात। व्यक्तित्वकी अनुभूति, अहंता—यही कारणशरीरका स्वरूप है। इसीमें आनन्दमय कोशकी अभिव्यक्ति है। अर्थात् आनन्द न स्थूलदेहमें है, न मनमें, न बुद्धिमें। वह आपमें, आपके व्यक्तित्वमें है। वस्तुतः तो वह अहंसे भी परे जो रसरूप है, उसका स्वरूप है; किंतु व्यष्टिमें उसकी अभिव्यक्ति उसके अहंमें, व्यक्तित्वमें है।

कुछ ऐसे लोग भी हैं—चाहे वे बहुत थोड़े ही हों, जिनमें स्थूलदेहकी आसक्ति सर्वप्रधान नहीं, मनकी इच्छा भी सर्वप्रधान नहीं और बुद्धिके विचार भी सर्वप्रधान नहीं। उनमें अहंता अत्यन्त प्रबल है। उनका व्यक्तित्व सर्वत्र आगे आ खड़ा होता है। आनन्दमय कोश प्रबल है उनमें। वे उस रसरूपको अपना बना लें, उसे अपना कोई आत्मीय बनाकर ग्रहण कर लें। उनके साधनकी सुगम सीढ़ी यही है।

अपने स्वभावको, अपने अधिकारको पहचानकर जो साधन अपनाते हैं, वे चित्तशुद्धि शीघ्र प्राप्त करते हैं। जहाँ अधिकार-निर्णय संदिग्ध हो, वहाँ पंचांग-शुद्ध समस्त कोशोंको लेकर चलनेवाली सम्यक् प्रणाली ही सुगमतम है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्त-उद्‌बोधन

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

साधक महानुभाव! सामर्थ्यकी माँग, जीवनकी माँग और पवित्रताकी माँग—ये हुई अपनी माँग और जिससे मिलेगी उसके प्रेमकी माँग—यह हुई सार्वभौमिक माँग। साधककी पहली माँग होगी—हमें जीवन मिले, हमें सामर्थ्य मिले और हम शुद्ध-पवित्र हो जायँ। अन्तिम माँग होगी कि जिसने हमारी माँग पूरी की है, उससे हमारा प्रेम हो जाय। आप कहेंगे, यह अन्तिम माँग क्यों होगी ? तो भाई, आपको वह जीवन प्राप्त हो जाय। सामर्थ्य प्राप्त हो जाय और पवित्रता भी प्राप्त हो जाय—उससे जो रस मिलेगा, वह अखण्ड तो होगा, परंतु अनन्त नहीं होगा। जिसने हमारी माँग पूरी की, उसमें हमारा प्रेम हो जाय—यह साध्यरूप माँग है, साधनरूप माँग नहीं है।

आपको जीवन मिल गया, सामर्थ्य भी मिल गयी और पवित्रता भी मिल गयी। उससे आपको अखण्डरस, नित्यरस, शान्तरस अर्थात् ऐसा रस जो कभी खण्डित न हो सके, जिसका कभी नाश न हो, वह प्राप्त होगा।

अशान्तिकी गन्ध किसमें नहीं होती ? जो होनेमें तो प्रसन्न रहता है, किंतु करनेमें सावधान रहता है। जहाँ करनेमें सावधानी नहीं, वहाँ मानसिक अशान्ति आती है। लेकिन जब 'होना' 'हैं' में परिवर्तित हो जाता है, तो फिर करनेका प्रश्न समाप्त हो जाता है। तब आप कहते हैं कि भाई! करनेकी बात रही नहीं, अब जो होता है, वह ठीक है—यह शान्त रस है।

इस प्रकार साधककी जो पहली माँग है—वह शान्तिकी है और जो अन्तिम माँग है, वह अनन्त रसकी अभिव्यक्ति की है।

जब वह अपनी निर्बलताओंसे परिचित हुए, तब किसीकी महिमामें आस्था की अथवा हो गयी। हम बिना माने आस्था कर लें या मानकर आस्था कर लें, बिना जाने आस्था कर लें अथवा जानकर आस्था कर लें—आस्था हो जाती है।

आस्था बिना जाने भी होती है और बिना माने भी होती है। जितने भी विचारक हैं, वे बिना माने सत्यमें आस्था करते हैं। वे सन्देहसे चलते हैं। जानते नहीं हैं, पर आस्था है।

जितने विश्वासी हैं, वे मानते भी हैं और आस्था भी करते हैं और जितने तत्त्वज्ञ हैं, वे जानते भी हैं और आस्था भी करते हैं।

हमें देखना चाहिये कि हमारा सम्बन्ध हमारी ओरसे किसके साथ है ? परमात्माके साथ है या जगत्‌के साथ है ? अच्छाईके साथ है या बुराईके साथ है ? हमको क्या पसन्द आता है ? अगर हमको परमात्माका सम्बन्ध अच्छा लगता है, तो संसारका सम्बन्ध अपने-आप ही टूट जायगा। अगर संसारका सम्बन्ध हमने तोड़ दिया है, तो परमात्मासे सम्बन्ध अपने-आप हो जायगा। तो आपके और परमात्माके बीच संसार पर्दा नहीं है, उससे सम्बन्ध पर्दा है।

माँग तीन प्रकारसे हो सकती है—कामनाको लेकर, लालसाको लेकर और जिज्ञासाको लेकर। भोगकी कामना, सत्यकी जिज्ञासा और ब्रह्मकी लालसा। 'जिज्ञासा' कहते हैं—जाननेकी इच्छा और कामना कहते हैं—भोगकी इच्छा। तो यह भोगकी कामना, सत्यकी जिज्ञासा और परमात्माकी लालसा—ये तीनों लक्षण जिसमें रहते हैं, उसे 'मैं' कहते हैं। इन तीनोंमें जो कामना है, वह तो भूलसे उत्पन्न होती है और जिज्ञासा एवं लालसा स्वभावसे हैं। जो भूलसे उत्पन्न होती है, उसकी निवृत्ति हो जाती है एवं लालसाकी प्राप्ति हो जाती है। इसलिये कामनाकी निवृत्ति, जिज्ञासाकी पूर्ति और परमात्माकी प्राप्ति मनुष्यको हो सकती है।

प्रेम करनेका कोई तरीका नहीं है, पर प्रेम करना सबको आता है। जीवनमें एक अनुभवकी बात यह है कि हम जिसको अपना मान लेते हैं वह प्यारा लगता है और हम उसे अपना सब कुछ देनेको तैयार हो जाते हैं। परमात्मा अपना है, उसे अपना बना लें, तो वह प्यारा लगता है।

आप सुनना और सीखना बन्द करें, जानना और मानना प्रारम्भ करें, तो काम बन जायगा। जाननेके स्थानपर 'मेरा कुछ नहीं है।' इसके सिवाय और कुछ नहीं जानना है और माननेके स्थानपर सिवाय परमात्माके और कोई माननेमें आता नहीं है।

जबतक तुम बुरे नहीं होते, बुराई नहीं पैदा होती। मनमें कोई विकृति नहीं है। अपनेमें कोई खराबी हो, तो ठीक करो, मन ठीक हो जायगा। तुम किसीको बुरा मत समझो, मनमें बुरी बात कभी नहीं आयेगी। तुम किसीका बुरा मत चाहो, मनमें बुरी बात कभी नहीं आयेगी। तुम किसीके साथ बुराई मत करो, मनमें बुरी बात कभी नहीं आयेगी। बुराई करनेवाला खुद दुःखी रहता है। अपनेको बुरा मानोगे, तो बुराई करोगे। अपनेको भला मानोगे, तो भलाई करोगे और भला-बुरा कुछ नहीं मानोगे, तो परमात्मामें रहोगे। अच्छाई और बुराई जब दोनों होती हैं, तब तो बनता है अहम्। परिच्छिन्नता बनती है और जब बुराई बिलकुल नहीं रही, अच्छा-ही-अच्छा रह जाता है, तो अहम्‌का नाश हो जाता है। द्वन्द्वमें अहम् बनता है, द्वन्द्वातीतमें अहम् नहीं बनता। मनुष्य सर्वांशमें बुरा नहीं हो सकता, पर सर्वांशमें भला हो सकता है।

गुरुवाणीसे जो सुना, उसे मान लिया। यह निदिध्यासन हो गया। जिसके करनेकी सामर्थ्य प्राप्त हो, जिसमें किसीका अहित न हो, जिसके बिना करे रह न सकते हों और जिसका सम्बन्ध वर्तमानसे हो—ऐसा काम ही जरूरी काम होता है। ॐ आनन्द!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'भरत सुभाउ सुसीतलताई....'

(डॉ० श्रीरामेश्वरप्रसादजी गुप्त, एम०ए०, पी-एच०डी०)

मनुष्यका सबसे सुन्दर आभूषण 'शील' है। तद्विषयक सूक्ति भी प्रचलित है कि '**शीलं परं भूषणम्।**' व्यक्तिमें शील-आगम उसके जन्म-जन्मान्तरकी तपस्या एवं सत्कर्मोंसे ही प्राप्त होता है। इसके मूलमें त्यागकी भावनाका सर्वोपरि योग एवं महत्त्व है। 'त्याग'से तात्पर्य विकारों—काम, क्रोध, मोह, मद, लोभ एवं मत्सरके त्यागसे है। यद्यपि ये षड्विकार मानव मन एवं उसके शरीरमें आवास-निवास बनाये हुए हैं, इसलिये इन विकारोंका छोड़ना दुष्कर है; तथापि मनुष्यको प्रयत्न करना चाहिये कि ये विकार व्यक्तिके सिरपर चढ़कर न बोलें, व्यक्तिके ऊपर हावी न हो जायँ। इसके लिये आवश्यक है कि व्यक्तिका अनुराग आत्मदर्शनमें हो, उसकी प्रभुमें भक्ति हो। प्रभुके प्रति प्रेम होनेसे षड्विकार सहज ही पलायन कर जाते हैं—

तब लगि हृदयँ बसत खल नाना। लोभ मोह मच्छर मद माना॥
जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरें चाप सायक कटि भाथा॥
ममता तरुन तमी अँधिआरी। राग द्वेष उलूक सुखकारी॥
तब लगि बसति जीव मन माहीं। जब लगि प्रभु प्रताप रबि नाहीं॥
(रा०च०मा० ५। ४७। १—४)

मायाके षड्पुत्र और स्वयं माया बड़ी दुरत्यया है, लेकिन प्रभु-शरणागतिसे माया निष्क्रिय हो जाती है। यथा गीतामें उक्ति है—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके अनुज 'भरत' उक्त षड्विकारों और मायासे मुक्त थे, कारण कि वे एक भगवद्भक्त थे। जहाँ भक्ति होती है, वहाँ माया और उसके षड्पुत्र अपना प्रपंच नहीं फैला पाते। भक्ति शब्द '**भज्**' धातु '**सेवायां**' से निर्मित है। भक्ति अर्थात् सेवा। मानवमात्रका यह शरीर परमेश्वरकी सृष्टिके जीवोंकी सेवाके लिये ही तो बना है।

'शील' जनसेवा, समाजसेवा, राष्ट्रसेवा, देशसेवा, प्राणि-सेवासे ही आता है। सेवा नहीं, तो शील नहीं। सेवा-भावना न होनेसे स्वार्थ जागता है, धीरे-धीरे वह स्वार्थ व्यक्तिपर हावी हो जाता है और फिर मायाके जालमें व्यक्ति बँध जाता है।

भरतके स्वभावमें शील था; क्योंकि उनके अन्तःकरणमें सेवा-सद्भाव और कृतिमें परहित था, सौजन्यता थी। श्रीरामचरित-मानसमें वर्णित भरतका चरित्र माता-पिता, गुरुजन, भ्रातागण, पुरवासी, परिजन, सेवकजन, वनवासीजन, मानवेतर प्राणियों, सरिताओं एवं प्रकृतिके प्रत्येक अंगके प्रति सेवाभावसे भरा हुआ है। उनके जीवनमें स्वार्थको स्थान ही नहीं है।

वस्तुतः व्यक्ति भूल जाता है कि स्वार्थ एक ऐसा अवगुण है, जिससे व्यक्तिको कुछ भी श्रेय प्राप्त नहीं होता एवं इस स्वार्थके कारण वह अपना समग्र खो देता है तथा जन्म-जन्मान्तरकी प्राप्तिका भागीदार बनता हुआ बन्धनयुक्त योनियोंमें भ्रमित हुआ भटकता रहता है।

जब व्यक्तिके साथ कुछ भी नहीं जाना है, तो संसारसे स्वार्थ कैसा! भरतकी यही समझ उनके सुकृतके रूपमें फलीभूत हुई। भारतीय इतिहासमें एक निष्कलंक तथा परम पवित्र कर्मयोगीके रूपमें भरत प्रथम पंक्तिमें प्रथम प्रगण्य हैं।

भरतकी सुशीलता विश्रुत है। शीलसे भी आगे सुशील स्वभाव उनका सर्वदा एकरस रहा, अवर्णनीय रहा। शील व्यक्तिका सहज स्वभाव होता है, लेकिन यह सद्‌गुण अपनेमें सतत सँजोये रखना एक बहुत बड़ा व्रत है, संयम है, अनुशासन है एवं दैवी शक्तिकी कृपा है, जो भरतको प्राप्त थी। शील गुण भगवान्‌के नामसे नहीं; अपितु उनके चरित्रके अनुकरणसे आता है। भगवान्‌के चरित्रका अनुकरण कोई विरले ही करते हैं, जो शीलसम्पन्न भी होते हैं और मुक्तिके पात्र भी।

'धर्म' अर्थात् सत्य या सदाचरणके मार्गपर चलनेवाले ही भगवद्भक्त एवं भगवान्‌के प्रिय होते हैं। मानसोक्ति भी है कि *'धरमु न दूसर सत्य समाना।'*

निष्कर्ष यह है कि परमात्मासे योग एवं उनके साक्षात्कारका साधन भगवान्‌के सुचरित्रोंका अनुकरण ही होता है। भरतका ऐसा ही चरित्र है, जिसके द्वारा उन्होंने रामको अपना बना लिया था—

भरत सरिस को राम सनेही। जगु जप राम रामु जप जेही॥
(रा०च०मा० २। २१८। ७)

मानवमात्रको अपने कल्याणके लिये भरत-जैसे महापुरुषके शील, सौजन्यभाव तथा सदाचरणका अनुकरण अनिवार्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मत कर तू अभिमान

(श्रीरमेशचन्द्रजी बादल)

'मत कर तू अभिमान रे बंदे मत कर तू अभिमान। झूठी तेरी शान रे बंदे झूठी तेरी शान॥'—इन दो पंक्तियोंमें मनुष्यको चेतावनी दी गयी है कि उसे अपनी किसी भी विशेषता, गुण, रूप, धन आदिपर अभिमान—घमण्ड नहीं करना चाहिये। वास्तवमें मनुष्यको जो भी विशेषताएँ अथवा गुण आदि प्राप्त हैं, वे परमात्माकी देन हैं। इन गुणोंपर घमण्ड करना नादानी है। धन हमेशा किसी व्यक्तिके पास स्थायीरूपसे नहीं रहा है और न रहता ही है। इसी प्रकार रूप (सुन्दरता) भी कुछ दिनोंतक ही रहेगी। पद भी स्थायी नहीं है, इसलिये इनपर इतराना अथवा घमण्ड करना व्यर्थ है।

अभिमान, घमण्ड, दर्प, गर्व, दम्भ और अहंकार ये सभी शब्द प्रायः समानार्थी हैं। **'अहं करोमीति अहङ्कारः'** अर्थात् मैं ही सब कुछ करता हूँ—मनमें यह भाव रखना ही अहंकारको जन्म देता है। अभिमानसे ग्रस्त व्यक्ति सदैव अपनेको ही बड़ा, श्रेष्ठ, कुशल, योग्य और सर्वगुणसम्पन्न समझता है और दूसरोंको हेय, हीन अथवा छोटा समझता है। अभिमानी व्यक्ति स्वयंको ही कर्ता-धर्ता मानने लगता है। 'मैं हूँ', 'मैं और मेरा' (मेरापन)-की भावना जब अतिको लाँघ जाती है, तब उसका पतन भी प्रारम्भ हो जाता है और व्यक्ति अनेक प्रकारके शोक-क्लेश एवं दुःखोंको भोगता है। अभिमानी व्यक्ति दूसरोंको अपनी कटु, असह्य वाणीसे आहत करता है, उनको मानसिक रूपसे प्रताड़ितकर कष्ट पहुँचाता है, इतना ही नहीं अभिमानके नशेमें वह उचित-अनुचितका विचार किये बिना लोगोंका अपमान करने लगता है और उसे अपने दुर्व्यवहारपर किसी प्रकारका पछतावा भी नहीं होता। क्षमा-याचना भी नहीं करता; क्योंकि वह स्वयंको ही बड़ा मानता है। स्वयंको बड़ा माननेकी भावना जैसे-जैसे बढ़ती जाती है, वैसे ही उस व्यक्तिकी प्रतिष्ठा घटने लगती है और उसमें अनेक प्रकारके दुर्गुण आ जाते हैं।

भारतीय संस्कृतिमें स्वयंको बड़ा नहीं माना जाता है, बल्कि दूसरोंको बड़ा—श्रेष्ठ और आदरणीय माननेकी परम्परा चली आ रही है। अहं अर्थात् अपनेको श्रेष्ठ समझना ही अभिमानी व्यक्तिका लक्षण माना गया है। अपनेको छोटा—सेवक समझना ही व्यक्तिका सबसे बड़ा गुण माना गया है। परमात्मा भी अभिमानी व्यक्तिको नहीं चाहता। परमात्माको तो विनम्र व्यक्ति ही पसन्द होता है। कविका कथन है—*'लघुता से प्रभुता मिले प्रभुता से प्रभु दूर'*। प्रभुता (बड़प्पन, मान) प्राप्त करनेपर व्यक्तिमें अनेक प्रकारके आसुरी दुर्गुण उत्पन्न हो जाते हैं और वह अत्याचारी बन जाता है। अभिमानके नशेमें तरह-तरहके अपराध करता है।

महाभारतके युद्धमें भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनके सारथी बननेमें किसी प्रकारका भी संकोच नहीं किया। छोटे बननेमें कोई लज्जा नहीं की। यह उनकी विनम्रताका उदाहरण है। जो बड़ा होता है, वह हमेशा बड़ा ही रहता है। महान् लोगोंमें अभिमान लेशमात्रको भी नहीं रहता। अभिमानी व्यक्तिको छोटा कार्य करनेमें हीनताका अनुभव होता है और वह सेवा-कार्योंसे हमेशा ही दूर रहता है। सेवा-कार्य करनेवाले ही महान् और पूजनीय माने जाते हैं। संसारमें अभिमानी व्यक्तियोंको कभी सम्मान नहीं मिला, वे हमेशा निन्दाके पात्र माने जाते हैं।

अभिमानके कारण मनुष्यके चरित्रकी सभी अच्छाइयाँ अथवा सद्गुणोंका महत्त्व नष्ट हो जाता है। उदाहरणार्थ—लंकाधिपति रावण महान् पण्डित, ज्योतिषशास्त्रका विद्वान्, चारों वेदोंका ज्ञाता, वैभवसम्पन्न, पराक्रमी, बलशाली, अनेक विद्याओं—गुणोंसे विभूषित एवं भगवान् शिवका अनन्य भक्त होते हुए भी अभिमानी होनेके कारण समस्त कुल परिवारसहित विनाशको प्राप्त हुआ।

मथुराके राजा कंसने अभिमानके नशेमें अपने क्षेत्रके दूध पीते नौनिहालोंका नृशंस वध कराया था। कौरव युवराज दुर्योधनके अभिमानके कारण ही कौरवोंसहित अठारह अक्षौहिणी सेना नष्ट हो गयी। जब ब्रजवासियोंने भगवान् इन्द्रकी पूजा बन्द कर दी तो इन्द्रभगवान्ने कुपित होकर भयंकर वृष्टि की। भगवान् श्रीकृष्णने इन्द्रके अहंकारको नष्ट करनेके लिये 'इन्द्रयाग' के स्थानपर गोवर्धनकी पूजा करायी। दस हजार हाथियोंका बल रखनेवाले दुःशासनका अहंकार नष्ट करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णने द्रौपदीकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्षा करनेहेतु वस्त्रावतारके रूपमें सहायता की।

हिरण्यकशिपुका अभिमान बढ़ जानेपर वह स्वयंको ही सर्वशक्तिमान् समझने लगा था। उसने अपने पुत्र प्रह्लादको ईश्वरका नाम लेनेपर घोर यातनाएँ दीं, तब भगवान्‌को स्वयं अपने भक्त प्रह्लादकी रक्षाके लिये नरसिंहके रूपमें अवतार लेना पड़ा।

एक समय धृतराष्ट्रने महात्मा विदुरसे पूछा कि 'जब वेदोंमें पुरुषकी आयु सौ वर्ष बतलायी गयी है तो वह किस कारण पूर्ण आयुको नहीं पाता?' महात्मा विदुरजीने कहा कि छः दोषोंके कारण मनुष्यकी आयु घट जाती है, इनमें प्रथम दोष अत्यन्त अभिमानी होना है। विदुरनीतिमें कहा गया है कि अहंकार व्यक्तिकी सभी प्रकारकी अच्छाइयों और लक्ष्मीका नाश करता है। महाकवि गोस्वामी तुलसीदासजी श्रीरामचरितमानसके उत्तर-काण्डमें लिखते हैं—

सुनहु राम कर सहज सुभाऊ। जन अभिमान न राखहिं काऊ॥
संसृत मूल सूलप्रद नाना। सकल सोक दायक अभिमाना॥
(७।७४।५-६)

श्रीकाकभुशुण्डिजी पक्षिराज गरुडको मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामके स्वभावके विषयमें कहते हैं कि वे भक्तमें अभिमान नहीं रहने देते; क्योंकि अभिमान जन्म-मरणरूप संसारका मूल है और अनेक प्रकारके क्लेशों तथा समस्त शोकोंको देनेवाला है। इस चौपाईमें दो बातोंपर विशेषरूपसे ध्यान दिया गया है, प्रथम तो यह कि भगवान् श्रीरामका यह स्वभाव है कि वे अपने किसी भी भक्तमें अभिमान नहीं रहने देते अर्थात् उसका अभिमान नष्ट कर देते हैं और दूसरी बात अभिमानके कारण ही व्यक्ति कई प्रकारके दुःख और शोक भोगते हुए पतनकी ओर जाता है।

श्रीरामचरितमानसमें गोस्वामी तुलसीदासजीका कथन—

अहंकार अति दुखद डमरुआ। दंभ कपट मद मान नेहरुआ॥
(रा०च०मा० ७।१२१।३५)

अर्थात् अहंकार (अभिमान-दम्भ) एक अत्यन्त दुःखदायी रोग है। इस गाँठके रोगसे बचो।

अहंकारके कारण ही व्यक्ति शोक, हर्ष, भय, क्रोध, लोभ, मोह, स्पृहा और जन्म-मृत्युके वशीभूत होता है। अतः अहंकारसे बचो।

अभिमान अर्थात् अहं अपनेको ही श्रेष्ठ समझना—यह भाव ही एक प्रकारका नशा है, जो अत्यन्त घातक है। अहंकारका नशा मनुष्यको पतनकी ओर ले जाता है। अहंकारी व्यक्तिको अपनी प्रशंसा अच्छी लगती है। उसे नीति एवं सदाचारकी बातें अच्छी नहीं लगतीं।

अहंकार केवल धन-सम्पन्नताके कारण ही नहीं आता, बल्कि अनेक बातोंसे भी अहंकार हो जाता है। यहाँतक कि सद्गुणोंके कारण भी अहंकार आ जाता है। अहंकारके कुछ प्रकार हैं—धनका अभिमान, रूप (सुन्दरता), पद, बुद्धि-विद्या, शारीरिक शक्ति, आध्यात्मिक शक्ति (जप-तप), सेवा, दान, त्याग, ऐश्वर्य, लोकप्रियता, वंश (कुल), विद्वत्ता, प्रशंसा आदि। इनमेंसे किसी एकका अभिमान होना ही घातक है और यदि उक्तमेंसे कई विशेषताएँ व्यक्तिके पास हैं तो फिर उसके अभिमानकी कोई सीमा नहीं। मनुष्यका पतन भी अभिमानके कारण ही होता है। पतनके लिये अभिमानसे बढ़कर कोई दुर्गुण नहीं और उत्थान-उन्नतिके लिये नम्रतासे बढ़कर कोई सद्गुण नहीं माना गया है। जिस कार्यके करनेसे अभिमान बढ़े तो वह कार्य भी निन्दनीय हो जाता है। यदि दान-धर्म-परोपकार और सेवा आदि पुण्यकार्य भी मनुष्य करता है तो उसका पुण्य भी पाप बन जाता है। इसलिये अभिमानकी भावनासे दूर ही रहो। अच्छे कार्योंका भूलकर भी अभिमान न करो। कभी-कभी प्रशंसा सुनकर भी अभिमान हो जाता है। वहाँ मत बैठो, जहाँ कोई तुम्हारी प्रशंसा करता हो। कभी-कभी मनुष्यको अपनी सफलता-उन्नतिपर भी अभिमान हो जाता है—यह ठीक नहीं। अभिमान उत्पन्न होनेपर सफलता भी हाथसे चली जाती है।

संत कबीरकी शिक्षा ग्रहण करिये—

कबिरा गरब न कीजिए, कबहुँ न हँसिए कोय।
अजहूँ नाव समुद्र में, का जाने का होय॥

मनुष्यको कभी भी अपनी विशेषताओं, गुणों और धन आदिका घमण्ड नहीं करना चाहिये; क्योंकि आज भी हमारी नाव समुद्रमें है। पता नहीं क्या होगा। डूबती है या बचती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। अत: सदैव विनम्र रहिये। विनम्रता ही सर्वोत्तम गुण है।

विश्वके महापुरुषों, कवियों एवं सन्तोंने अभिमानकी निन्दा की है और अभिमानको पतनकी ओर ले जानेवाला बताया है। लगभग सभी धर्मोंमें भी अभिमानको अत्यन्त घृणित कहा गया है। अतएव अभिमानका त्याग करो। अपने सभी गुणों, विशेषताओं और भौतिक सम्पन्नता (धन-दौलत)-को परमात्माकी देन समझकर नि:स्वार्थ भावसे दूसरोंकी सेवा और भलाईके कार्योंमें लगाना ही कल्याणकारी है। हमारा जन्म इस संसारमें परोपकारके लिये हुआ है। अहंकारको छोड़कर विनम्रता धारण करना ही हमारा धर्म है। दूसरोंकी सेवा करना ही कर्तव्य है।

संत कबीरकी शिक्षा है—*'जहाँ आपा तहाँ आपदा'* अर्थात् जब मनुष्यमें आपा (घमण्ड) हो जाता है, तब उसपर अनेक प्रकारकी आपत्तियाँ आने लगती हैं। अतएव अभिमान (घमण्ड)-से दूर रहो। परमात्मासे नित्य प्रार्थना करो और दया, क्षमा, प्रेम, त्याग-जैसे सद्गुणोंको धारण करो।

कहानी—

क्षुरस्य धारा

(श्रीराधाकृष्ण)

आज रविवारका दिन था। सबेरेसे ही बूँदाबाँदी हो रही थी। दिनके ग्यारह बज चुके थे; किंतु लगता था जैसे अभी सबेरा हुआ हो। रसायनशास्त्रके बड़े प्रोफेसर, जो हमेशा रेशमी रूमालसे अपनी मोटी-सी नाकको पोंछते रहते हैं, रामभरोसेसे कह गये थे कि कल मैं लैबोरेटरीमें आऊँगा, तुम भी आ जाना। रामभरोसे उस प्रयोगशालामें कर्मचारी था। वह जानता था कि प्रोफेसर साहब कहनेको कह रहे हैं, किंतु आयेंगे नहीं। फिर भी वह आ गया था।

कालेजकी लैबोरेटरीमें काम करते हुए रामभरोसेको साढ़े तीन साल होनेको आये। वहाँ वह अन्य कर्मचारियोंसे भिन्न है। वह कुछ पढ़ा-लिखा और अधिक समझदार लगता है। फिर भी अपने व्यवहार और बातचीतसे इस बातको प्रकट नहीं होने देना चाहता था। उसका चेहरा रूखा और भद्दा था, किंतु उसकी आँखोंमें बुद्धिकी चमक थी। इतने दिनोंसे प्रयोगशालामें काम करते-करते वह वहाँकी सारी वस्तुओंका नाम जानने लगा था, बल्कि वह उन वस्तुओंका प्रयोग भी जानता था। कभी-कभी वह पहले और तीसरे वर्षके छात्रोंकी प्रयोगके समय सहायता भी करता था।

आज उस प्रयोगशालामें सन्नाटा छाया हुआ था। वहाँ कोई नहीं, कोई आयेगा भी नहीं। रामभरोसेने आलमारी खोली और वहाँका सबसे बढ़िया अणुवीक्षण यन्त्र (माइक्रोस्कोप) निकालकर टेबलपर रख दिया। आज उस यन्त्रके द्वारा वह स्वयं कुछ देखना चाहता था। उसने एक छूरा लिया और उसकी धारको अणुवीक्षण यन्त्रसे देखा।

····उसके मुँहसे एक चीख-सी निकल गयी। वह चौंककर वहाँसे इस तरह हटा, जैसे किसीने जबरदस्ती उसे ढकेलकर अलग कर दिया हो। क्षणभरमें ही उसका शरीर पसीनेसे तर हो गया, उसकी आँखें विकृत-सी दिखलायी देने लगीं। उसके होठ हिल रहे थे।

जैसे-जैसे वह अपनेको काबूमें करनेकी चेष्टा करता गया, वैसे-वैसे उसे रुलाई आने लगी। अणुवीक्षण यन्त्रसे उसने अभी जो छूरेकी धार देखी थी, वह धार सीधी नहीं थी। उसे लगा जैसे उसने ऊबड़-खाबड़ किसी वस्तुको देखा है। क्या छूरेकी धार ऐसी ही होती है? ····उसकी आँखोंसे आँसू बहने लगे। रामभरोसे वहाँ खड़ा-खड़ा रो रहा था। उसका मन सुदूर अतीतमें ऊब-डूब करने लगा था।

उसकी कल्पनाकी आँखें राजीवको देख रही थीं। उसकी छातीके अन्दर छूरा पूरा घुस गया था। वहाँसे खूनका फव्वारा छूट रहा था। इसी हालतमें राजीव उससे कह रहा था—'छूरेकी धारका रूप तुमने देख लिया न! क्या वह सीधी है?'

रामभरोसे आजसे बीस साल पहलेके जीवनमें पहुँच गया था। उस समय वह पन्द्रह सालका किशोर था। उसके चेहरेपर तेज था। वह दर्पके साथ चलता। वह अपनेको सच्चा आदमी मानता था। अपनी सच्चाईपर उसे गर्व था। उसकी सच्चाईका तेज उसकी आँखोंसे झलकता था।

उस समय उसका नाम रामभरोसे नहीं, रघुबीर था। राजीवसे उसकी मित्रता थी। दोनों सदा साथ रहते, साथ ही खेलते। वह उनके पड़ोसी विद्यासागर मिश्रका लड़का था।

चैतका महीना। पेड़ोंपर आमके टिकोरे लद गये थे। रामभरोसेके पास एक झोली टिकोरा था। राजीव अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घरसे नमक-मिर्च लेता आया था। दोनों आमके बगीचेमें आम छील रहे थे और खा रहे थे।

इसी समय एक बात उठी। राजीवने उसे चिढ़ाना चाहा और रामभरोसे सचमुच चिढ़ गया। राजीव अपने हाथमें छूरा लेकर कह रहा था कि 'छूरेकी धार कभी सीधी नहीं होती!'

रामभरोसेने उसके हाथसे छूरा छीन लिया। क्रोधसे बोला—

'फिर छूरेकी धार होती कैसी है?'

'अजी, वही ऐंड़ी-बेंड़ी होती है और कैसी होगी।'

'छूरा तुमने कभी देखा भी है?'

'छूरा तो तुमने भी देखा होगा, किंतु छूरेकी धार नहीं देखी होगी।'

बात बढ़ती चली गयी। बात बहुत बढ़ गयी। रामभरोसेकी आँखें लाल हो उठीं। उसका चेहरा तमतमा रहा था। वह कुछ कर डालना चाहता था। छूरेकी धार सीधी है। यह प्रत्यक्ष सत्य है। इस सचाईको भी यह झूठ बतला रहा है। रामभरोसेने अपना आपा खो दिया। क्रोधका एक ऐसा भीषण आवेश आया कि·······

········छूरा राजीवकी छातीमें धँस गया। उसकी छातीसे खूनका इतने जोरोंसे उबाल आया कि रामभरोसेका सारा चेहरा उस रक्तसे भर गया। राजीव प्राणपणसे चिल्ला उठा और जमीनमें गिरकर लोटने लगा। ठीकसे छटपटा भी नहीं पाया कि तुरंत ही लड़खड़ाकर शान्त हो गया।········यह मैंने क्या कर डाला?···· हत्या!!·······

रामभरोसे खेतकी पगडण्डियोंसे भागता जा रहा था, जिसके दोनों ओर झींगुर बोल रहे थे। नदीके किनारे पहुँचकर उसने अपने चेहरेका लहू धोया। उसका तेजभरा दीप्त चेहरा अब फीका दिखलायी दे रहा था। उसे लगा कि नदीके जलके भीतर भी राजीव लोट रहा है और उसके चारों ओर लहू बह रहा है। वह वहाँसे भी भागा।··········

जब वह प्रकट हुआ, तब उसका नाम रघुवीर नहीं, रामभरोसे था। कालेजकी प्रयोगशालामें नौकरी करते हुए उसे साढ़े तीन साल होनेको आये। आज उसने छूरेकी धारका असली रूप देखा·······राजीवको देखा·······उसकी छातीमें छूरा घुसा हुआ है और वह चिल्लाता हुआ धरतीपर लोट रहा है······

रोते-रोते रामभरोसेकी हिचकियाँ बँध गयी थीं। वह बुद्बुदा रहा था, मानो बीस साल पहले मरे हुए अपने मित्र राजीवसे बातें कर रहा हो। वह कह रहा था—'मैं नहीं जानता था····मुझे ज्ञात नहीं था····सच्चाई क्या है, इसे जानना कठिन है। सच्चाईके लिये किसीपर आक्रमण करनेके बदले सत्यके लिये अपनी जान दे देना अधिक उचित है।····मैंने बुरा किया राजीव! मैंने सत्यके लिये जान ली। सत्यके लिये अपनी जान दे सकता तो कितना अच्छा था।····

उसका सारा शरीर पसीनेसे लथपथ हुआ था। वह बेचैन था, बहुत ही बेचैन। उसकी जीभ सूख रही थी। वह पानी पीना चाहता था। प्रयोगशालाके बाहर झमाझम वर्षा हो रही थी। रह-रहकर बिजली कड़क उठती।

'उमरिया धीरे-धीरे चल'

(सुश्री विजयलक्ष्मीजी 'विभा')

उमरिया धीरे-धीरे चल।
सूरज के संग आ जगती में, सूरज के संग ढल॥
सींचा कर जीवन बगिया में, भव का खारा जल।
तेरे भी कुछ उगें कर्म तरु, चख ले उनके फल॥
अभी रात है तो होगा ही, यहाँ सबेरा कल।
जब तक समय न होगा पूरा, पायेगी न निकल॥
माया दण्ड भोग ले पहले, झेल अनोखे बल।
बहुरंगी हैं चालें उसकी, बहुरंगी हैं छल॥
अनासक्त हो यहीं छोड़ दे, धन अपना चल अचल।
'विभा' मिलेगी तुझे तभी गति, प्रभु दर तक प्रतिपल॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग एवं यज्ञ

(श्रीदीनानाथजी झुनझुनवाला)

श्रीमद्भगवद्गीताके सभी अध्यायोंमें योग एवं यज्ञ समाया हुआ है। गीताके सभी अध्यायोंके अन्तमें उस अध्यायका विशेष प्रयोजन योग नामसे ही जुड़ा है, जैसे प्रथम अध्यायको बताया 'विषादयोग', द्वितीय अध्यायको बताया 'सांख्ययोग', तृतीय अध्यायको बताया 'कर्मयोग', चौथे अध्यायको बताया 'ज्ञानकर्मसंन्यासयोग'। इसी प्रकार सभी अठारह अध्यायोंके अन्तमें उस अध्यायविशेषके नामके साथ योग शब्द जुड़ा है।

हमलोगोंने योगका जो प्रचलित अर्थ समझ रखा है—वह है योग यानी जुड़नेकी क्रिया। जैसे एकमें एक जोड़ा तो उसका योग हो गया दो। दूसरा प्रचलित अर्थ है महर्षि पतंजलिका दिया हुआ **'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'** यानी चित्तकी वृत्तियोंका निरोध करना ही योग है। योग तो हमारे देशकी प्राचीनतम विद्या है, जिसे हमारे देशके ऋषि-मुनियोंने हमें दिया है। यह शरीरको ही नहीं, पूरे तन-मनको स्वस्थ एवं प्रसन्न रखनेका अचूक नुस्खा है। बिना पैसेकी दवा है। जिसने अपने जीवनमें योगको निरन्तर एवं नियमित करनेका अभ्यास डाल लिया, उसके स्वस्थ एवं प्रसन्न रहनेमें कोई सन्देह नहीं।

योग उसे भी कहा गया, जब एकसे अधिकका मिलन उसे पूर्णता प्रदान कर दे। जबतक नहीं मिले तबतक दोनों अधूरे हैं, लेकिन मिलनेपर पूर्णता मिल गयी तो योग हो गया। जैसे प्रकाश है, लेकिन आँखें नहीं हैं तो हम नहीं देख सकते। उसी प्रकार अगर आँखें हैं और प्रकाश नहीं है तो भी हम नहीं देख सकते। आँख एवं प्रकाशका मिलन ही उसको पूर्णता प्रदान करता है। इसे एक अन्य उदाहरणसे भी ठीकसे समझा जा सकता है। एक अन्धा है तथा दूसरा लँगड़ा है, और दोनों ही नहीं चल पा रहे हैं, कारण एकको दिखायी नहीं देता, इसलिये नहीं चल पा रहा है तथा दूसरेकी टाँगें नहीं काम कर रहीं, इसलिये नहीं चल पाता। यानी दोनों ही अधूरे हैं। लेकिन जैसे ही अन्धेके कन्धेपर लँगड़ा बैठ गया तो दोनों चल सकते हैं। यानी दोनोंके मिलनने उन दोनोंको पूर्णता प्रदान कर दी। हमारे शास्त्रोंने भगवान् कृष्णको 'योगेश्वर' कहा एवं भगवान् शंकरको योगीश्वर कहा। भगवान् कृष्ण योगके प्रणेता हो गये एवं भगवान् शंकर योगियोंमें सर्वश्रेष्ठ योगी हो गये। हम पूर्ण कर्मयोगी कब होते हैं, जब हमारी सभी क्रियाएँ पूरे मनोयोगसे संचालित होती हैं। यानी जो क्रिया हम करें उसमें हमारा पूरा-का-पूरा मन भी लगा रहे। उस समय कर्मफलकी भी कामना न रहे। कर्म-सिद्धान्तके अनुसार कर्म करेंगे तो कर्मफल मिलना निश्चित है तो हम कर्मफलकी कामनासे कर्म क्यों करें?

योग शब्दसे जुड़े कई शब्द हैं, जैसे वियोग, संयोग, प्रयोग, उपयोग, सहयोग, उद्योग आदि-आदि। हम इन शब्दोंका अर्थ समझनेका प्रयास करें। गोपियोंका वियोग तो योगसे बढ़कर हो गया। गोपियोंका अपने प्रेमास्पदसे मिलन हो या न हो उसका महत्त्व नहीं, लेकिन प्रेमास्पद जहाँ रहें स्वस्थ एवं प्रसन्न रहें एवं प्रेमास्पद कृष्ण हमारे सतत चिन्तनमें बने रहें। संयोगमें अकस्मात् किसी चीजका मिलना या घटना हो जाना होता है। प्रयोगके बारेमें विद्वान् कहते हैं गीता योगशास्त्र है, लेकिन रामायण प्रयोगशास्त्र है। यानी योगका प्रयोग ही योगको महत्ता प्रदान करता है। उपयोग यानी उसको धारण करना। औषधिका उपयोग उसके धारण करनेमें है। सहयोग यानी किसीकी मदद करना है। कोई बोझ नहीं उठा पा रहा है, लेकिन आपने सहयोग देकर उठवा दिया। कोई बच्चा, बीमार या वृद्ध नहीं चल पा रहा है, उसे सहारा देकर गन्तव्य-स्थलतक पहुँचा देना सहयोग है। उद्योगमें एक विशेष प्रकारका योग निहित है। वस्तु, प्रक्रिया तथा श्रम—ये तीन जब मिलते हैं तो वस्तुको अधिक मूल्यवान् तथा उपयोगी बनाते हैं। खनिज लोहा कामका नहीं होता, लेकिन उद्योगमें खनिज पदार्थ जब श्रमके द्वारा प्रक्रियासे गुजरता है तो हमें लोहा मिल जाता है। अतः उद्योग उसे कहते हैं, जो अनुपयोगीको उपयोगी एवं मूल्यवान् बना दे। उद्योगके इसी गुणके कारण उद्योगका इतना महत्त्व है।

योगसे मनुष्यका भौतिक एवं तात्त्विक विकास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्भव है। यह मानवद्वारा संग्रहीत सबसे मूल्यवान् खजाना है। मनुष्य तीन वस्तुओंसे बना है—शरीर, मन और आत्मा। शरीरसे शारीरिक, मनसे मानसिक एवं आत्मासे आध्यात्मिक—इन तीनों अवस्थाओंका सन्तुलन ही योग है। योग एक रास्ता है, जो मनुष्यको स्वयंको पहचाननेमें मदद करता है तथा मानव-शरीरको स्वस्थ और नीरोग बनाता है। परमात्मामें संयुक्त होना ही योग है। जिन साधनोंसे यह सम्भव होता है, उन सभी साधनोंको भी आदरपूर्वक 'योग' ही कहा जाता है। श्रीमद्भगवद्गीतामें योगसे युक्त शब्दोंके अर्थ स्पष्ट रूपसे दर्शाये गये हैं।

'ज्ञानयोग' का अर्थ बताया गया मन, इन्द्रिय और शरीरद्वारा होनेवाली सम्पूर्ण क्रियाओंमें कर्तापनके अभिमानसे रहित होकर सर्वव्यापी सच्चिदानन्दघन परमात्मामें एकीभावसे स्थित रहना। फल एवं आसक्तिको त्यागकर भगवदाज्ञानुसार केवल भगवदर्थ समत्वबुद्धिसे कर्म करनेका नाम **'कर्मयोग'** है। जिस अवस्थाको प्राप्त हुए पुरुषके कर्म अकर्म हो जाते हैं अर्थात् उस अवस्थामें कर्तापनके भावका लोप हो जाता है।

'योगक्षेम' का अर्थ बताया गया कि अप्राप्तकी प्राप्तिका नाम योग है एवं प्राप्तकी रक्षाका नाम क्षेम है।

जो कुछ भी कर्म किया जाय उसके पूर्ण होने और न होनेमें तथा उसके फलमें समभाव रहना ही **'समत्व योग'** है। समत्वयोगयुक्त पुरुष पाप-पुण्य दोनोंको इसी लोकमें त्याग देता है अर्थात् उनसे मुक्त हो जाता है। इसीको कर्मोंमें कुशलता बताया गया है अर्थात् यह कर्म-बन्धनसे छूटनेका उपाय है।

'योगप्राप्त' उसे कहा गया, जिसकी बुद्धि भाँति-भाँतिके वचनोंको सुननेसे विचलित नहीं हुई हो बल्कि परमात्मामें अचल और स्थिर ठहर गयी हो और परमात्मासे जिसका नित्य संयोग हो गया हो।

'योगी' समस्त कर्मोंको करनेवाला मनुष्योंमें बुद्धिमान् जो मनुष्य कर्ममें अकर्म देखता है एवं जो अकर्ममें कर्म देखता है, वह योगी है।

जो साधक शरीरका नाश होनेसे पहले काम-क्रोधसे उत्पन्न होनेवाले वेगको सहन करनेमें समर्थ हो जाता है, वह पुरुष योगी है।

जो पुरुष कर्मफलका आश्रय न लेकर करनेयोग्य कर्म करता है, वह संन्यासी तथा योगी है।

जिसका अन्तःकरण ज्ञान-विज्ञानसे तृप्त है, जिसकी स्थिति विकाररहित है, जिसकी इन्द्रियाँ भलीभाँति जीती हुई हैं और जिसके लिये मिट्टी, पत्थर एवं स्वर्ण समान हैं, वह योगी है।

मनको वशमें करनेवाला, आत्माको निरन्तर मुझ परमात्माके स्वरूपमें लगानेवाला, मुझमें रहनेवाली परमानन्दमयी शान्तिको प्राप्त योगी है।

योगी तपस्वियों एवं शास्त्रज्ञानियोंसे भी श्रेष्ठ है, सकामकर्म करनेवालोंसे भी श्रेष्ठ है, अतः हे अर्जुन! तू योगी हो।

'सांख्ययोगी' जो पुरुष निश्चय करके अन्तरात्मामें ही सुखवाला है, आत्मामें ही रमण करनेवाला है तथा आत्मामें ही ज्ञानवाला है, वह परमात्माके साथ एकीभावको प्राप्त सांख्ययोगी है।

'योगारूढ़' जिस कालमें न तो इन्द्रियोंके भोगोंमें और न कर्मोंमें आसक्ति होती है, उस कालमें सर्व संकल्पोंका त्यागी पुरुष योगारूढ़ कहा जाता है।

'योगयुक्त' अत्यन्त वशमें किया हुआ चित्त जिस कालमें परमात्मामें ही भलीभाँति स्थित हो जाता है, उस कालमें सम्पूर्ण भोगोंसे स्पृहारहित पुरुष योगयुक्त है।

यज्ञ

यज्ञका प्रचलित अर्थ है यज्ञकुण्डमें वेदमन्त्रोंके साथ देवताओंको हविष्य प्रदान करना। हवन-सामग्रीमें शुद्ध घी, तिल, जौ, चावल, गुड़, कमलगट्टा आदि चीजें शामिल हैं। यज्ञसे पर्यावरण शुद्ध होता है एवं जलकी वर्षा होती है। विविध सकाम उद्देश्योंकी प्राप्तिकी अभिलाषासे भी यज्ञ किये जाते हैं। यथार्थके ज्ञानके आलोकमें जो भी कर्म किये जाते हैं, वे सभी यज्ञकी श्रेणीमें आते हैं। परोपकारके निमित्त किये गये सभी कर्म यज्ञ माने गये हैं।

यज्ञ (परोपकार)-के निमित्त किये जानेवाले कर्मोंसे अतिरिक्त दूसरे कर्मोंमें लगा हुआ मनुष्य कर्मोंसे बँधता है। आसक्तिसे रहित होकर उस यज्ञ (परोपकार)-के निमित्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भलीभाँति सभी कर्तव्य-कर्म यज्ञसंज्ञक हैं। अतः कर्मबन्धनसे मुक्त होनेके लिये निष्काम भावसे केवल कर्तव्य-पालनकी बुद्धिसे ही शास्त्रविहित किये गये कर्म यज्ञ माने गये हैं। अपने-अपने वर्णाश्रमके अनुसार स्वधर्मका पालन भी यज्ञ है।

सृष्टिके सुचारु रूपसे संचालनमें और सृष्टिके जीवोंका भलीभाँति भरण-पोषण होनेमें पाँच श्रेणीके प्राणियोंका परस्पर सम्बन्ध है—देवता, ऋषि, पितर, मनुष्य और अन्य प्राणी। इन पाँचोंके सहयोगसे ही सबकी पुष्टि होती है। देवता समस्त संसारको इष्ट-भोग देते हैं, ऋषि सबको ज्ञान देते हैं, पितर लोग सन्तानका भरण-पोषण करते हैं और उनका हित चाहते हैं, मनुष्य कर्मोंके द्वारा सबकी सेवा करते हैं और पशु, पक्षी, वृक्षादि सबके सुखके साधनरूपमें अपनेको समर्पित किये रहते हैं। इन पाँचोंमें भी योग्यता, अधिकार और साधनसम्पन्न होनेके कारण सबकी पुष्टिका दायित्व मनुष्यपर है। इसीसे मनुष्य शास्त्रीय कर्मोंके द्वारा सबकी सेवा करता है। इसीलिये पंचमहायज्ञका विधान है। पंचमहायज्ञसे तात्पर्य है सत्-शास्त्रोंका पाठ (ऋषियज्ञ), हवन (देवयज्ञ), अतिथियोंकी सेवा (मनुष्ययज्ञ), श्राद्ध और तर्पण (पितृयज्ञ) एवं प्राणीमात्रको आदर देकर उनकी सेवा करना (भूतयज्ञ)। मनुष्यका यह कर्तव्य है कि वह जो कुछ भी कमाये, उसमें इन सबका भाग समझे। इन सबको उनका प्राप्य भाग देकर उससे बचे हुए अन्नको जो ग्रहण करता है, उसीको शास्त्रकार अमृतभोजी बतलाते हैं। केवल अपने लिये ही कमाने-खानेवाला पाप खाता है। यज्ञसे बचे हुए अन्नको खानेवाला वास्तवमें वही है, जो सबको अपनी कमाईका हिस्सा यथायोग्य देकर फिर बचे हुए को स्वयं काममें लेता है।

यज्ञ न करनेसे क्या हानि होती है, इसपर श्रीभगवान् कहते हैं कि सम्पूर्ण प्राणी अन्नसे उत्पन्न होते हैं, अन्नकी उत्पत्ति वृष्टिसे होती है, वृष्टि यज्ञसे होती है। सृष्टिमें सभी जीवोंके भरण-पोषण एवं संरक्षणका दायित्व मनुष्यपर है। मनुष्य अपने इस दायित्वको समझकर मन, वाणी, शरीरसे समस्त जीवोंके हितके लिये जो क्रियाएँ करता है, वे सभी सत्कर्म यज्ञकी श्रेणीमें आते हैं। सर्वत्र ब्रह्मदर्शन-रूप साधनको भी यज्ञ कहा गया। इन्द्रिय-संयमरूप साधनको भी यज्ञ कहा गया। सभी इन्द्रियाँ बलपूर्वक साधकके मनको डिगा देती हैं, इसलिये इन्द्रियोंको अपने वशमें कर लेना, उनकी स्वतन्त्रताको मिटा देना, उनमें मनको विचलित करनेकी शक्ति न रहने देना ही इन्द्रियोंका संयमरूप यज्ञ है।

द्रव्ययज्ञ, तपयज्ञ, योगयज्ञ एवं स्वाध्याय—ज्ञानयज्ञकी व्याख्या करते हुए श्रीभगवान् कहते हैं—

द्रव्ययज्ञ—अपने-अपने वर्णाश्रम-धर्मके अनुसार न्यायसे प्राप्त द्रव्यको ममता, आसक्ति और फलेच्छाका त्याग करके यथायोग्य बावली, कुएँ, तालाब, मन्दिर, धर्मशाला आदि बनवाना, भूखे, अनाथ, रोगी, दुःखी, असमर्थ, भिक्षु आदि मनुष्योंकी यथावश्यक अन्न, वस्त्र, जल, औषधि, पुस्तक आदि वस्तुओंद्वारा सेवा करना। वेदपाठी सदाचारी ब्राह्मणोंको गौ, भूमि, वस्त्र, आभूषण आदि पदार्थोंका यथायोग्य अपनी शक्तिके अनुसार दान करना। इसी तरह अन्य सब प्राणियोंको सुख पहुँचानेके उद्देश्यसे यथाशक्ति द्रव्यका व्यय करना द्रव्ययज्ञ है।

तपयज्ञ—परमात्माकी प्राप्तिके उद्देश्यसे अन्तःकरण और इन्द्रियोंको पवित्र करनेके लिये ममता, आसक्ति एवं फलेच्छाके त्यागपूर्वक व्रत-उपवासादि करना, धर्मपालनके लिये कष्ट सहन करना, मौन धारण करना आदि शास्त्र-विधिके अनुसार की गयी क्रियाएँ तपयज्ञ कही गयी हैं।

योगयज्ञ—चित्तवृत्तिनिरोधरूप जो अष्टांग योग है, उसीका वाचक शब्द योगयज्ञ है। अष्टांग योग है—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इनमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार—ये पाँच बहिरंग साधन हैं और धारणा, ध्यान तथा समाधि—ये तीन अन्तरंग साधन हैं।

स्वाध्याय—ज्ञानयज्ञ—जिन शास्त्रोंमें भगवान्के तत्त्व, उनके गुण, प्रभाव और चरित्रों तथा उनके साकार, निराकार, सगुण, निर्गुण स्वरूपका वर्णन है, ऐसे शास्त्रोंका अध्ययन करना, भगवान्की स्तुति करना, उनके नाम और गुणोंका कीर्तन करना तथा वेद-वेदांगोंका अध्ययन करना स्वाध्याय है। धर्मज्ञानसहित ऐसा स्वाध्याय, जो ममता, आसक्ति एवं फलेच्छाके अभावपूर्वक किया जाता है, स्वाध्याय—ज्ञानयज्ञ है। इसमें हिंसाका सर्वथा अभाव है। यह भगवान्का प्रत्यक्ष दर्शन करानेवाला है। यज्ञ बुद्धिमान् पुरुषोंको पवित्र करनेवाले हैं, अतः अपनानेयोग्य हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने ऐबोंपर नजर कर!

(श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

बात है सन् १९६२ की।

विनोबाजीकी पुस्तक 'रूहुल कुरान' (कुरान सार) छप रही थी। हम सबकी इच्छा हुई कि डॉक्टर जाकिर हुसेन साहबसे उसकी भूमिका लिखायी जाय। उन दिनों वे गवर्नर थे बिहार राज्यके।

हमारे भाई जान अहद फातमी (सम्पादक 'भूदान तहरीक') ने जाकिर साहबसे इसके लिये प्रार्थना की। दो पत्र भी लिखे।

× × ×

कुरानशरीफके अनमोल मोतियोंका संचयन और सो भी विनोबा-जैसे सन्त पुरुषके द्वारा।

और उस अमूल्य कृतिकी भूमिकाका प्रश्न।

कौन न कृतकृत्य हो उठेगा, ऐसी सम्मानजनक फर्माइशसे?

पर जाकिर साहब उसकी भूमिका, उसका मुकद्दमा, उसका पेश-लफ्ज नहीं लिख सके, नहीं लिख सके।

आखिर क्यों?

× × ×

'गीता-प्रवचन' में विनोबा कहते हैं—

महाभारतमें तुलाधार वैश्यकी कथा है। जाजलि नामक ब्राह्मण तुलाधारके पास ज्ञान-प्राप्तिके लिये जाता है। तुलाधार उससे कहता है—'भैया! इस तराजूकी डण्डीको सदा सीधा रखना पड़ता है।' इस बाह्य कर्मको करते हुए तुलाधारका मन भी सीधा सरल हो गया। छोटा बच्चा दुकानमें आ जाय या जवान आदमी, उसकी डण्डी सबके लिये एक-सी रहती है। न ऊँची, न नीची।

····तराजूकी डण्डीसे तुलाधारको समवृत्ति मिली।

सेना नाई बाल बनाया करता था। दूसरोंके सिरका मैल निकालते-निकालते उसे ज्ञान हुआ—'देखो, मैं दूसरोंके सिरका मैल निकालता हूँ, परंतु क्या खुद कभी अपने सिरका, अपनी बुद्धिका भी मैल मैंने निकाला है?' ऐसी आध्यात्मिक भाषा उस कर्मसे सूझने लगी। खेतका कचरा निकालते-निकालते कर्मयोगीको खुद अपने हृदयका वासना-विकाररूपी कचरा निकालनेकी बुद्धि उपजती है।

कच्ची मिट्टीको रौंद-रौंदकर समाजको पक्की हँड़िया बनाकर देनेवाला गोरा कुम्हार उससे यह शिक्षा लेता है कि मुझे भी अपने जीवनकी हँड़िया पक्की बना लेनी चाहिये। इस तरह वह हाथमें थपकी लेकर हँड़िया कच्ची है या पक्की? यों सन्तोंकी परीक्षा लेनेवाला परीक्षक बन जाता है।

× × ×

तो जाकिर साहबके सामने जब 'रूहुल कुरान' का मसविदा पेश हुआ तो वे भी जीवनकी गहराईमें उतर पड़े।

मनुष्य जब आत्मविश्लेषण करता है, अपने दिलके भीतर झाँकता है, अपनी असलियतपर गौर फरमाता है तो उसकी रूह काँप उठती है। दम्भियों और पाखण्डियोंकी बात छोड़िये, वे तो दुनियादारीके चक्करमें रहते हैं और रात-दिन ऐबको हुनर दिखलानेकी कोशिश करते हैं। दोषोंको गुण बतानेकी चेष्टामें लगे रहते हैं। कहा है—

ऐब ये है कि करो ऐब, हुनर दिखलाओ,
वर्ना यां ऐब तो सब फर्दोबशर करते हैं।

मनुष्य अपनी गलतीको गलती नहीं मानना चाहता। अपने दोषको दोष नहीं मानना चाहता। अपनी कमीको कमी नहीं मानना चाहता। कहेगा झूठ, उसपर मुलम्मा चढ़ायेगा सचका। करेगा गलत काम, कोशिश करेगा यह बतानेकी वह सही ही कर रहा है। खुद अन्याय करेगा, पर बतायेगा इस तरह कि दूसरा अन्याय कर रहा है।

और यदि कभी मान भी लिया कि गलती हुई तो कह देगा कि 'To err is human'—'मनुष्यमात्रसे गलती होती है। मैं भी उसका अपवाद नहीं।'

× × ×

पर साधकोंका, जिज्ञासुओंका, महापुरुषोंका तरीका ही दूसरा होता है। अपने राई-जैसे जरा-से दोषको वे पहाड़-जैसा बड़ा मानते हैं। गाँधीजीसे छोटी-सी भूल होती तो वे उसे 'Himalayan blunder'—'हिमालय-जैसी भूल' बताते। उसके लिये सच्चे जीसे पश्चात्ताप करते।

× × ×

जाकिर साहबका भी यही तरीका था।

विनोबाजीकी 'रूहुल कुरान' उनकी आँखोंके आगे थी और वे जीवनकी गहराइयोंमें उतर जाते।

'कहाँ कुरानशरीफकी नसीहतें और कहाँ मैं?'

एक दिन, दो दिन, चार दिन—यह संघर्ष चलता रहा।

आखिर २४ फरवरी ६२ को उन्होंने अपने दिलकी हालत कागजपर उतारकर भाई जान फातमी साहबके पास रवाना ही कर दी। पत्र क्या है—

कागज पै रख दिया है कलेजा निकाल कर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखा उन्होंने—

राजभवन, पटना
ता० २४।२।६२

मुकर्रमी जनाब फातमी साहब,
आस्सलाम अलैकुम।

दोनों नबाजिशनामे[१] मिले। याद फरमाईका शुक्रिया और ताखीरे[२] जवाबकी माजरत कबूल फरमाइये। मैंने विनोबाजीका इन्तेखाबे कुरान मजीद गौरसे देखा। बहुत अच्छा है। इससे मुस्लिम और गैरमुस्लिम सब कुरानकी तालीमको आसानीसे समझ सकेंगे। खुदा उनकी सआी[३] मशकूर[४] फरमाये।

मुकद्दमा[५] या पेश-लफ्ज लिखनेकी बहुत कोशिश की। मगर कुछ न बन सका। रह-रहकर यह ख्याल कि तालीमात[६] कुरानीकी तामील[७]में क्या-क्या कौताहियाँ[८] मुझसे सरजद होती हैं और अपनी जिन्दगी उस नक्शेसे कितनी दूर है, जो कुरान चाहता है, कुछ लिखनेकी हिम्मत नहीं करने देता। किसी दूसरेको अपनी इस कैफियत[९]का समझाना दुश्वार[१०] है। मगर यकीन फरमाइये, कि सच है और बावजूद कोशिशके उसने कुछ न लिखने दिया। उम्मीद है कि आप मेरी माजूरी[११]को समझ सकेंगे और मुझे माफ फरमा देंगे।

अगर बात विनोबातक पहुँच चुकी है तो उनसे भी माफ करा देंगे। मेरे दिलमें उनका जो इहतराम[१२] है, उसे बआसानी लफ्जोंमें बयान नहीं कर सकता। मसविदे रजिस्टर डाकसे बीमा करके वापिस करता हूँ।...

मुखलिस—
सही-जा० हु०

पिछले दिनों जब 'रूहुल कुरान' वाली फाइल उलट रहा था तो जाकिर साहबका यह खत पढ़कर आँखें भर आयीं। कितने ऊँचे, पवित्र और नम्र थे हमारे ये राष्ट्रपति, जो कहते थे—

'......रह-रहकर यह खयाल कि तालीमात कुरानीकी तालीममें क्या-क्या कौताहियाँ मुझसे सरजद होती हैं और अपनी जिन्दगी उस नक्शेसे कितनी दूर है, जो कुरान चाहता है, कुछ लिखनेकी हिम्मत नहीं करने देता है।'

× × ×

धर्मग्रन्थ सभी लोग पढ़ते हैं।

मन्त्र, स्तोत्र, भजन भी लाखों-करोड़ों लोग जपते हैं, पाठ करते हैं, गुनगुनाते हैं।

पर जीवनकी गहराइयोंमें कितने लोग उतरते हैं?

मनुष्य जब जीवनके भीतरी पर्देपर नजर डालता है, तब न उसे पता चलता है कि वह कहाँ है? उसकी असली तसवीर क्या है, कैसी है!

तभी न उसके रोम-रोमसे यह आवाज उठती है—

बुरा जो देखन मैं चला बुरा न दीखा कोय।
जो दिल खोजा आपना मुझ-सा बुरा न कोय॥

आत्मविश्लेषण ही मनुष्यको ऊपर उठा सकता है। पापीको धर्मात्मा बना सकता है। नीचको ऊँच बना सकता है। असन्तको सन्त बना सकता है। अपवित्रको पवित्र बना सकता है, दुष्टको साधु बना सकता है।

बाहरसे हम चाहे जितने बड़े, ऊँचे, पवित्र माने जाते हों, उससे क्या बनता-बिगड़ता है? बात तो है भीतरकी।

हमारा दिल कैसा है?

हमारा हृदय कैसा है?

वस्तुतः हम हैं कैसे?

हमारे भीतर काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सरके विकार ठूँस-ठूँसकर भरे हैं।

इन विकारोंपर कभी हमारी दृष्टि जाती है?

जी नहीं, इनकी तरफ हम फूटी आँख भी ताकना नहीं चाहते। तब तो हो चुका हमारा उद्धार?

× × ×

हम यदि सच्चे अर्थमें मनुष्य बनना चाहते हैं, अपने भीतर मानवीय गुणोंका विकास करना चाहते हैं, अपनी आजकी शोचनीय स्थितिसे ऊपर उठना चाहते हैं, सच्चे जिज्ञासु, साधक, भक्त या ज्ञानी बनना चाहते हैं तो हमें अपने हृदयकी गहन-गुफामें उतरना ही पड़ेगा।

अपने भीतर जो बुराइयाँ भरी पड़ी हैं, जो कमियाँ भरी पड़ी हैं, उन्हें दूर किये बिना और हृदयको शुद्ध, पवित्र, निर्मल और निर्विकार बनाये बिना गति नहीं।

आइये, हम जाकिर साहबकी अलविदाके इन क्षणोंमें उनसे आत्मविश्लेषणकी शिक्षा लें, अपने दिलको धो-धोकर, माँज-माँजकर स्वच्छ और पवित्र बनायें। अपनेको हम निर्विकार बनायें।

अपने ऐबों पर नजर कर अपने दिलको पाक कर,
क्या हुआ गर खल्क में तू पारसा मशहूर है!

जिस क्षणसे हम अपने दिलको पाक करनेके, पवित्र करनेके पराक्रममें जुट जायँगे, उसी क्षणसे हमारा जीवन पवित्रसे पवित्रतर, उच्चसे उच्चतर और उत्तमसे उत्तमतर होता चलेगा। इसमें रत्तीभर भी सन्देह नहीं।

शुभं भूयात्!

१. कृपापत्र, २. विलम्ब, ३. पराक्रम, ४. यशस्वी, ५. भूमिका, ६. शिक्षा-उपदेश, ७. व्यवहार, ८. कमियाँ, ९. हालत, १०. कठिन, ११. विवशता, १२. आदर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्तचरित—

सन्त श्रीगजाननजी महाराज

(श्रीशैलेश के० शर्मा)
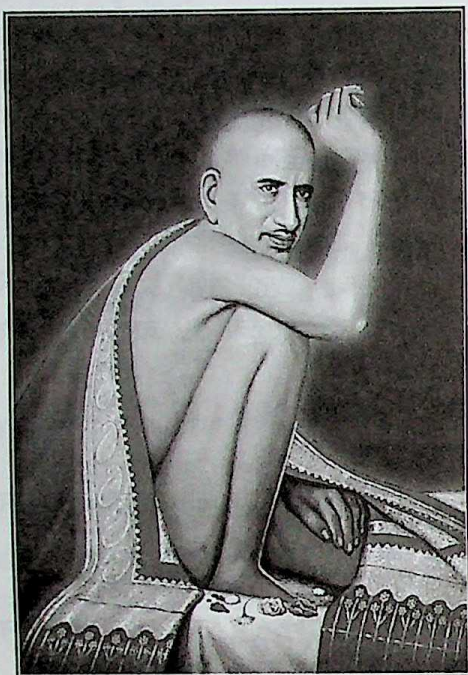
अपनी यह भारतमाता सन्तोंकी भूमि है। इस पवित्र भारतभूमिपर सन्त श्रीतुलसीदास, सन्त श्रीसूरदास, सन्त मीरा, सन्त मुक्ता, सन्त सखू, सन्त जनाबाई, सन्त ज्ञानेश्वर, स्वामी समर्थ आदि अनेक सन्त अवतरित हुए हैं। महाराष्ट्र तो सन्तोंकी खान ही है। महाराष्ट्र प्रान्तके विदर्भ भागके बुलडाणा जिलेमें श्रीक्षेत्र शेगाँव (विदर्भका पंढरपुर)-में दोपहरके समय युवावस्था तथा दिगम्बर वेषमें अकस्मात् एक सिद्ध पुरुष दिखायी पड़े। वह शुभ दिन २३ फरवरी सन् १८७८ ई० का था, वे कौन हैं, वहाँ कहाँसे आये, कैसे आये? इसके बारेमें कोई भी पता नहीं लगा है। उस समय देविदास पातूरकरके मठके आगे जूठी पत्रावलीके ऊपरके अन्न-कण खाते हुए वे बकटलाल अग्रवालको दिखायी दिये। जूठे अन्न-कण खानेके बाद जानवरोंके पीनेके लिये रखे हुए जलका ही उन्होंने पान किया। उनकी अलौकिक कान्ति और तेजस्वी मुखमण्डलको देखकर लोग उनकी तरफ आकर्षित हुए और जान गये कि ये कोई साधारण आदमी नहीं, बल्कि कोई सिद्ध योगी अवतरित हुए हैं।

लोगोंके द्वारा नाम पूछनेपर उन्होंने लाल ताँबड़ा पत्थर दिखाया तो भी लोगोंकी समझमें नहीं आया, तब महाराजने कहा—'***नर्मदेचा गणपती तांबड़ा असतो निश्चिती***' अर्थात् नर्मदाजीके पत्थरको गणेशजी कहते हैं, मेरा नाम गजानन है। तबसे लोग उन्हें गजाननमहाराज कहने लगे।

गजाननमहाराज भगवान् श्रीरामचन्द्र प्रभुको अपना गुरु मानते थे। वे हमेशा '**गण गण गणात बोले**' इस मन्त्रका जप करते थे। महाराज तो साक्षात् चिन्तामणिस्वरूप थे, जो हर भक्तोंकी चिन्ता दूर करते थे। श्रद्धासे ही फलकी प्राप्ति होती है।

शेगाँवमें रहकर महाराजने भक्तोंको अनेक चमत्कार दिखाये—कीर्तनकार गोविन्दशास्त्रीके बेलगाम घोड़ेको शान्त किया, बालापुरके शुकलाल अग्रवालकी किसीके भी वशमें न आनेवाली गाय महाराजके हाथके स्पर्शसे ही शान्त हो गयी। दुष्कालके समय पानीके अभावमें लोग बहुत तंग आ गये थे, महाराजने उनपर अनन्त कृपा करके क्षणमें सूखे हुए कुएँ पानीसे भर दिये। वे विधि-निषेधातीत सिद्धावस्थामें ही सदा रहते थे। चाहे जो चीज खा लेते। एक बार एक स्त्रीने आधा सेर मिर्चा पीसकर उन्हें परोस दिया, उसे वे वैसे ही खा गये, जैसे कोई पेड़ा या बरफी खा ले। भक्त लोग उन्हें बहुमूल्य वस्त्र भेंट करते थे, पर वे दिगम्बर ही बने रहते थे।

महाराष्ट्रके लोकप्रिय नेता लोकमान्य तिलककी महाराजपर बहुत श्रद्धा थी। महाराजकी असीम कृपासे उन्होंने मँडालेकी जेलमें गीतारहस्य नामका ग्रन्थ लिखा था। महाराजने तिलकजीसे कहा था कि तू व्याख्यानसिंह है, सभामें स्पष्ट बोलता है, इसीलिये हाथमें हथकड़ी पड़नेका समय आ गया है। अंग्रेजोंने तिलकको फाँसीकी सजा सुनायी थी, लेकिन गजाननमहाराजने कोल्हटकरके हाथ रोटीका प्रसाद भिजवाया। इस प्रसादके प्रभावसे तिलककी फाँसीकी सजा टल गयी। अंग्रेज उन्हें जेलमें भेजेंगे और वहाँ तिलकके हाथसे अच्छा काम होगा—यह सोचकर महाराजने जेल जानेसे नहीं रोका। तिलकजीके मुखमें दाँत नहीं थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिये वे सूखी रोटी खा नहीं सकते थे, मगर समर्थप्रसाद था तो उन्होंने कुटकुटकर रोटी खायी, उसीके परिणामस्वरूप उन्होंने मँडालेके जेलमें गीतारहस्य नामका महाग्रन्थ लिखा।

'गण गण गणात बोले'—यह नवाक्षर मन्त्र महाराजके श्रीमुखसे स्वाभाविकरूपसे निरन्तर निकलता रहता था।

महाराज प्रतिवर्ष अपने भक्तगणोंके साथ विट्ठल भगवान्‌के दर्शनके लिये आषाढ़ी एकादशीको पंढरपुर जाते थे। उन्होंने अनेक भक्तोंकी मनोकामना पूरी की। महाराजजीका कहना था कि अपने राष्ट्रको बलवान् बनाना है तो योग सीखो। महाराज योगीपुरुष थे। वे एक क्षणमें कहाँ-से-कहाँतक अपने भक्तोंको दर्शन देकर आते थे, उनका चलना मानो वायुके समान ही था।

महाराज प्रतिवर्षकी भाँति सन् १९१० ई०में भक्तोंके साथ विट्ठल-दर्शनके लिये पंढरपुर गये और विट्ठलभगवान्‌से बोले—तेरी आज्ञासे मैंने आजतक पृथ्वीपर भ्रमण किया, किंतु अब वैकुण्ठलोक जानेकी आज्ञा चाहिये। हरिके विरहकी कल्पनासे महाराजको विट्ठलमन्दिरमें रोना आ गया। भक्तोंके पूछनेपर महाराजने कहा—'अब मेरी संगत थोड़े ही दिनकी बाकी है।' यह सुनकर भक्तगण उदास हो गये तो महाराज कहने लगे—भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है कि वस्त्रकी भाँति शरीर बदलना ही पड़ता है। नश्वर शरीरके लिये शोक नहीं करना चाहिये। तदनन्तर पंढरपुरसे महाराज शेगाँवमें आये और भक्तोंसे कहने लगे—गणेशपुराणमें लिखा है कि भाद्रपद शुक्ल चतुर्थीको श्रीगणेशजीकी पूजा-अर्चा करके दूसरे दिन उनका विसर्जन होता है, इसलिये मैं भी अब ऋषिपंचमीके दिन समाधिस्थ होना चाहता हूँ। अपने प्रिय भक्त बालाभाऊको पास बैठा करके कहने लगे—***मी गेलो म्हणू नका भवतीत अंतर करू नका कदा मला विसरू नका भी आहे येथेच***—अर्थात् 'मैं चला गया समझकर भक्तिमें कसर मत करना, मुझे कदापि भूलना नहीं, मैं यहाँपर ही हूँ।'—ऐसा कहकर महाराजने 'जय गजानन', 'जय गजानन' कहते हुए भाद्रपद शुक्ल चतुर्थीको प्राण मस्तकमें धारण कर लिये।

भाद्रपद शुक्ल पंचमी तदनुसार ८ सितम्बर सन् १९१० ई० गुरुवारके शुभ दिन शेगाँवकी पुण्यभूमिमें महाराज समाधिस्थ हुए। शेगाँवके भूयारमें महाराजकी संजीवन समाधि है। अभी भी महाराज अपने प्रिय भक्तोंको किसी-न-किसी रूपमें दर्शन देते हैं और उनकी इच्छा पूर्ण करते हैं।

महाराजजीका चरित्र तथा उनके चमत्कार श्रीगजाननविजय ग्रन्थमें लिखे हैं, जिसे कवि श्रीदासगणू महाराजने लिखा है। महाराजका ग्रन्थ अंग्रेजी, मराठी, तेलुगू, कन्नड़, हिन्दी आदि भाषाओंमें प्रकाशित हुआ है।

'अब हरि चरणन चित्त लगाऔ'

(श्रीकृपाशंकरजी शर्मा 'अचूक')

अब हरि चरणन चित्त लगाऔ।
कौन मेरे मन कूँ समझावै, आपुहि नाथ बताऔ।
कब किरपा पर किरपा करिहउँ, नेह नीर-बरसाओ॥
भजन औरु भक्ति नहिं होवत, कर्म-अकर्म मिटाऔ।
सब साधन करि करि पचि हारौ, भेदु न अब तक पाओ॥
रूप जुगल छवि मधुर माधुरी, निश दिन आइ दिखाऔ।
प्रेम मगन होइ झूँमूँ गाऊँ, आऔ हे हरि आऔ॥
जाऊँ ना तजि शरन तिहारी, बहुतहि नाच नचाऔ।
दास अचूक सदा सरनागत, सकल सुमंगल गाऔ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योगेश्वर कृष्ण और गोमाता

(श्रीश्यामसुन्दरजी मिश्र)

संसारको गीताका दुर्लभ ज्ञान प्रदान करनेवाले, सोलह कलाओंसे युक्त योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण न केवल कुशल राजनीतिज्ञ थे, बल्कि भारतीय जनमानसमें वे सदासे ईश्वररूपमें प्रतिष्ठित रहे हैं। महाज्ञानी कृष्ण जानते थे कि गोवंश मानवमात्रके लिये कल्पवृक्षके समान है। यह ऐसी कामधेनु है, जिससे मानवकी समस्त आवश्यकताएँ पूर्ण होती हैं। तभी तो नन्दके महलमें पले श्रीकृष्णने काँधेपर कम्बल और हाथमें लाठी लेकर जंगल-जंगल गाय चरायी। पर्यावरणकी रक्षाके लिये उन्होंने गोवर्धनपर्वतको महिमामण्डित किया। यमुनाको कालिय नागके विषसे मुक्तकर यह संदेश दिया कि नदियोंकी स्वच्छता एवं पवित्रतासे ही मानव स्वस्थ तथा सुरक्षित रह सकता है। उन्होंने कंस, जरासंध, शिशुपाल-जैसे अत्याचारी राजाओंका वधकर यह सिद्ध कर दिया कि आततायी या राजसत्ता कितनी ही शक्तिशाली क्यों न हो, जनसामान्यका आक्रोश उसे विनष्ट कर सकता है। भगवान् कृष्णने सन्देश दिया कि गोवंशके संरक्षण एवं संवर्धनसे ही विश्वका कल्याण हो सकता है। उन्हें गोमाता प्राणोंसे अधिक प्रिय थी और गव्य पदार्थ बड़े ही रुचिकर थे।

गोदुग्ध माताके दूधकी तरह हितकारी है। यह जीवनसे मृत्युतक हर उम्रके व्यक्तिके लिये अत्यन्त लाभकारी है। यह सम्पूर्ण आहार है, जिसमें शरीरके संवर्धनहेतु हर तत्त्व विद्यमान है। यह जराव्याधिनाशक और बल-बुद्धिवर्धक रसायन है। श्वाँस, खाँसी, जीर्णज्वर, रक्त-पित्त, चक्कर आने, अधिक भूख एवं प्यास लगने तथा मूत्र रोगोंमें हितकारी और आयुवर्धक है। इसमें विटामिन 'ए' एवं केरोटीन नामक पीला द्रव्य होता है, जो नेत्रज्योति और शरीरकी रोग-प्रतिरोधक क्षमताको बढ़ाता है।

गायका दही बलकारक, रुचिकर, वातनाशक एवं रक्तशोधक होता है। इसका मट्ठा त्रिदोषनाशक, बुद्धि-वर्धक, रुचिकर, उदरविकार और बवासीरनाशक है।

गायका मक्खन बलकारक, अग्निदीपक तथा वात, पित्त, रक्तविकार, क्षय-कास एवं बवासीरका नाश करनेवाला है। बालकोंके लिये तो यह अमृततुल्य है।

गोघृत कान्तिवर्धक एवं स्मृतिदायक है। यह शरीरके ओज, नेत्रज्योति, रूप एवं लावण्यको भी बढ़ाता है और वात, पित्त, कफका शमन करता है। रूसी वैज्ञानिक शिरोविचके अनुसार १ तोला घी जलानेसे १ टन आक्सीजन बनती है। गोघृतकी चावल, तिल और जौके साथ हवन-कुण्डमें आहुति देनेसे एथीलीन आक्साइड, प्रोपीलीन आक्साइड और फारमैल्डीहाइड नामक गैसें उत्पन्न होती हैं, जो वातावरणको शुद्ध करती हैं और प्रोपीलीन आक्साइडके प्रभावसे वर्षा भी होती है, जिससे अन्नकी भरपूर उपज होती है तथा पशुओंको चारा मिलता है। गीताके तीसरे अध्यायके चौदहवें श्लोकमें भी वर्णन किया गया है—'**अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः। यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥**' अर्थात् प्राणियोंकी उत्पत्ति अन्नसे, अन्नकी उत्पत्ति वृष्टिसे, वृष्टिकी उत्पत्ति यज्ञसे और यज्ञकी उत्पत्ति विहित कर्मसे होती है।

गोमूत्रमें ताम्रतत्त्वका बाहुल्य है और ताँबा विद्युत्का सुचालक होनेके कारण ब्रह्माण्डसे विद्युत्-तरंगें ग्रहणकर शरीरको चैतन्य एवं ऊर्जावान् बनाता है। इसमें मौजूद मैंगनीज नामक तत्त्व शरीरके नर्वस सिस्टमको ठीक रखता है। गोमूत्रमें चाँदीके भी कुछ तत्त्व पाये जाते हैं, जो मानव-स्वास्थ्यके लिये अत्यन्त लाभकारी हैं।

गायके सींग एक शक्तिशाली ऐंटीनाके समान हैं, जो आकाशसे अनवरत बरस रही कास्मिक ऊर्जाको ग्रहणकर अपने शरीरमें उतारते हैं। इनमें १६ प्रकारके खनिज हैं, जो शरीरका रक्षण, पोषण और विकास करते हैं। ये रोग-प्रतिरोधक शक्तिसे भी भरपूर हैं। इनका दवा और खाद दोनोंके निर्माणमें उपयोग किया जाता है।

गोबर, जिसे संस्कृतमें 'गोमय' कहकर सम्मानित किया गया है, अमृततुल्य खाद है, जिसे खेतोंमें डालनेपर भरपूर उपज होती है। आज अत्यधिक उपजके लालचमें हम रासायनिक खादोंके गुलाम होकर शनैः-शनैः ऊसरोंका सृजन कर रहे हैं और हमारे महाविनाशकी पृष्ठभूमि तैयार हो रही है, क्योंकि इससे जो उपज हो रही है, वह जहरीली,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वादहीन और पौष्टिकताविहीन है, साथ ही इससे धरतीकी उर्वराशक्ति भी कम हो रही है। इस विनाशसे बचनेका एक ही उपाय है जैविक खादोंका उपयोग, जिनमें गोबरकी प्रमुखता है। गोबरमें दो तत्त्वोंका समावेश है, पहली उर्वरक क्षमता, दूसरी ऊर्जा। बायोगैस-संयन्त्रद्वारा इन्हें पृथक्कर जनोपयोगी बनाया जा रहा है। इससे निकली गैसको जेनरेटरोंमें प्रयोगकर विद्युत्का उत्पादन किया जा रहा है और अवशेषका खादके रूपमें प्रयोग किया जा रहा है, जिसे सेन्द्रिय खाद कहते हैं। इसकी गैससे विशेष प्रकारके चूल्हे एवं लैम्प भी जलाये जा रहे हैं।

एक गायके गोबरसे ४५०० लीटर गोबर-गैस प्रतिवर्ष मिल सकती है। यदि समस्त गोवंशके गोबरका उपयोग इन संयन्त्रोंमें किया जाय तो वर्तमानमें ईंधनके रूपमें जलायी जा रही ६ करोड़ टन लकड़ी और १५ करोड़ पेड़ कटनेसे बच जायँगे। यह पर्यावरणके लिये भी बहुत हितकारी होगा; क्योंकि वृक्ष 'कार्बन डाई आक्साइड' का शोषणकर प्राणवायु 'आक्सीजन' का उत्सर्जन करते हैं। आज कई विकसित गोशालाएँ एवं धार्मिक संस्थाएँ गोबरसे डिस्टम्पर बनानेपर शोध कर रही हैं। आज विज्ञानने यह स्वीकार कर लिया है कि गोबरपर विकिरणका प्रभाव नहीं पड़ता। सभी जानते हैं कि सम्पूर्ण विश्वमें विकिरणके चलते कैंसरके रोगियोंकी संख्या तेजीसे बढ़ रही है। गोबर-गैस-संयन्त्रसे उत्पन्न गैस 'मीथेन' कहलाती है, जिसे सिलिण्डरोंमें भरकर अन्यत्र ले जाना सम्भव नहीं, किंतु नई तकनीकके अनुसार इसमेंसे कार्बन डाई आक्साइडको अलगकर मीथेन गैसको तरल बनाया जाता है, जिसे एल०पी०जी० के सिलिण्डरोंमें भरकर एक जगहसे दूसरी जगह ले जाना सम्भव हो गया है।

गोमूत्रका उपयोग चिकित्साके क्षेत्रमें दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है। कब्ज, पेट फूलना, डकार अथवा मिचली आनेपर देशी गायका ३० ग्राम ताजा मूत्र ५ ग्राम नमक मिलाकर लेनेसे लाभ होता है और पेट भी साफ हो जाता है। लीवरके लिये तो इससे बढ़िया कोई दवा ही नहीं है। यह पेटके कृमिको भी नष्ट करता है। छोटे बच्चोंको एकसे दो चम्मच पिलानेसे बड़ा लाभ होता है। जिन बच्चोंका पेट फूलकर नाभि ऊपर आ जाती है या शरीर फूल जाता है, उनके लिये तो यह रामबाण है। यकृत-पीड़ा बढ़नेपर ५० ग्राम गोमूत्रमें थोड़ा नमक डालकर रोज पिलानेसे कुछ ही दिनोंमें आराम मिल जाता है। इस रोगमें गोमूत्रका सेंक भी विशेष विधिसे करनेपर लाभ होता है। शरीरकी खुजलीमें गोमूत्रमें थोड़ा पिसा जीरा डालकर मिला ले और खुजलीपर लगाये तथा खूब उबले पानीमें नीमकी पत्ती डालकर नहानेयोग्य होनेपर नहाये तो अवश्य ही लाभ होगा। सफेद दागके उपचारहेतु गोमूत्रमें बावची पीस ले और रातमें लगाये तथा प्रातः गोमूत्रसे ही धो डाले तो कुछ ही दिनोंमें लाभ प्रतीत होगा। लम्बे समयतक यही क्रिया करे तो दाग जड़से समाप्त हो सकते हैं। जलोदर-जैसे मारक रोगमें गोमूत्रमें पुनर्नवाका काढ़ा मिलाकर पिलानेसे कई रोगी ठीक हुए हैं। वनस्पतियोंपर कीटनाशकोंका प्रयोग किसानकी मजबूरी थी और उत्पाद जहरीले होने लगे, पर आज गोमूत्रद्वारा प्रभावकारी कीटनाशक तैयार हो रहे हैं, जो हानिरहित, सस्ते एवं सर्वसुलभ हैं। आवश्यकता है विश्वासके साथ उनका उपयोग करनेकी। आयुर्वेदमें विषैली-से-विषैली दवाओंका शोधन गोमूत्रके द्वारा ही किया जाता है। अतः मानव-शरीरपर किसी भी प्रकारके विष अथवा दवाओंके दुष्प्रभावको विधिपूर्वक गोमूत्र पिलाकर दूर किया जा सकता है।

अन्नसंकटके इस दौरमें सम्पूर्ण विश्वको केमिकल खादोंके बजाय जैविक खादोंका उपयोगकर मानवताको बचाना होगा। आज नाँडेप खाद, स्लरी, सींग खाद, बर्मी कल्चर और अमृत खादका उत्पादन भारतकी समृद्ध गोशालाओंमें हो रहा है। उनमें दवाओंके निर्माणकी भी प्रक्रिया चल रही है। बैलचालित कोल्हू यद्यपि एक्सपेलरोंसे १० से १५ प्रतिशत कम तेल निकालते हैं, पर एक तो उनकी गुणवत्ता बढ़ जाती है, दूसरे कोल्हूसे निकली खली दुधारू पशुओंके लिये उत्तम आहारका काम करती है, जिससे उनके दूधमें वृद्धि होकर हमें दुगुना लाभ होता है।

भारतमें लगभग १० हजार गोशालाएँ हैं, जिनमें अधिकांश ८५ से २०० वर्ष पुरानी हैं। आवश्यकता है उनके संरक्षण एवं संवर्धनकी। बिना जन-सहयोग और सरकारी सहायताके न तो वे पनप पायेंगी और न ही गोवंश सुरक्षित रह पायेगा। अतः आइये, हम योगेश्वर कृष्णकी आत्मा गोमाताके संरक्षण, संवर्धन एवं सेवाका संकल्प लें, इसमें भारत ही नहीं समस्त विश्वका कल्याण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दानवीर ठा० श्रीमदनसिंहजी दाँता

(श्रीहनुमत्प्रसादजी शास्त्री)

वैसे तो भारतमें अनेक दानवीर, धर्मवीर, दयावीर युद्धवीर हुए हैं तथा आगे भी होते रहेंगे, किंतु दाँताके दिवंगत ठाकुर मदनसिंहजीका दान अभूतपूर्व था। दाँता ठिकानेके एक जागीरदार होनेके नाते उन्होंने जो दान दिया, वह भारतके इतिहासमें अक्षुण्ण एवं चिरस्मरणीय रहेगा। हिन्दी-चीनी भाई-भाईका नारा देकर चीनने भारतपर सन् १९६२ ई० में जो प्रहार किया, उसको देखकर इस महापुरुषका दिल पसीज उठा और उन्होंने उस समय एक लाख रुपया रक्षाकोषमें जमा कराया। साथ ही अपने पुत्रको सेनामें भेजनेका आग्रह भी किया और एक सोनेकी मूँठकी तलवार रक्षाकोषमें भेंट की। इनके दानकी महिमा सारे देशमें ऐसी व्याप्त हुई कि बड़े-बड़े राजा-महाराजा भी उस समय इतना दान नहीं दे सके थे। उनकी इस दान-वीरताका नाम सुनकर सन्त श्रीकरपात्रीजी महाराज दाँता पधारे और उन्होंने राष्ट्रके लिये समर्पित इन ठाकुर साहबको काशी ले जाकर राजर्षि ठाकुर मदनसिंहजी दाँताकी उपाधिसे विभूषित किया।

जीवनभर ठाकुर साहब स्वामी करपात्रीजीके अनुयायी रहे। त्याग उस महापुरुषमें पूर्णतया प्रदर्शित होता था। उनका व्यक्तित्व दर्शनीय एवं अनुकरणीय था। उन्होंने अपने जीवनमें दान तो दिया ही साथ ही वे युद्धवीर एवं दयावीर भी थे। एक बारकी बात है, दुधवा ग्राम दिन-दहाड़े लूटा जा रहा था, वे मंगलसिंह खुड़के साथ बैठे थे तो अचानक समाचार आया डाकेका। उसी समय बन्दूक उठाकर वे अपनी गाड़ी लेकर डाकुओंके पीछे चल दिये। नीमके थानाके पास पर्वतों एवं नालोंसे पटी जमीनमें उनका डाकुओंसे मुकाबला हुआ और डाकुओंके चार ऊँटोंको उन्होंने मार गिराया तथा एक डाकूको पकड़ भी लिया। सारे राजस्थानमें ठाकुर मदनसिंहजीकी जय-जयकार हुई। धर्मवीरके रूपमें उन्होंने अपनी पाँच सौ बीघा जमीन, कुआँ एवं माला (महल) दान कर दिया और वहाँ दुर्गामाताका मन्दिर भी बनवा दिया और उसमें मूर्तिकी प्रतिष्ठा करवा दी, जो आज भी दाँताके दर्शनीय एवं रमणीय स्थानोंमेंसे एक है। दयावीर वे इतने थे कि उन्होंने उस डाकूको जिसे पकड़कर लाये थे, भविष्यमें ऐसा न करनेका संकल्प कराकर मुक्त ही नहीं कराया, बल्कि उसकी लड़कीके विवाहमें चालीस हजार रुपयेकी सहायता भी दी। अपने ड्राइवरकी लड़कीके विवाहमें पासमें पैसा नहीं होनेपर अपनी जीप ही बेचकर उसका विवाह करवाया। इस प्रकारसे वे युद्धवीर एवं दयावीर भी थे। भूस्वामी संघके अध्यक्ष पदपर रहकर उन्होंने भूतपूर्व जागीरदारों, जमीदारों, डोलियों एवं मन्दिरोंको ९ गुणासे बढ़वाकर २२ गुणा मुआवजा दिलवाया। मन्दिरोंकी जमीन खालसा नहीं किये जानेका आदेश दिलाया, फलस्वरूप आज भी मन्दिरोंकी जमीन मन्दिरकी मूर्तिके नामसे ही है। यह उनकी प्रतिभाकी उपज है। वे मान गार्डमें कैप्टन पदपर देश-सेवा कर चुके थे, बादमें सक्रिय राजनीतिमें आकर तीन बार दाँतारामगढ़ तहसीलसे एम०एल०ए० बने। विधायक पदपर रहते हुए उन्होंने सारे क्षेत्रको सम्मान दिलाया। एक बार उनके आग्रहसे उस क्षेत्रमें सीनियर हाई स्कूल खोला गया, किंतु विभागीय गलतीसे वह आदेश दाँता न पहुँचकर दाँतारामगढ़ लिख देनेसे रामगढ़ स्कूलमें चला गया और वहाँ विद्यार्थियोंकी भर्ती चालू हो गयी। जब दाँताकी जनताको मालूम पड़ा तो वे ठाकुर साहबके पास गये तो उन्होंने विभागीय अधिकारीसे कहा कि जो आदेश दाँतारामगढ़के नामसे गलतीसे हो गया, उसको निरस्त न करके दूसरा आदेश दाँताके नामसे भी करें; क्योंकि मेरे लिये तो दाँता और दाँतारामगढ़ दोनों ही बराबर हैं, मैं सारे क्षेत्रका विधायक हूँ। इस कार्यसे उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा हुई और दोनों जगह आज भी विद्यालय चल रहे हैं। वे हमेशा विधानसभामें रिक्शेपर ही जाते थे। रिक्शेवालोंकी होड़ होती थी कि आज मैं ले चलूँगा; क्योंकि किराया तो ५ या १० रुपये होते थे, परंतु वे उसे ५० या १०० रुपये दे देते थे।

वे बाबा परमानन्दजी लोसलवालोंके अनन्य सेवक थे। गढ़में कई सिद्ध सन्त उनके पास आया-जाया करते थे। वे एक साधारण वेष धोती, कमीजमें अपना जीवन बिताते थे, उनके देहान्तके समय दाँतामें हजारों व्यक्ति इकट्ठे हुए, सारा शहर गुलाल एवं फूलोंसे पट गया। औरतें छतोंपर चढ़कर पुष्पवर्षा कर रही थीं, वह दृश्य दर्शनीय था। सभीकी आँखोंमें अश्रुधारें थीं। आज मदनसिंहजी तो नहीं रहे, किंतु उनकी दानवीरता, उदारता और शौर्यकी गाथाएँ जनमानसमें बड़े ही गौरवके साथ व्याप्त हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधनोपयोगी पत्र

(१)

धनसे हानि और धनका सदुपयोग

प्रिय महोदय, सप्रेम हरिस्मरण! आपका कृपापत्र मिला, उत्तर लिखनेमें बहुत देर हुई, इसके लिये क्षमा करें। धनकी सार्थकता उसे भगवान्‌की सेवामें लगानेमें है। लक्ष्मी भगवान्‌की सेविका हैं, उन्हें निरन्तर भगवान्‌की सेवामें ही नियुक्त करते रहना चाहिये। इससे लक्ष्मीकी प्रसन्नता प्राप्त होती है और उनका विस्तार होता है। लक्ष्मीपति नारायण तो प्रसन्न होते ही हैं। संसारमें जिसके पास जो कुछ भी है, सब भगवान्‌का है। हमने जो उसपर अपना अधिकार मान लिया है, यह तो हमारी बेईमानी है। हम सेवक हैं, हमारा काम है मालिककी सम्पत्तिकी रक्षा करना और उनके आज्ञानुसार, उनकी माँगके अनुसार उनकी सेवामें उसे समर्पित करते रहना। सारे जीव भगवान्‌के स्वरूप हैं—उनमें जहाँ जिस वस्तुका अभाव है, वहीं भगवान् उस वस्तुको चाह रहे हैं। जिसके पास वह वस्तु है, उसे चाहिये कि भगवान्‌की इस माँगको ठुकरायें नहीं और बड़े आदरके साथ उसपर अपना कोई अधिकार न समझकर उसे यथायोग्य अभावग्रस्त प्राणियोंके अर्पण कर दें। अभावग्रस्त प्राणियोंको दयाका पात्र न समझे और न अपनेको दाता समझकर मनमें अभिमान या उनपर अहसान करे। उन्हें भगवान्‌का स्वरूप समझे और भगवान्‌के नाते उस वस्तुपर उनका सहज अधिकार समझे। यह समझे कि मैंने भगवान्‌की वस्तु भगवान्‌को ही दी है। जो वस्तुका स्वामी है, उसीको वह वस्तु दी जाय; इसमें हमारे लिये अभिमानकी कौन-सी बात है? इस प्रकार निरभिमान होकर धनके द्वारा भगवान्‌की सेवा करता रहे, इसीमें धनकी सार्थकता है और ऐसा करनेसे ही धनका उत्तम परिणाम होता है। नहीं तो, धन केवल कष्टदायक होता है और नाना प्रकारके पाप उत्पन्न करके नरकोंमें और दुःखपूर्ण योनियोंमें पहुँचा देता है।

श्रीमद्भागवतमें कहा है—

प्रायेणार्थाः कदर्याणां न सुखाय कदाचन।
इह चात्मोपतापाय मृतस्य नरकाय च॥
यशो यशस्विनां शुद्धं श्लाघ्या ये गुणिनां गुणाः।
लोभः स्वल्पोऽपि तान् हन्ति श्वित्रो रूपमिवेप्सितम्॥
अर्थस्य साधने सिद्धे उत्कर्षे रक्षणे व्यये।
नाशोपभोग आयासस्त्रासश्चिन्ता भ्रमो नृणाम्॥
स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः।
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च॥
एते पञ्चदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम्।
तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत्॥
भिद्यन्ते भ्रातरो दाराः पितरः सुहृदस्तथा।
एकास्निग्धाः काकिणिना सद्यः सर्वेऽरयः कृताः॥
अर्थेनाल्पीयसा ह्येते संरब्धा दीप्तमन्यवः।
त्यजन्त्याशु स्पृधो घ्नन्ति सहसोत्सृज्य सौहृदम्॥

(११।२३।१५—२१)

'प्रायः देखा जाता है कि केवल इकट्ठा करनेवाले कृपणोंको धनसे कभी सुख नहीं मिलता। यहाँ तो वे रात-दिन धन कमाने और उसकी रक्षा करनेकी चिन्तासे जलते रहते हैं और मरनेपर धनका सदुपयोग न करके उसे पापकर्मका कारणरूप बनानेके कारण घोर नरकोंमें गिरते हैं। जैसे थोड़ा-सा कोढ़ सर्वांगसुन्दर शरीरके सौन्दर्यको बिगाड़ देता है, वैसे ही धनका तनिक-सा लोभ यशस्वियोंके निर्मल यशमें और गुणवानोंके सद्गुणोंमें कलंक लगा देता है। धन कमानेमें, कमाकर उसे बढ़ानेमें, रक्षा करनेमें, खर्च करनेमें, भोगनेमें और नाश हो जानेमें दिन-रात परिश्रम, भय, चिन्ता और भ्रममें डूबे रहना पड़ता है। १. चोरी, २. हिंसा, ३. झूठ बोलना, ४. दम्भ—दिखाऊ श्रेष्ठता, ५. काम, ६. क्रोध, ७. गर्व, ८. मद-अहंकार, ९. भेदबुद्धि, १०. वैर, ११. अत्यन्त प्यारोंमें भी अविश्वास, १२. स्पर्धा, १३. लम्पटता, १४. जूआ और १५. शराब—ये पन्द्रह अनर्थ मनुष्योंमें धनसे ही पैदा होते हैं। इसलिये अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषको ऐसे अर्थनामधारी अनर्थ करनेवाले अर्थको दूरसे ही प्रणाम कर लेना (त्याग देना) चाहिये। स्नेह-बन्धनमें बँधकर सदा एक रहनेवाले सगे भाई-बन्धु, स्त्री-पुत्र, माता-पिता और सगे-सम्बन्धियों आदिमें भी धनकी कौड़ियोंके कारण इतनी फूट पड़ जाती है कि वे एक-दूसरेके वैरी बन जाते हैं। थोड़ेसे धनके लिये वे क्षुब्ध हो जाते हैं, उनके क्रोधकी आग भड़क उठती है। वे आपसमें लड़ने लगते हैं और पुराने प्रेम-बन्धनको तोड़कर सहसा एक-दूसरेका गला काटनेको तैयार हो जाते हैं।'

इसपर टीका-टिप्पणी व्यर्थ है। धनासक्ति, धन-कामना, धनप्राप्ति और धनसंग्रहका यह परिणाम जगत्‌में आज प्रत्यक्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो रहा है! यह सत्य है—धन आवश्यक है, धनकी सार्थकता भी है और धन कमाना भी चाहिये, परंतु कमाना चाहिये उसे भगवान्‌की सेवाके लिये, भगवान्‌के नियमोंकी रक्षा करते हुए, भगवान्‌के अनुकूल उपायोंसे ही और धनके प्राप्त होनेपर उसका भगवान्‌के आज्ञानुसार सदुपयोग करना चाहिये। अपने धनपर जो गरीबोंका अधिकार समझता है और उनके हितार्थ उसका यथायोग्य उपयोग करता है, वही सच्चा धनी है। शेष धन-संग्रह करनेवाले लोग तो धनके रूपमें पापका संग्रह करते हैं और सदा दरिद्र ही रहते हैं। धनका वही उपयोग उत्तम है, जो परिणाममें शान्ति, प्रसन्नता और सुख उत्पन्न करनेवाला हो। जो किसीको कुछ देकर पछताता है, वह या तो धनका दुरुपयोग करता है, अथवा धनासक्तिमें फँसा हुआ प्राणी है, जो धनके नामपर पाप कमाता रहता है!

मेरी स्पष्ट बातोंसे आपको दुःख नहीं होगा, ऐसी आशा है और यह भी आशा है कि आप अबसे अपनेको धनका स्वामी नहीं, परंतु ईमानदार तथा उसके उपयोगमें सावधान सेवक समझेंगे और नियमानुसार उसका सदुपयोग करनेकी चेष्टा करेंगे! शेष प्रभुकृपा!

(२)

मनुष्य-जीवनकी सफलता

सप्रेम हरिस्मरण! आपकी अवस्था अवश्य ही दुःखद है। विषयासक्तिका यही परिणाम होता है। मनुष्य ऐसा फँस जाता है कि फिर न तो उसको उसमें रहते ही बनता है और न वह निकल ही सकता है।

महाकवि कालिदासने कहा है—

गन्धश्चासौ भुवनविदितः केतकी स्वर्णवर्णा
पद्मभ्रान्त्या चपलमधुपः पुष्पमध्ये पपात।
अन्धीभूतः कुसुमरजसा कण्टकैश्चूर्णपक्षः
स्थातुं गन्तुं द्वयमपि सखे नैव शक्तो द्विरेफः॥

'मधुलोभी चंचल भ्रमर भ्रमसे कमल समझकर जगत्प्रसिद्ध सुगन्धवाले स्वर्णवर्ण केतकी पुष्पमें जा पड़ता है, वहाँ केतकीके परागसे उसकी आँखें फूट जाती हैं और काँटोंसे उसकी पाँखें टूट जाती हैं। इससे न तो वह उसमें रह ही सकता है और न कहीं उड़कर जा ही सकता है। हे सखे! इस प्रकार भ्रमर उभय संकटमें पड़ जाता है।'

यही दशा विषयोंमें सुख समझकर उनमें फँस जानेवालोंकी होती है। मनुष्य-देह मिला था—रहा-सहा सारा बन्धन काटनेके लिये। परंतु यहाँ आकर वह अपने बन्धनोंकी गाँठोंको और भी बढ़ा लेता तथा उलझा लेता है। बहुत जन्मोंके बाद यह सुदुर्लभ मनुष्य-शरीर भगवत्कृपासे मिलता है।

कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

यह शरीर भी अनित्य है। इस शरीरको पाकर जो विषय-भोगोंमें न फँसकर भगवान्‌के भजनमें अपना तन-मन लगा देता है, वही भवसागरसे तरकर मनुष्य-जीवनको सफल बनाता है। इस शरीरके कालके गालमें पड़नेसे पहले-पहले ही बड़ी फुर्तीसे यत्न करके भगवान्‌के प्रेमको प्राप्त कर लेना चाहिये। इसीमें बुद्धिमानी है। विषयभोग तो दूसरी योनियोंमें भी प्राप्त होते हैं—मनुष्ययोनि तो केवल भगवत्प्राप्तिके लिये ही है। कितने दुःखकी बात है कि ऐसे शरीरको पाकर भी हमलोग स्वप्नके पदार्थोंकी तरह असत्, बिजलीकी चमककी भाँति चंचल और अनित्य भोगोंकी प्राप्तिमें जीवन खो देते हैं, न मालूम कितना अधर्म करते हैं। कितनोंको सताते और ठगते हैं, कितनोंका दिल दुखाते हैं, कैसे-कैसे छलछन्द रचते हैं, यह हमारी कैसी दुर्दशा है? भागवतमें श्रीभगवान्‌ने स्वयं कहा है—

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं
प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं
पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा॥

(११। २०। १७)

'यह मनुष्य-शरीर सारे मंगलोंका मूल है, शुभ कर्म करनेवाले पुण्यजनोंको यह सुलभतासे मिलता है और अशुभ कर्म करनेवाले दुर्जनोंके लिये यह अत्यन्त दुर्लभ है। संसार-सागरसे पार जानेके लिये यह सुदृढ़ नौका है। परमार्थ-तत्त्वके ज्ञाता गुरुदेव विश्वास करते ही इसके केवट बन जाते हैं और शरण लेते ही मैं स्वयं अनुकूल वायु बनकर इसे लक्ष्यकी ओर बढ़ा ले जाता हूँ। इतनी सुविधा होनेपर भी जो इस शरीरके द्वारा भवसागरसे पार नहीं उतर जाता, वह तो अपने हाथों अपनी हत्या करता है।'

तुम्हारी ही भाँति बहुत लोग फँसावटका अनुभव करते हैं, परंतु सच बात तो यह है कि यह विचार तभीतक रहता है, जबतक कोई खास अड़चन रहती है। जहाँ अड़चन हटी कि फिर वही प्रपंचका मोह!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलसीदासजी महाराजने कहा है—

ज्यों जुवती अनुभवति प्रसव अति दारुन दुख उपजै।
ह्वै अनुकूल बिसारि सूल सठ पुनि खल पतिहिं भजै॥

यही दशा है। भैया! यदि सचमुच तुम दुःखी हो और दुःखसे निकलना चाहते हो तो इसका उपाय है—सीधा उपाय है। वह है भगवान्‌की कृपापर विश्वास करके उनके शरण होना और जहाँतक बन सके निरन्तर उन्हें स्मरण रखनेकी चेष्टा करना। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

'मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।'
(१८।५८)

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥
(८।१४)

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥
(९।२२)

'मुझमें चित्त लगानेसे तुम मेरी कृपासे सारे संकटोंको अनायास ही पार कर जाओगे। हे अर्जुन! जो पुरुष अनन्यचित्त होकर नित्य-निरन्तर मेरा स्मरण करता है, उस नित्य मुझमें लगे हुए योगीको बहुत ही सहजमें मैं प्राप्त हो जाता हूँ। जो केवल मुझमें ही प्रेम करनेवाले पुरुष निरन्तर मेरा चिन्तन करते हुए मुझे ही भजते हैं, उन नित्य मुझमें लगे हुए पुरुषोंको, जो लौकिक-पारमार्थिक वस्तु प्राप्त नहीं है, उसकी प्राप्ति मैं स्वयं करवा देता हूँ और जो प्राप्त है, उसकी रक्षा मैं स्वयं करता हूँ।'

भगवान्‌की इस वाणीपर विश्वास करके उनपर निर्भर रहना सीखो और निर्भरचित्तसे उनका स्मरण करो। फिर देखोगे कुछ ही समयमें तुम्हारी स्थिति पलट जायगी। तुम्हारा रूपान्तर हो जायगा और तुम मानव-जीवनकी सफलताकी ओर द्रुतगतिसे दौड़ने लगोगे। शेष प्रभुकृपा!

(३)

पापका प्रकट होना हितकर है

प्रिय महोदय, सादर सप्रेम हरिस्मरण! आपका पत्र मिला था। आपकी स्थिति अवश्य ही दयनीय है। इस स्थितिमें आपको दुःख होना कोई बड़ी बात नहीं। परंतु यह मनुष्यहृदयकी दुर्बलता है। पापके प्रकट हो जानेको असलमें पापका निकल जाना समझना चाहिये और इधर-उधरकी झूठ-कपटभरी चेष्टा करके उसे छिपानेका प्रयत्न कभी नहीं करना चाहिये। यह बात सदा याद रखनी चाहिये कि छिपा पाप बढ़ता रहता है। जिसको पाप छिपानेमें सफलता मिल जाती है, उसका दिल दूने उत्साहसे पाप करनेकी प्रेरणा करता है। ऐसा मनुष्य अन्तमें पापमय बन जाता है। आपको पाप छिपानेकी चेष्टा नहीं करनी चाहिये और पापके प्रकट होनेसे आपका जो अपमान-तिरस्कार हो रहा है, इसे भगवान्‌की कृपा समझनी चाहिये। इसमें आपका पाप नष्ट हो रहा है और आप विशुद्ध हो रहे हैं। असलमें पापका फल सामने आनेपर मनुष्यकी जैसी दशा होती है, इस दशाकी यदि पाप करते समय मनुष्य कल्पना कर सके तो उससे सहजमें पाप नहीं होते। परंतु उस समय तो विषयासक्तिवश वह अन्धा हुआ रहता है।

आप घबड़ाइये नहीं। भगवान् दयामय हैं, उनका द्वार पापी-तापी सबके लिये सदा खुला है। फिर, आपके पाप तो पश्चात्तापकी आगसे जल रहे हैं। भविष्यमें ऐसा कर्म न बने, इसके लिये प्रतिज्ञा करते हैं, यह भी बड़ा शुभ लक्षण है। इसे भी भगवत्कृपा ही समझिये। भगवान्‌से शक्ति माँगिये, उनसे प्रार्थना कीजिये और उनके बलपर दृढ़ प्रतिज्ञा कर लीजिये। आपका निश्चय दृढ़ होगा तो पापकी शक्ति नहीं है कि वह आपका स्पर्श कर सके। मनुष्यसे जो बुरे कर्म होते हैं, वे आत्माके मूक आदेशसे ही होते हैं। आप पापोंका होना और रहना सह लेते हैं, इसीसे पाप बनते हैं। जिस क्षण आप इन्हें सहन नहीं करेंगे और कामरागवर्जित भगवत्स्वरूप जो परम बल आपको प्राप्त है, उससे अपनेको बलवान् मानकर मन-इन्द्रियोंको ललकार देंगे, उसी क्षण वे पाप-तापको अपने अन्दरसे निकाल देंगे और भगवान्‌के बलके सामने नये पाप-तापोंको तो आनेका मार्ग ही नहीं मिलेगा।

आप भगवान्‌का पावन स्मरण कीजिये और अपमान-तिरस्कारको पापोंका नाश करनेवाली भगवान्‌की भेजी हुई आग समझकर साहसके साथ प्रसन्नतापूर्वक अपने सारे पापोंकी—पापवासनाओंकी उसमें आहुति दे डालिये। आप पवित्र हो जायँगे। शेष प्रभुकृपा!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०६८, शक १९३३, सन् २०११, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, भाद्रपद कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें १२। २ बजेतक	रवि	धनिष्ठा रात्रिमें ७। ३३ बजेतक	१४ अगस्त	कुम्भराशि प्रातः ६। ५१ बजे, पंचकारम्भ प्रातः ६। ५१ बजे।
द्वितीया ,, १।१९ बजेतक	सोम	शतभिषा ,, ९। २३ बजेतक	१५ ,,	अशून्यशयनव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ७। १७ बजे, भारतीय स्वतन्त्रता दिवस।
तृतीया ,, ३। १ बजेतक	मंगल	पू० भा० ,, ११। ३८ बजेतक	१६ ,,	भद्रा दिनमें २। ११ बजेसे रात्रिमें ३। १ बजेतक, मीनराशि सायं ५। ४ बजेसे, कज्जली तृतीया।
चतुर्थी रात्रिशेष ४। ५७ बजेतक	बुध	उ० भा० ,, २। ८ बजेतक	१७ ,,	बहुलाव्रत, श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय ८। २१ बजे, मघा और सिंहसंक्रान्तिमें सूर्य रात्रिमें १। २६ बजे, मूल रात्रिमें २। ८ बजेसे।
पंचमी अहोरात्र	गुरु	रेवती रात्रिशेष ४। ४४ बजेतक	१८ ,,	मेषराशि रात्रिशेष ४। ४४ बजेसे, रक्षापंचमी (उड़ीसा), सौर भाद्रपद मासारम्भ, पंचक समाप्त रात्रिशेष ४। ४४ बजे।
,, प्रातः ७ बजेतक	शुक्र	अश्विनी अहोरात्र	१९ ,,	हलषष्ठी, चन्द्रषष्ठी (ललही छठ) व्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ९। ३० बजे।
षष्ठी दिनमें ९। बजेतक	शनि	अश्विनी प्रातः ७। २० बजेतक	२० ,,	मूल प्रातः ७। २० बजेतक, भद्रा दिनमें ९ बजेसे रात्रिमें ९। ५२ बजेतक।
सप्तमी ,, १०। ४४ बजेतक	रवि	भरणी दिनमें ९। ४१ बजेतक	२१ ,,	वृषराशि सायं ४। ११ बजेसे, श्रीकृष्णजन्माष्टमी (स्मार्त्त) भानुसप्तमीपर्व।
अष्टमी ,, १२। ९ बजेतक	सोम	कृत्तिका ,, ११। ४३ बजेतक	२२ ,,	गोकुलाष्टमी, श्रीकृष्णजन्माष्टमी (वैष्णव)।
नवमी ,, १। ५ बजेतक	मंगल	रोहिणी ,, १। १८ बजेतक	२३ ,,	भद्रा रात्रिमें १। १९ बजेसे, मिथुनराशि रात्रिमें १। ५२ बजेसे। राष्ट्रिय भाद्रपदमासारम्भ, शुद्ध औदयिक रोहणी उपासक श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीव्रत (वैष्णव), दृश्य अगस्त्योदय सायं ६। ४८ बजे।
दशमी ,, १। ३३ बजेतक	बुध	मृगशिरा ,, २। २५ बजेतक	२४ ,,	भद्रा दिनमें १। ३३ बजेतक।
एकादशी ,, १। ३० बजेतक	गुरु	आर्द्रा ,, ३। २ बजेतक	२५ ,,	जया एकादशीव्रत सबका।
द्वादशी ,, १२। ५८ बजेतक	शुक्र	पुनर्वसु ,, ३। ९ बजेतक	२६ ,,	कर्कराशि दिनमें ९। ८ बजे, प्रदोषव्रत।
त्रयोदशी ,, ११। ५५ बजेतक	शनि	पुष्य ,, २। ४८ बजेतक	२७ ,,	भद्रा दिनमें ११। ५५ बजेसे रात्रिमें ११। १२ बजेतक, मासशिवरात्रिव्रत, अघोरचतुर्दशी, मूल दिनमें २। ४८ बजेसे।
चतुर्दशी ,, १०। २९ बजेतक	रवि	आश्लेषा ,, २। ४ बजेतक	२८ ,,	सिंहराशि दिनमें २। ४ बजेसे, श्राद्ध अमावस्या, कुशोत्पाटिनी अमावस्या।
अमावस्या ,, ८। ४४ बजेतक	सोम	मघा ,, १ बजेतक	२९ ,,	मूल दिनमें १ बजेतक, सोमवती अमावस्या, स्नान-दानकी अमावस्या।

सं० २०६८, शक १९३३, सन् २०११, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, भाद्रपद शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा प्रातः ६। ३९ बजेतक द्वितीया रात्रिशेष ४। २२ बजेतक	मंगल	पू० फा० दिनमें ११। ३८ बजेतक	३० अगस्त	कन्याराशि सायं ५। १५ बजेसे, चन्द्रदर्शन।
तृतीया रात्रिमें १। ५८ बजेतक	बुध	उ० फा० ,, १०। ७ बजेतक	३१ ,,	वाराहावतार ३, हरितालिका (तीज)-व्रत, पूर्वाफाल्गुनीमें सूर्य रात्रिमें १०। ८ बजे।
चतुर्थी ,, ११। ३० बजेतक	गुरु	हस्त ,, ८। २९ बजेतक	१ सितम्बर	भद्रा दिनमें १२। ४५ बजेसे रात्रिमें ११। ३० बजेतक, तुलाराशि रात्रिमें ७। ३८ बजे, वैनायकी वरद श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रदर्शन निषिद्ध।
पंचमी ,, ९। ५ बजेतक	शुक्र	चित्रा प्रातः ६। ४८ बजेतक स्वाती रात्रिशेष ५। ९ बजेतक	२ ,,	ऋषिपंचमीव्रत।
षष्ठी ,, ६। ४७ बजेतक	शनि	विशाखा रात्रिमें ३। ४२ बजेतक	३ ,,	वृश्चिकराशि रात्रिमें १०। ४ बजे, श्रीलोलार्क-षष्ठीव्रत, सूर्य-षष्ठीव्रत, स्वामिकार्तिकेय दर्शन।
सप्तमी सायं ४। ३९ बजेतक	रवि	अनुराधा ,, २। २५ बजेतक	४ ,,	मूल रात्रिमें २। २५ बजेसे, भद्रा सायं ४। ३९ बजेसे रात्रिमें ३। ४३ बजेतक, सन्तान-सप्तमी, महारविवारव्रत।
अष्टमी दिनमें २। ४६ बजेतक	सोम	ज्येष्ठा ,, १। २८ बजेतक	५ ,,	धनूराशि रात्रिमें १। २८ बजेसे, राधाष्टमी, दूर्वाष्टमी।
नवमी ,, १। १३ बजेतक	मंगल	मूल ,, १२। ५० बजेतक	६ ,,	मूल रात्रिमें १२। ५० बजेतक, महानन्दानवमीव्रत।
दशमी ,, १२। ४ बजेतक	बुध	पू० षा० ,, १२। ३८ बजेतक	७ ,,	भद्रा रात्रिमें ११। ४३ बजेसे।
एकादशी ,, ११। २४ बजेतक	गुरु	उ० षा० ,, १२। ५४ बजेतक	८ ,,	भद्रा दिनमें ११। २४ बजेतक, मकरराशि प्रातः ६। ३९ बजेसे, पद्मा एकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी ,, ११। ११ बजेतक	शुक्र	श्रवण ,, १। ४० बजेतक	९ ,,	श्रवणद्वादशीव्रत, वामनद्वादशीव्रत, प्रदोषव्रत।
त्रयोदशी ,, ११। ३२ बजेतक	शनि	धनिष्ठा ,, २। ५८ बजेतक	१० ,,	कुम्भराशि दिनमें २। १९ बजेसे, पंचकारम्भ २। १९ बजेसे।
चतुर्दशी ,, १२। २३ बजेतक	रवि	शतभिषा रात्रिशेष ४। ४२ बजेतक	११ ,,	भद्रा दिनमें १२। २३ बजेसे रात्रिमें १२ बजेतक, अनन्त चतुर्दशीव्रत, व्रतपूर्णिमा।
पूर्णिमा ,, १। ४२ बजेतक	सोम	पू० भा० अहोरात्र	१२ ,,	मीनराशि रात्रिमें १२। १९ बजेसे, स्नान-दानादिकी पूर्णिमा, महालयारम्भ, शुक्रोदय पश्चिममें दिनमें १। ५९ बजे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृपानुभूति

भगवान् गणेश-लक्ष्मीका अनुग्रह

बात दीपावलीके दिनकी है। रात्रिके ९ बजे मैं अपनी दूकान (बुकडिपो)-से श्रद्धा-भक्तिके साथ श्रीगणेश-लक्ष्मीजीका विधिवत् पूजन करके और सावधानीसे दूकान बढ़ाकर (बन्दकर) बाजारमें लोगोंसे 'जयरामजीकी' करता हुआ अपने प्रेस पहुँचा, जहाँ मेरा पुत्र श्रीगणेश-लक्ष्मीजीके सविधि पूजनोपरान्त समापन-सम्पन्नताके लिये मेरी प्रतीक्षा कर रहा था। पण्डितजी भी उपस्थित थे। ऊपर एक रैकके सेल्फमें पूर्ववर्षके पूजित श्रीगणेश-लक्ष्मीजी विराजमान थे, जिनके चारों ओर रंग-बिरंगे अनेक बल्ब जगमगा रहे थे। धूप और अगरबत्तीकी सुगन्धसे सारा वातावरण सुवासित था। नीचे चौकीके एक आसनपर नवपूजित श्रीगणेश-लक्ष्मीजी पुष्पोंकी मालाओंसे अलंकृत हो शोभा पा रहे थे। आज इनका षोडशोपचारपूजन हुआ था। जलते हुए घृत और तेलके दीपक उनकी शोभाको द्विगुणित कर रहे थे।

मेरे पहुँचनेपर अवशिष्ट पूजन—आरती, मन्त्र-पुष्पांजलि, प्रार्थना और प्रसाद-वितरण हुआ। उस समय रात्रिके दससे ऊपरका समय हो गया था। अत्यन्त सावधानीसे मैंने प्रज्वलित दीपोंको प्रेसके बाहर रखवाया, अन्दर कुछ भी जलता तो नहीं रह गया, यह पक्का अनुमान करके प्रेसके सब दरवाजोंमें ताला लगवाया गया। तदुपरान्त मैं अपने निवास-स्थान पहुँचा, जो प्रेसके सन्निकट ही है। घरके बाहर सजी हुई बिजलीकी झालरोंमें दो-तीन झालरें 'वाक आउट' किये हुई थीं, जिससे कुछ शोभा बिगड़ रही थी। मैंने अपने लड़केसे उस ओर संकेत किया तो वह मना करनेपर भी तुरंत उस बिजली-मिस्त्रीको बुलाने चला गया, जिसने उन झालरोंको सजाया था। कुछ देर बाद वह बिजली-मिस्त्रीको साथमें लेकर लौट आया, जो उसे कहीं रास्तेमें ही मिल गया था; किंतु वह अपने साथ प्लास, पेंचकस आदि कुछ भी न लानेका बहाना बनाकर जब अपनी जान छुड़ाकर जानेकी चेष्टा करने लगा तो लड़केद्वारा प्रेससे प्लास, पेंचकस आदि ला देनेका आश्वासन देनेपर वह रुक गया।

प्रेस जाकर (जिसके दरवाजोंको मुश्किलसे आधा घण्टा पूर्व ही बन्द किया गया था) ताला खोलते ही लड़केने ऑफिसके कमरेको भीषण अन्धकार और गलाघोंट धुएँसे परिपूर्ण देखा। वह एकाएक घबड़ा गया। किसी प्रकार टोहते-टोहते दूसरे कमरेमें गया तो वह भी वैसे ही गन्धपूर्ण धुएँसे आवृत था। आगेके कमरे और बरामदे आदि सभी धुएँसे भरे थे। तब उसने बहुत बड़े नुकसान और अनिष्टकी आशंकासे ग्रस्त हो जोरसे चिल्ला-चिल्लाकर घरके लोगोंको आवाजें लगायीं। घरसे कुछ लोग टार्च और पानीकी बाल्टियाँ लेकर पहुँचे। टार्चके प्रकाशमें मालूम हुआ कि प्रेसका कार्यालय और उससे सटे कमरे किसी जली वस्तुके छोटे-छोटे कणोंसे परिपूर्ण हैं।

कुछ देर पानी आदि डालनेके बाद जब धुएँका बवंडर किसी प्रकार कुछ शान्त हुआ तो पुनः ध्यानसे देखनेपर ज्ञात हुआ कि श्रीगणेश-लक्ष्मीजीके चारों ओर जो बिजलीका तार लगा था, वह जलकर राख हो गया है; पर कैसा आश्चर्य कि उन्हींके पास ही रखी बहियाँ, एकाउण्ट्स बुक्स, पुस्तकें तथा अन्य वस्तुएँ बाल-बाल बच गयी हैं। बगलमें ही कागजका बड़ा गोदाम था, नीचे आलमारी, गद्दी, कैशबाक्स, फर्नीचर, तमाम जरूरी कागजात थे। आगेके बरामदेमें भी कागजकी कतरनोंका ढेर था। परंतु यह चमत्कार ही हुआ कि फर्नीचर, कागज, मशीनें आदि सभी कुछ ज्यों-का-त्यों बच गया, किसीको कहीं कोई आँच छूतक न पायी। यह सब श्रीगणेश-लक्ष्मीजीकी महती कृपासे ही सम्भव हो सका था।

ऊपर दृष्टि डाली तो देखा कि श्रीगणेशजी-लक्ष्मीजीके चारों ओर जो बिजलीके रंग-बिरंगे बल्ब जल रहे थे, वे सब जलकर राख हो गये हैं। ऐसा प्रतीत हुआ कि श्रीगणेश-लक्ष्मीजीने उस समस्त भावी भयंकर विपत्तिको मानो उदरस्थ कर लिया हो; क्योंकि उन्हींकी कृपा-प्रेरणासे उत्सवकी उस उत्साहभरी अर्धरात्रिको प्रेस पुनः खोलनेकी अनायास परिस्थिति बन गयी। यदि ऐसा न हुआ होता अथवा प्रेस पुनः खोलनेमें कुछ विलम्ब हो गया होता तो न जाने उस रात कितने धन-जनकी अपूरणीय क्षति हो जाती। उस दिनकी सम्भावित भयंकर दुर्घटनाकी बात सोचकर आज भी कलेजा काँप उठता है। भगवान्‌के इस अहैतुक कृपामय उपकारकी बात सोचकर हम सबने रोमांचित और भावतन्मय हो कृतज्ञ मनसे प्रभुको बार-बार सादर नमन किया।—**मथुराप्रसाद अग्रवाल**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

ईमानदारी आज भी है

हम भीलवाड़ा (राजस्थान)-से दिनांक ९ अप्रैल २०१० ई० को हरिद्वार कुम्भमें गये। हमारा वापसीका टिकट १६ अप्रैल २०१० ई० का था। मेलेके कारण बहुत भारी भीड़ थी। आरक्षणके डिब्बेमें भी हालत बुरी थी। हरिद्वार रेलवे स्टेशनपर पहुँचकर वापस वही गाड़ी रवाना होनेवाली थी, इसलिये उसमें चढ़ने एवं उतरनेकी यात्रियोंको जल्दी थी। हम अपना सामान चढ़ा रहे थे और उतरनेवाले सामान उतार रहे थे। उस समय भूलसे सामान उतारनेमें हमारा बैग भी उतर गया। भीड़-भाड़ होनेसे हम ठीकसे सामान चेक नहीं कर सके और भीड़ जब कुछ कम हुई तो जयपुरसे हमने सामान चेक करना शुरू किया, पर अजमेर स्टेशनतक दो-तीन बार चेक करनेपर भी बैग नहीं मिला। हम निराश हो गये और भीलवाड़ा पहुँचकर श्रीरामचरितमानसमें प्रश्न-तालिकासे भगवान् श्रीराम एवं हनुमान्जीका ध्यान करके प्रयोग किया तो हमें उत्तर मिला कि 'प्रश्न उत्तम है, सफलता मिलेगी।' हमें तो विश्वास ही नहीं हुआ कि गयी चीज वापस आयेगी, मगर भगवान्की असीम कृपा हुई कि दिनांक १३ मईको आरक्षणमें लिखे पतेके अनुसार स्टेशन-मास्टरसे हमें खबर प्राप्त हुई। हम स्टेशन-मास्टर, भीलवाड़ासे मिले और हमें पता चला कि सामान श्रीविजयकुमार एन० जानीके पास रखा हुआ है। चूँकि वह सामान सही एवं ईमानदार व्यक्तिके हाथमें था, सो वह वापस ज्यों-का-त्यों मिल गया, उस बैगमें कैश एवं कपड़े थे। आजके इस विकराल समयमें भी ऐसे ईमानदार व्यक्ति हैं, जो दूसरेके खोये सामानको बड़ी सुरक्षासे रखते हैं और पता लगाकर उस व्यक्तितक पहुँचा देते हैं। स्टेशन-मास्टर साहबने भी रिकार्डकी खोजबीन करके हमें सूचना देकर सहयोग किया। हम सहयोग करनेवालोंको धन्यवाद देते हैं एवं उनके आभारी हैं। इससे यह भी प्रमाणित हुआ कि श्रीरामचरितमानसकी प्रश्नोत्तरीकी बात सही है और सच निकलती है। तबसे श्रीरामचरितमानसपर हमारी विशेष श्रद्धा हो गयी।—हरकलाल सोडानी

(२)

गोरक्षार्थ त्यागमयी तत्परता

विदिशासे लगभग १० मील दूर मूडरा (गजार) ग्रामनिवासी एक बढ़ई (सुथार)-के जीवनकी यह सत्य घटना है। ग्रीष्म ऋतुमें एक दिन संयोगसे उनके मकानमें आग लग गयी। मकानमें लकड़ी, घास और उपलोंका भण्डार था। मकानकी छत बाँसों और खपरैलसे छायी हुई थी। मकानमें लगी आगको देखकर बढ़ई और उनके परिवारके लोगोंने अपना महत्त्वपूर्ण सामान घरके बाहर फेंकना आरम्भ कर दिया। गाँवनिवासियोंने भी सामान निकालने तथा पानी ला-लाकर आग बुझानेमें बहुत तत्परतासे सहायता की। मकानका महत्त्वपूर्ण सामान तथा प्राणियों—वृद्ध, बाल-बच्चे, स्त्रियों—सबके बाहर हो जानेके बाद कुँओंसे पानी ला-लाकर अग्निको शान्त करनेका प्रयास किया जाने लगा, परंतु पर्याप्त जलके अभावमें तथा वायुकी गति विपरीत होनेके कारण आग फैलती ही जा रही थी। मकानमें रखे कण्डों, लकड़ियों तथा घासमें भी आग लग जानेके कारण अग्नि वेगपूर्वक पूरे मकानमें फैल चुकी थी। उसी समय बढ़ईकी पत्नीको याद आया कि गाय-बछिया तो सार (बरामदे)-में ही बँधी रह गयी हैं! वह घबराने लगी—हे राम! अब क्या हो? कैसे क्या किया जाय? आग चारों ओर फैल चुकी थी। गाय-बछिया दोनोंका जीवन संकटमें था। आगकी लपटोंकी तपनसे त्रस्त हो गाय-बछिया दोनों रँभाने लगी थीं।

गो-माता तथा बछियाकी करुण पुकार सुनकर बढ़ईसे अब न रहा गया। सबके देखते-देखते वे अग्निकी लपटोंकी परवाह किये बिना तत्काल मकानमें घुस गये। सारमें पहुँचते ही तेज लपटोंसे उनके शरीरके कपड़े जलने लगे। वे उनको फेंक, एक पलका विलम्ब किये बिना ही गाय-बछियाके पास पहुँच गये और दोनोंको साँकलसे खोल दिया, परंतु आगने तो उन निरीह जीवोंको चारों ओरसे घेर रखा था। वे निकलें भी तो कहाँसे? तभी दैवी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेरणासे प्रेरित हो उन सज्जनने पास ही रखे हुए एक मूसलसे सारकी दीवारें, जो कच्ची थीं, तोड़ करके किसी तरह छोटा-सा रास्ता बनाकर गाय-बछियाको बाहर निकाला। जब वे स्वयं बाहर आने लगे तो जगह-जगह जल जानेके कारण एकदम बेहोश होकर गिर पड़े। उनका चेहरा, बाल और दोनों हाथ काफी झुलस गये थे। लोगोंने उन्हें कम्बल ओढ़ाकर तत्काल विदिशाके अस्पतालमें ले जाकर भर्ती करा दिया। कुछ समय पश्चात् जब उन्हें होश हुआ तो उनका पहला प्रश्न था—'गाय-बछियाको तो कुछ नहीं हुआ? वे दोनों ही ठीक हैं न?' उपस्थित लोगोंने बता दिया कि 'भाई, जहाँ तुम-जैसे गो-रक्षक हों, वहाँ भला गो-माताका एक रोम भी कैसे जल सकता है?' वस्तुतः भगवत्कृपासे (चमत्कारिक ढंगसे) गाय तथा बछिया दोनोंके शरीरोंपर आगका कोई भी कुप्रभाव न हुआ। यह सुनकर सुथारका मुख एक अप्रतिम सन्तोषकी आभासे दीप्त हो उठा। गो-माताके आशीर्वादसे उन बढ़ई महाशयको शीघ्र ही आराम भी हो गया। ठीक होनेपर उनकी त्वचा तो अवश्य ही कई जगहसे सिकुड़ गयी तथा हाथ-पैरोंमें जलनेके चिह्न भी स्थायीरूपसे बन गये, पर अब वे महोदय प्रसन्न एवं शान्त-चित्त हो जीवन-यापन कर रहे हैं। पहलेकी अपेक्षा आज उनका जीवन अधिक सुखी, श्रीसम्पन्न एवं शान्तिपूर्ण है। गोरक्षासे सब कुछ सम्भव है।—**रघुराजशर्मा, चतुर्वेदी**

(३)

भगवान्ने हमारी रक्षा की

दिनांक ६ जुलाई २००८ को मैं कोटासे कारद्वारा शाहबाद (बाँरा-राजस्थान) बैंकके कार्यसे जा रहा था। बाँरासे मैंने अपने साथीको भी साथमें ले लिया। हम दोनों आपसमें बातें करते हुए जा रहे थे। लगभग एक घंटे बाद हमारी कार भँवरगढ़ ग्रामसे आगे घडावली नदीके पास पहुँची। मार्गमें चार लेनका कार्य चल रहा था। अचानक हमारी कारका ड्राइवर गाड़ीका नियन्त्रण खो बैठा तथा हमारे देखते-देखते ही हमारी कार नदीकी साइडमें बनी पत्थरोंकी रेम्पपर गिरकर लुढ़कते हुए नीचे नदीके किनारेपर लगभग २५-३० फुटकी नीचाईपर आ गिरी। कारने लगभग ४ बार पलटा खाया। हम दोनों कारके अन्दर ही इधर-उधर गिर-पड़ रहे थे और यही सोच रहे थे कि अब तो बचना मुश्किल है। हमने इस कठिन समयमें भगवान्का मन-ही-मन स्मरण किया और बार-बार रक्षाकी प्रार्थना की। मनमें न जाने ऐसा विश्वास कैसे जमा हुआ था कि भगवान् जरूर हमारी रक्षा करेंगे और इस विपत्तिसे हमें बचा लेंगे। सचमुच हुआ भी ऐसा ही। ईश्वरने हमारी इस प्रकार रक्षा की, जैसे राजा परीक्षित्की गर्भमें भगवान् श्रीकृष्णने की थी। हमने नीचे देखा कि पत्थरोंकी रेम्पके तरफकी काँचकी खिड़की खुल गयी है। फिर क्या था, मैं और मेरा मित्र झटसे उस खिड़कीसे बाहर निकल आये, जैसे ही हम बाहर निकले, वैसे ही कार फिर एक बार और पलट गयी। मजदूर जो सड़क तथा पुलका कार्य कर रहे थे, तुरन्त वहाँ इकट्ठे हो गये। ड्राइवर गाड़ीमें फँस गया था, जिसे मजदूरोंने निकालकर अस्पताल पहुँचाया। हम दोनोंने एक-दूसरेको सँभाला। हम दोनोंके शरीरपर ईश्वरकी कृपासे खँरोचतक भी नहीं आयी थी। हम दोनों पूरी तरह सुरक्षित थे। हम रेम्पपर चढ़कर ऊपर आये, वहाँ एक सरदारजी ट्रैक्टरपर बैठकर कारकी दुर्दशा देख रहे थे। अन्तिम पलटीमें कार चकनाचूर हो गयी थी तथा पीछेकी सीट, जिसपर हम दोनों बैठे थे, बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो चुकी थी। सरदारजीने हमसे पूछा कि इसमें कौन था? हमने कहा—हम दोनों थे, तब वे बोले कि कारकी हालतको देखकर लग रहा है कि इसमें सवार लोग तो मर गये होंगे, आप गलत कह रहे हैं। हमने पुनः उनसे कहा—विश्वास कीजिये, हम ही थे। भगवान्ने हमें बचा लिया। वे एकाएक 'वाहे गुरू' कहने लगे तथा हमसे बोले कि मैं आपकी क्या मदद कर सकता हूँ? हमने उनसे कहा कि हमें भँवरगढ़ पहुँचा दो। उन्होंने हमारी मदद की, फिर हम वहाँसे अपने घर वापस आये। मैं पूर्ण विश्वासके साथ कह सकता हूँ कि उस समय हमारी रक्षा करनेवाला जगदीश्वरके अलावा कोई और नहीं हो सकता। तभीसे ईश्वरमें मेरा विश्वास और दृढ़ हो गया और मुझे यह लगा कि यदि प्रभु स्वयं रक्षा करनेवाले हैं तो फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा कौन मार सकता है—

जाको राखै साइयाँ मार सकै ना कोय।

(४)

सही निर्वाचन

अमेरिकाके सुप्रसिद्ध राष्ट्रपति अब्राहम लिंकनने रक्षामन्त्रीके स्थानपर एक उद्दण्ड स्वभावके व्यक्तिको पदासीन किया। इस व्यक्तिका राष्ट्रपतिसे पुराना वैर था। इनके विषयमें वह नाना प्रकारकी बातें, टीका-टिप्पणी तथा आलोचना किया करता था। राष्ट्रपतिके कुछ शुभचिन्तक एवं मित्र उनके पास पहुँचे और बोले—'रक्षामन्त्रीके पदपर आपने जिस व्यक्तिको नियुक्त किया है, उसके विषयमें क्या आप भलीभाँति जानते हैं?'

'हाँ, जानता हूँ।'—राष्ट्रपतिने उत्तर दिया।

'समय-समयपर वह आपको गोरिल्ला कहता रहा है, यह भी जानते हैं?'

'हाँ, जानता हूँ।'

'कई जन-सभाओंमें उसने आपको अपशब्द भी कहे हैं।'

'मुझे मालूम है।' लिंकनने मुसकराते हुए कहा।

'अनेक बार उसने आपका अपमान भी किया है।'

'वह भी मुझे मालूम है।' राष्ट्रपतिका संक्षिप्त-सा उत्तर था।

'इतना सब कुछ मालूम होते हुए भी आपने उस व्यक्तिको इतने महत्त्वपूर्ण पदपर कैसे बैठा दिया?' मित्रोंने खीझकर पूछा।

'तो क्या हुआ? महत्त्वपूर्ण पदपर ही तो बैठाया है, गलत स्थानपर तो नहीं बैठाया?' चेहरेपर उसी प्रकार स्वाभाविक मुसकान लाते हुए लिंकनने कहा।

'पर आप यह क्यों नहीं समझते कि......।'

लिंकनने बात बीचमें काटते हुए कहा—'मैं कुछ समझूँ, इससे पहले आपलोग यह क्यों नहीं समझते हैं कि वह एक योग्य व्यवस्थापक, संचालक और अपने क्षेत्रका कुशल तथा कर्मठ कार्यकर्ता भी है। वह भले ही अब्राहम लिंकनका अपमान कर सकता है, लेकिन उसके गुण और उसकी योग्यताएँ राष्ट्रके लिये हितकर एवं कल्याणकारी हैं। व्यक्तिगत द्वेषभावके आधारपर मैं एक कार्यकुशल व्यक्तिको राष्ट्रसे अलग कैसे कर दूँ? राष्ट्रको उसकी सेवाओंसे वंचित किस प्रकार कर दूँ? मुझे लिंकनभक्त नहीं; 'राष्ट्रभक्त' चाहिये और मुझे विश्वास है कि वह राष्ट्रभक्त है।'

यह सुनकर राष्ट्रपतिके मित्रगण चुपचाप लौट गये।

—**सुरेन्द्रकुमार**

(५)

जब मैं गोली लगनेसे बचा

बात उन दिनोंकी है, जब मैं युनिवर्सिटीमें पढ़ता था। एक दिन दोपहरके समय मैं नदीके किनारेसे टहल करके लौट रहा था। धूपसे रक्षाहेतु मैं सरपर स्ट्रा हैट (घासकी टोपी) पहने हुए था।

नदीसे घरतकका इलाका काफी सुनसान है। जगह-जगह मिट्टीके जमा होनेकी वजहसे छोटी-छोटी पहाड़ियाँ बन गयी हैं। अभ्यासवश मैं नाम-जप करते हुए आ रहा था। उसी वक्त अचानक घुटनेमें जोरकी खुजली महसूस हुई। खुजलानेके लिये मैं ज्यों ही झुका त्यों ही 'सूँ' की आवाज हुई और मेरी टोपी सिरसे उड़ गयी। मैंने पासमें गिरी टोपीको उठाकर देखा, तो उसमें छोटा-सा छेद बना हुआ था। उसी वक्त मुझे कहीं राइफलसे गोली छूटनेकी आवाज सुनायी दी। आवाज आनेकी दिशाकी ओर मैंने देखा तो पाया कि मैं जहाँ खड़ा था, वहाँसे करीब तीन सौ गजकी दूरीपर सैनिकोंकी एक टुकड़ी चाँदमारी (गोली दागनेका अभ्यास) कर रही है। यह देखनेके साथ ही मुझे समझनेमें देर न लगी कि मेरी टोपीमें छेद होनेका कारण गोली लगना ही था। मैं उसी वक्त बेतहासा घरकी ओर दौड़ पड़ा।

सन् १९७३ ई० की उस घटनाको सोचकर मैं अब भी रोमांचित हो उठता हूँ। यदि मुझे अचानक घुटनेमें खुजली महसूस न हुई होती और मेरे झुकनेमें एक क्षणकी भी देरी हो गयी होती तो गोली टोपीको भेदनेके बदले मेरे सिरको भेदकर चली जाती तथा मैं दूसरे ही क्षण मृत पड़ा होता। मैं सोचता हूँ कि खुजली तो महज एक बहाना थी; सही तो प्रभुका मुझे बचानेका लक्ष्य ही था।—**पूरनकुमार छेत्री**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनन करने योग्य

(१)
कर्तव्यपालन

हिन्दुत्वके परम हितैषी महाराज पेशवाके राज्यमें प्रतिवर्ष श्रावण मासमें पूनामें, सारे भारतवर्षके सर्वश्रेष्ठ पण्डितोंकी एक बृहत् सभाका आयोजन किया जाता था, जिसमें दूर-दूरके नगरोंसे कविकोविद, विद्वान्, कलाकार, साहित्यकार, ग्रन्थकार, देशभक्त, भगवद्भक्त आदि जन-प्रतिनिधि निर्वाचित होकर आते थे। उनके ठहरने, विश्राम, भोजन आदिका उत्तम-से-उत्तम प्रबन्ध किया जाता था। वे अपनी रचनाओंका पाठ एवं कलाओंका प्रदर्शन करते थे। उनकी योग्यताके अनुसार उन्हें दक्षिणा, प्रशंसापत्र आदि देकर सम्मानित किया जाता था। इसमें कई लाख रुपये बाँट दिये जाते थे। योग्यताका निर्णय करनेका काम श्रीरामशास्त्रीको सौंपा जाता था, जो पेशवाके सर्वोच्च न्यायालयके प्रधान न्यायाधीशके उच्चपदपर नियुक्त थे। इनकी निर्भयता, पक्षपातहीनता एवं न्यायपरायणता चारों ओर प्रसिद्ध थी।

एक वर्ष विशाल सभागृहमें यह आयोजन किया गया। नगरके गण्यमान्य सज्जनोंको भी आमन्त्रितकर बुलाया गया। सभीको ससम्मान सुखासनोंपर बैठानेके पश्चात् विद्वान् अपनी-अपनी रचनाओंकी सूक्ष्म विशेषताएँ समझाते हुए काव्यकलापूर्ण रचनाएँ सुनाने लगे। रामशास्त्री उनपर निर्णय दे पारितोषिक बाँटनेमें दत्तचित्त हुए। नाना फड़नवीसके पास कई लाख रुपयोंसे भरी थैलियाँ रख दी गयी थीं। उनमेंसे रामशास्त्रीके संकेतके अनुसार रुपये गिनकर नाना फड़नवीस उन्हें देते और वे उस राशिको पण्डितोंके करकमलोंमें सादर समर्पित करते जाते थे।

× × ×

यह क्रम चल ही रहा था कि एक दुबला-पतला अधेड़ व्यक्ति पण्डितोंकी पंक्तिमेंसे निकलकर रामशास्त्रीके सामने आकर बैठ गया। शास्त्रीजीने उसे मन-ही-मन प्रणाम तो किया, किंतु प्रकटमें उसकी ओरसे मुँह दूसरी ओर फेर लिया। वह व्यक्ति मौन था। साधारण प्रश्नका भी कोई उत्तर नहीं दिया उसने। यह देख सभीकी आपसमें चर्चा चली—

जान पड़ता है, यह विद्याविहीन है; पर शायद 'गुदड़ीमें लाल' वाली कहावत चरितार्थ कर दे और ऐसी मनोहारी रचना सुनाये कि सभी श्रोता मन्त्रमुग्ध-से हो जायँ। बारी आने ही वाली है, जब कि उसकी वाणीका चमत्कार फूट निकलेगा। ठीक तो है—

भले बुरे सब एक-से, जौ लौं बोलत नाहिं।
जान परत है काक पिक, ऋतु बसंत के माहिं॥

अजी, गरीबीका मारा मुफ्तका इनाम लेने आ गया है, पर है सज्जन; क्योंकि सज्जनोंके पास सज्जन ही आकर इकट्ठे होते हैं—जैसे समुद्रमें नदियाँ। देखो, अभी रामशास्त्रीकी परीक्षामें रहस्य खुल ही जायगा।

'हाँ जी, यह मौन पण्डित सुदामा-तन्दुलकी पोटलीके समान काव्य-निधि अपनी वाणीमें भरकर लाया है, अभी उसे बिखेरने ही वाला है।' 'नहीं जी, गरजनेवाले बादल बरसते नहीं हैं—निरक्षर भट्टाचार्य ही समझो इसे।'

× × ×

नाना प्रकारके ऐसे विचारोंके साथ ही सबकी दृष्टि रामशास्त्रीकी ओर लगी थी। प्रतीक्षामें थे कि कब शास्त्रीजी इसे रचना सुनानेका आदेश दें। किंतु शास्त्रीजी विमुख ही रहे। यह देख सबको विस्मय हुआ। रामशास्त्री-जैसा न्यायपरायण न्यायाधीश आज चुप क्यों है? भारी अचम्भेकी बात तो यह है कि अबतक शास्त्रीजी जिस हँसी-खुशीके साथ दक्षिणा बाँट रहे थे, वह इसे देखकर एकदम कहाँ विलीन हो गयी? सभी उकता गये थे।

इतनेमें ही संकेत पाकर नाना फड़नवीसने बीस रुपये गिनकर रामशास्त्रीके हाथमें दिये, किंतु यह क्या? शास्त्रीने केवल दो रुपये रखकर शेष अठारह रुपये वापस लौटा दिये।

लोगोंने देखा कि बिना परीक्षाके दो रुपये इनाम, अठारह रुपये वापस। यह अद्भुत बात है—रहस्यभरी!

नाना फड़नवीस पूरे २० रुपये देनेका बार-बार आग्रह कर रहे थे—२० रुपये शास्त्रीकी ओर बढ़ा रहे थे, किंतु शास्त्री बार-बार दृढ़तापूर्वक कह रहे थे—'नहीं, नाना साहब! योग्यताके अनुसार इनको इतना ही मिलना चाहिये। कुछ भी अधिक नहीं।' यह बात नाना फड़नवीसको कुछ कटु लगी।

× × × × ×

पारितोषिक-वितरणके पश्चात् सभीने अपने-अपने स्थानको प्रस्थान किया—थोड़ी चर्चा करते हुए। 'क्यों जी! क्या इनाम दिया इस मूर्खराजको!' 'भाईजी! ऐसे ओछे शब्द कहनेसे उन महानुभावका अपमान होता है। वे भी मानव हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम-जैसे ही। हमको अपनी विद्याका गर्व नहीं करना चाहिये।'

इधर रामशास्त्रीने हिसाब मिलान करके नाना फड़नवीसके समक्ष शेष निधि कोषाध्यक्षको सँभला दी और वे भवनकी ओर चले। मन-ही-मन प्रसन्न होते जा रहे थे कि आज मैंने निष्पक्षतासे स्वामीका कार्य पूर्ण किया; किंतु नानाजी मनमें कुछ कुपित अवश्य हुए हैं।

इन विचारोंके साथ रामशास्त्रीने भवनमें प्रवेशकर सबको उदास बैठे देखा। रामशास्त्री घरमें केवल एक दिनका भोजनादिका सामान रखकर शेष गरीबोंको बाँट दिया करते थे। इसलिये तो सबको उदासी नहीं थी; किंतु असली कारण समझकर शास्त्री अश्रु बहाते हुए उनके चरणोंमें गिर पड़े, उन्होंने भी प्रेमाश्रु बहाते हुए उन्हें उठाकर गलेसे लगाया।

रामशास्त्री अति विनम्रभावसे बोले—'आपको क्या आवश्यकता थी—वहाँ जानेकी ? मैं आपके चरणोंका अनन्य सेवक हूँ। आपका अपमान, वह मेरा अपमान। पर मुझे तो वहाँ निष्पक्ष ही रहना था। असली बात किसीको नहीं बतायी। अब आप कुछ भी विचार न करके सदाकी भाँति मुझपर—सारे परिवारपर—मुझसे सेवा लेते हुए प्रसन्न रहें। यह लें नयी तुलसीकी माला और निरन्तर—'**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' मन्त्रका जप करते रहें। यही जीवनका सार है।'

दूसरे दिन प्रातःकाल शास्त्रीजी नाना फड़नवीसके भवनपर गये। सूचना अन्दर भिजवायी। 'रामशास्त्री तो समयके पूरे पाबन्द हैं, नियत समयपर आते-जाते हैं। आज असमयमें उनका आना भेदसे खाली नहीं है।' इस कौतूहलको शीघ्र शान्त करनेके निमित्त उन्होंने शास्त्रीजीको प्रासादके भीतर बुलवाया।

वहाँ सुखासनपर बैठकर रामशास्त्री कहने लगे—'कल मेरा व्यवहार आपको अटपटा लगा होगा, किंतु उसका रहस्य अब खोले देता हूँ। जिनको मैंने केवल दो रुपये दिलवाये और आपके बहुत आग्रह करनेपर भी एक पाई भी अधिक नहीं देने दी, वे मेरे सगे बड़े भाई थे—विद्याविहीन। उनकी इच्छा थी कि अन्य विद्वानोंकी भाँति पारितोषिक देकर उनका भी सम्मान किया जाय। अपने भवनपर मैं उनके चरणोंकी पूजा करता हूँ, किंतु वहाँ तो मुझे निष्पक्ष न्याय ही करना था। इसीसे आपको अधिक न देनेके लिये बाध्य किया। इस व्यवहारसे आपके मनमें कुछ हेय भावनाका उदय हुआ हो तो कृपया उसको बिलकुल निकाल देनेकी उदारता करें। निष्कपट भावसे सदा स्वामीकी सेवा करते रहना मेरा परम कर्तव्य है।'

रामशास्त्रीकी ऐसी शुद्ध, सरल एवं स्वामिभक्तिसे पूर्ण निष्पक्ष बातें सुनकर नाना फड़नवीसको बड़ा आनन्द मिला। वे अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—'प्रिय शास्त्रीजी! आप हमारे राज्यके अनमोल रत्न हैं। आप-सरीखे स्वामिभक्त न्यायाधीशको पाकर राज्य धन्य हुआ है—उनका भी यश बढ़ा है।'

यह कहकर गुणग्राही नाना साहबने रामशास्त्रीकी पद-वृद्धि करवाकर, उनका सम्मान और भी बढ़वाकर जनताकी दृष्टिमें उन्हें महान् सज्जन एवं राजा-प्रजाका परम भक्त प्रमाणित किया।—**श्रीकृष्णगोपालजी माथुर**

(२)

परदोष-दर्शन भीषण पाप है

मुसलिम भक्तोंकी एक टोली मक्का जा रही थी। शेख सादी उन दिनों बच्चे थे। मक्का जानेवाले दलमें अपने पिताके साथ वे भी थे।

तीर्थयात्रियोंने खुदाकी बंदगीके लिये कुछ नियम बना रखे थे। एक नियम यह भी था कि आधी रातको उठकर प्रार्थना की जाय। एक दिन रात्रिमें प्रार्थना करनेके लिये शेख सादी और उनके पिता ही उठे। दलके और लोग यात्रासे इतने थक गये थे कि वे सोते ही रहे।

पिता और पुत्रने प्रार्थना की। प्रार्थना सम्पन्न होनेपर जब दोनों सोने लगे, तब सादीसे न रहा गया। आखिर बच्चे ही तो थे। वे बोले—'पिताजी! देखिये, केवल हम दोनोंने ही प्रार्थना की है। दलके ये लोग कितने आलसी हैं, न उठते हैं, न प्रार्थना करते हैं।'

बालकके ये वचन उस सरलचित्त और धर्मनिष्ठ पिताके हृदयमें तीरकी भाँति चुभ गये। उन्होंने सादीको सावधान करते हुए कहा—'मेरे सादी! तू भी प्रार्थनाके लिये न उठता तो अच्छा था। उठकर खुदाकी बंदगी की, इससे दूसरोंपर क्या अहसान किया? प्रार्थनाके लिये उठकर दूसरोंके दोष देखने तथा उसका बखान करनेसे तो न उठना ही श्रेयस्कर था।'

सादीको अपनी भूल समझमें आयी। उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर पितासे अपनी भूलके लिये क्षमा माँगी। पिताने फिर कहा—'बेटा! परदोष-दर्शन ऐसा भीषण पाप है, जिसको खुदा ही क्षमा कर सकते हैं। तुम खुदासे ही अपने हृदयकी शुद्धिके लिये प्रार्थना करो।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कल्याण' का आगामी ८६वें वर्ष (सन् २०१२ ई०)-का विशेषाङ्क

श्रीलिङ्गमहापुराणाङ्क

पुराण-वाङ्मय भारतीय सनातन संस्कृतिकी महान् निधि है। पुराणोंमें वेदोंके अर्थोंका ही उपबृंहण—विस्तार हुआ है, अतः इनकी वेदवत् प्रतिष्ठा है, वेदवत् प्रामाण्य है। पुराणको पंचम वेद कहा गया है—'इतिहासपुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते' (श्रीमद्भा० १।४।२०)। पुराणोंकी महिमामें कहा गया है कि जो बातें वेदोंमें नहीं हैं, वे सब स्मृतियों (धर्मशास्त्रों)-में हैं और जो बातें इन दोनोंमें नहीं मिलतीं, वे पुराणोंके द्वारा ज्ञात होती हैं—'यन्न दृष्टं हि वेदेषु तत्सर्वं लक्ष्यते स्मृतौ॥ उभयोर्यन्न दृष्टं हि तत्पुराणैः प्रगीयते।' (नारदपु० उ० अ० २४) अतः पुराणोंके श्रवण एवं पठनका विशेष माहात्म्य है। पुराणोंके श्रवणसे सारे पापोंका क्षय होता है, धर्मकी अभिवृद्धि होती है और मनुष्य ज्ञानी हो जाता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता, अतः पुरुषार्थचतुष्टयकी प्राप्तिके लिये पुराणोंका श्रद्धासे प्रयत्नपूर्वक श्रवण करना चाहिये—'पापं संक्षीयते नित्यं धर्मश्चैव विवर्धते। पुराणश्रवणाज्ज्ञानी न संसारं प्रपद्यते॥ अतएव पुराणानि श्रोतव्यानि प्रयत्नतः। धर्मार्थकाम-लाभाय मोक्षमार्गाप्तये तथा॥' (शिवपु० उमा० अ० १३)। वेद प्रभुसम्मित वचन हैं, किंतु पुराण सुहृत्-सम्मित हैं, पुराण आज्ञा नहीं देते, अपितु सच्चे मित्रकी भाँति कल्याणकारी बातोंका सत्परामर्श प्रदान करते हैं।

पुराणोंका यह अपूर्व वैशिष्ट्य है कि इसमें वेदोंके गूढतम अर्थोंको आख्यान-शैलीमें कथानकके माध्यमसे प्रस्तुत किया गया है, अतः रोचक होनेसे ये अधिक सुगम और सहज ग्राह्य हैं, यथा—वेदोंमें 'सत्यं वद' 'सत्य बोलो'का अनुशासन है तो पुराणमें इसी उपदेशको महाराज हरिश्चन्द्रके आख्यानके माध्यमसे समझाया गया है, इसी कारण पुराणोंको विशेष लोकप्रियता प्राप्त हुई है। पुराण अनन्त ज्ञानराशिके भण्डार हैं, इनमें न केवल मानवमात्रके कल्याणकी बातें आयी हैं, अपितु जीवमात्रके कल्याणकी बातें हैं। इनमें ऐहलौकिक सुख-शान्तिसे समन्वित सदाचारपूर्ण जीवनके साथ-साथ जीवनके वास्तविक लक्ष्य—भगवत्प्राप्ति तथा जन्म-मरणसे मुक्त होनेके उपाय और इसके विविध साधन बड़ी ही रोचक शैलीमें उपदेशपूर्ण इतिवृत्त-कथानकोंके साथ परिगुम्फित हैं। इनके श्रवण-पठनसे स्वाभाविक ही पुण्य-लाभ, अन्तःकरणकी परिशुद्धि, भगवान्‌में अनन्य रति तथा विषयोंसे सहज ही विरति होने लगती है। वास्तवमें पुराण सच्चे अर्थोंमें पारमार्थिक कल्याणके सर्वोत्कृष्ट साधन हैं और भारतीय सनातन संस्कृतिका यथार्थ अभिज्ञान कराते हैं। पुराण भारतीय संस्कृतिके सच्चे और आदर्श इतिहास हैं।

पुराण-वाङ्मय अत्यन्त विशाल है, इसमें अष्टादश महापुराण, उपपुराण और उपौपपुराण समाहित हैं। ये भी संख्यामें अठारह कहे गये हैं। पुराणोंके रचयिता सत्यवती तथा पराशरजीके पुत्र एवं श्रीशुकदेवजीके पिता भगवान् श्रीवेदव्यासजी हैं—'अष्टादशपुराणानां कर्ता सत्यवतीसुतः।' उन्हें 'नानापुराणकर्तारम्' (बृहद्धर्मपुराण) कहा गया है। वेदसंहिताका विभाजन भी उन्होंने ही किया, इसीलिये वे व्यास किंवा वेदव्यास कहलाते हैं।

गीताप्रेससे अभीतक श्रीमद्भागवत, श्रीमद्देवीभागवत, विष्णुपुराण आदि कई महापुराण तथा नरसिंहपुराण आदि कई उपपुराण संक्षिप्त हिन्दी अथवा मूल एवं हिन्दी अनुवादके साथ कल्याणके विशेषाङ्कोंके रूपमें प्रकाशित हो चुके हैं, जो अत्यन्त लोकप्रिय हुए हैं। विगत वर्षों सन् २००८ तथा २००९ ई० में कल्याणके विशेषाङ्कके रूपमें श्रीमद्देवीभागवत-महापुराणका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुआ, जो मूल तथा हिन्दी अनुवादके साथ पुनः ग्रन्थरूपमें भी प्रकाशित हुआ है, इसकी बड़ी प्रशस्ति प्राप्त हो रही है तथा यह अत्यन्त लोकप्रिय हुआ है। महापुराणोंके प्रकाशनकी इसी शृंखलामें आगामी ८६वें वर्ष सन् २०१२ ई०के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याणके विशेषाङ्कके रूपमें मूल तथा हिन्दी अनुवादके साथ 'श्रीलिङ्गमहापुराण' के प्रकाशनकी योजना है। इसके प्रकाशनके लिये पाठकोंका आग्रह बहुत समयसे प्राप्त होता रहा है। आशा है, अन्य पुराणोंके समान यह लिङ्गपुराण भी अत्यन्त लोकप्रिय और कल्याणकारी होगा।

अठारह महापुराणोंके गणना-क्रममें लिङ्गपुराण ग्यारहवें क्रममें पठित है—'लिङ्गमेकादशं प्रोक्तम्' (लिङ्गपु०पू० २।३)। पुराणोंको भगवान् विष्णुका स्वरूप बताया गया है और उन्हें पुराणपुरुषोत्तम कहा गया है। लिङ्गपुराणको भगवान्का गुल्फ भाग कहा गया है—'लैङ्गं तु गुल्फकम्' (पद्मपु० स्वर्गखण्ड)। अठारह पुराणोंमें लिङ्गपुराणका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसमें लगभग ग्यारह हजार श्लोक हैं और यह दो भागोंमें विभक्त है—पूर्वभाग और उत्तरभाग। पूर्वभागमें १०८ अध्याय हैं और उत्तरभागमें ५५ अध्याय। सम्पूर्ण पुराणकी अध्याय-संख्या १६३ है। इस पुराणके पूर्वभागमें प्रधानरूपसे शैवदर्शन, पाशुपत-दीक्षा, शिवमाहात्म्य, शैवसिद्धान्त, लिंगका स्वरूप, लिंगोद्भववृत्तान्त, शिवाराधना, शिवयोगके अन्तराय, सद्योजातादि पंचब्रह्मनिरूपण, योगाचार्योंके अवतारकी कथा, लिंगार्चनविधान, भूगोल-खगोलवर्णन, सृष्टिनिरूपण, ध्रुवोपाख्यान, सूर्य-चन्द्रवंशके राजाओंका आख्यान, कैलासदर्शन, शिवसम्बन्धी व्रतनिरूपण, पशुपाशविमोक्षणमें शिवज्ञानकी महिमा, पाशुपत-योगनिरूपण, सदाचार-शौचाचार-मीमांसा, वाराणसीका माहात्म्य, वराह तथा नृसिंह आदि अवतारोंकी कथा, शरभावतारकी कथा, शिवसहस्रनामस्तोत्र, दक्षयज्ञ-विध्वंसकथा, हर-गौरी-विवाहवर्णन, शिवभक्त उपमन्युकी कथा तथा शिवाद्वैत-तत्त्व-विचार आदि विषय निरूपित हैं। उत्तरभागमें भगवद्भक्त कौशिक द्विजकी कथा, भगवद्गुणगानकी महिमा, रुद्रभक्तोंका माहात्म्य, अम्बरीषकी कथा, लक्ष्मीकी बड़ी बहन दरिद्राका वृत्तान्त, ऐतरेय ब्राह्मणकी कथा, शिवमन्त्रजपकी महिमा, शिवतत्त्व-निरूपण, पंचब्रह्मस्वरूप-लक्षण, शंकरार्चामाहात्म्य, पाशुपतव्रत, तुलापुरुष आदि सोलह महादानोंका वर्णन, जीवच्छ्राद्धकी महिमा तथा उसका विधान, लिंगस्थापनाकी महिमा, वज्रेश्वरी विद्या, मृत्युंजयजपकी महिमा, त्र्यम्बक मन्त्रकी महिमा, शिवज्ञानयोग तथा अन्तमें इस पुराणके श्रवणकी महिमा निरूपित है। मुख्यरूपसे लिंगपुराण शैव शास्त्र है, जो भगवान् शिवकी आराधना तथा शिवतत्त्वकी महिमामें पर्यवसित होता है। लिङ्गपुराणमें ज्ञानयोग, भक्तिशास्त्र और उपासना-प्रक्रियाका अद्भुत समन्वय है, जो साधकोंके लिये साधनाका सुगम साधन प्रस्तुत करता है। अतः इसका श्रवण एवं स्वाध्याय महान् कल्याणकारी है और भगवान् सदाशिवकी शाश्वती भक्तिको प्रदान करनेवाला है—'भवेद्भक्तिश्च शाश्वती' (लिङ्गपु० उ० ५५।४२)। ऐसे सद्ग्रन्थोंको घरमें रखने तथा उनका श्रद्धापूर्वक आदर करनेसे भी महान् लाभ होता है।

इस प्रकार यह लिङ्गपुराण बड़े महत्त्वका है। इसकी कथाएँ बड़ी ही मनोरम तथा तत्त्वका ज्ञान करानेवाली हैं और सदाचरणकी शिक्षा देनेवाली हैं। इसमें अनेक स्तुतियाँ और सुभाषित समाहित हैं, जो कण्ठ करनेयोग्य हैं। आशा है, अन्य विशेषाङ्कोंकी भाँति यह विशेषाङ्क 'श्रीलिङ्गमहापुराणाङ्क' भी सभीके लिये संग्राह्य एवं उपादेय होगा।

यह विशेषाङ्क मूल संस्कृत तथा हिन्दी अनुवादके साथ प्रकाशित होगा और इसका कलेवर बड़ा होनेसे सम्भवतः अगले कुछ साधारण अङ्कोंतक भी इसकी सामग्री जा सकती है, अतः लेखक महानुभावोंसे सादर अनुरोध है कि वे इसमें प्रकाशनार्थ लेख भेजनेका कष्ट न करें।

विनीत

राधेश्याम खेमका

सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित—श्रीदुर्गासप्तशतीके विभिन्न संस्करण

कोड 1346, सानुवाद, मोटा टाइप, मूल्य रु० २५

कोड 1281, सानुवाद, वि० सं०, मूल्य रु० ४०

कोड 1161, केवल हिन्दी, मू० रु० ४०

कोड 1567, मूल, मोटा, मू० रु० ३०

कोड	पुस्तक-नाम	रु०
1567	मूल, मोटा टाइप (बेड़िआ)	३०
117	मूल, मोटा टाइप (तेलुगु, कन्नड़ भी)	२०
876	मूल, गुटका	१०
1727	मूल, लघु आकार	१०
1346	सानुवाद, मोटा टाइप	२५
1281	सानुवाद (वि० सं०)	४०
118	सानुवाद, सामान्य टाइप (गुजराती, बँगला, ओड़िआ भी)	२२
489	सानुवाद, सजिल्द, गुजराती भी	३०
866	केवल हिन्दी	१५
1161	,, ,, मोटा टाइप, सजिल्द	४०

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित—शक्ति-उपासकोंके लिये कुछ विशिष्ट प्रकाशन

कोड	पुस्तकका नाम	रु०
1897, 1898	'श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण'—दो खण्डोंमें [सचित्र, मूल श्लोक, हिन्दी-व्याख्यासहित]	३००
1793, 1842	श्रीमद्देवीभागवत महापुराण-केवल हिन्दी [अठारह हजार श्लोकोंका श्लोक-संख्यासहित भाषानुवाद]	२००
1133	संक्षिप्त श्रीमद्देवीभागवत (मोटा टाइप) केवल हिन्दी (गुजराती भी)	१७०
1774	देवीस्तोत्ररत्नाकर	२५
851	श्रीदुर्गाचालीसा, विन्ध्येश्वरीचालीसा-पॉकेट	२
1033	श्रीदुर्गाचालीसा, विन्ध्येश्वरीचालीसा-लघु	१

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित—सत्य घटनाओंपर आधारित कल्याकारी पुस्तकें

प्रेरक प्रसंगोंके पठन-पाठनसे मनुष्य आदर्श एवं उत्कृष्ट आचरणकी सुन्दर प्रेरणा ग्रहण करता है। इसी पवित्र उद्देश्यसे 'कल्याण' में '**पढ़ो समझो और करो**' शीर्षकसे प्रकाशित सत्य घटनाओंपर आधारित प्रेरक प्रसंगोंका संकलन विभिन्न नामोंसे प्रकाशित इन पुस्तकोंमें किया गया है। इन प्रसंगोंमें सच्ची मानवताके दर्शन होते हैं। पुस्तकोंमें संगृहीत कथाओंकी भाषा इतनी रोचक है कि बच्चे भी उन्हें खूब रुचिसे पढ़ सकते हैं।

कोड	पुस्तक-नाम	रु०
159	आदर्श उपकार	१२
160	कलेजेके अक्षर	१२
161	हृदयकी आदर्श विशालता	१२
162	उपकारका बदला	१२
163	आदर्श मानव हृदय	१२
164	भगवान्‌के सामने सच्चा सो सच्चा	१२
165	मानवताका पुजारी	१२
166	परोपकार और सच्चाईका फल	१२
510	असीम नीचता और असीम साधुता	१२

उपर्युक्त नौ पुस्तकोंका सेट एक साथ मँगानेपर डाक एवं पैंकिंगखर्चसहित मूल्य रु० १४५ का ड्राफ्ट/मनीआर्डर भिजवानेकी कृपा करें।

नवीन प्रकाशन—छपकर तैयार

गीता—पॉकेट साइज (**कोड 1916**) मलयालम मू० रु० ९, (**कोड 1918**) तमिल मू० रु० १०, मूल श्लोक, भाषा-टीका, गीता-महिमा, प्रधान-विषय, त्यागसे भगवत्प्राप्ति, निबन्धसहित। हिन्दी (**कोड 20**), बँगला (**कोड 496**), गुजराती (**कोड 936**), मराठी (**कोड 1257**), ओड़िआ (**कोड 1008**), असमिया (**कोड 714**), कन्नड़ (**कोड 1288**), तेलुगु (**कोड 1031**), अंग्रेजी (**कोड 455**) पहलेसे उपलब्ध।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीप्रिया-प्रियतम—युगल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
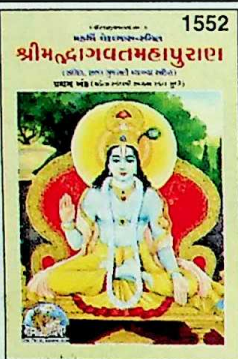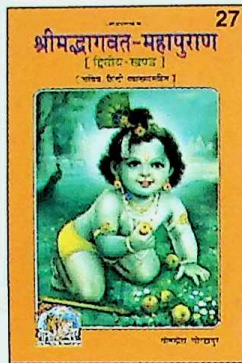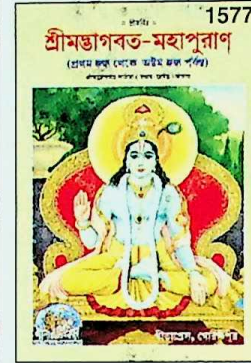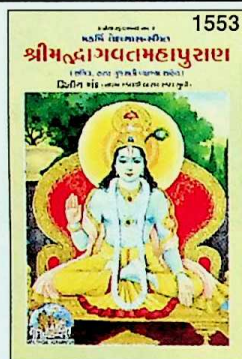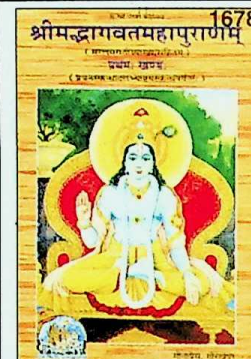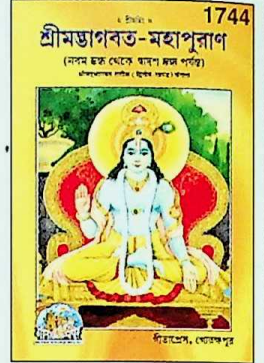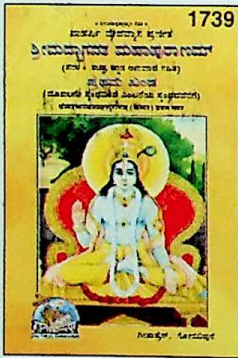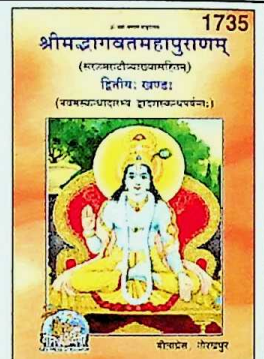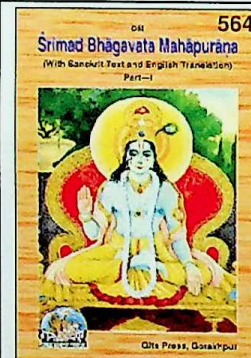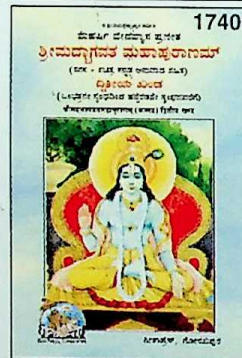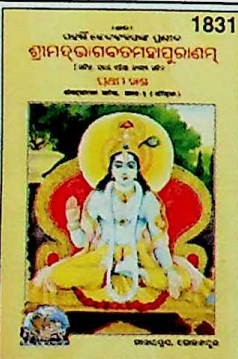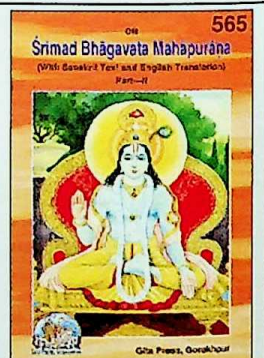
कल्याण

याद रखो—काम, क्रोध, लोभ, असत्य, ईर्ष्या, द्वेष, मत्सर, वैर, अभिमान, नास्तिकता आदि दोष तुम्हारे मूल स्वभावमें नहीं हैं। ये बाहरी हैं, इनको भूलसे तुमने अपने अन्त:करणमें स्थान दे रखा है। ये चोर हैं, बटमार हैं, हिंसक हैं, तुम्हारे शत्रु हैं। मित्र बनकर मनमें बैठे हुए तुम्हारा सर्वनाश कर रहे हैं। इन्होंने तुम्हें भ्रममें डालकर तुम्हारी ऐसी समझ कर दी है कि मन इनका अपना घर ही मालूम पड़ता है। मनमें ये रहेंगे ही, ऐसी बात नहीं है। अतएव सावधान हो जाओ और अपने स्वरूपको सँभालो। तुम्हारा स्वरूप इनके कारण बोझिल बन गया है।

तुम परमात्माके सजातीय हो, परमात्माके सनातन अंश हो, दोष और विकारोंसे रहित हो, बड़े बलवान् हो। इन शत्रुओंके शत्रुस्वरूपको समझकर इनपर अपना शक्तिप्रयोग करो और इन्हें सदाके लिये अपने मनसे निकाल दो।

निश्चय करो कि मैं परम शुद्ध हूँ, सर्वथा विकाररहित हूँ। मुझमें काम-क्रोधादि आ ही नहीं सकते। मुझमें ये बिलकुल नहीं हैं। यदि कहीं लुके-छिपे दिखायी दें तो तुरंत इन्हें नष्ट कर डालनेकी धमकी दो और अपना बल दिखाकर डराकर भगा दो। निश्चय रखो, ये तभीतक रहते हैं, जबतक तुम इनके सामने अपना शक्तिमान् रूप प्रकट नहीं करते। जहाँ तुम्हारे यथार्थ रूपको इन्होंने देखा, वहीं ये सब भाग जायँगे।

याद रखो—शरीर, वाणी और मनसे न तो स्वयं ऐसा कोई कार्य करो, जिससे वायुमण्डलमें दूषित भाव फैले और न ऐसे दूषित वायुमण्डलमें रहो, जिसका प्रभाव तुम्हारे शरीर, वाणी और मनपर हो। मनुष्य जो कुछ भी शरीरसे कर्म करता है, वाणीसे शब्दोच्चारण करता है और मनसे चिन्तन करता है, उसका प्रभाव वहाँके वायुमण्डलपर पड़ता है, उसके परमाणु वहाँके वायुमण्डलमें न्यूनाधिकरूपसे फैल जाते हैं, जो उस वायुमण्डलमें रहनेवाली प्रत्येक वस्तुपर अपना प्रभाव डालते हैं।

याद रखो—जिन लोगोंके मनमें विषाद, शोक, हिंसा, द्वेष, वैर, अभिमान, लोभ, दम्भ, क्रोध, काम, कायरता, नास्तिकता, ईर्ष्या और भय आदि दूषित संकल्प भरे होते हैं, वे स्वयं न केवल अपना ही अनिष्ट करते हैं, प्रत्युत अपने संकल्पोंके वायुके द्वारा बाहर भेजकर आसपासके समस्त वायुमण्डलको भी दूषित कर देते हैं, जिससे वहाँ रहनेवाले सभी मनुष्योंके मनपर उन दूषित संकल्पोंका किसी-न-किसी अंशमें असर होता है। ऐसा होते-होते वहाँका बाहरी और भीतरी वायुमण्डल इतना अधिक दूषित हो जाता है कि निर्दोष-सरल मनके नये मनुष्योंको यहाँ आकर प्राय: उसी प्रकारका बननेके लिये बाध्य होना पड़ता है। कई खास-खास स्थानों या महकमोंमें ऐसी बातें प्राय: प्रत्यक्ष देखी जाती हैं। परिवेशका प्रभाव निश्चित रूपसे पड़ता है।

याद रखो—तुम पूर्णकाम हो, अतएव तुममें कामना नहीं हो सकती। तुम्हारा कोई पराया नहीं है, इससे तुमको किसीपर क्रोध नहीं हो सकता। तुम नित्यतृप्त आनन्दमय हो, इससे तुममें लोभ नहीं रह सकता। तुम सत्यस्वरूप हो, अतएव असत्यकी छाया भी तुम्हें स्पर्श नहीं कर सकती। ईर्ष्या, द्वेष, मत्सर और वैर तो दूसरेसे ही होते हैं। सबमें एक ही आत्मतत्त्व पूर्ण है, तब इनको स्थान ही कहाँ है? अभिमान किसी वस्तुका होता है, तुममें कोई वस्तु है ही नहीं, फिर अभिमान कहाँसे आ सकता है? नास्तिकता आत्माके नित्य अस्तित्वमें है ही कहाँ? सोचो! विचार करो! और इन दोषोंको जल्दी-से-जल्दी निकालकर अपने शुद्धस्वरूपमें स्थिर हो जाओ। तुम तो शुद्ध, बुद्ध, निरंजन हो—**'शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरञ्जनोऽसि!'** **'शिव'**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देशके कल्याणके लिये संस्कृत, आयुर्वेद, हिन्दी तथा गीता-रामायणके प्रचारकी आवश्यकता

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

संस्कृत-भाषा

वर्तमान कालमें इस देशमें संस्कृत-भाषाका दिनोंदिन ह्रास होता जा रहा है। इसी क्रमसे ह्रास होता गया तो एक दिन हमारे देशसे संस्कृत-भाषाका लुप्तप्राय हो जाना भी कोई बड़ी बात नहीं है। पाण्डवोंके राज्यशासनके समयतक तो इस भाषाका बहुत अधिक प्रचार था। नीति, धर्म और अध्यात्मविषयक सभी ग्रन्थ संस्कृत-भाषामें ही थे और यही राजभाषा भी थी; क्योंकि राजनीतिक कार्य तथा दण्डविधान आदि सब मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति आदि स्मृतियोंके आधारपर ही किये जाते थे। कानूनमें अब भी कुछ रूपमें इन्हीं स्मृतियोंके आधारपर दायभाग और दण्डविधान किया जाता है। नीति, धर्म और अध्यात्मविषयक साहित्यको देखनेसे मालूम होता है कि संस्कृतभाषा सारे भारतमें व्यापकरूपसे प्रचलित थी, उसीके प्रतापसे इसके सभी प्रान्तोंके कोने-कोनेमें अब भी संस्कृत-भाषा मिलती है। भारतवर्षमें कोई भी ऐसा प्रान्त और जिला नहीं, जहाँ संस्कृतभाषा न पायी जाती हो। संस्कृतको जाननेवाला कोई भी पण्डित कहीं भी चला जाय, उसे संस्कृतमें बात करनेवाला कोई-न-कोई मिल ही जाता है एवं भारतके किसी भी प्रान्तमें चले जाइये—श्रुति, स्मृति, इतिहास और पुराण एक ही मिलेंगे, कहीं विशेष भेद नहीं मिलेगा। इससे हमारी संस्कृतभाषा और धार्मिक ग्रन्थोंकी अनादिता, व्यापकता और उपादेयता सिद्ध होती है। इस संस्कृतभाषाके पूर्वकी कोई अन्य भाषा या श्रुति, स्मृति, इतिहास-पुराणके पहलेका कोई भी धार्मिक ग्रन्थ और संस्कृत वर्णमालाके पूर्वकी कोई अन्य वर्णमाला देखने-सुननेमें नहीं आती, इससे भी इनकी अनादिता सिद्ध होती है। बौद्धयुगमें धार्मिक विरोधके नाते संस्कृतपर प्रहार हुए, फिर भी सम्राट् विक्रमादित्य और राजा भोजके समयमें संस्कृतका बड़ा अच्छा प्रचार रहा। उसके बाद भी कुछ संस्कृत-प्रसार रहा, किंतु फिर मुसलमानी शासनमें संस्कृतभाषाका पर्याप्त ह्रास हुआ।

सुना जाता है कि वेदोंकी कुल ११३१ शाखाएँ थीं, जिनमें अब केवल लगभग १२ ही मिलती हैं। सामवेदकी १००० शाखाओंमें केवल ३ मिलती हैं। यही दशा वेदके ब्राह्मण, आरण्यक, कल्पसूत्रादिकी तथा वेदांग एवं अन्यान्य धर्मग्रन्थोंकी है। इन सब वैदिक शाखाओं तथा अन्यान्य धर्मग्रन्थोंका इतना ह्रास कैसे हुआ? इसपर निःसन्देह यह कहा जा सकता है कि वैदिक धर्मके विरोधियों तथा विदेशी अत्याचारियोंके द्वारा ही हमारी यह सारी अमूल्य ग्रन्थसम्पत्ति नष्ट कर दी गयी। कहा जाता है कि उज्जैनके राजा मतादित्यने हजारों ब्राह्मणोंकी तमाम पुस्तकोंको जलवा दिया था। बौद्धोंके द्वारा 'सह्याद्रिखण्ड' (पुस्तकालय)-का नाश किया जाना प्रसिद्ध है। मुसलमानोंने अलेक्जेंड्रियाके पुस्तकालयको जला दिया था। महमूद और नादिरशाहने भी संस्कृतके अगणित धर्मग्रन्थोंका नाश किया। कुछ मुसलमान बादशाहोंने तो संस्कृतकी पुस्तकोंको 'हमाम' गरम करनेके लिये जलाया था। इस प्रकार हमारे इस अमूल्य ज्ञानकोषको ध्वंस कर दिया गया। यों पहले तो इसका अत्याचारियोंने नाश किया, पर उसमें तो हम निरुपाय थे, किंतु बड़े खेदकी बात है कि अब बचे-खुचेका हम अपनी अवहेलना तथा मूर्खतासे नाश कर रहे हैं!

परंतु इसको बचाना हमारा परम कर्तव्य है। संस्कृत-भाषाके बचनेसे ही धर्म भी बचेगा; क्योंकि हमारे जितने भी मूल धार्मिक ग्रन्थ हैं, उनका आधार संस्कृत-भाषा ही है और यह संस्कृत-भाषा कितनी प्रांजल और मधुर है, इसका तत्त्व इस अमृतमय भाषाका आस्वादन करनेवाले विद्वान् ही जानते हैं। संस्कृतका व्याकरण भी अलौकिक है। जगत्की किसी भी भाषाका वैसा सर्वांगपूर्ण व्याकरण देखनेमें नहीं आता।

इस प्रकारके संस्कृत-भाषारूपी अलौकिक रत्नका यदि हमारे भारतवर्षमें अभाव हो जायगा तो पुनः इसका प्रादुर्भाव होना बहुत कठिन होगा। अतः सरकारसे और देशवासियोंसे प्रार्थना है कि जिस प्रकार यह संस्कृत-भाषा जीवित रहे, इसका उत्तरोत्तर अधिक प्रचार हो और यह सर्वांगीण समृद्धिको प्राप्त हो, इसके लिये सभीको शक्ति-अनुसार प्रयत्न करना चाहिये।

आयुर्वेद-विज्ञान

इसी प्रकार आयुर्वेद-विज्ञानका बड़ी तेजीसे अभाव होता जा रहा है। आयुर्वेदीय चिकित्सा, निदान और औषधियोंके नाम, रूप, स्वभाव, गुण और उनके निर्माणका जो महान् ज्ञान त्रिकालज्ञ ऋषियोंको था, वह क्रमशः लुप्त होता ही चला गया। इस समय हमारे अनुमानसे यह प्रायः नब्बे प्रतिशत लुप्त हो चुका है और जो बचा-खुचा है, उसका भी दिन-पर-दिन ह्रास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता जा रहा है। आस्थावान् विद्वान् वैद्य उठते चले जा रहे हैं। जो हैं, उनकी उसके प्रति अनास्था बढ़ रही है। इसीका परिणाम है कि आज देशके बड़े-बड़े वैद्य भी प्रायः अपने बच्चोंको डॉक्टरी पढ़ाते हैं और स्वयं भी डॉक्टरी दवाओंका व्यवहार करते देखे जाते हैं। यह निश्चित है कि भारतवासियोंके लिये भारतवर्षकी आयुर्वेदोक्त देशी औषधियाँ जितनी लाभप्रद हो सकती हैं, उतनी विदेशी नहीं। कहा भी है—

'यस्य देशस्य यो जन्तुस्तज्जं तस्यौषधं हितम्'

'जो जिस देशका प्राणी है, उसके लिये उसी देशसे उत्पन्न औषधि हितकारी है।'

इस देशमें आयुर्वेद-विज्ञान एक दिन कितना उन्नत था—इसका पता महाभारतकी एक कथासे लगता है। महाभारतके आदिपर्वमें यह प्रसंग प्राप्त होता है कि काश्यप नामके एक श्रेष्ठ ब्राह्मण थे। वे मृत व्यक्तिको भी औषधियोंसे जीवित करनेकी चिकित्साविधि जानते थे। उन्हें जब पता लगा कि राजा परीक्षित्को तक्षक नाग डँसनेवाला है, तब वे परीक्षित्के पास जानेके लिये घरसे चले। रास्तेमें उन्हें तक्षकसे भेंट हो गयी। मानव-रूपधारी तक्षकके पूछनेपर काश्यपने अपने वहाँ जानेका यह हेतु बतलाया कि 'राजा परीक्षित्को तक्षक काटेगा तो मैं उन्हें अपनी औषधिसे जिला दूँगा।' यह सुनकर तक्षकने कहा, 'मैं ही तक्षक हूँ। मेरे काटे हुएको तुम जीवित नहीं कर सकते।' काश्यपने कहा—'मैं तुम्हारे डँसे हुएको जिला दूँगा।' इसपर तक्षक बोला—'मैं इस वृक्षको डँसकर भस्म करता हूँ, तुम इसे हरा-भरा कर दो।' तक्षकके काटते ही वृक्ष जलकर भस्म हो गया। पर काश्यपने मन्त्र और औषधियोंके बलसे पुनः उसे जीवितकर तत्काल हरा-भरा कर दिया। तक्षकने अपने मानकी रक्षाके लिये काश्यप ब्राह्मणको बहुत-सा धन देकर उसे वहींसे लौटा दिया।

इससे हमें यह ज्ञात होता है कि हमारे यहाँ आयुर्वेदने कितनी अद्भुत उन्नति की थी, जिसके द्वारा मृत मनुष्य ही नहीं, समूल जले हुए वृक्षको हरा-भरा किया जा सकता था। ऐसी आदरणीय विद्याका शनैः-शनैः लोप हुआ और होता जा रहा है, यह कितने परितापका विषय है। अब भी यह विज्ञान जिस रूपमें वर्तमान है, उसपर यदि सरकार तथा देशवासी और निष्ठावान् सद्वैद्य ध्यान देकर इसके रक्षण, अन्वेषण और संवर्धनका प्रयत्न करें, इसके गुणोंको प्रकाशमें लायें तो इसमें इतने महान् गुण छिपे हैं कि उनके प्रकट होनेपर जगत् चकित हो सकता है। परंतु इसके लिये सबके सम्मिलित प्रयत्नकी आवश्यकता है। सबको चाहिये कि इस ओर ध्यान देकर आयुर्वेदकी रक्षा तथा उन्नति करके अपने कर्तव्यका पालन करें।

डॉक्टरी दवाओंमें प्रायः मांस, मज्जा, चर्बी, ग्रन्थियाँ, मदिरा आदि अपवित्र घृणित पदार्थोंका भी सन्निवेश रहता है, जो सब प्रकारसे अपवित्र, हिंसापूर्ण अतएव अवांछनीय है। देशवासियोंको चाहिये कि विदेशी डॉक्टरी दवाइयोंको कतई काममें न लेकर चरक, सुश्रुत, वाग्भट आदिद्वारा रचित आयुर्वेदीय शास्त्रोंमें बतलायी हुई वनस्पति, धातु और रस आदि पवित्र दवाओंके सेवनका दृढ़ नियम ले लें। यदि किसीसे सर्वथा ऐसा न हो सके तो कम-से-कम यह तो निश्चय करें कि जहाँतक हो डॉक्टरी दवा काममें न लेकर देशी आयुर्वेदीय दवाके प्रयोगकी ही औषधिरूपसे चेष्टा रखेंगे। इन ग्रन्थों और औषधियोंके निर्माणकर्ता त्रिकालज्ञ ऋषि और अनुभवी थे, उनका अनुभव और ज्ञान अलौकिक था। ऐसा अनुभव वर्तमान युगके मनुष्योंमें सम्भव नहीं है। हमें उन ऋषियोंके अनुभव और ज्ञानका सम्मान करके उनसे लाभ उठाना चाहिये।

हिन्दुस्तान और हिन्दीभाषा

हमारे इस भारतवर्षका नाम पहले 'आर्यावर्त' था, जिसे हिन्दुस्तान भी कहते हैं। मुसलमान भाई 'हिंदू' शब्दका प्रयोग काफिरके अर्थमें करते हैं, किंतु हमारे लिये 'हिंदू' शब्द पवित्र और गौरवकी वस्तु है। हमारे इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देशका नाम हिन्दुस्थान क्यों पड़ा? हिमालयका 'हि' और 'बिंदु' का 'न्दु'—इस प्रकार इन दोनोंके आदि और अन्तके दो शब्दोंको लेकर 'हिंदु' शब्द बना है। हिमालयसे तात्पर्य है—उत्तरमें स्थित ऊँचा गौरीशंकर पहाड़ (हिमगिरि) और बिन्दुसे अभिप्राय है—पूर्व और पश्चिमसहित दक्षिण समुद्र अथवा यूँ समझें कि हिमालयका 'हि' और सिन्धु (समुद्र)-का 'न्धु' लेकर 'हिंधु' शब्द बना है; उसीका अपभ्रंश 'हिंदू' शब्द है। हिमालयसे लेकर दक्षिण समुद्रतकके बीचका जो देश है, उसका नाम है—'हिंदुस्थान' और जो उसमें बसते हैं, उनकी जाति है—'हिंदु' और उनकी भाषा है 'हिंदी'। उनका जो धर्म है, वही 'हिंदूधर्म' कहलाता है और उनके चाल-चलन, आहार-व्यवहार तथा वेश-भूषाको कहते हैं—'हिंदू-संस्कृति'। इन सबकी रक्षासे ही हिंदूजाति और हिंदूधर्मकी रक्षा हो सकती है।

अत: हिंदुस्थानमें निवास करनेवाले भाइयोंको अपनी रक्षाके लिये अपने हिंदुस्थानकी भाषा, वेष-भूषा, खान-पान और चाल-चलनको ही अपनाये रहना चाहिये, विदेशी प्रभावमें आकर इन्हें कभी नहीं बदलना चाहिये। जो जाति अपनी संस्कृतिको छोड़कर दूसरी जातिकी संस्कृतिको अपना लेती है, वह नष्ट हो जाती है।

हमारी प्राचीन भाषा है—संस्कृत और वर्तमान भाषा है हिंदी तथा हमारी लिपि है—देवनागरी। हमारी प्राचीन भाषा संस्कृत यदि राष्ट्रभाषा न हो सकी तो हिंदी भाषा तो राष्ट्रभाषाके रूपमें अवश्य ही समृद्ध की जानी चाहिये। श्रुति-स्मृति-इतिहास-पुराणोक्त जो अनादि कालसे चला आनेवाला सनातनधर्म है, वही हमारी आर्यजाति हिंदुस्थानियोंका सनातन हिंदूधर्म है। प्रत्येक हिंदुस्थानी भाईको ऐसी चेष्टा करनी चाहिये कि जिससे कम-से-कम अपने देश हिंदुस्थानमें तो हमारा हिन्दू-धर्म, हिंदूजाति, हिंदीभाषा और हिंदू-संस्कृति सदा कायम रहे।

गीता-रामायणका प्रचार

संस्कृतमें श्रीमद्भगवद्गीता और हिन्दीमें श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासकृत श्रीरामचरितमानस—ये दोनों उत्तम शिक्षा देनेवाले सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ हैं। इनके अनुसार आचरण करनेपर मनुष्यका जीवन उच्चकोटिका हो जाता है। इन दोनों ग्रन्थोंकी प्रशंसा महात्मा गांधीजीने भी बहुत की है। इनको सारे संसारके लिये उपयोगी कहें तो भी अत्युक्ति न होगी। इनकी शैली बड़ी ही सुन्दर है। इनमें श्लोक, छन्द, चौपाई, दोहे आदि काव्यकी दृष्टिसे भी अत्यन्त रसयुक्त, मधुर, सुन्दर और विशुद्ध हैं। अतएव इन दोनों ग्रन्थोंका सार्वजनिक प्रचार होना बहुत ही आवश्यक है। श्रीमद्भगवद्गीतापर जितनी टीकाएँ, भाष्य और अनुवाद मिलते हैं, उतने किसी भी संस्कृत या हिंदीके अन्य ग्रन्थपर नहीं मिलते। इससे सिद्ध होता है कि यह बहुत उच्चकोटिका ग्रन्थ है। सभी सम्प्रदायवालोंने इसको अपनाया है तथा भारतवर्षके सभी प्रान्तोंमें इसका सम्मान है। इसी प्रकार विदेशोंमें भी इसका बड़ा आदर है। श्रीरामचरितमानसका हिन्दी वाङ्मयमें सबसे बढ़कर स्थान है, भारतके सभी प्रान्तोंमें इसका समादर है। विदेशोंमें भी लोग इसे मानते हैं। रूसी भाषामें इसका अनुवाद हुआ है। गीताप्रेस, गोरखपुरमें भी श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानसके प्रकाशनको प्रथम स्थान दिया गया है। दोनों ग्रन्थ प्रचुर संख्यामें छापकर उन्हें सस्ते मूल्यमें दिये जानेकी चेष्टा की जाती है।

अत: हमारी सभी पाठक-पाठिकाओंसे यह प्रार्थना है कि उन्हें गीता और रामायणके पाठ करनेका नियम यथाशक्ति बना लेना चाहिये तथा उसके अर्थ और भावको समझकर उसके अनुसार जीवन बनानेकी विशेष चेष्टा करनी चाहिये। इससे निश्चय ही कल्याण हो सकता है।

गीता और रामायण दोनों ही अध्यात्मदृष्टिसे तो बहुत लाभकी वस्तु हैं ही, साथ-ही-साथ संस्कृत और हिंदीके ज्ञानकी दृष्टिसे तथा बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक और व्यावहारिक लाभकी दृष्टिसे भी बहुत उपयोगी हैं। अत: सरकारसे तथा भारतवासी भाइयोंसे हमारी प्रार्थना है कि साम्प्रदायिक दृष्टिको छोड़कर सभीके बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक तथा व्यावहारिक लाभकी दृष्टिसे इनका प्रचार करें। आज भारतीय संस्कृतिकी संरक्षिका संस्कृत भाषाके उत्कर्षके लिये सामयिक परिवेशमें विचारविमर्श और प्रचार-प्रसारकी योजना बनाकर उसे कार्यान्वित करना नितान्त आवश्यक है। अत: समाज और सरकार—दोनोंका प्रधान कर्तव्य है कि इस विषयपर तत्काल ध्यान दिया जाय अन्यथा भारतीय संस्कृतिकी निधि लुप्त-सी हो रही है। यह राष्ट्र अथवा समाजके लिये एक प्रकारका कलंक और पश्चात्तापका ही विषय होगा।

'भारती भातु भारते।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समतामें सभी योगोंकी सिद्धिका सार निहित है

(म०म० स्वामी श्रीविज्ञानानन्दसरस्वतीजी महाराज)

किसी भी कर्ममें, किसी कर्मके फलमें तथा किसी भी देश, काल, घटना तथा परिस्थितिमें यदि आपकी आसक्ति न हो तो आप निर्लिप्ततापूर्वक कर्म कर सकते हैं। अगर आप कर्मफल आदिकी आसक्तिसे चिपक जायँगे तो निर्लिप्तता कैसे रहेगी? बिना निर्लिप्तताके वह कर्म कैसे मुक्तिका हेतु होगा? अत: आसक्तिके त्यागसे सिद्धि और असिद्धिमें समता हो जाती है।

योग एकताकी जननी है। जब व्यक्ति निष्काम-भावसे समाजकी सेवा करता है, तब सबसे आत्मीयता होकर राष्ट्रीयता जाग्रत् हो जाती है, जिससे सबका कल्याण होता है। सकामताके कारण व्यक्ति राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ तथा मोहमें फँसकर अपना और समाजका भी अहित करता है।

कामनाओंके कारण चौरासीका चक्कर काटना पड़ता है। जो व्यक्ति अपने स्वधर्मका पालन करता है, उसका अन्त:करण शुद्ध हो जाता है। अत: निर्लिप्त होकर, ममतारहित-आसक्तिरहित होकर कर्म करें, श्रुतिका भी यही आदेश है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

(ईशावास्योपनिषद् २)

गीता (५।७)-में भी कहा है—

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते॥

जिनकी इन्द्रियाँ अपने वशमें हैं, जिनका अन्त:करण निर्मल है, जिनका शरीर अपने वशमें है और सम्पूर्ण प्राणियोंकी आत्मा ही जिनकी अपनी आत्मा है, ऐसा कर्मयोगी कर्म करता हुआ भी लिप्त नहीं होता।

योग कहते हैं, जिसको करनेसे यथाशीघ्र समता आ जाती है—

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥

(गीता २।४८)

आसक्तिरहित एवं अनासक्तभावमें स्थित होकर कर्म करना ही योगके सिंहासनपर बैठना है और यही योगमें स्थित होना है। दूसरी बात सिद्धि और असिद्धिमें वृत्तिको समतामें रखना ही योग है; क्योंकि फलकी प्राप्ति अथवा कर्मकी पूर्णता—यह मनुष्यके हाथमें नहीं है। जो व्यक्ति अपने वर्णानुसार स्वाभाविक कर्तव्य-कर्मोंका निष्काम भावसे परिपालन करता है, उसको सहज रूपसे समताकी प्राप्ति हो जाती है और वह ब्रह्मदर्शनको प्राप्त होता है।

इस सम्बन्धमें महाभारतके वनपर्वमें एक कथा आती है—कौशिक नामक एक ब्राह्मणने अपने माता-पिताकी सेवा न करके जंगलमें जाकर घोर तप किया। जिस पेड़के नीचे वे तप कर रहे थे, उसपर एक बगुलीने आकर उनके ऊपर बीट कर दी। उन तपस्वीने उसकी ओर क्रोधभरी दृष्टिसे देखा, इससे वह बगुली नीचे गिरकर, जलकर भस्म हो गयी।
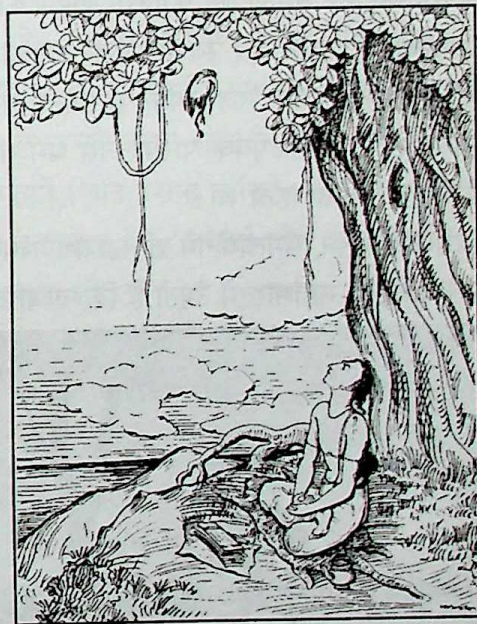
यह देख कौशिकको तपकी सिद्धिका अहंकार हो गया। वे जंगलसे उठकर एक पतिव्रता स्त्रीसे भिक्षाकी याचना करने गये, पर उस समय वह अपने पतिकी सेवामें रत थी। उस देवीने ब्राह्मणको बैठनेके लिये आसन दिया और कहा—ब्रह्मन्! कुछ देर ठहरिये, मैं इस सेवाके उपरान्त ही आपको भिक्षा दूँगी, पर कौशिकने क्रोधमें भरकर उस पतिव्रताकी ओर देखा तो उसने कहा—**'नाहं बलाका विप्रर्षे'** (महा० वनपर्व २०६।२३) हे विप्रर्षि! मैं वह बगुली नहीं हूँ। आपके कोपसे बगुली भस्म हो सकती है, मैं नहीं!'

ब्राह्मणको यह सुनकर आश्चर्य हुआ कि इसने यह कैसे जाना! तब पतिव्रताने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ! यदि आप इसका रहस्य जानना चाहते हैं तो मिथिलापुरीमें धर्मव्याधके पास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जायँ। तब उसके निष्कामभावपूर्वक पातिव्रतरूप स्वधर्मसे प्रभावित होकर कौशिक ब्राह्मण मिथिला में गये और उन्होंने देखा कि धर्मव्याध कसाईखानेमें बैठा हुआ है। कौशिक ब्राह्मणको देखते ही धर्मव्याधने कहा—भगवन्! आइये, आपका स्वागत है। मुझे मालूम है कि आपको उस पतिव्रताने मेरे पास भेजा है और जिस उद्देश्यसे आप यहाँ आये हैं, वह भी मैं जानता हूँ। व्याधकी बात सुनकर ब्राह्मणको बड़ा आश्चर्य हुआ कि एक व्याधवृत्तिवाला यह सब कैसे जान गया? इसपर व्याधने बताया कि ब्रह्मन्! यह वृत्ति मेरी कुल-परम्पराका स्वधर्म है। मैं अपने स्वधर्मका अनासक्त भावसे पालन करता हूँ, इसीलिये सदा समतामें स्थित रहता हूँ। माता-पिताकी सेवाका ही यह फल है कि उनकी कृपासे मुझे दिव्य दृष्टि प्राप्त है। यह कहकर धर्मव्याधने कौशिक ब्राह्मणको धर्मका रहस्य, सदाचारके पालन एवं स्वधर्म-परिपालनकी महिमा तथा माता-पिताकी सेवाके माहात्म्यको विस्तारसे बतलाया। अपने स्वधर्मका अनासक्तिपूर्वक परिपालनसे धर्मव्याध सदा समत्वयोगमें प्रतिष्ठित रहता था।

स्वधर्मपरिपालन, समत्वयोगमें प्रतिष्ठा तथा समदर्शनकी एक दूसरी कथा भी महाभारतमें आती है कि जाजलि नामक एक ब्राह्मण थे, जिन्होंने दीर्घकालतक कठोर तपस्या की, वे वायु भक्षणकर काष्ठकी भाँति खड़े रहते थे। यहाँतक कि उनकी जटाओंपर पक्षियोंने घोंसला बना लिया था। मुनिको ठूँठवृक्ष समझकर पक्षियोंने उसमें अण्डे दे दिये और अण्डोंसे बच्चे भी निकल आये। यद्यपि तेजस्वी जाजलिको सब ज्ञात था, फिर भी वे निश्चेष्टभावसे तपमें ही स्थित रहे। कुछ समय बाद वे पक्षी उड़कर चले गये। अपनी ऐसी तपस्याको देख महर्षि जाजलिको अहंकार हो आया और वे यह समझने लगे कि धर्मका तत्त्व मुझे ज्ञात हो गया। उसी समय आकाशवाणी हुई—जाजले! काशीपुरीमें महाज्ञानी तुलाधारवैश्य हैं, उनके पास जाओ, वे तुम्हें समतापूर्वक धर्मका उपदेश देंगे। आश्चर्यचकित हो जाजलि वाराणसीमें आये और उन्होंने वैश्य तुलाधारको सौदा बेचते हुए देखा। तुलाधार धर्मज्ञानी थे, समदर्शनमें प्रतिष्ठित थे, वे जाजलिके पूर्ववृत्तान्त तथा उनके आगमनका सारा वृत्तान्त जान गये। जाजलिने उनके धर्मविषयक ज्ञानके विषयमें पूछा तो तुलाधार बोले—जाजले! जो सब जीवोंका सुहृद् होता है और मन, वाणीद्वारा सबके हितमें लगा रहता है, सबको समदृष्टिसे देखता है, वही वास्तवमें धर्मको जानता है। मैं न किसीसे अनुरोध करता हूँ, न विरोध ही करता हूँ। मेरा न कहीं द्वेष है, न किसीसे कोई मैं कामना करता हूँ। समस्त प्राणियोंके प्रति मेरा समभाव है, जाजले! यही मेरा व्रत और नियम है। मुने! मेरी तराजू सब मनुष्योंके लिये सम है—सबके लिये बराबर तौलती है। मैं मिट्टीके ढेले, पत्थर तथा सुवर्णको समान समझता हूँ—'**समं मतिमतां श्रेष्ठ समलोष्टाश्मकाञ्चनम्॥**' (महा०शान्ति० २६२। १२) फिर तुलाधारने जाजलिको अनेक प्रकारसे धर्मका तत्त्व-रहस्य बताया और सदा समदर्शनमें रहनेकी बात बतलायी। अन्तमें अपने-अपने धर्मके निष्कामभावसे सेवन करनेसे तुलाधारवैश्य तथा तपस्वी जाजलि—दोनों परमधामको प्राप्त हुए। '**दिवं गत्वा महाप्राज्ञौ विहरेतां यथासुखम्॥**' (महा०शान्ति० २६४। २०)

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि निष्ठापूर्वक स्वधर्मपालनसे अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है और वृत्ति समतामें स्थित हो जाती है। समता कहो अथवा परमात्मामें स्थित होना कहो—एक ही बात है। भगवान् कहते हैं—'**स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः**' (गीता १८। ४५) व्यक्ति अपने स्वाभाविकरूपसे स्वधर्मको निष्काम-भावसे करता हुआ भगवत्प्राप्तिरूप परम सिद्धिको प्राप्त कर लेता है।

कौशिकको अपनी भूलपर पश्चात्ताप हुआ। उसने घर जाकर अपने माता-पिता तथा समाजको परमात्माका रूप मानकर निष्काम-भावसे उनकी सेवा की। इससे उनका अन्तःकरण शुद्ध हुआ, फिर समतामें वृत्ति स्थित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई और उनका कल्याण हो गया।

निष्काम-भावसे तुलाधारवैश्यने समतामें स्थित होकर—समत्वयोगमें स्थित होकर कि मेरे सभी ग्राहक नारायणके रूप हैं—इस प्रकार सबको समभावसे वस्तुएँ बेचनेके कारण उसकी वृत्ति समतामें स्थित हो गयी। इसी प्रकार पतिव्रताने अपने गृहस्थ-धर्मके सभी कर्म स्वधर्ममें स्थित होकर किये तो उनकी वृत्तिमें भी समता आ गयी। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि कर्मयोग अर्थात् कर्तव्यपरायणतासे वृत्ति समतामें स्थित हो जाती है।

अध्यात्मपरायणता (अर्थात् ज्ञानयोग)-में चार प्रकारकी साधनाओंसे वृत्ति समतामें स्थित हो जाती है—(१) परम्परागत साधन अर्थात् स्वधर्मका परिपालन, (२) शम, दम, उपरति, श्रद्धा, तितिक्षा एवं समाधान—ये बहिरंग साधन हैं। इन साधनोंके अभ्याससे वृत्तिमें समता आ जाती है। (३) ब्रह्म-विद्याका श्रवण, मनन, निदिध्यासनादि अन्तरंग साधनोंके द्वारा जड़ता अर्थात् अनात्मासे सम्बन्ध-विच्छेद होकर आत्म-स्वरूपमें स्थिति हो जाती है, (४) **'तत्त्वमसि' 'अहं ब्रह्मास्मि'** इत्यादि महावाक्योंकी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरुद्वारा उपदिष्ट पद्धतिसे समुचित धारणा होनेपर वृत्ति समतामें स्थित होकर आत्माका बोध कराकर विषयोंसे निवृत्त हो जाती है। आत्मज्ञानसे वृत्ति निवृत्त हो जाती है, इस सम्बन्धमें श्रुतिका वचन है—

यतो वाचो निवर्तन्ते। अप्राप्य मनसा सह। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्। न बिभेति कदाचनेति। (तैत्तिरीयोपनिषद् २।८)

अध्यात्मयोगमें वृत्तिकी निवृत्ति होकर आत्मतत्त्वका बोध होता है। भक्तिमें वृत्तिकी आवृत्ति होती है तथा योगमें वृत्तिकी शान्ति होती है।

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥

(गीता ५।१८)

ज्ञानी महापुरुष विद्या-विनययुक्त ब्राह्मणमें और चाण्डालमें, गाय, हाथी एवं कुत्तेमें भी समरूप परमात्माको देखनेवाले होते हैं। गीतामें तो परमात्माको निर्दोष तथा सम कहा है—**निर्दोषं ही समं ब्रह्म।** (गीता ५।१९)

ध्यान देनेकी बात है कि कर्मयोग और ज्ञानयोगकी साधनाएँ स्वतन्त्र तथा परिपूर्ण हैं, लेकिन इनमें आत्मा-अनात्माके विवेकसे वृत्ति देरमें समतामें स्थित होती है, परंतु भक्तियोग अर्थात् आस्तिकपरायणतामें सत्-असत्, आत्म-अनात्म होते ही नहीं; जो कुछ है, वह सभी परमात्मा है। तभी तो भगवान् कहते हैं कि **'सदसच्चाहमर्जुन'** (गीता ९।१९)। भक्तकी दृष्टिमें सत्-असत्, आत्मा-अनात्मा कुछ नहीं, सब परमात्मा-ही-परमात्मा है।

'वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥'

(गीता ७।१९)

आसक्तिका त्याग करके कर्म करनेसे वृत्ति सहज रूपसे समतामें स्थित हो जाती है। भगवान्के मतसे समता ही योग है अर्थात् समताका स्वरूप है। जप, तप, ध्यान, धारणा, योग, समाधि करनेपर समता नहीं आयी तो सभी योग असिद्ध हैं और यदि साधकका मन समतामें स्थित हो गया तो उसके सभी योग सिद्ध हो गये। अतः मनको सदा समतामें स्थित रखना चाहिये। गीताके अनुसार समत्व ही योग कहलाता है—**'समत्वं योग उच्यते॥'** (२।४८)

समता ही योग है। अर्थात् समता परमात्माका स्वरूप है। गीताके पाँचवें अध्यायके १९वें श्लोकमें भगवान् कहते हैं कि जिनका मन समतामें स्थित हो गया है, उन साधकोंने जीवित अवस्थामें ही संसारको जीत लिया; क्योंकि ब्रह्म निर्दोष और सम है। अतः उनकी स्थिति ब्रह्ममें ही है—

'निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः॥'

(गीता ५।१९)

समता दो प्रकारकी होती है। साधनरूप समता और साध्यरूप समता। साधनरूप समता अन्तःकरणकी होती है और साध्यरूप समता परमात्माकी होती है। सिद्ध, असिद्ध, अनुकूल, प्रतिकूलमें सम रहना अर्थात् अन्तःकरणमें राग, द्वेषका न होना साधनरूप समता है। इस साधनरूप समतासे जिस स्वतःसिद्ध समताकी प्राप्ति होती है, वह साध्यरूप समता है। गीताके मतानुसार समता बहुत उच्चकोटिकी चीज है। समता कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग—तीनों योगोंमें किसी भी योगकी साधनासे प्राप्त हो जाती है।

गीताके अनुसार तीनों योगोंसे समताकी प्राप्ति होती है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) कर्मयोगसे समता—

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥

(गीता २।४८)

हे धनंजय! आसक्तिका त्याग करके सिद्धि-असिद्धिमें सम होकर योगमें स्थित हुआ कर्मोंको कर; क्योंकि समत्वको ही योग कहा जाता है।

(२) भक्तियोगसे समता—

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः॥

(गीता १२।१८)

जो शत्रु और मित्रमें तथा मान और अपमानमें सम है तथा शीत-उष्ण, शरीरकी अनुकूलता और प्रतिकूलता तथा मन-बुद्धिकी अनुकूलता-प्रतिकूलतामें भी सम है एवं आसक्तिरहित है और जो निन्दा-स्तुतिको समान समझनेवाला है, जिस किसी प्रकारसे शरीरका निर्वाह होने-न-होनेमें सन्तुष्ट रहनेवाला तथा शरीरमें ममता-आसक्तिरहित और स्थिर बुद्धिवाला है, वह भक्तिमान् पुरुष मुझे प्रिय है।

(३) ज्ञानयोगसे समता—

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः॥

(गीता १४।२४)

अर्थात् जो निरन्तर आत्मभावमें स्थित हुआ, दुःख-सुखको समान समझनेवाला है तथा मिट्टी, पत्थर और सुवर्णमें समान भाववाला और धैर्यवान् है तथा जो प्रिय और अप्रियको बराबर समझता है और अपनी निन्दा-स्तुतिमें समान भाववाला है। ऐसा पुरुष गुणातीत होकर समत्वभावमें ही स्थित रहता है।

समता साक्षात् परमात्माका स्वरूप है। समता कहो, परमात्मा कहो—एक ही तत्त्वरूपमें परमात्माके दो नाम हैं। समतामें सभी योगोंकी सिद्धिका सार सन्निहित है। समता-योगसे तत्काल इन्द्रियातीत अनिर्वचनीय ब्रह्मकी अभिव्यक्ति होती है। अतः साधकको यह दृढ़ निश्चय करना चाहिये कि चाहे प्राणका भी बलिदान करना पड़े, पर समत्वयोगसे विचलित नहीं होना है—

मुस्कुराकर जिसको गम का जहर पीना आ गया।
यह हकीकत है जहां में उसको जीना आ गया॥

सत्य

(श्रीशरदजी अग्रवाल, एम०ए०)

सत्य से सृष्टि टिकी है, सत्य से ब्रह्मांड है।
सत्य कालातीत केवल, सत्य ही भगवान है॥
सत्य ही वो बीज जो विकसित हुआ संसार है।
सत्य ही धर्मो का राजा, सत्य मूलाधार है॥
सत्य-पथ कंटक भरा, सत्य-पथ दुर्धर्ष है।
साधना सबसे बड़ी जिसमें सतत संघर्ष है॥
साधना जो हो कठिन तो फल वहीं मिलता बड़ा।
सत्य में सामर्थ्य भारी तप नहीं इससे बड़ा॥
सत्य सिंचित हो हृदय तो देवता हम भी बनें।
सत्य के प्रताप से ही इन्द्र सिंहासन हिले॥
सत्य की महिमा निराली, सत्य ही वरदान है।
सत्य ही मानव धरम है, सत्य ही पहचान है॥
सत्य बिन सद्‌गुण सभी ही हीन लगते हैं यथा।
मात बिन नवजात जग में, कल्पता है ज्यों सदा॥
सत्य बिन व्यापार कैसा, सत्य बिन व्यवहार क्या।
सत्य बिन सेवक नहीं, सत्य बिन सम्राट क्या॥
सत्य बिन फलती नहीं कोई कभी आराधना।
सत्य बिन टिकती नहीं मतवाद की स्थापना॥
सत्य की ज्वाला तपो, तन-मन सभी कुन्दन बनें।
सत्यमय हों कर्म सारे, सत्यमय चिन्तन बने॥
सत्यमय वाणी प्रभावी, दुष्ट का प्रतिकार है।
सत्यमय जो लेखनी, तलवार की वो धार है॥
सत्य का प्रेमी बने जो, सत्य में रमता रहे।
धीरज धरे निर्भय बने, सत् मार्ग पे चलता रहे॥
सत्य बिन जो वीरता, वो दुष्टता की बात है।
बीज बिन खेती सरीखा, मूर्खता का काज है॥
सत्य ही बल निर्बलों का, सत्य ही हथियार है।
सत्य सा संबल नहीं है, सत्यमय संसार है॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीराधाष्टमी-महोत्सव

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

जैसे सच्चिदानन्दघन भगवान् श्रीकृष्ण नित्य हैं, समय-समयपर इस भूमण्डलमें उनका आविर्भाव-तिरोभाव हुआ करता है, उसी प्रकार सच्चिदानन्दमयी भगवती श्रीराधाजी भी नित्य हैं। वास्तवमें भगवान्‌की निजस्वरूपा-शक्ति होनेके कारण वे भगवान्‌से सर्वथा अभिन्न हैं और समय-समयपर लीलाके लिये आविर्भूत-तिरोभूत हुआ करती हैं। नारदपांचरात्र (२। ३। ५१, ५४)-में कहा गया है—

यथा ब्रह्मस्वरूपश्च श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः।
तथा ब्रह्मस्वरूपा च निर्लिप्ता प्रकृतेः परा॥
आविर्भावस्तिरोभावस्तस्याः कालेन नारद।
न कृत्रिमा च सा नित्या सत्यरूपा यथा हरिः॥

'जैसे श्रीकृष्ण ब्रह्मस्वरूप हैं तथा प्रकृतिसे पर हैं, वैसे ही श्रीराधाजी भी ब्रह्मस्वरूप, निर्लिप्त तथा प्रकृतिसे पर हैं। भगवान्‌की भाँति ही उनका समय-समयपर आविर्भाव-तिरोभाव हुआ करता है। वस्तुतः वे भी श्रीहरिके सदृश ही अकृत्रिम, नित्य और सत्यस्वरूप हैं।'

इसी प्रकार इनका आविर्भाव-महोत्सव तथा उसका महत्त्व भी प्राचीनतम तथा नित्य है। पद्मपुराण-ब्रह्मखण्डके सप्तम अध्यायमें श्रीनारद-ब्रह्माके संवादरूपमें एक इतिहास मिलता है, उसमें नारदजीके पूछनेपर ब्रह्माजी राधा-जन्माष्टमी-व्रतके महान् माहात्म्यका वर्णन करते हुए एक प्राचीन प्रसंग सुनाते हैं। वे कहते हैं—

'वत्स नारद! पहले सत्ययुगमें एक मृगनयनी, शुभांगी, चारुहासिनी, अतिसुन्दरी लीलावती नामकी वारांगना थी। उसने बहुत बड़े-बड़े कठोर पाप किये थे। एक दिन धनकी लालसासे वह अपने नगरसे निकलकर एक दूसरे नगरमें गयी। वहाँ उसने एक जगह बहुत लोगोंको एकत्र देखा। वे लोग एक सुन्दर देवालयमें राधाष्टमी-व्रतका उत्सव मना रहे थे। गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, वस्त्र तथा नाना प्रकारके फल आदिसे भक्तिपूर्वक श्रीराधाजीकी श्रेष्ठ मूर्तिकी पूजा कर रहे थे। कोई गा रहे थे, कोई नाच रहे थे, कोई उत्तम स्तवपाठ कर रहे थे। कोई बड़ी प्रसन्नतासे ताल, मृदंग और वेणु बजा रहे थे। इस प्रकार उन लोगोंको महोत्सव-परायण देखकर वारांगनाने कौतूहलपूर्वक उन लोगोंके पास जाकर पूछा—

'पुण्यात्माजनो! आप हर्षमें भरे यह क्या कर रहे हैं? मैं विनयपूर्वक पूछ रही हूँ, कृपा करके बताइये।' इसके उत्तरमें उन राधाव्रतियोंने कहा—

'भाद्रपदमासके शुक्लपक्षकी अष्टमीको दिनके समय श्रीराधाजीका वृषभानुके यहाँ यज्ञभूमिमें प्राकट्य हुआ था। हमलोग उसीका व्रत करके महोत्सव मना रहे हैं। इस व्रतसे मनुष्योंके बहुत बड़े-बड़े पापोंका तुरंत नाश हो जाता है।' उनकी बात सुनकर वारांगना लीलावतीने भी व्रत करनेका निश्चय करके व्रत किया। दैवयोगसे उसको सर्पने डँस लिया, इससे उसकी मृत्यु हो गयी। उसने बड़े पाप किये थे, अतएव हाथोंमें पाश तथा मुद्‌गर लिये भयानक यमदूत आ गये और उसे डाँटने लगे। इसी बीच शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले विष्णुदूतोंने आकर चक्रसे यमपाशको काट दिया। वह वारांगना सर्वथा पापमुक्त हो गयी और उसे वे विष्णुदूत विमानपर चढ़ाकर 'गोलोक' नामक मनोहर दिव्य विष्णुपुरमें ले गये।

ब्रह्माजीने फिर कहा—'इस प्रकार पापोंका नाश करनेवाले और श्रीराधामाधवको अत्यन्त प्रिय राधाष्टमी-व्रतको जो लोग नहीं करते हैं, वे मूढबुद्धि हैं। उन स्त्री-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुषोंको यमलोकमें जाकर नरकोंमें गिरना पड़ता है और फिर पृथ्वीपर जन्म लेनेपर घोर दुःख भोगने पड़ते हैं।'

वास्तवमें श्रीराधाजी भगवान् श्रीकृष्णकी ही अभिन्न मूर्ति हैं। इनकी पूजा सदासे होती आयी है और होनी चाहिये। जन-जनको चाहिये कि वह सर्वत्र श्रीराधा-जन्माष्टमी-व्रत करने तथा महोत्सव मनानेका सत्प्रयास करें। शुद्ध हृदयसे उत्साहपूर्वक स्वयं मनायें तथा लोगोंको प्रेरणा देकर मनवायें। इसमें उसका और जगत्के उन जीवोंका, जो इस व्रत-महोत्सवका सेवन करेंगे, कल्याण होगा, इसमें कोई भी संदेह नहीं है।

श्रीराधापूजाकी अनिवार्य आवश्यकता

श्रीमद्देवीभागवतमें श्रीनारायणने नारदजीके प्रति '**श्रीराधायै स्वाहा**' इस षडक्षर राधामन्त्रकी अति प्राचीन परम्परा तथा विलक्षण महिमाके वर्णन-प्रसंगमें श्रीराधा-पूजाकी अनिवार्यता तथा परम कर्तव्यताका निरूपण करते हुए कहा है—

कृष्णार्चायां नाधिकारो यतो राधार्चनं विना।
वैष्णवैः सकलैस्तस्मात् कर्तव्यं राधिकार्चनम्॥
कृष्णप्राणाधिदेवी सा तदधीनो विभुर्यतः।
रासेश्वरी तस्य नित्यं तया हीनो न तिष्ठति॥
राध्नोति सकलान् कामांस्तस्माद् राधेति कीर्तिता॥

(देवीभागवत ९।५०।१६—१८)

'श्रीराधाकी पूजा न की जाय तो मनुष्य श्रीकृष्णकी पूजाका अधिकार नहीं रखता। अतएव समस्त वैष्णवोंको चाहिये कि वे भगवती श्रीराधाजीकी अर्चना अवश्य करें। ये श्रीराधा भगवान् श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं। इसलिये भगवान् इनके अधीन रहते हैं। ये भगवान्के रासकी नित्य अधीश्वरी हैं। श्रीराधाके बिना भगवान् श्रीकृष्ण क्षणभर भी नहीं ठहर सकते। ये सम्पूर्ण कामनाओंका राधन (साधन) करती हैं, इसी कारण इन देवीका नाम 'श्रीराधा' कहा गया है।'

इन श्रीराधाजीका प्राकट्य भाद्रपद-शुक्लपक्षकी अष्टमीको मध्याह्नके समय श्रीवृषभानुपुरी (बरसाना) या उनके ननिहाल रावलग्राममें हुआ था। कुछ महानुभाव प्रातःकाल प्राकट्य हुआ मानते हैं। सम्भव है, कल्पभेदसे उनकी मान्यता सत्य हो; पर पुराणोंमें मध्याह्नका ही उल्लेख मिलता है।

श्रीराधाजन्माष्टमी-व्रतमहोत्सवका माहात्म्य

[देवर्षि नारद और भगवान् सदाशिवका संवाद]

भाद्रपद महीनेके कृष्णपक्षमें जब श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी आती है, उसके बाद शुक्लपक्षकी अष्टमीको हरिप्रिया श्रीराधिकाजीका जन्म हुआ। वृषभानुपुरी नामकी एक सब रत्नोंसे भरी सुन्दर नगरी है, जहाँ सुवर्ण और मणि-माणिक्यसे सुसज्जित विचित्र रंगके भवन और प्रांगण हैं। नाना प्रकारकी ध्वजा-पताका आदिसे विचित्र दीखनेवाली, चित्रोंसे सुशोभित वह नगरी अणिमा-महिमा आदि आठों प्रकारकी सिद्धियोंके द्वारा प्राप्त होनेवाले सुख और ऐश्वर्यसे परिपूर्ण तथा परम मनोहर है। वह चिदानन्दस्वरूप तथा चिदानन्द प्रदान करनेवाली है। उस नगरीमें आनन्द-केलि करनेवाली नारियाँ सदा निवास करती हैं। उसी नगरीमें सारे शुभ लक्षणोंसे युक्त, विनोदशीला, अतिसुन्दरी, जगत्के मनको मोहनेवाली, अतिगुह्यरूपा श्रीराधा नामकी देवी प्रकट हुईं। हे मुनिवर! उनका स्वरूप अतिगुह्य है, वह मूढ लोगों और असंतोंके सामने कथनीय नहीं है।

श्रीराधाके स्वरूप एवं माधुर्यकी महिमा

नारदजी बोले—हे महाभाग! मैं आपका दास हूँ, प्रणाम करके पूछता हूँ, बतलाइये। श्रीराधादेवी लक्ष्मी हैं या देवपत्नी हैं, महालक्ष्मी हैं या सरस्वती हैं? क्या वे अन्तरंग विद्या हैं या वैष्णवी प्रकृति हैं? कहिये—वे वेदकन्या हैं, देवकन्या हैं अथवा मुनिकन्या हैं?

सदाशिव बोले—हे मुनिवर! अन्य किसी लक्ष्मीकी बात क्या कहें, कोटि-कोटि महालक्ष्मी उनके चरणकमलकी शोभाके सामने तुच्छ कही जाती हैं। हे नारदजी! एक मुँहसे मैं अधिक क्या कहूँ? मैं तो श्रीराधाके रूप, लावण्य और गुण आदिका वर्णन करनेमें अपनेको असमर्थ पाता हूँ। उनके रूप आदिकी महिमा कहनेमें भी लज्जित हो रहा हूँ। तीनों लोकोंमें कोई भी ऐसा समर्थ नहीं है जो उनके रूपादिका वर्णन करके पार पा सके। उनकी रूपमाधुरी जगत्को मोहनेवाले श्रीकृष्णको भी मोहित करनेवाली है। यदि अनन्त मुखसे चाहूँ तो भी उनका वर्णन करनेकी मुझमें क्षमता नहीं है।

नारदजी बोले—हे प्रभो! श्रीराधिकाजीके जन्मका माहात्म्य सब प्रकारसे श्रेष्ठ है। हे भक्तवत्सल! उसको मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनना चाहता हूँ।

हे महाभाग! सब व्रतोंमें श्रेष्ठ व्रत श्रीराधा-अष्टमीके विषयमें मुझको सुनाइये। श्रीराधाजीका ध्यान कैसे किया जाता है? उनकी पूजा अथवा स्तुति किस प्रकार होती है? यह सब मुझसे कहिये। हे सदाशिव! उनकी चर्या, पूजा-विधान तथा अर्चन-विशेष—सब कुछ मैं सुनना चाहता हूँ; आप बतलानेकी कृपा करें—

शिवजी बोले—वृषभानुपुरीके राजा वृषभानु महान् उदार थे। वे महान् कुलमें उत्पन्न तथा सब शास्त्रोंके ज्ञाता थे। अणिमा-महिमा आदि आठ प्रकारकी सिद्धियोंसे युक्त, श्रीमान्, धनी और उदारचेता थे। संयमी, कुलीन, सद्विचारसे युक्त तथा श्रीकृष्णके आराधक थे। उनकी भार्या श्रीमती श्रीकीर्तिदा थीं। वे रूप-यौवनसे सम्पन्न थीं और महान् राजकुलमें उत्पन्न हुई थीं। महालक्ष्मीके समान भव्य रूपवाली और परम सुन्दरी थीं। वे सर्वविद्याओं और गुणोंसे युक्त, कृष्णस्वरूपा तथा महापतिव्रता थीं। उनके ही गर्भमें शुभदा भाद्रपदकी शुक्लाष्टमीको मध्याह्न कालमें श्रीवृन्दावनेश्वरी श्रीराधिकाजी प्रकट हुईं। वेद-शास्त्र तथा पुराणादिमें जिनका 'कृष्णवल्लभा' कहकर गुणगान हुआ है, वे श्रीराधा सदा श्रीकृष्णको आनन्द प्रदान करनेवाली, साध्वी, कृष्णप्रिया थीं। हे महाभाग! अब मुझसे श्रीराधा-जन्म-महोत्सवमें जो भजन-पूजन, अनुष्ठान आदि कर्तव्य हैं, उन्हें सुनिये। सदा श्रीराधा-जन्माष्टमीके दिन व्रत रखकर उनकी पूजा करनी चाहिये। श्रीराधाकृष्णके मन्दिरमें ध्वजा, पुष्पमाल्य, वस्त्र, पताका, तोरणादि नाना प्रकारके मंगल द्रव्योंके द्वारा यथाविधि पूजा होती है। स्तुतिपूर्वक सुवासित गन्ध, पुष्प, धूपादिसे सुगन्धित करके उस मन्दिरके बीचमें पाँच रंगके चूर्णसे मण्डप बनाकर उसके भीतर षोडश दलके आकारका कमल-यन्त्र बनाये। उस कमलके मध्यमें दिव्यासनपर श्रीराधा-कृष्णकी युगल-मूर्ति पश्चिमाभिमुख स्थापित करके ध्यान, पाद्य-अर्घ्यादिके द्वारा क्रमपूर्वक भलीभाँति उपासना करके भक्तोंके साथ अपनी शक्तिके अनुसार पूजाकी सामग्री लेकर भक्तिपूर्वक सदा संयतचित्त होकर उनकी पूजा करे।
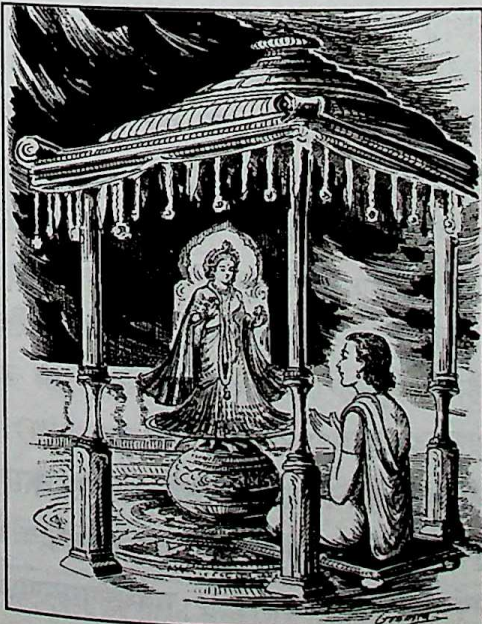
श्रीराधा-माधव-युगलका ध्यान

हेमेन्दीवरकान्तिमञ्जुलतरं श्रीमज्जगन्मोहनं
नित्याभिर्ललितादिभिः परिवृतं सन्नीलपीताम्बरम्।
नानाभूषणभूषणाङ्गमधुरं कैशोररूपं युगं
गान्धर्वाजनमव्ययं सुललितं नित्यं शरण्यं भजे॥

(पद्मपुराण उत्तर० १६२। ३१)

जिनकी स्वर्ण और नील कमलके समान अति सुन्दर कान्ति है, जो जगत्को मोहित करनेवाली श्रीसे सम्पन्न हैं, नित्य ललिता आदि सखियोंसे परिवृत हैं, सुन्दर नील और पीत वस्त्र धारण किये हुए हैं तथा जिनके नाना प्रकारके आभूषणोंसे आभूषित अंगोंकी कान्ति अति मधुर है, उन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अव्यय, सुललित, युगलकिशोररूप श्रीराधाकृष्णके हम नित्य शरणापन्न हैं। इस प्रकार युगलमूर्तिका ध्यान करके शालग्राममें अथवा मनोमयी मूर्तिमें या पाषाण आदिकी मूर्तिमें पुनः सम्यक् रूपसे अर्चना करे।

महाप्रसाद-वितरणकी महिमा—भगवान्‌को निवेदन किये गये गन्ध-पुष्प-माल्य तथा चन्दन आदिके द्वारा समागत कृष्णभक्तोंकी आराधना करे। श्रीराधाजीकी भक्तिमें दत्तचित्त होकर उनके लिये प्रस्तुत नैवेद्य, गन्ध-पुष्प-माल्य तथा चन्दन आदिके द्वारा दिनमें महोत्सव करे। पूजा करके दिनके अन्तमें भक्तोंके साथ आनन्दपूर्वक चरणोदक लेकर महाप्रसाद ग्रहण करे। श्रीराधाकृष्णका स्मरण करते हुए रातमें जागरण करे। चाँदी और सोनेकी सुसंस्कृत मूर्ति रखकर उसकी पूजा करे। दूसरी कोई वार्ता न करते हुए बन्धु-बान्धवोंके साथ पुराणादिसे प्रयत्नपूर्वक इष्टदेवता श्रीराधाकृष्णके कथा-कीर्तनका श्रवण करे। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक श्रीराधा-जन्माष्टमीके इस शुभानुष्ठानको करता है, उसके विषयमें सब देवतालोग कहते हैं कि 'यही मनुष्य भूतलमें राधाभक्त है।' इस अष्टमीको दिन-रात एक-एक पहरपर विधिपूर्वक श्रीराधामाधवकी पूजा करे। श्रीराधाकृष्णमें अनुरक्त रसिकजनोंके साथ आलाप करते हुए बारम्बार श्रीराधाकृष्णको याद करे। इस प्रकार महोत्सव करके परम आनन्दित होकर विधिपूर्वक साष्टांग दण्ड-प्रणाम करे। जो पुरुष अथवा नारी राधाभक्तिपरायण होकर श्रीराधाजन्म-महोत्सव करता है, वह श्रीराधाकृष्णके सांनिध्यमें श्रीवृन्दावनमें वास करता है, वह राधाभक्तिपरायण होकर व्रजवासी बनता है। श्रीराधाजन्म-महोत्सवका गुण-कीर्तन करनेसे मनुष्य भव-बन्धनसे मुक्त हो जाता है।

'राधा' नामकी तथा राधा-जन्माष्टमी-व्रतकी महिमा

जो मनुष्य 'राधा-राधा' कहता है तथा स्मरण करता है, वह सब तीर्थोंके संस्कारसे युक्त होकर सब प्रकारकी विद्याकी प्राप्तिमें प्रयत्नवान् बनता है। जो राधा-राधा कहता है, राधा-राधा कहकर पूजा करता है, राधा-राधामें जिसकी निष्ठा है, जो राधा-राधा उच्चारण करता रहता है, वह महाभाग श्रीवृन्दावनमें श्रीराधाकी सहचरी होता है। इस विश्वब्रह्माण्डमें यह पृथ्वी धन्य है, पृथ्वीपर वृन्दावनपुरी धन्य है। वृन्दावनमें सती श्रीराधाजी धन्य हैं, जिनका ध्यान बड़े-बड़े मुनिवर करते हैं। जो ब्रह्मा आदि देवताओंकी परमाराध्या हैं, जिनकी सेवा देवतालोग दूरसे ही करते रहते हैं। उन श्रीराधिकाजीको जो भजता है, उसको मैं भजता हूँ। हे महाभाग! उनका कथा-कीर्तन करो, उनके उत्तम मन्त्रका जप करो और रात-दिन राधा-राधा बोलते हुए नाम-कीर्तन करो। जो मनुष्य कृष्णके साथ राधाका (अर्थात् राधेकृष्ण, राधेकृष्ण) नाम-कीर्तन करता है, उसके माहात्म्यका वर्णन मैं नहीं कर सकता और न उसका पार पा सकता हूँ। राधा-नाम-स्मरण कदापि निष्फल नहीं जाता, यह सब तीर्थोंका फल प्रदान करता है। श्रीराधाजी सर्वतीर्थयमी हैं तथा सर्वैश्वर्यमयी हैं। श्रीराधा-भक्तके घरसे कभी लक्ष्मी विमुख नहीं होतीं। हे नारद! उसके घर श्रीराधाजीके साथ श्रीकृष्ण वास करते हैं। श्रीराधाकृष्ण जिनके इष्ट देवता हैं, उनके लिये यह श्रेष्ठ व्रत है। उसके घरमें श्रीहरि देहसे, मनसे कदापि पृथक् नहीं होते। यह सब सुनकर मुनिश्रेष्ठ नारदजीने प्रणत होकर यथोक्त रीतिसे श्रीराधाष्टमीमें यजन-पूजन किया। जो मनुष्य इस लोकमें यह राधा-जन्माष्टमी-व्रतकी कथा श्रवण करता है, वह सुखी, मानी, धनी और सर्वगुणसम्पन्न हो जाता है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक श्रीराधाका मन्त्र जप करता है अथवा नाम-स्मरण करता है, वह धर्मार्थी हो तो धर्म प्राप्त करता है, अर्थार्थी हो तो धन पाता है, कामार्थी पूर्णकाम हो जाता है और मोक्षार्थीको मोक्ष प्राप्त होता है। कृष्णभक्त वैष्णव सर्वदा अनन्यशरण होकर जब श्रीराधाकी भक्ति प्राप्त करता है तो सुखी, विवेकी और निष्काम हो जाता है। (पद्मपुराण उ०ख० १६२-१६३ का कुछ अंश)

श्रीराधा-प्राकट्यकी तिथि और काल

वृषभानुरिति ख्यातो जज्ञे वैश्यकुलोद्भवः।
सर्वसम्पत्तिसम्पन्नः सर्वधर्मपरायणः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उवाह कीर्तिदानाम्नीं गोपकन्यामनिन्दिताम्।
सर्वलक्षणसम्पन्नां प्रतप्तकनकप्रभाम्॥
वृषभानुर्महाभक्तः कीर्तिदायास्तपोबलात्।
अस्माद् विनयबाहुल्यात् तत्कन्या राधिकाभवत्॥
भाद्रे मासि सिते पक्षे अष्टमी या तिथिर्भवेत्।
अस्यां दिनार्द्धेऽभिजिते नक्षत्रे चानुराधिके॥
राजलक्षणसम्पन्नां कीर्तिदासूतकन्यकाम्।
अतीवसुकुमाराङ्गीं सितरश्मिसमप्रभाम्।
त्रैलोक्याद्भुतसौन्दर्यां दोषनिर्मुक्तविग्रहाम्॥

(भविष्यपुराण*)

वैश्यकुलमें वृषभानु नामसे प्रसिद्ध एक राजा थे, वे सभी सम्पदाओंसे सम्पन्न तथा सभी धर्मोंके परायण थे। उन्होंने कीर्तिदा नामकी अनिन्द्य सुन्दरी एक गोपकन्यासे विवाह किया, जो सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे युक्त तथा तपाये हुए सोनेकी-सी कान्तिवाली थी। वृषभानु महान् भक्त थे। कीर्तिदाके तपोबलसे तथा विनयकी पराकाष्ठासे उनके राधिका नामकी कन्या हुई। भाद्रपद मासके शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिको मध्याह्नकालमें अभिजित् मुहूर्त और अनुराधा नक्षत्रके योगमें कीर्तिदा रानीने राजचिह्नोंसे सुशोभित इस कन्याको जन्म दिया। उसके अंग-प्रत्यंग अत्यन्त सुकुमार थे, जिनसे चन्द्रमाकी-सी ज्योति निकल रही थी, उसका सौन्दर्य त्रिलोकीमें विलक्षण था और शरीर सब प्रकारके दोषोंसे सर्वथा मुक्त था।

श्रीराधा-प्राकट्यका कारण तथा प्राकट्य-महोत्सव

गर्गसंहितामें आता है—राजा बहुलाश्वके पूछनेपर श्रीनारदजी कहते हैं—'तुम्हारा यह कुल धन्य है, क्योंकि इसीमें राजा निमि हो चुके हैं। वे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके सर्वश्रेष्ठ भक्त थे। फिर इसी कुलमें तुम भी उत्पन्न हुए हो। अतः इसे पूर्णरूपसे गौरव प्राप्त हो गया। तुम्हारा स्वभाव बहुत ही विलक्षण है; क्योंकि तुम संसारसे सम्बन्ध रखते हुए भी त्यागी हो। अब तुम उन पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाका श्रवण करो। वह पवित्र एवं कल्याणस्वरूप है। केवल कंसका संहार ही भगवान्के अवतारमें हेतु नहीं है। वे पृथ्वीपर संतजनोंकी रक्षाके लिये पधारे थे। राजन्! भगवान्ने ही अपनी महाशक्तिको प्रेरणा दी। अतः महाशक्तिने वृषभानुकी पत्नीके हृदयमें प्रवेश किया और वे ही 'राधिका' नामसे प्रकट हुईं। उनका अवतार एक भव्य भवनमें हुआ। वह स्थान यमुनाके तटपर निकुञ्ज-वनमें था। उस समय भाद्रपदका महीना था। शुक्लपक्ष एवं अष्टमी तिथि थी। मध्याह्न (दोपहर)-का समय था। आकाशमें मेघ छाये हुए थे। देवताओंने उस समय फूलोंकी वर्षा की। वे फूल नन्दनवनसे उन्हें प्राप्त हुए थे। उस समय राधिकाजीके पृथ्वीपर प्रकट होनेपर नदियाँ स्वच्छ हो गयीं। सम्पूर्ण दिशाओंमें आनन्द फैल गया। कमलकी गन्धसे व्याप्त वायु चलने लगी, वह बड़ी ही शीतल, मनोहर और धीमी गतिसे बह रही थी। बादमें वृषभानु-पत्नी कीर्तिको कन्या दिखायी दी। शरत्कालीन चन्द्रमाकी भाँति उसकी कान्ति थी। रूप मनको हरनेवाला था। अतः वे अत्यन्त आनन्दमें भर गयीं। तुरन्त उन्होंने मंगल-विधान करवाया और पुत्रीके कल्याणकी कामनासे दो लाख गौएँ ब्राह्मणोंको दान कीं। श्रेष्ठ देवताओंको भी जिनका दर्शन मिलना कठिन है, मनुष्य करोड़ों जन्मोंतक तप करते हैं, परंतु जिनका साक्षात् नहीं कर पाते, वे ही श्रीराधिकाजी वृषभानुके यहाँ स्वयं प्रकट हुईं। गोपियोंने उनका लालन-पालन किया। यह प्रायः सभी जानते हैं। सखियाँ पालनेमें राधिकाजीको झुलाया करती थीं।'

प्रेङ्खे खचिद्रत्नमयूखपूर्णे
सुवर्णयुक्ते कृतचन्दनाङ्गे।
आन्दोलिता सा ववृधे सखीजनै-
र्दिने दिने चन्द्रकलेव भाभिः॥
श्रीरासरङ्गस्य विकासचन्द्रिका
दीपावलीभिर्वृषभानुमन्दिरे।
गोलोकचूडामणिकण्ठभूषणां
ध्यात्वा परां तां भुवि पर्यटाम्यहम्॥

(गर्गसंहिता १।८।११-१२)

'वह पालना सुवर्णसे बनाया गया था। उसमें रत्न

* बँगलालिपिमें मुद्रित संस्करण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जड़े हुए थे। चारों ओर चन्दन छिड़का गया था। प्रतिदिन राधिकाजीका श्रीविग्रह बढ़ता जाता था। ठीक उसी प्रकार, जैसे शुक्लपक्षमें प्रतिदिन बढ़ते हुए प्रकाशसे चन्द्रमाकी कलामें विस्तार होता जाता है। जो रासमण्डलको आह्लादित करनेवाली स्वच्छ चाँदनी हैं, जिन्होंने वृषभानुके भवनको अनन्त उज्ज्वल दीपावलियोंके समान प्रकाशित कर दिया है तथा जो गोलोकमें चूडामणिके रूपमें विराजमान भगवान् श्रीकृष्णके गलेकी हार हैं, उन पूजनीय राधिकाजीका ध्यान करके मैं पृथ्वीपर विचर रहा हूँ।'

श्रीवृषभानु तथा श्रीकीर्तिजी पूर्वजन्ममें कौन थे?

श्रीनारदजी कहते हैं—तदनन्तर बहुलाश्वके पूछनेपर नारदजीने श्रीवृषभानु तथा श्रीकीर्तिजीके पूर्वजन्म तथा वरदानका इतिहास सुनाया। देवर्षि नारदजी बोले—एक राजा नग थे। उनके यहाँ सुचन्द्र नामक पुत्रका जन्म हुआ। सुचन्द्र अत्यन्त बड़भागी थे। राजाओंके ऊपर भी उनका शासन था। वे चक्रवर्ती थे। उन्हें साक्षात् भगवान्का अंश माना जाता था। उनका शरीर बड़ा ही कोमल था। (अर्यमा आदि) पितरोंके यहाँ संकल्पमात्रसे तीन कन्याएँ उत्पन्न हुईं। तीनों बड़ी ही कमनीय-मूर्ति थीं। उनके नाम थे—कलावती, रत्नमाला और मेनका। कलावती सुचन्द्रके साथ ब्याही गयीं। सुचन्द्र बड़े विद्वान् और भगवान्के अंशावतार थे। रत्नमाला विदेह (जनक)-को समर्पित कर दी गयीं और गिरिराज हिमालयने मेनकाका पाणिग्रहण किया। पितरोंने अपनी रुचिके अनुसार ब्राह्मविधिसे ये कन्याएँ दान कीं। रत्नमालासे सीताजी प्रकट हुईं। मेनकाके गर्भसे पार्वतीजीका अवतार हुआ। महामते! इन दोनोंकी कथाएँ पुराणोंमें जगह-जगह वर्णित हैं। तदनन्तर, पत्नी कलावतीको साथमें लेकर सुचन्द्र गोमती नदीके तटपर स्थित एक वनमें चले गये। उन्होंने ब्रह्माजीकी तपस्या की। वह तप देवताओंके वर्षसे बारह वर्षोंतक चलता रहा। पश्चात् ब्रह्माजी वहाँ पधारे और उन्होंने सुचन्द्रको वरदान दिया—

'तुमलोग मेरे साथ स्वर्गमें चलो और वहाँ नाना प्रकारके आनन्दका उपभोग करो। समय आनेपर तुम दोनों पृथ्वीपर उत्पन्न होओगे। द्वापरके अन्तमें गंगा और यमुनाके बीच, भारतवर्षमें तुम्हारा जन्म होगा। तुम्हीं दोनोंसे स्वयं परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णकी प्राणप्रिया देवी राधिकाजी पुत्रीके रूपमें प्रकट होंगी। उसी समय तुम्हें परमधाम प्राप्त होगा।'

श्रीनारदजी कहते हैं—इस प्रकार ब्रह्माजीका वरदान प्राप्त हुआ। वह महान् वरदान पवित्र तथा कभी भी निष्फल होनेवाला नहीं था। अत: उसीके प्रभावसे भूमण्डलपर कीर्ति तथा वृषभानु हुए। कन्नौज देशमें एक राजा थे। भलन्दन नामसे उनकी प्रसिद्धि थी। उन्हींके यहाँ यज्ञकुण्डसे कलावतीका प्रादुर्भाव हुआ। कलावती अपने पूर्वजन्मकी सारी बातें जानती थीं। उनका स्वभाव भी बहुत विलक्षण था। सुरभानुके घर सुचन्द्रका जन्म हुआ। उस समय वे वृषभानु नामसे विख्यात हुए। उन्हें भी पहले जन्मका स्मरण था। गोपोंमें उनकी प्रधानता थी। वे इतने सुन्दर थे कि एक दूसरे कामदेव ही माने जाते थे। नन्दजीकी बुद्धि बड़ी निर्मल थी। उन्होंने दोनोंका परस्पर सम्बन्ध जोड़ दिया। उन दोनोंको पूर्वजन्मकी स्मृति तो थी ही। अत: वे दोनों चाहते भी ऐसा ही थे। जो मनुष्य इस वृषभानु और कलावतीके उपाख्यानका श्रवण करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है। अन्तमें वह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके परमधामका अधिकारी भी होता है। (गर्गसंहिता १।८)

श्रीराधाजन्माष्टमी-व्रत

नारदपुराण पूर्वभाग अध्याय ११७ में श्रीराधाजन्माष्टमी-व्रतका वर्णन करते हुए सनातन मुनिने कहा है—

'भाद्र शुक्ल अष्टमीको मनुष्य 'राधा-व्रत' करे। कलशस्थापन करके उसके ऊपर श्रीराधाकी स्वर्णमयी प्रतिमाका पूजन करना चाहिये। मध्याह्नकालमें श्रीराधाजीका पूजन करके एकभक्त व्रत करे। विधिपूर्वक राधाष्टमी-व्रत करनेसे मनुष्य व्रजका रहस्य जान लेता है तथा राधा-परिकरोंमें निवास करता है।'

इसी प्रकार आदिपुराण, तन्त्र और अन्य कई प्राचीन ग्रन्थोंमें भी राधा-प्राकट्य तथा व्रतका वर्णन आया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीहरिभक्ति सुगम और सुखदायी है

(श्रीजयरामदासजी 'दीन' रामायणी)

भोजन करिअ तृपिति हिंत लागी। जिमि सो असन पचवै जठरागी॥
असि हरि भगत सुगम सुखदाई। को अस मूढ़ न जाहि सोहाई॥

भाव यह कि भगवद्भक्ति मुँहमें कौर ग्रहण करनेके समान ही सुगम है—*'भोजन करिअ तृपिति हित लागी।'* वैसे ही वह सुखदायी भी है—*'जिमि सो असन पचवै जठरागी॥'* जिस प्रकार भोजन करते समय प्रत्येक कौरके साथ तुष्टि, पुष्टि और क्षुधानिवृत्ति होती है, उसी प्रकार भक्तिसे भी तीनों बातें एक ही साथ प्राप्त होती हैं, श्रीमद्भागवतमें यही कहा गया है—

भक्तिः परेशानुभवो विरक्ति-
रन्यत्र चैष त्रिक एककालः।
प्रपद्यमानस्य यथाश्नतः स्यु-
स्तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपायोऽनुघासम्॥
(११।२।४२)

श्रीजनकजी महाराजके प्रश्न करनेपर नौ योगीश्वरोंमेंसे प्रथम योगीश्वर श्रीकविजी महाराज यह बतलाते हुए कि जो गति बड़े-बड़े योगियोंको अनेक जन्मोंतक साधन करनेपर भी दुर्लभ है, वह एक ही जन्ममें भगवन्नाम-कीर्तनमात्रसे तत्काल कैसे प्राप्त हो जाती है, कहते हैं—जैसे भोजन करनेवाले मनुष्यके प्रत्येक ग्रासके साथ सुख, उदर-पोषण और क्षुधा-निवृत्ति—ये तीनों काम एक साथ ही सम्पन्न होते जाते हैं, वैसे ही भजन करनेवाले पुरुषमें भगवत्प्रेम, परम प्रेमास्पद भगवान्‌के स्वरूपकी स्फूर्ति और सांसारिक सम्बन्धोंसे वैराग्य—ये तीनों एक साथ ही प्रकट होते चलते हैं।

'सुगम सुखदाई' कहनेका यह भी तात्पर्य है कि पूर्वप्रसंगानुसार वर्णित ज्ञान आदि साधनोंमें हदयसे समस्त सांसारिक वस्तुओंके प्रति पूर्ण एवं दृढ़ वैराग्यकी तो आवश्यकता है ही, साथ ही उनको बड़ी सावधानीके साथ स्वरूपसे त्यागनेमें ही कुशल है। यह बड़ा कठिन मार्ग है। परंतु भगवद्भक्ति ऐसी सुगम है कि वह केवल त्याग और वैराग्यमें ही नहीं, संग्रह और रागकी स्थितिमें भी बढ़ती जाती है। यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि प्राप्त तो हों संसारके भोग्यपदार्थ और बढ़े भगवान्‌का विशुद्ध प्रेम!

उदाहरणार्थ ज्ञानी और विरक्त साधकके लिये धन आदिका छूना और चाहना निषिद्ध है, वह किसी सांसारिक पदार्थको ग्रहण करते ही अपने साधनसे च्युत हो जाता है, परंतु जो भगवत्प्रेमी भक्त एकमात्र *'राम भरोस हृदयँ नहिं दूजा'* की स्थितिमें है, वह अपने योगक्षेमके लिये साधारण-सी सांसारिक सामग्री पाते ही इस भावमें डूबने-उतराने लगता है कि हे प्रभो! हे विश्वम्भर! हे भक्तोंके योगक्षेम वहन करनेवाले! आपकी इस अहैतुकी दयाको धन्य है, धन्य है! आप ऐसे दयासिन्धु और करुणानिधि हैं कि मेरे-जैसे खोटे भक्तपर भी ऐसी असीम कृपा करते हैं। ऐसे भावमें मग्न होनेके कारण वह भक्त **'रक्षिष्यतीति विश्वासः'** नामकी तीसरी शरणागतिकी सच्ची दृढ़ता प्राप्त करता है और श्रीप्रभुके चरणोंमें उसके प्रेमकी वृद्धि होती है। इधर तो उसके शरीरके लिये योगक्षेमकी सामग्री मिल गयी और उधर भगवान्‌के प्रति प्रेम और विश्वासकी वृद्धि एवं दृढ़ता भी प्राप्त हो गयी। फिर सांसारिक सम्बन्धोंसे उपरामता तो हुई ही—*'जिमि सो असन पचवै जठरागी॥'* सचमुच श्रीहरिभक्ति ऐसी ही *'सुगम सुखदाई'* है।

अवश्य ही दूसरे साधनोंमें 'रमाविलास' विष है, परंतु प्रेमी भक्त जब अपने निर्वाहमात्रके लिये उसे भगवत्प्रसादके रूपमें स्वीकार करता है, तब वहाँ वह अमृतका फल देता है; क्योंकि यदि भक्त उस सामग्रीको भगवत्प्रदत्त नहीं निश्चय करेगा, स्वतन्त्र मानेगा, तब तो वह उसे पचेगी ही नहीं; उसका वमन हो जायगा— *'रमा बिलासु राम अनुरागी। तजत बमन जिमि जन बड़भागी॥'* जिस समय श्रीअवधका राज्य भक्तराज श्रीभरतजीके गले बाँधा जा रहा था, उस समय उन्होंने अपने श्रीमुखसे स्पष्टतः यह निर्णय दे दिया था कि *'मोहि राजु हठि देइहहु जबहीं। रसा रसातल जाइहि तबहीं॥'* उनके कहनेका भाव यह कि श्रीके पति तो एकमात्र मेरे प्रभु श्रीरामचन्द्रजी ही हैं, जो मेरे पितातुल्य हैं। इस राज्यश्रीके भोगका अधिकार उन्हींको है। मैं तो उनका शिशु-सेवक हूँ। भला, पुत्र कभी अपनी माताका पतित्व ग्रहण कर सकता है? यदि राज्यपदपर मेरा अभिषेक किया जायगा तो यह धरातल रसातलमें धँस जायगा।' परंतु पीछेसे जब उसी राजशासनकी सेवा श्रीप्रभुकी चरणपादुकाके प्रसादरूपमें प्राप्त हुई तब उन्होंने *'बिनु रागा'* अर्थात् स्वयं भोक्ता न बनकर चौदह वर्षकी अवधितक भजनरूपसे उसका निर्वाह किया। उससे उन्हें लोकसुयश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और परलोकसुख दोनों ही प्राप्त हुए। उनकी कोई हानि नहीं हुई, इतना ही नहीं, उनके आदर्शसे जगत्का भी सुधार होता है, वे तरन-तारन हो गये!

'जठरागी' की उपमा देकर एक बात और भी कही गयी है। जैसे भोजन पचकर भोजन करनेवालेके लिये अधिक पुष्टिका कारण बनता है, वैसे ही लौकिक वस्तु भी प्राप्त होकर भक्तके भगवत्प्रेमकी वृद्धि और पुष्टि ही करती है; क्योंकि भक्त भगवान्की कृपाको ही उसकी प्राप्तिका कारण मानता रहता है। इसलिये अन्य साधनोंमें तो केवल त्याग और निग्रहसे ही बल मिलता है, परंतु भक्तिमें सांसारिक पदार्थोंकी प्राप्तिसे भी उसकी पुष्टि होती है—*'कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा॥'*

'तृपिति हित लागी' कहनेका तात्पर्य यह है कि भक्तोंको शरीरकी रक्षाके लिये अन्न-वस्त्र आदि तो ग्रहण करना पड़ता है, परंतु उसकी प्राप्तिसे पुष्ट होता रहता है उनका अपने प्रभुमें विशुद्ध प्रेम! इस प्रकार उनके लोक और परलोक दोनों ही बनते हैं। अतः अन्य साधनोंकी अपेक्षा हरिभक्ति 'सुगम' और 'सुखदायी' है, यह सिद्ध होता है। ज्ञान आदि अन्य साधनोंमें लोक-अर्थका न्यास होनेपर ही परलोक बन सकता है। 'भोजन' की उपमा देकर भक्तिमें एक यह भी खूबी दिखलायी गयी है कि इस साधनमें क्रमनाश अर्थात् जब साधन पूरा हो जाय तभी लाभ हो, अन्यथा नहीं, यह बात नहीं है। बल्कि जैसे भोजनके समय एक-एक ग्राससे ही क्रमशः सन्तुष्टि और पुष्टि प्राप्त होने लगती है, वैसे ही भक्तिमें भी ज्यों-ज्यों भजन किया जाता है, त्यों-त्यों उसके फलस्वरूप प्रभुमें प्रेम, उनके स्वरूपकी अनुभूति और लोक-परलोकसे वैराग्य होने लगता है। इस बातकी बिलकुल अपेक्षा नहीं रहती कि साधन सोलहों आने पूरा होनेपर ही सफलता मिलेगी। भगवान् श्रीकृष्ण गीतामें कहते हैं—

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥

(२।४०)

अर्थात् इस योगमें आरम्भका नाश नहीं है और न विपरीत फलरूप दोष ही होता है। इस धर्मका थोड़ा-सा साधन भी महान् भयसे तार देता है।

सियावर रामचन्द्रकी जय!

सब धन धूरि समान

विजयनगरके राजा कृष्णदेवरायने जब राजगुरु व्यासरायके मुखसे सन्त पुरन्दरदासके सादगीभरे जीवन और निर्लोभिताकी प्रशंसा सुनी, तो उन्होंने संतकी परीक्षा लेनेकी ठानी और एक दिन सेवकोंसे संतको बुलवाकर उनको भिक्षामें चावल दिये। संत प्रसन्न हो बोले—महाराज! प्रतिदिन मुझे इसी तरह कृतार्थ किया करें।

घर लौटकर पुरन्दरदासने प्रतिदिनकी भाँति भिक्षाकी झोली पत्नी सरस्वती देवीके हाथमें दे दी, किंतु जब वह चावल बीनने बैठी तो देखा कि उसमें छोटे-छोटे हीरे हैं। उन्होंने तत्क्षण पतिसे पूछा—कहाँसे लाये हैं आज भिक्षा? पतिने जब 'राजमहलसे' जवाब दिया तो सन्त-पत्नीने घरके पास घूरेमें वे हीरे फेंक दिये।

अगले दिन जब पुरन्दरदास भिक्षा लेने राजमहल गये तो सम्राट्को उनके मुखपर हीरोंकी आभा दिखी और उन्होंने फिरसे झोलीमें चावलके साथ हीरे डाल दिये। ऐसा क्रम एक सप्ताहतक चलता रहा।

सप्ताहके अन्तमें राजाने व्यासरायसे कहा—महाराज! आप कहते थे कि पुरन्दर-जैसा वैरागी दूसरा नहीं है, मगर मुझे तो वे लोभी जान पड़े। यदि विश्वास न हो तो उनके घर चलिये और सच्चाईको अपनी आँखसे देख लीजिये।

वे दोनों जब संतकी कुटियामें पहुँचे तो देखा कि लिपे-पुते आँगनमें तुलसीके पौधेके समीप सरस्वती देवी चावल बीन रही हैं। कृष्णदेवरायने कहा—बहन! चावल बीन रही हो?

सरस्वती देवीने कहा—हाँ भाई! क्या करूँ, कोई गृहस्थ भिक्षामें ये कंकड़ डाल देता है, इसलिये बीनना पड़ता है। ये कहते हैं, भिक्षा देनेवालेका मन न दुखे, इसलिये प्रसन्नमनसे भिक्षा ले लेता हूँ। वैसे इन कंकड़ोंको चुननेमें बड़ा समय लगता है।

राजाने कहा—बहन! तुम बड़ी भोली हो, ये कंकड़ नहीं, ये तो मूल्यवान् हीरे दिखायी दे रहे हैं। इसपर सरस्वती देवीने कहा—आपके लिये ये हीरे होंगे, हमारे लिये तो कंकड़ ही हैं। हमने जबतक धनके आधारपर जीवन व्यतीत किया, तबतक हमारी दृष्टिमें ये हीरे थे। पर जबसे भगवान् विठोबाका आधार लिया है और धनका आधार छोड़ दिया है, ये हीरे हमारे लिये कंकड़ ही हैं। और बीने हुए हीरोंको वह घूरेपर डाल आयी, जहाँ पिछले छः दिनके फेंके गये हीरे चमचमा रहे थे। यह देख व्यासरायके मुखपर मन्द मुसकान फैल गयी और सलज्ज कृष्णदेवराय माता सरस्वतीके चरणोंपर झुक गये। **[श्रीशरद् चन्द्रजी पेंढारकर]**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधकोंके प्रति—

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

विवेकमार्गमें द्वैत रहता है। अतः मुक्त होनेपर द्वैतका एक संस्कार रह जाता है, जिससे दार्शनिक मतभेद होते हैं। जले हुए मेण्टलकी तरह ज्ञानीका अहं जला हुआ रहता है, जिससे व्यवहार होता है। आचार्योंमें जो सूक्ष्म अहं रहता है, वह दुनियाके कल्याणके लिये होता है। आचार्यकोटिके सन्त लोकसंग्रहके लिये होते हैं। लड़ाई आचार्योंमें नहीं है, उनके अनुयायियोंमें है। साधकको मतभेदमें न पड़कर तत्परतासे अपने साधनका पालन करना चाहिये।

× × ×

मनुष्यकी उन्नतिकी कोई सीमा नहीं है। कमी यह है कि आगे बढ़नेका उत्साह नहीं है। आध्यात्मिक विषयमें कभी सन्तोष करना ही नहीं चाहिये। प्रारब्धके अनुसार मिली परिस्थितिमें सन्तोष करना चाहिये।

साधन नित्यकर्मकी तरह नहीं होता, प्रत्युत निरन्तर होता है। साधक निरन्तर सावधान रहता है।

× × ×

एक समग्र परमात्माके सिवाय कुछ भी नहीं है। सब कुछ वही है, फिर मनको कहाँसे हटायें और कहाँ लगायें? समुद्र और लहरें अलग-अलग हैं, पर जल-तत्त्वमें क्या फर्क है? समुद्रकी लहरें, उसकी सीमा ऊपरसे दीखती है, पर भीतरमें शान्त समुद्र है। इसी तरह ऊपरसे सृष्टि दीखती है, पर भीतर एक परमात्मतत्त्व है—**'समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्'** (गीता १३। २७)।

× × ×

शास्त्रोंको इदंबुद्धिसे न पढ़कर अनुभव करनेके लिये पढ़े। उन्हें बुद्धिका विषय न बनाये।

जैसे संसार भगवत्स्वरूप है, वैसे शरीर भी भगवत्स्वरूप है। शरीरको संसारसे अलग रखते हुए अनुभव नहीं होता। अहम्तक सब परमात्मा ही हैं। शरीर संसारका अंश है, संसार शरीरका अंश नहीं, पर हम संसारसे सुख लेना चाहते हैं। सुख लेनेकी चाहना ही अनुभवमें खास बाधा है। संसार मेरे नहीं, अपितु मैं संसारके काम आ जाऊँ—यह भाव रहना चाहिये।

माँका ऋण उतार नहीं सकते। माँके चरणोंमें प्रातः-सायं प्रणाम करें और उसके हाथका बना भोजन करें तो वह प्रसन्न हो जायगी। प्रसन्न होनेसे ऋण माफ हो जाता है।

× × ×

बिना भूखके भोजन मिल गया, तभी लाभ नहीं होता। भूख जाग्रत् करनेका उपाय है—विचार। विचार करें कि सत्संग सुनते इतने वर्ष हो गये, अभीतक लाभ नहीं हुआ। शरीरका कोई भरोसा नहीं। यह परिस्थिति, यह भाव भी सदा रहेगा क्या? यह संयोग क्या सदा रहेगा? एक दिनमें एक बात भी पकड़ लो तो कितना काम हो जाय। श्रीशंकराचार्यजीने कहा है—**'किमौषधं तस्य विचार एव'** (प्रश्नोत्तरी ७) अर्थात् विचार ही भवरोगकी दवा है।

सत्संगके द्वारा जो विद्वत्ता आती है, वह पुस्तकें पढ़नेसे नहीं आती।

× × ×

मैं ज्ञानी हूँ और अज्ञानी हूँ—ये दोनों धारणाएँ अज्ञानियोंकी हैं। ज्ञान होनेपर ज्ञानी नहीं रहता। जबतक ज्ञानी रहता है, तबतक भोग है। जो ज्ञानका भोगी है, वह कभी अज्ञानका भी भोगी हो सकता है। तत्त्वज्ञान होनेपर 'मैं ज्ञानी हूँ, दूसरे सब अज्ञानी हैं'—यह नहीं होता। सबका स्वरूप शरीरसे अलग है, केवल बुद्धिमें फर्क पड़ता है। मैं जानता हूँ—ऐसे वह (तत्त्वज्ञानी) ज्ञानका मालिक नहीं बनता। उसे ज्ञानका अभिमान नहीं होता।

हम शरीर, वस्तुओं, अवस्थाओंके बिना रह सकते हैं और वे हमारे बिना रह सकती हैं। जो वस्तु हमारे बिना रह सकती है, उसके बिना हम क्यों नहीं रह सकते? हम उसके गुलाम क्यों बनें? हम परमात्माके अंश हैं। परमात्मा हमारे बिना नहीं रह सकते; क्योंकि वे सबमें परिपूर्ण हैं। अतः हम भी परमात्माके बिना नहीं रह सकते।

शरीरको आपकी आवश्यकता है, आपके बिना शरीर सड़ जायगा, पर आपको शरीरकी आवश्यकता नहीं है। आप शरीरके बिना रह सकते हैं। ऐसा जाननेसे आपमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वतन्त्रता आ जायगी। परतन्त्रता मानी हुई है, स्वतन्त्रता स्वत:सिद्ध है।

यदि आप काममें न लें तो सोने और पत्थरमें क्या फर्क हुआ? पहाड़में पड़ा पत्थर और खानमें पड़ा सोना—दोनों समान हैं। आप सोनेको काममें लेते हो, उसे बढ़िया मानते हो तो उसका महत्त्व हो जाता है।

× × ×

विश्वासमार्गमें देह-देहीका विचार न करके भगवान्‌में लग जाओ, पर ऐसे लगो कि देह याद ही न रहे। अपनेको भगवान्‌का मानो। बार-बार प्रार्थना करो कि हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं। ऐसा मानो कि भगवान् निरन्तर मुझे देख रहे हैं।

× × ×

आरम्भकालको देखना पशुता है। विवेकी मनुष्य परिणामको देखता है, इसलिये वह भोगोंमें रमण नहीं करता—'**न तेषु रमते बुधः**' (गीता ५। २२)। अर्थका परिणाम अनर्थ है। संयोगकालमें ही वियोगको देखना चाहिये। संसारका संयोग अनित्य है, वियोग नित्य है। जो अपने विवेकका आदर नहीं करता, वह शास्त्र और सन्तका आदर नहीं कर सकता।

जैसे चाहे दान करो, चाहे आवश्यक काममें खर्च करो, नहीं तो धनका नाश हो जायगा, ऐसे ही समयको चाहे अपने कल्याणमें लगाओ, चाहे दूसरोंकी सेवामें लगाओ, नहीं तो समय नष्ट हो जायगा। भगवान्‌के भजनके बिना समय जाना असह्य होना चाहिये।

भगवान्‌में प्रेम होनेसे भक्त निष्काम स्वतः हो जाता है। भगवान्‌को पुकारो। पुकारनेसे माँ गोदीमें ले लेती है।

× × ×

पारमार्थिक उन्नति स्वयंकी और सांसारिक उन्नति 'पर' की है। सांसारिक पूँजी साथ नहीं रहती, पर साधन-पूँजी योगभ्रष्ट होनेपर भी नष्ट नहीं होती। पारमार्थिक सम्पत्तिको कोई छीन नहीं सकता। ब्रह्माजी हंसको तो हटा सकते हैं, पर उसके नीर-क्षीर-विवेकको नहीं छीन सकते। सत्संग और साधनसे होनेवाली उन्नति मरनेपर भी मिटती नहीं, प्रत्युत ढकती है और समयपर प्रकट हो जाती है।

जिज्ञासा और कामना—दोनोंका स्थान एक है। शरीरकी प्रधानतासे सांसारिक इच्छा और स्वरूपकी प्रधानतासे पारमार्थिक इच्छा होती है। जड़ताके साथ तादात्म्य होनेसे ही दोनों इच्छाएँ पैदा हुई हैं।

सत्संगसे बिना परिश्रम एक गति होती है अर्थात् अनुभव बढ़ता है।

× × ×

जैसे सूर्य और उसका प्रकाश एक है, ऐसे ही श्यामसुन्दर और उनका प्रकाश यह जगत् भी एक है। यह जगत् श्यामसुन्दरका स्वरूप है, परंतु जैसे जगत्‌की अपेक्षा श्यामसुन्दरका रूप विशेष है, ऐसे ही सन्तका रूप भी विशेष है—

सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा॥

(मानस०, अरण्य०, ३६। २)

× × ×

सत्‌में असत् नहीं है, पर असत्‌में भी सत् है। सत् नित्य है, असत् अनित्य है। मुक्ति नित्य है, बन्धन अनित्य है। बन्धनके समय भी मुक्ति विद्यमान है। सत्‌की तरफ केवल दृष्टि डालनी है।

सत्‌का भाव और असत्‌का अभाव स्वीकार करके मन-बुद्धिसे चुप हो जायँ। चुप होनेसे असत्‌की स्वतः निवृत्ति हो जायगी। असत्‌को मिटानेका उद्योग करना उसको सत्ता देना है।

× × ×

सेवा सबकी करे, पर किसीसे कुछ न चाहे। सेवा करना 'कर्म' है और किसीसे कुछ न चाहना 'योग' है। योग होनेसे साधक निरपेक्ष हो जाता है। '**सर्वे भवन्तु सुखिनः०**' (सब सुखी हो जायँ…)—यह भाव रखें तो यह सेवा हो गयी। सबको भला समझें—यह भी सेवा है। सब सुखी हो जायँ—यह समता है, समदृष्टि है। सेवा करना और भगवान्‌को याद करना—यह मनुष्यता है।

'**परस्परं भावयन्तः**' (गीता ३। ११)—इसका तात्पर्य यह नहीं है कि आप हमारी सेवा करें, इसलिये हम आपकी सेवा करें। यह तो व्यापार है। अतः अपने स्वार्थ और अभिमानका त्याग करके दूसरेकी सेवा करें। लेनेकी आशा न रखें। सकाम भाव रखेंगे तो कर्म होगा, कर्मयोग नहीं। सभी वर्ण अपने-अपने कर्तव्य-कर्मोंके द्वारा दूसरे वर्णवालोंकी सेवा करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि रमण और आत्मोपासना

(श्रीसुरेशप्रसादरायजी, एम०ए०)

भगवान्ने गीतामें कहा है कि धर्मकी स्थापनाके लिये वे स्वयं अवतार लेते हैं। कलियुगमें धर्मकी विशेषरूपसे हानि होती है। अतः स्वभावतया ही भगवान्को इस युगमें एकाधिक बार स्वयं अंश, कला आदि रूपमें अवतरित होना पड़ता है। कलियुगमें अधर्मका अन्धकार अत्यन्त घनीभूत हो जाता है और इसे ईश्वरीय ज्योति ही छिन्न करनेमें समर्थ हो सकती है। इसीलिये विभिन्न संत-महात्माओंके रूपमें भगवान्ने अवतीर्ण होकर उस महान् परम्पराकी रक्षा की है, जिसे हम सनातनधर्म कहते हैं।

उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दीका काल भारतके ही नहीं वरन् विश्वके जीवनमें संक्रमणका काल रहा है। विज्ञानके इस युगमें मानव प्रकृतिपर पूर्ण विजय प्राप्त करनेमें लगा है। पर जब वह शान्त क्षणोंमें अपनी प्रगतिका लेखा-जोखा करता है, तो उसे लगता है कि उससे शान्ति अभी भी अत्यन्त दूर है और तब उसपर निराशाकी काली छाया पड़ने लगती है। सम्भवतः इसीलिये इस संक्रमणकालमें भगवान्ने अनेक बार महान् संतोंके भावावतारके रूपमें प्रकट होकर आजके मानवके तिमिराच्छन्न पथको आलोक प्रदान किया है। स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, श्रीअरविन्द और महर्षि रमण उसी महान् परम्पराकी कड़ी हैं, जिसकी जड़ें भारतके स्वर्णिम अतीतके गहन स्तरोंतक व्याप्त हैं।

महर्षि रमणका जन्म २९ दिसम्बर १८७९ ई०में मद्रास प्रान्तके छोटेसे कस्बे तिरुचुरीमें हुआ था। उनका बचपन साधारण बालकोंकी तरह ही बीता, परंतु जब वे सत्रहवें वर्षमें थे, तब उनके जीवनमें एक असाधारण घटना घटी। वे उस समय मदुरामें अपने मामाके घर रहते थे। एक दिन अकस्मात् उनके मनमें मृत्युका भय उत्पन्न हुआ, जैसा कि प्रायः बहुतोंके मनमें होता है। उस समय वे पूर्णतः स्वस्थ थे, फिर भी मृत्युकी भावना उनके मनमें अत्यन्त प्रबल हो उठी। उन्हें ऐसा लगा कि वे मरने जा रहे हैं। मृत्युके भयने उनके मनको अन्तर्मुखी बना दिया। वे अपने आपसे पूछने लगे कि मृत्युसे किसका अन्त होता है और उन्हें लगा कि मृत्युसे केवल शरीर ही जड़वत् हो जाता है। उन्होंने तुरंत इसे नाटकीय रूप दिया। वे मुर्देकी तरह निश्चेष्ट होकर पड़ गये। तब उन्होंने सोचा कि उनका शरीर जड़ है और उसे श्मशानमें जला दिया जायगा। पर क्या शरीरके साथ ही उनका अन्त हो जायगा? क्या वे शरीर ही हैं? शरीर वास्तवमें जड़ और निष्क्रिय हो गया है, पर उसके भीतरकी शक्ति ज्यों-की-त्यों है। और उन्होंने अनुभव किया कि वे शरीर नहीं, आत्मा हैं, जो प्रकाशपूर्ण, निर्विकार और अजन्मा है। यह सोचते ही वे पूर्णतः आत्मस्थ हो गये। जीवनभर वे इस अवस्थासे एक क्षणके लिये भी च्युत नहीं हुए।

आत्मानुभवके बाद रमण तिरुवन्नमलाई चले आये। वहाँका शिवमन्दिर अत्यन्त प्रसिद्ध है। शहरके समीप ही अरुणाचल पहाड़ है, जो पुराणोंमें अत्यन्त पवित्र माना गया है। उसे शिवरूप कहा गया है। बादमें रमणने इस पवित्र पर्वतकी गुफाओंमें वर्षों निवास किया, पर धीरे-धीरे उनकी ख्याति फैलती गयी। पहले तो मद्रासके लोग ही उनके दर्शनोंका लाभ उठाते थे, पर शीघ्र ही सुदूर देशोंके लोग भारी संख्यामें भारतकी इस महान् विभूतिकी सन्निधिमें शान्ति प्राप्त करनेके लिये आने लगे। रमणाश्रमका निर्माण हुआ। महर्षि स्वयं १४ अप्रैल १९५० ई०में महानिर्वाणको प्राप्त हुए, पर रमणाश्रम आज भी पावन तीर्थ बना हुआ है। संसारके अनेक भागोंसे अभी भी लोग महर्षि रमणकी तपःस्थलीके दर्शनको आते हैं और असीम शान्ति प्राप्तकर अपनेको कृतकृत्य अनुभव करते हैं।

महर्षि रमणने जिस साधनापद्धतिका प्रचार किया, वह आधुनिक युगके लिये उनकी बहुत बड़ी देन है। यह पद्धति अनेक गुणोंसे समन्वित है और अत्यन्त मौलिकतापूर्ण है। सबसे पहले तो यह कह देना आवश्यक है कि महर्षि रमण ज्ञानी थे और उन्होंने उसी मार्गका प्रचार किया। ज्ञानमार्गका भारतकी साधना-पद्धतियोंमें अपना स्थान है। उपनिषदोंसे लेकर गौड़पादाचार्य और शंकरतक इस मार्गकी परम्पराका अनुभव होता है। बादमें यह मार्ग दुरूह बनकर रह गया। जहाँ एक ओर इस मार्गका सैद्धान्तिक पक्ष अत्यन्त परिपुष्ट होता रहा, वहाँ इसके व्यावहारिक या अभ्यास-सम्बन्धी रूपका तो प्रायः लोप-सा ही हो गया। ज्ञानमार्ग इसीलिये अत्यन्त कठिन माना जाने लगा। यह उचित भी था। केवल सिद्धान्तके द्वारा तो साधनाके क्षेत्रमें विशेष प्रगति हो नहीं सकती। रमण महर्षिकी महानता इस बातमें सन्निहित है कि उन्होंने ज्ञानप्राप्तिको वास्तविक साधनामें केन्द्रित किया। उन्होंने अपने जीवन और उपदेशोंके द्वारा यह स्पष्ट कर दिया कि ज्ञानमार्गमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभ्यासका उतना ही महत्त्व है, जितना अन्यान्य मार्गोंमें। और यह अभ्यासकी प्रक्रिया अन्यान्य मार्गोंकी प्रक्रियाओंसे कहीं सरल और स्पष्ट है।

महर्षिने जिस पद्धतिका उपदेश दिया, उसके बारेमें किसी भी तरहकी रहस्यात्मकताको उन्होंने कभी भी प्रश्रय नहीं दिया। वे इसके सम्बन्धमें इतना अधिक स्पष्ट थे कि कई बार उन्होंने जिज्ञासुओंको अपनी पुस्तकोंको पढ़कर ज्ञानपद्धतिको समझनेका आदेश दिया। दीक्षा वे भी देते थे, पर यहाँ भी उनकी पद्धति अत्यन्त मौलिक थी। उनकी दीक्षा मौन दीक्षा थी। जो कोई भी उनके सम्मुख श्रद्धाभावसे जाता था, वह दीक्षित हो जाता था। इतना ही नहीं, कोई श्रद्धावान् बिना देखे ही उनका गुरुभावसे स्मरण करता था, वह भी उनकी दीक्षा प्राप्त कर लेता था। यह बात उनके महानिर्वाणके बाद भी सत्य है। अभी भी अपनेमें श्रद्धाभाव रखनेवाले प्राणियोंको वे शान्ति प्रदान करते हैं। बात कुछ अद्भुत-सी लगती है। पर सद्गुरुके लिये सब कुछ सम्भव है। वह तो सर्वव्याप्त, सबके हृदयमन्दिरमें आसीन होता है। फिर स्मरणमात्रसे यदि जीवनमें छा जाता है, तो इसमें आश्चर्य या शंकाके लिये कहाँ स्थान रह जाता है?

महर्षिने विचारका उपदेश दिया। उनके अनुसार साधकको शान्तमन होकर स्वयंसे प्रश्न करना चाहिये कि 'मैं कौन हूँ?' इस प्रश्नको उचितरूपमें पूछनेपर वह अपने अस्तित्वकी अतल गहराइयोंमें प्रवेश पा लेगा और तब उसके लिये कुछ जानना शेष नहीं रह जायगा।

'मैं कौन हूँ?'—इसी छोटे वाक्यमें महर्षि रमणकी आत्मोपासनाका रहस्य छिपा हुआ है। अब देखना है कि उन्होंने इस छोटेसे वाक्यको साधनाका आदि-अन्त क्यों माना? सम्पूर्ण सृष्टि 'मैं'—अहंभावसे परिव्याप्त है। हम बराबर इस 'मैं' के प्रति जागरूक बने रहते हैं। हम कुछ भी करते या सोचते हों, 'मैं' बराबर हमारी चेतनाका केन्द्र बना रहता है। पुनश्च प्राणीकी प्रथम भावना 'मैं' ही है। उसीके उत्सरणके पश्चात् 'तुम', 'वह' इत्यादि पैदा होते हैं। जिस तरह 'मैं' प्रथम भाव है, उसी तरह यह अन्तिम भाव भी है। यही असीमको ससीम बनाये हुए है। अतः इसके नष्ट होते ही ससीम असीम बन जाता है।

आखिर यह 'मैं' क्या है? यही अहंभाव है। इसे 'मन' कहते हैं। यही विचारोंका मूलस्रोत है। इसीसे विश्व प्रकट होता है। यह बात कुछ बेतुकी-सी लगती है, पर यह सत्य है कि मनसे ही संसार प्रकट होता है। यदि मन न रहे तो दृश्यका पूर्ण अभाव हो जायगा। हम प्रतिदिन इसका अनुभव करते हैं। उदाहरणतः—जब हम प्रगाढ़ निद्रामें मग्न होते हैं, उस समय हमारे लिये सृष्टिका कोई अस्तित्व नहीं रह जाता। इसका कारण यह है कि उस अवस्थामें मन आत्मामें मिलकर लुप्त हो जाता है। फिर जब हम जागते हैं, तो वह ऊपर आकर पुनः सृष्टि कर लेता है। उसी तरह स्वप्नकी अवस्थामें शरीरके शान्त हो जानेपर भी मन शान्त नहीं होता और उस अवस्थामें भी वह संसारकी सृष्टि कर लेता है। इस तरह जाग्रत् और स्वप्न—दोनों संसार एक ही तरहके हैं; क्योंकि दोनों ही मनके परिणाम हैं। इसीलिये जबतक मनोनाश नहीं होता, मूलतत्त्वका ज्ञान असम्भव है।

'मैं'—मन कहाँसे पैदा होता है? महर्षिने अनुभवसे यह जाना कि यह आत्मासे ही पैदा होता है और यथार्थमें इसका अपना कोई अस्तित्व नहीं है। जिस तरह चन्द्रमा सूर्यके प्रकाशसे प्रकाशमान होता है, उसी तरह मनका कारण आत्मा ही है। चेतनके जड़के सम्पर्कमें आनेपर जो विकार पैदा होता है, वही 'मन' कहलाता है। चूँकि 'मैं' या मन आत्मासे ही पैदा हुआ है, इसीलिये 'मैं' की रस्सीको पकड़कर आत्मामें डूबा जा सकता है। यही 'मैं' आत्माके ऊपर पर्दा डाले हुए है। जब 'मैं कौन हूँ?' इस आत्मविचारके द्वारा हम इस पर्देको फाड़ देते हैं, तो आत्माके प्रकाशमें 'मैं' डूब जाता है और फिर कुछ करना या जानना शेष नहीं रह जाता।

सभी साधनापद्धतियाँ मनोनाशपर ही जोर देती हैं। जबतक मनका नाश नहीं होता, मुक्ति असम्भव है। और इसी मनोनाशके लिये महर्षिने अत्यन्त सुन्दर मार्ग प्रस्तुत किया—'मैं कौन हूँ'। जब हम स्वयंसे प्रश्न पूछते हैं, तो विचित्र प्रकारकी संवेदनाका अनुभव होता है। लगता है कि विश्वको समझनेका हमारा विचार दम्भमात्र था। 'मैं' को समझे बिना अन्योंको कैसे समझा जा सकता है? 'मैं' क्या है, कहाँसे उत्पन्न होता है? यदि किसीसे यह प्रश्न किया जाय, तो वह अपने शरीरकी ओर संकेत करेगा। सचमुच अधिकांश लोग शरीरको ही 'मैं' समझ बैठे हैं। इसे ही देहात्मबुद्धि कहा गया है। पर क्या शरीर 'मैं' है? कुछ विचार करनेपर लगता है कि शरीर 'मैं' नहीं है। शरीर तो घटता-बढ़ता रहता है और अन्तमें निष्प्राण हो जाता है। पर 'मैं' का अनुभव तो अनन्तकालसे चला आ रहा है। इसका अर्थ है कि शरीर 'मैं' नहीं है। शरीरके बाद मनको लें। क्या 'मैं' मन है? विचारोंके प्रवाहको ही मोटे तौरपर 'मन' कहा जाता है। पर क्या 'मैं' विचार है? 'मैं' तो सभी विचारोंका जनक—नियन्ता है। अतः इसे मन भी नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा जा सकता। यह बात पूर्णतः हृदयंगम कर लेनेके बाद कि 'मैं' न शरीर है, न मन,—वास्तविक साधना प्रारम्भ होती है। अब प्रश्न उठता है कि शरीर और मनके समाप्त हो जानेके बाद जो यह 'मैं' बच गया, वह क्या है? सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेपर वह भी मनका ही अन्तिम रूप है। अहर्निश 'मैं कौन हूँ?' पूछते रहनेपर यह 'मैं' भी लुप्त हो जाता है और तब अकस्मात् आत्माका प्रकाश साधकमें भासित हो उठता है। उस समय जिस 'मैं' की अनुभूति होती है, वह सच्चिदानन्दरूप और मूर्त-अमूर्त सबके परे होता है। वही 'ब्रह्म' है। यही साधनाकी चरम परिणति है।

अब प्रश्न उठता है कि शरीरमें आत्माकी स्थिति कहाँ है। वैसे तो आत्मा सर्वत्र व्याप्त है, फिर भी शरीर-भावके रहनेतक उसके लिये किसी स्थानको इंगित करना उचित ही है। महर्षिने अनुभव किया कि हृदयमें वक्षके मध्यबिन्दुसे कुछ दाहिनी ओर आत्मा स्थित है। महर्षिने हृदयके लिये जिस स्थानका संकेत किया, वह यौगिक चक्रोंके तरहकी कोई चीज नहीं है और न उसका कोई रंग या आकार-प्रकार ही है। ब्रह्मसूत्र और अन्य प्राचीन ग्रन्थोंमें भी हृदयको ही आत्माका वास माना गया है। महर्षि रमणका कहना था कि जब हम स्वयंको निर्दिष्ट करनेके लिये कोई संकेत करते हैं, तो हमारी अँगुली वक्षके दाहिनी ओर अपने-आप उठ जाती है। इससे भी सिद्ध होता है कि वहीं हमारे अस्तित्वका मूलबिन्दु अवस्थित है।

इस साधना-पद्धतिमें किसी भी प्रकारकी विचार-प्रक्रियाओंके लिये कोई स्थान नहीं है। बहुत-से लोग '**सोऽहं**' या '**अहं ब्रह्मास्मि**' का जप करते हैं। यहाँ इस प्रकारके जपको स्थान नहीं दिया गया है। महर्षिका कहना था कि '**सोऽहं**' या '**अहं ब्रह्मास्मि**' तो '**ब्राह्मी स्थिति**' का नाम है। जबतक वह स्थिति प्राप्त नहीं हो जाती, तबतक इस प्रकारके जपसे विशेष लाभकी सम्भावना नहीं। पर इस प्रकारके जपसे एक बात जरूर होती है। साधककी मनोदशामें थोड़ा-बहुत परिवर्तन हो जाता है। महर्षिकी पद्धतिकी नवीनता इस तरह स्पष्ट हो जाती है। ज्ञानमार्गमें पहले महावाक्योंके जपको ही सर्वोपरि स्थान प्राप्त था। रमणने इसके पूर्वकी साधना-पद्धतिको हमारे सामने रखा। इसका अर्थ यह नहीं कि उन्होंने कोई नयी बात कह दी। उन्होंने जिस पद्धतिका उपदेश दिया, इसका उल्लेख अद्वैतविषयक बहुत-से ग्रन्थोंमें है। उदाहरणतः योगवासिष्ठमें कहा गया है कि 'मैं कौन हूँ' के विचारसे ब्रह्मका अनुभव होता है। पर बादमें यह अभ्यासयोग एकदम विलुप्त-सा हो गया। महर्षिने इसे एक बार पुनः सामने रखकर शुष्क ज्ञानमार्गको अत्यन्त सरस बना दिया।

अन्तमें महर्षि रमणके अनुसार साधकको किसी भी आसनमें बैठकर साधना प्रारम्भ करनी चाहिये। वह अपने ध्यानको छातीके दाहिनी ओर हृदयमें केन्द्रित करे और स्वयंसे यह प्रश्न पूछे—'मैं कौन हूँ?' प्रश्न-वाक्यके जपसे यहाँ तात्पर्य नहीं है। सम्पूर्ण ध्यानको इस 'मैं' पर केन्द्रित कर देना चाहिये और एक क्षणके लिये भी उसे वहाँसे नहीं हटने देना चाहिये। यदि कोई दूसरा विचार उठता है, तो उसे पूछना चाहिये—'यह विचार किसे हो रहा है? मुझे हो रहा है? 'मैं कौन हूँ?' इस तरह 'मैं कौन हूँ?' के तारको कभी टूटने नहीं देना चाहिये। प्रथम प्रयासमें ही साधकको यह मालूम होने लगेगा कि इस प्रक्रियासे उसके अन्तर्मनके हर स्तरपर कितना जोर पड़ता है। जब अभ्यास अत्यन्त दृढ़ हो जाय, तो खाते-सोते, उठते-बैठते हर घड़ी 'मैं कौन हूँ?' का ध्यान करना चाहिये। धीरे-धीरे सारी विकृतियोंके समाप्त होनेपर मन शुद्ध होकर ब्रह्ममें ही, जहाँसे निकला है, लीन हो जायगा। इसे ही 'विदेह-स्थिति' कहते हैं। ऐसे ही महात्माओंको 'स्थितप्रज्ञ' कहा जाता है। प्राचीन कालमें जनक, याज्ञवल्क्य, अष्टावक्र, वसिष्ठ, दत्तात्रेय आदि इसी प्रकारके महापुरुष थे। आधुनिक कालमें भी रामकृष्णपरमहंस और रमण महर्षि आदि उसी विदेह-स्थितिके उदाहरण हैं।

महर्षि रमणने अद्वैतका प्रचार किया, पर इसका यह अर्थ नहीं कि वे अन्य साधना-पद्धतियोंके विरोधी थे। उन्होंने जप-प्राणायामादिकी भी अत्यन्त प्रशंसा की है। उनके अनुसार अपनी मानसिक धाराके अनुरूप विभिन्न साधक विभिन्न पद्धतियोंको अपनाकर ब्रह्मको प्राप्त कर सकते हैं। उन्होंने स्वयं अनुभव किया कि ज्ञानमार्गमें अग्रसर होना उन्हींके लिये सम्भव है, जिनका मन अनेक जन्मोंकी साधनाओंसे शुद्ध हो गया है। पर कोई एकाग्र मनसे उनके द्वारा निर्दिष्ट साधनाका अभ्यास करे, तो इसी जन्ममें ब्रह्मको प्राप्त हो सकता है; क्योंकि ब्रह्म-तत्त्व तो उसमें वर्तमान है ही, आवश्यकता केवल इतनी ही है कि साधनाके द्वारा मिथ्या-ज्ञानको नष्ट कर दिया जाय—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

(गीता १८। ६१)

वह तो हृद्देशमें स्थित है ही। उससे अलग हम हैं ही क्या? महर्षि रमणद्वारा निर्दिष्ट पद्धतिसे हृद्देशस्थित परमात्माका साक्षात्कार हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम-वैभव

(पंचरसाचार्य श्रद्धेय स्वामी श्रीरामहर्षणदासजी महाराज)

१-हरिनामकी महिमा अनन्त और अत्यन्त पवित्र है, जिसके गुण-गुणोंका वर्णन स्वयं प्रभु भी नहीं कर सकते।

२-ईश्वरकी सम्पूर्ण शक्ति उनके नाममें निहित है।

३-श्रीहरि और हरिनाममें किंचित् भी भेद नहीं है।

४-भगवन्नामके धनुषमें आत्मारूपी बाण चढ़ाकर ब्रह्मरूपी लक्ष्यको अप्रमत्त होकर भेदना चाहिये, जिससे तन्मयता प्राप्त हो जाय।

५-प्रभुके नाममें पापोंको भस्म करनेकी शक्ति जितनी है, उतनी पापात्मामें पाप करनेकी शक्ति नहीं है।

६-निरन्तर सप्रेम हरिनाम-ग्रहण करनेवालेके हृदयमें हठात् भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सभी सद्गुण अपना आवास बना लेते हैं।

७-श्रीरामनामके जापक श्रीहनुमान्जीका रोम-रोम रामनामसे अंकित हो गया था।

८-श्रीरामनामके प्रभावसे प्रह्लादजीके लिये अग्नि चन्दनके समान शीतल हो गयी तथा कठिन-से-कठिन विघ्नोंके दुरूह सागरसे वे सहज ही बिना कुछ किये पार हो गये।

९-श्रीकृष्णनाम-जापक अर्जुनजीके सर्वांगसे मधुर-मधुर श्रीकृष्णनामकी ध्वनि निकलती थी।

१०-गूढ़-से-गूढ़ गतियोंका ज्ञान एवं सम्पूर्ण योगकी सिद्धियोंकी प्राप्ति नाम-जापकको सहज ही हो जाती है।

११-अजामिल-जैसा पापी अपने पुत्रका नाम 'नारायण' लेकर भवसागरसे पार हो गया। नामके प्रभावसे अनन्त पापात्माओंका उद्धार हो गया है, हो रहा है और होता रहेगा।

१२-भगवन्नाममें श्रीभगवान्से अधिक आश्चर्यमय प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

१३-स्वररहित रामनामके अक्षर 'र'कार और 'म'कारकी जब ऊर्ध्वगति हो जाती है, तब जापकको ऊर्ध्वगति क्यों न प्राप्त होगी। नाम लेते ही भवसागरका शोषण हो जाता है।

१४-भगवन्नामकी महिमा समझकर भगवान् शंकर रात-दिन रामनामका जप किया करते हैं।

१५-भगवन्नामकी 'र'कार ध्वनि प्राणियोंके भीतर सर्वदा अपने-आप ध्वनित होती रहती है, जिसके कारण ही वे जीवित हैं।

१६-भगवन्नाम क्या नहीं करता और उससे क्या नहीं होता अर्थात् हरिनामहीसे सृष्टिका सृजन, संरक्षण और संहार होता है।

१७-रामनामहीसे सशक्ति त्रिविध देव उत्पन्न होकर जगत्का कार्य किया करते हैं।

१८-नामीसे अधिक नाममें रुचि होनेसे नामीके हृदयमें नाम-जापकसे अत्यन्त प्रीति करने एवं उससे मिलनेकी रुचि उत्पन्न हो जाती है।

१९-परमात्मा अपने नामकी महिमाको समझकर स्वयं नामका स्मरण करते ही नाम बन गया।

२०-भगवान्के नाम, रूप, लीला तथा धाम—चारों परमतत्त्व एवं सच्चिदानन्दात्मक हैं, किंतु समझनेसे नामकी महिमा कुछ और है; क्योंकि नामके ग्रहणसे शेष तीनोंकी सुलभता अपने-आप ही हो जाती है।

[प्रेषक—पं० श्रीरामायणप्रसादजी गौतम]

'सुंदर मनुषा देह यह'

सुंदर मनुषा देह यह, पायो रतन अमोल।
कौड़ी साटे न खोइए, मानि हमारो बोल॥
बार-बार नहिं पाइए, सुंदर मनुषा देह।
राम भजन सेवा सुकृत, यह सौदो करि लेह॥
सुंदर साँची कहतु है, मति आनै मन रोस।
जो तैं खोयो रतन यह, तौ तौही कौं दोस॥
सुंदर साँची कहतु है, जो मानै तो मानि।
यहै देह अति निंद्य है, यहै रतन की खानि॥

[श्रीसुन्दरदासजी]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वास्तविक गुरु-दक्षिणाके प्रेरक प्रसंग

(स्वामी डॉ० श्रीविश्वामित्रजी महाराज)

जगद्गुरु तो सगुण-निराकार जगदीश्वर ही हैं। अनेक सद्गुरुओंके रूपमें जन्मे संत-महापुरुष उन्हींके विभिन्न स्वरूप हैं। परमगुरु परमात्मा उनके माध्यमसे शिष्योंको नाम-दान दिलवाते हैं, गुरुमन्त्रकी दीक्षा दिलवाते हैं, उन्हें अपनेसे भी बड़ा स्थान दिलवाते हैं। उन्हींके मुखारविन्दसे यह उद्घोष है—*'मोतें संत अधिक करि लेखा'* (रा०च०मा० ३। ३५। २) अर्थात् सन्तोंको मुझसे भी अधिक करके मानना। क्यों? नाम-दान शिष्योंको स्वयं न देकर, शरीरधारी गुरुओंसे दिलवाते हैं और शिष्यगण दीक्षा लेकर गुरुओंको उपहार देते हैं, जिसे गुरु-दक्षिणा कहा जाता है। यह सामग्री प्रायः धन, वस्त्र, खाद्य-पदार्थों अथवा अन्य दैनिक प्रयोगकी वस्तुओंके रूपमें होती है। सच्चे सद्गुरु-सन्त एवं परमगुरु परमात्माको शिष्योंसे कैसी दक्षिणा अपेक्षित है, कुछेक दृष्टान्तोंके माध्यमसे उसीका उल्लेख प्रस्तुत है—

[१]

विद्याध्ययन समाप्त होनेपर श्रीकृष्णने गुरु सान्दीपनिके चरणोंमें प्रार्थना की—'गुरुदेव! आज्ञा करें, श्रीचरणोंमें क्या गुरु-दक्षिणा दूँ? क्या सेवा करूँ?' गुरुदेव बोले—'मुझे तो कुछ नहीं चाहिये, कोई आवश्यकता नहीं।' 'गुरुदेव! आपको कोई आवश्यकता नहीं, लेकिन मुझे तो गुरु-दक्षिणा देकर सेवा करनेकी आवश्यकता है।' 'अच्छा! तो अपनी गुरु माँसे पूछ, उसे क्या चाहिये?' श्रीकृष्णने गुरुपत्नीसे पूछा—'आपकी क्या सेवा करूँ?' 'कृष्ण! तू हमारा सबसे समर्थ विद्यार्थी है। मेरा बेटा यमलोक चला गया है, मुझे वह ला दे।' श्रीकृष्णने यमपुरीसे गुरु-पुत्रको लाकर माँकी गोदमें रख दिया। कितना महत्त्व है गुरु-दक्षिणाका, गुरु-शिष्य सम्बन्धका। इस पवित्र सम्बन्धकी पूर्णताके लिये शिष्यको नाम-दान, गुरुमन्त्र या विद्या-प्राप्तिके बाद गुरुको किसी-न-किसी रूपमें गुरु-दक्षिणाका देना अनिवार्य है।

[२]

महात्मा शुकदेव गर्भमें ही आत्मज्ञानी हो गये थे। वे वहाँसे बाहर निकलनेसे इनकार करते हुए कहने लगे—'मैं मायासे अलिप्त रहना चाहता हूँ।' भगवान्‌श्रीने मायाकी गतिको पाँच पलके लिये रोका, तब शुक गर्भसे बाहर निकले। वैराग्य इतना प्रबल कि जन्मते ही जंगलमें चले गये। पिता महर्षि व्यासदेवजीने अनासक्त पुत्रको राजा जनकके पास भेजना चाहा, किंतु शुकदेवजीके मनमें संशयजन्य कई प्रश्न थे, जैसे—वे राजा मैं ऋषि, वे गृहस्थ मैं त्यागी, वे क्षत्रिय मैं ब्राह्मण, वे भोगी मैं योगी-संन्यासी। मैं ऐसे राजा जनकको गुरु कैसे बनाऊँ? अनेक बार गये, परंतु वापस लौट आते। सन्त-महात्माकी निन्दासे, उनमें दोष-दर्शनसे अपने पुण्योंकी कमाई लुटती है। देवर्षि नारद इन्हें शिक्षा देनेहेतु एक वृद्धका रूप धारण करके, एक पानीके नालेमें मिट्टी डाल रहे थे। बहते जलमें मिट्टी ठहरे न। शुकने उधर देख पूछा—'क्या कर रहे हो?' वृद्धने उत्तर दिया—'बाँध बना रहा हूँ।' 'मूर्ख कहीं का—क्या बाँध ऐसे मिट्टी फेंकनेसे ही निर्मित हो जाता है?' वृद्धने तत्काल मुँह घुमाकर कहा—'मूर्ख मैं नहीं, मूर्ख तो वह शुकदेव है, उसकी मूर्खता देखो, अभिमानवश उसने गुरुभावका तिरस्कारकर अपनी ज्ञानराशि व्यर्थ ही खो दी।' शुक तो सुनते ही बेहोश हो गये, होश आया तो उठे और सीधे राजा जनकके पास पहुँचे।

श्रद्धा सुभक्ति प्रेम से, आये जनक समीप।
जो थे आत्म जगत में, धर्म पोत के द्वीप॥

द्वारपालद्वारा कहला भेजा—

राजन्! शुक आया यहाँ, लिए प्रेम की प्यास।
दर्शन दो करके दया, तारो बेड़ा पार।
अवस्था यौवन जानकर, दी आज्ञा मिथिलेश।
ड्योढ़ी पर ही ठहरिए, तीन रात तक शेष॥
सुन आज्ञा शुकदेव ने, किया पालन तत्काल।
खड़ा रहा त्रिदिवस तक, पड़ी न त्यौड़ी भाल॥

(भक्तिप्रकाश)

इसी प्रकार अन्तःपुरमें तीन दिवस-तीन राततक और ठहरनेको कहला भेजा। वहाँ भी शीतकालमें उपवास रखे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए शुकदेवजी रुके रहे। वहाँ नारियोंका स्वच्छन्द आना-जाना भी बना रहा, पर शुकदेवजी तो भक्ति-लगनमें मग्न, मस्त रहे। यह देखकर नृपने पधारनेका कारण पूछा?

हाथ जोड़कर जनक को, बोले शुक मुनिराज।
आत्म-ज्ञान सुभक्ति पथ, मुझे दीजिए आज॥

(भक्तिप्रकाश)

सद्‌गुरु महाराज जनकने शुकदेवको अधिकारी जानकर, पुण्य-पात्र मानकर हरिनामकी दीक्षा दी। शुकदेवजीने कुछ दिन श्रीगुरुचरणोंमें बैठकर साधना की, सब संशय दूर हुए। शिष्यने गुरुदेवको गुरु-दक्षिणा देनी चाही। 'वत्स! मुझे कुछ नहीं चाहिये।' आग्रह करनेपर तथा गुरु-दक्षिणाकी अनिवार्यता स्पष्ट करनेके लिये राजा जनकने कहा—'तुम्हारी दृष्टिमें जो निरुपयोगी हो, वह मुझे दे दो।' शिष्यने सोच-विचारकर मिट्टी उठायी। मिट्टी तत्काल बोली—'मैं नदियों, सागरों, पर्वतों, महलों-मकानोंको देह-दान देती हूँ। प्रत्येक प्राणीको अन्न, फूल, फल, ईंधन देती हूँ। मैं व्यर्थ कैसे?' उसे फेंक पत्थर उठाया, वह बोला—'मुझसे मकान, महल, किलोंका निर्माण होता है, मैं व्यर्थ नहीं।' शुकदेवजीका माथा ठनका—देहाभिमान ही दोषी है, निरुपयोगी है, इसीसे संसारमें बन्धन है। अतः प्रत्येक शिष्यको अपना कर्तृत्व अर्थात् कर्तापनका अभिमान, अपना अहं ही श्रीगुरुचरणोंमें गुरु-दक्षिणाके रूपमें चढ़ाना चाहिये। गुरुदेव सत्-शिष्यसे माँगते भी यही हैं।

[३]

सन्त तुकाराम अपने शब्दोंमें अपने बारेमें रहस्यपूर्ण बातें बतलाते हैं—'कथावार्ता सुनते-सुनते मेरी प्रीति प्रभुसे हो गयी। मैं विट्ठलभगवान्‌का उपासक बन गया, उनके नामका सतत जप करने लगा। प्रभुको मुझपर दया आयी, स्वप्नमें सद्‌गुरु मिले। मैं गंगा-स्नान करके लौट रहा था, रास्तेमें मिलन हुआ। कहा—'मैं भगवान् विट्ठलनाथकी प्रेरणासे आपको उपदेश देने आया हूँ।' मैंने कहा—'मैंने तो प्रभुकी कोई सेवा नहीं की, कितने दयालु हैं वे। राम-कृष्ण-हरि मन्त्र दिया और गुरु-दक्षिणामें पावभर तूप (घी) माँगा। तुकाराम स्पष्ट करते हैं—तूपका वास्तविक अर्थ है—मैं-मेरापन अर्थात् अहंता-ममता, घी नहीं। समझाया—तू न पुरुष है न स्त्री, तू तो आत्मा है, उस अंशी अविनाशीका अंश। देहके सारे भाव मुझे अर्पण कर दे अर्थात् अपनी अहंता (अपना अहं) मुझे दे दे।'

[४]

गुरुनानकदेव भ्रमण करते-करते, एक नगरमें पहुँचे। वहाँके राजा दर्शनार्थ पधारे, अति प्रभावित हुए। अतः कुछ भेंट करनेकी उत्कट इच्छा व्यक्त करते हुए कहा—'बाबा! मैं कुछ देना चाहता हूँ।' राजन्! जो तेरा अपना हो सो दे दो। सोना, चाँदी, हीरे, जवाहरात सब आगे रख दिये, कृपया स्वीकार करें। ये सब तो तेरे नहीं, तेरेसे पूर्व पिताके, उनसे पहले दादाके और तेरे बाद तेरे पुत्रके हो जायँगे। तेरे मरणोपरान्त यहीं छूट जायँगे, तो तेरे कैसे हुए? तेरा शरीर भी यहीं छूट जायगा, यह भी तेरा नहीं। मन भी तेरा नहीं, क्यों? तू तो यहाँ बैठा है और मन कहीं और घूम रहा है। अपनी वस्तुपर तो नियन्त्रण होता है, मन तो दिन-रात भटकता है। तू तो भजन-पाठके लिये बैठा है, अर्थात् शरीर तो सत्संगतिमें बैठा, पर मन घर-परिवारके साथ या कहीं और। राजन्! बुद्धि भी तेरी नहीं, तेरी हो तो सदा सही निर्णय लेती। उसमें तो अज्ञान भरा पड़ा है, तभी तो सत्‌को असत् और दुःखदायी वस्तुको सुखदायी बताती है। यही माया है। बाबा! फिर आप ही बताओ—क्या दूँ? राजन्! जब राजा जनकके सामने भी ऐसी ही समस्या थी—महर्षि याज्ञवल्क्यसे उपदेशकी प्रार्थना की थी, जिससे मन-बुद्धि वशमें रहें—

हाथ जोड़ विनती की भारी, ज्ञान दान दो हूँ अधिकारी।
ऋषि बोला राजन् बड़भागी, वैरागी तू ही है त्यागी।
ध्यान यजन अब आप रचाओ, दक्षिणा देकर चित्त टिकाओ।

राजाने गुरु-दक्षिणा देते हुए प्रार्थना की—'महर्षि! सारा राज्य ले लें।' ये तो तेरा नहीं, पूर्वजोंका था और तेरे पास भी नहीं रहेगा। ऐसी वस्तु दो जो तुम्हारी हो। 'कृपया धन ले लें।' 'वो भी तेरा नहीं राजन्! बहुधा भाग पिताका, शेष प्रजाका। तेरा कैसे? घोड़े, हाथी, गाड़ियाँ भी तेरे नहीं, आज तुम्हारे पास, कल दूसरेके पास। राजन्! तेरा तो तन भी नहीं, मुर्दा हो यहीं छूट जायगा। मनकी दक्षिणा दो।' गुरुनानक इसे अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं—'यह जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कह रहे हो—मैं धन देता हूँ, राज्य, तन, मन, बुद्धि देता हूँ, ये सब अपने पास रखें, मुझे 'मैं' दे दें। यदि 'मैं' दे दिया, तो सब कुछ मिल गया और यदि 'मैं' नहीं दिया, तो सब कुछ देनेपर भी कुछ नहीं दिया।' महर्षि याज्ञवल्क्य राजा जनकसे उनका मन माँगते हैं—

शुभ भक्ति में जनक जी बोले, मेरे मन मुनिवर का हो ले।
ऋषि बोला आशीष हो मेरा, स्वीकृत किया दान ही तेरा।
आत्मज्ञान हुआ अब जानो, सफल यजन राजन् यह मानो।
वह बोला सुन गुरुवर प्यारे, उड़े वासना पंख पसारे।
न स्थिरता मन में है आई, चंचलता की है अधिकाई।
मुनि बोला—है दान अधूरा, इससे टिका न मन तव पूरा।
दिया दान मन अब न डुलाओ, मेरा मन न काम में लाओ।
मन अपना मानो अब मेरा, राज काज करिए बहुतेरा।
मौन मूर्ति स्थिर ही हो के, शांत हुआ संशय सब खो के।
निश्चल मन अडोल थी काया, मिटी सकल ही मन की माया।

(भक्तिप्रकाश)

ऋषिने आशीर्वाद देते हुए कहा—हे राजन्! आपका मन प्रसादरूपमें लौटाता हूँ, इसे अपना न मान, मेरा मानते हुए राज्य भी करें और श्रीराम-भजन भी। राजा जनक विदेह हो गये।

[५]

तिब्बतकी एक सच्ची घटना है, एक शिष्य गुरुदेवके पास पहुँचा, दीक्षाकी याचना की। गुरुने कहा—'यहाँ सैकड़ों शिष्य हैं, तुम्हारे लिये स्थान रिक्त नहीं।' 'गुरुदेव! कृपा करें, मैं कहीं भी इधर-उधर पड़ा रहूँगा।' 'अच्छा, तू सबके भोजनहेतु चावल कूटा कर।' शिष्यने गुरु-आज्ञा शिरोधार्यकर दिन-रात यही काम किया। न शिष्य कभी गुरुके पास गया और न ही गुरु कभी शिष्यके पास पधारे। अनेक वर्ष बीत गये, गुरुदेवके निर्वाणका समय आ गया। गुरुपद प्रदान करना चाहते थे, अतः शिष्योंसे कहा—'जो वर्षों यहाँ शिक्षा ग्रहण की, उसका सार लिखकर दें।' लगभग सभीने यही लिखा—'मन एक दर्पण है, गुरु उसपर जमी धूलको साफ कर देते हैं।' गुरु अप्रसन्न एवं असन्तुष्ट। अतः कहा—'उस चावल कूटनेवालेसे भी एक बार पूछ लो।' सब गये, पूछनेपर उत्तर दिया—'बन्धुओ! मैं अनपढ़, लिख नहीं सकता, परंतु आप सबने क्या लिखा?' जो अधिकांशने लिखा था, बतला दिया। तब कहा—'भाइयो! जब गुरु मिल गये, तो मन अपने पास कहाँ रहा? गुरु तो मनके लुटेरे हैं, हम तो उनका मन प्रयोग करते हैं अर्थात् सब कुछके लिये सद्गुरु जिम्मेदार।' सुनकर प्रथम तथा अन्तिम बार गुरुमहाराज शिष्यके पास पधारे, गुरुपद प्रदान किया और स्वयं निर्वाणको प्राप्त हो गये।

उक्त वर्णित दृष्टान्तोंसे गुरु-दक्षिणाकी अनिवार्यता, महत्ता और गुरुता सिद्ध हो जाती है। गुरु-दक्षिणा भेंट करके शास्त्रीय पद्धतिके अनुसार गुरु-शिष्यसम्बन्ध सुपुष्ट हो जाता है। शिष्योंने श्रीगुरुचरणोंमें गुरु-दक्षिणाके रूपमें देहाभिमानकी भेंट या अहंकी भेंट अथवा मनको सैद्धान्तिक रूपसे समर्पित कर दिया, किंतु इन सबका क्रियात्मक रूप क्या होगा? इस विषयमें कुछ दृष्टान्त प्रस्तुत हैं—

(१)

एक बार महात्मा बुद्धने अपने शिष्योंसे कहा—'भिक्षुओ! आजसे चार माह बाद मेरा परिनिर्वाण हो जायगा, तब यह शरीर आपके मध्यमें नहीं रहेगा, अतः जो करनेयोग्य है, उसे शीघ्र करो, देरीके लिये अब समय नहीं।' सकल संघ महाविषादमें डूब गया। शिष्य रोते-धोते, छाती पीटते, बिलखते, गहरी सोचमें डूब गये—अब क्या होगा? सभी चिन्ताग्रस्त थे कि व्यवस्था कैसे चलेगी? तिष्य नामक शिष्य खबर सुननेके बाद न रोया, न चिल्लाया, मौन हो गया। साथी सोचने लगे, इसे इतना गहरा सदमा (धक्का) कि इसने बोलनातक बन्द कर दिया। भय था कि कहीं पागल न हो जाय। तिष्य अपने सद्व्यवहारके कारण सर्वाधिक प्रिय था, चुप्पीकी सूचना गुरुदेवके पास पहुँची कि तिष्यने कछुएकी भाँति अपने-आपको भीतर समेट लिया है। बुलाया शिष्यको, श्रीचरणोंमें मस्तक नवाया। बुद्धने कहा—'वत्स! ये भिक्षु तुम्हारी भाव-दशा, मनःस्थितिके बारेमें जानना चाहते हैं।' तिष्यने विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया—'प्रभु! आपके आदेश 'जो करनेयोग्य है, करो, देर मत करो, मैं उसी आदेशका यथासम्भव पालन करनेकी कोशिश कर रहा हूँ। कृपा करें, मेरा संकल्प पूरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो।' अश्रुपूरित आँखोंसे, तिष्यने विनयपूर्वक निवेदन किया—'मेरे प्रभु! हे करुणावान् गुरुदेव! निर्वाणसे पूर्व मेरी 'मैं' की मृत्यु हो जाय, इसके लिये बल भी दें तथा आशीर्वाद भी। अब न बोलूँगा, न हिलूँगा तथा न ही डोलूँगा। मुझे सारी शक्ति इसीपर लगानी है। हे दयालु! कृपा करो, ताकि यह चार माह, जीवनकी क्रान्तिके लिये लगा दूँ, इस पार या उस पार हो जाऊँ।' शिष्यकी बातें सुन, प्रसन्नचित्त गुरुने कहा—'हे भिक्षुओ! तिष्यकी भाँति बनो। रोने-बिलखनेसे क्या होगा, पुष्पमालासे पूजा मेरी पूजा नहीं, जो कोई ध्यानके फूल रोज चढ़ाता है, वही असली पूजा करता है। अपने जीवनको साधनामय बनाना, दिव्य बनाना ही मेरी वास्तविक पूजा है। जो तिष्यको हुआ, वही तुम अपनेमें होने दो।'

गुरुकी आज्ञा, उनके आदेशों, उनकी शिक्षाओंका, परम्पराओंका अक्षरशः पालन, पवित्र जीवन-यापनके लिये दृढ़ संकल्प होना, भगवन्नामकी कमाई अर्जित करना, सत्कर्मोंकी पूँजी अर्जित एवं संचित करना तथा सब प्राणियोंमें नारायणको देखना और गुरुसेवाकी भाँति उनकी सेवा करना, उनसे प्रेमपूर्ण व्यवहार करना, स्वाध्याय करते रहना तथा गुरुके उपदेशोंके प्रचार-प्रसारद्वारा उन्हें सत्संगके लिये प्रेरित करना और साधनाके लिये प्रोत्साहित करना ही वास्तविक गुरुपूजा है। ऐसे पूजारूपी सुमन समर्पित करते रहनेके लिये अर्थात् उक्त वचनोंके पालनके लिये वचनबद्ध रहना ही वास्तविक गुरु-दक्षिणा है।

(२)

गंगातटपर एक ऋषिका आश्रम, जहाँ अनेक शिष्य आध्यात्मिक शिक्षा ग्रहण करते। शिक्षा पूरी होनेपर अपने-अपने घर वापस चले जाते। जाते समय आचार्यसे पूछते—'गुरुदेव! गुरु-दक्षिणामें क्या दें?' गुरु कहते—'तुमने जो पाया है, समाजमें जाकर, उसपर अमल करना, विद्याको आचरणमें लाना, अपने पैरोंपर खड़े होओ, सच्ची कमाई करो और फिर एक साल बाद तुम्हारा जो दिल चाहे, वह दे जाना।' शिष्य आश्रम छोड़ अपने-अपने काम-काजसे जो कमाई होती, उसमेंसे श्रद्धापूर्वक कुछ भाग निकालकर गुरु महाराजको दे जाते। एक बार गुरुकुलमें एक सीधा-सादा शिष्य आया, साधारण गृहस्थ था, दिनभर मेहनत करके अपने परिवारका पालन-पोषण करता। सीखनेकी तीव्र इच्छा थी, अपने सद्व्यवहारसे सबका दिल जीत लिया। ऋषि उसे स्नेहपूर्वक पढ़ाते, जो सीखता, उसपर मनसे अमल करता, जो काम दिया जाता, उसे अगले दिन पूरा करके लाता। जब शिक्षा पूरी हुई तो उसने भी पूछा—'गुरुदेव! दक्षिणामें क्या दूँ?' ऋषिने उसे भी वही कहा, जो वे अन्य शिष्योंसे कहते थे। एक वर्ष बाद लौटा, चरणवन्दना की और श्रद्धासे बोला—'गुरुदेव! गुरु-दक्षिणा देने आया हूँ।' उसे देख गुरु प्रसन्न हुए और पूछा—'बेटा! क्या लेकर आये हो?' दस लोगोंको खड़ा कर दिया, जो उसके गाँवके थे। कहा—'गुरु-दक्षिणामें इन्हें लाया हूँ।' 'किसलिये?' 'प्रभु जो शिक्षा आपने मुझे दी थी, उसे इनतक पहुँचाया, उतनेसे ही इनका जीवन सँवर-सुधर गया, अब आप इन्हें अपना शिष्य बना लें ताकि इतने लोग और सन्मार्गपर चल सकें।' हर्षित ऋषिने कहा—'तुमने मुझे सर्वश्रेष्ठ गुरु-दक्षिणा दी है। बेटा! तूने यहाँसे पाया भी सर्वश्रेष्ठ, बाँटा भी सर्वश्रेष्ठ और मुझे भेंट भी सर्वश्रेष्ठ ही किया।'

बहुधा गुरुचरणोंमें लोग अपनी-अपनी भौतिक समस्याओंके समाधानके लिये जाते हैं, सत्संगमें पधारनेका आशय भी लोगोंका प्रायः यही होता है कि संत-दर्शनसे कामनाएँ पूर्ण होंगी। नाम-दीक्षा भी इसी उम्मीदसे लेते हैं कि हमारी भौतिक समस्याओंका समाधान होगा। कुछ समय नाम भी जपते हैं, तरह-तरहकी पूजा भी करते हैं, एकसे निराश हो दूसरेका भी वरण करते हैं। आज वृन्दावन, कल ऋषिकेश, परसों बालाजीभगवान्‌के चरणोंमें हाजिरी भरते हैं। जीवन भटकनमें ही व्यतीत हो जाता है। ऐसोंके लिये ही भक्त कबीर साहब फरमाते हैं—

दुनिया देखो मस्त दीवानी, भक्ति भाव न बूझै जी।
कोई आवे तो बेटा माँगे, भेंट रुपया दीजै जी॥
कोई आवे तो दुःख का मारा, हम पर कृपा कीजै जी।
कोई रचावे ब्याह-सगाइयाँ, संत गोसाइयाँ रीझै जी॥
सच्चे को कोई ग्राहक नाहीं, झूठे जगत पसीजै जी।
कहे कबीर सुनो भई साधो, इन अंधों को क्या दीजै जी॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सच्चे सन्त संसारियोंकी ऐसी मनोदशा देख फरमाते हैं—'भाई! हमारी हालत तो ऐसी है, जैसी अन्धे ग्राहकोंके बीच दर्पण बेचनेवाले दूकानदारकी।' ऐसोंको न आध्यात्मिक गुरुके महत्त्वका बोध है, न ही गुरु-दक्षिणाका। वे शिष्य तो गुरु एवं परमात्माके साथ भी ऐसा ही व्यवहार करते हैं, जैसे आपसमें व्यापारी। संत भगवन्नाम जपने, भक्ति करनेके लिये प्रेरणा देते हैं, मोक्ष-प्राप्तिके लिये साधना करो, ऐसा मार्ग दर्शाते हैं, परंतु कोई मानने या करनेको तैयार नहीं। आशीर्वाद माँगते हैं, जप-ध्यान, सेवा-सुमिरन नहीं करते।

संतोंका अनुभव यही दर्शाता है, शिष्य बनना अति दुष्कर है। कोई बिरला आध्यात्मिक जीवनमें गुरु-स्थानको जानता है, कोई ही उसके सामर्थ्यको पहचानता है, किसीको ही बोध है—गुरुसे क्या पाया जा सकता है, क्या माँगना है तथा क्या उनकी सेवामें अर्पित करना है? एक युवक जिज्ञासु घूमता-घूमता नेपालमें पर्वतकी घाटीमें पहुँचा, जहाँ एक वृद्ध संत शिलापर बैठे दिखे। ध्यानस्थ थे, प्रतीक्षा की, दण्डवत् प्रणाम किया, परस्पर परिचय हुआ। सूर्यास्तका समय था, युवकसे संतने कहा—'वत्स! मेरे पाँवमें इतना बल नहीं कि स्वयं पहाड़पर चढ़कर अपनी गुफातक पहुँच सकूँ, मेरी सहायता करो, अपने कन्धोंपर उठाकर पहुँचानेका कष्ट करो।' कठिन चढ़ाई, उठा लिया युवकने, रात्रि ११ बजे पहुँचे। वृद्धको उतारकर हाँफते हुए युवकने सविनय पूछा—'महात्मन्! कोई और सेवा?' संत अपार हर्षित, महान् योगी थे, सिद्धियोंके स्वामी थे, अपनी योग-शक्तिसे अपार धनराशि प्रकट की और युवकसे बोले—जितना उठाना चाहो, उठा लो।' युवकने कहा—'प्रभो! यह सब तो मैं छोड़कर आया हूँ, इससे क्या जीवनका रहस्य जान पाऊँगा? क्या मृत्यु जानी जा सकेगी? महात्मन्! यह सब तो नश्वर है, संतोंसे भी यदि नश्वर ही मिलेगा तो शाश्वत कहाँसे और किससे मिलेगा?' युवकका उत्तर सुनकर संत प्रफुल्लित हो उठे।

'मैं देह हूँ', इस अहंभावकी मृत्यु ही वास्तविक मृत्यु है, यही है मौतका रहस्य। इसे चाहे श्रीगुरुचरणोंमें गुरु-दक्षिणारूपमें चढ़ाकर मार डालो अथवा अन्य साधनोंसे। अहंभावकी मृत्युके बाद ही शिष्य सच्ची गुरु-सेवायोग्य बन सकेगा, अन्यथा संसारकी सेवा न करके शिष्य अपने अहंकी सेवा में ही जीवन बर्बाद कर देगा। स्वयं मिट जानेवाले गुरुमुख शिष्य, अपने गुरुको कभी मरने नहीं देते, उनके उपदेशोंके अनुकरणसे तथा उनके प्रचार-प्रसारके माध्यमसे उन्हें सदा जीवित रखते हैं। ये शिष्य गुरु महाराजको आजीवन सच्ची गुरु-दक्षिणा देते रहते हैं तथा स्वयं भी अमर हो जाते हैं। तभी संतों-महात्माओंने अनुभवी कथनद्वारा सत्य कहा—*'जिन रामको अपनाया, अपना आप मिटाया, तिन राम को पाया।'* जहाँ अपने-आपको मिटाओगे, वहाँ बनानेवाला ऐसा बना देगा कि सदा बने रहोगे अर्थात् कभी न मिटनेवाले हो जायँगे। ऐसे सद्गुरु तथा शिष्य दोनों धन्य हैं।

'बरसत रस बृज गोप के द्वार'

(श्रीकैलाशजी मिश्र 'रसिक')

बरसत रस बृज गोप के द्वार।
नंद बबा घर सुत जन्मो है, छाई खुशी अपार॥ बरसत॥
होत मुदित मन सब बृजवासी, जैसे है त्योहार।
जसुदा के घर बजै बधाई, और होत ज्योनार॥ बरसत॥
बृज वनिता सब घर-घर गावैं, सुन्दर मंगलचार।
देस-देस के नृप चलि आये, देत नंद उपहार॥ बरसत॥
लाला को सब आसिस देवें, चिरजीवै सुकुमार।
ढोल नगाड़े बाजत बृज में, और होत जयकार॥ बरसत॥
देखि-देखि कै मैया यशुदा, अपने सुत बलिहार।
पंडित, ज्ञानी जन्म लगन पै, पुनि-पुनि करत विचार॥ बरसत॥
यैसो सुत काहू ना जन्मो, जो सब जग रखवार।
सब जग 'रसिक' बनैगो याको, राधा प्राणाधार॥ बरसत॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकल्पशक्ति—महत्ता एवं उपादेयता

(कुंवर श्रीभुवनेन्द्रसिंहजी, एम०ए०, बी०एड०, संगीतप्रभाकर)

संकल्पशक्तिको हम दृढ़ इच्छाशक्तिके नामसे भी अभिहित कर सकते हैं। संकल्पशक्ति विश्वकी वह महान् शक्ति है, जो मनुष्यके जीवनमें उन्नति और अवनतिका कारण बनती है। संकल्पशक्तिके बिना किसी भी कार्यमें सफलता प्राप्त नहीं की जा सकती। विश्वमें आजतक जितने भी महापुरुष हुए हैं तथा जिनका हम आज अत्यन्त आदरके साथ नाम-स्मरण करते हैं; उनके जीवनको पवित्र और महान् बनानेवाली उनकी यही संकल्पशक्ति ही तो है।

अपनी संकल्पशक्ति एवं अपने दृढ़ विचारोंके लिये आज भी ध्रुव एवं प्रह्लाद याद किये जाते हैं। सन्त विनोवा भावे अपनी संकल्पशक्तिके एक आदर्श उदाहरण थे। बचपनमें ही उन्होंने अपने साथियोंके बीच खेल-ही-खेलमें सन्त बननेका जो संकल्प लिया था, उसे उन्होंने आगे चलकर बखूबी पूरा किया। उन्होंने अपनी दृढ़ इच्छा शक्तिके सहारे सम्पूर्ण देशमें भूदान-आन्दोलनको सफलतापूर्वक चलाया। इसी प्रकार नेपोलियन बोनापार्ट (फ्रांसीसी सेनाका एक साधारण सैनिक) अपनी दृढ़ संकल्पशक्तिके दमपर ही फ्रांसका महान् सम्राट् बना। इसी प्रकार केवल संकल्पशक्ति और दृढ़ आत्मविश्वासके बलपर ही सिकन्दर महान्‌ने आधा विश्व जीत लिया तथा वीर चन्द्रगुप्त मौर्यने अद्वितीय प्रसिद्धि प्राप्त की। उक्त समस्त महापुरुषोंकी सफलताका राज था—उनका आत्मविश्वास, उनका पुरुषार्थ तथा उन सबकी दृढ़ इच्छाशक्ति।

संकल्प जिस दिशामें किया जाता है, वह उसी दिशाका वरदान बनकर रह जाता है। किसी भी क्षेत्रमें सफलता प्राप्त करनेके लिये हमें अपने आपको असहाय, अशक्त अथवा असमर्थ कभी नहीं समझना चाहिये। हमें कभी भी हतोत्साहित नहीं होना चाहिये तथा अपने मनमें कभी यह विचार नहीं लाना चाहिये कि साधनोंके अभावमें हम आगे कैसे बढ़ सकते हैं ? संकल्पमें तो कार्यसिद्धिकी महान् शक्ति छिपी होती है। इसलिये हमें अपने-आपको संकल्पवान् बनाना चाहिये तथा दूने उत्साहके साथ काममें लग जाना चाहिये। तभी तो सुभाषित श्लोकोंमें कहा गया है कि जो व्यक्ति उत्साहसे युक्त है, दूरदर्शी है तथा आत्मविश्वासी भी है; उसके पीछे समस्त सिद्धियाँ स्वत: चली आती हैं।

मनुष्यकी वास्तविक शक्ति उसके अन्दर निहित इच्छाशक्ति ही है, जो उसे कार्य करनेकी प्रेरणा देती है। जबतक मनुष्यके मनमें इच्छाशक्ति जाग्रत् नहीं होती, तबतक कोई भी कार्य सम्पन्न नहीं होता। किन्तु यही जाग्रत् इच्छाशक्ति जब विचार और संकल्पका रूप धारण कर लेती है तो फिर कार्य सुगमतापूर्वक सम्पन्न हो जाता है।

आसमानमें भाँति-भाँतिके विचार चक्कर काटते रहते हैं, किंतु हम जिस प्रकारके विचारोंको अपनाना चाहते हैं, उसी प्रकारके विचार हम आसमानसे अपनी ओर खींच लेते हैं। यही कारण है कि यदि कोई बुरा विचार हमारे मनमें पहलेसे घर किये हुए है तो हम उसी प्रकारके अन्य बुरे विचारोंसे अपना तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं और फिर वे बुरे विचार तबतक हमारा साथ नहीं छोड़ते जबतक हम स्वयं अपनी प्रबल संकल्पशक्तिके सहारे उन बुरे विचारोंको अपने मनसे निकाल बाहर नहीं फेंकते।

वास्तवमें विचार ही मनुष्यको सुखी और दु:खी बनाते हैं। अन्य शब्दोंमें केवल विचार ही हमें आनन्दित या फिर निराश करते हैं। वस्तुत: यह दुनिया ऐसी नहीं है, जैसी हम उसे देखते हैं, अपितु यह दुनिया वैसी है जैसे हम उसके प्रति विचार रखते हैं। मनुष्य तो विचारोंका एक पुतलामात्र है। अत: जैसा वह विचार करेगा, वैसा ही बन जायगा। उदाहरणस्वरूप यदि वह किसी रोगका अधिक समयतक चिन्तन करेगा तो कालान्तरमें वह उसी रोगका रोगी हो जायगा। इसीलिये हमें चाहिये कि हम विपरीत परिस्थितियोंमें भी कभी निराश न हों, बल्कि हिम्मतसे काम लें और अच्छे विचारोंको मनमें धारण करें। इससे सुख और आशाकी जो तरंगें मनमें उठेंगी, वे रक्तपर उत्तम प्रभाव डालेंगी तथा शरीर सदैव स्वस्थ और निरोगी रहेगा।

यह सत्य है कि प्रत्येक व्यक्ति सुख-समृद्धि चाहता है तथा सुखमय जीवनकी कामना करता है, किन्तु यह सब उसके उत्तम विचारोंसे ही सम्भव है। वेदोंमें भी कहा गया है कि हमारा मन सदैव शुभ संकल्पोंवाला बने—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तन्मे मनः शुभसङ्कल्पमस्तु।'

अतः हमारा कर्तव्य है कि हम जीवमात्रकी भलाईके लिये प्रबल संकल्पशक्तिके साथ निम्न प्रार्थना करें—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

अर्थात् सम्पूर्ण जीवोंको सुख प्राप्त हो; सभी प्राणी निरोग रहें; सबका कल्याण हो तथा किसीको कभी कोई दुःख न पहुँचे।

ऐसी ही उदात्त वैचारिक शक्ति (संकल्पशक्ति) विश्वबन्धुत्वकी भावनाको सुदृढ़ बनाती है। इसीलिये हमें चाहिये कि हमारे मनमें जो भी अशुभ विचार हों, उन्हें हम अपनी संकल्पशक्तिके सहारे मनसे बाहर निकाल दें तथा बदलेमें शुभ विचारोंको ही मनमें धारण करें। इससे जहाँ विश्वबन्धुत्वकी भावनाका विकास होगा, वहीं हमें अपरिमित मानसिक शक्तिकी भी प्राप्ति होगी।

स्वामी विवेकानन्दका कथन है कि मनुष्यको रात्रिमें सोनेसे पूर्व और प्रातःकाल उठनेके बाद चारों दिशाओंमें मुँह करके प्रबल संकल्पशक्तिके साथ सम्पूर्ण विश्वकी भलाई और शान्तिकी कामना करनी चाहिये।

हमारी संकल्पशक्तिके साथ ही हमारे आसपासका वातावरण भी उसीके अनुरूप निर्मित होने लगता है। यही नहीं, हमें वैसे ही मित्र भी मिल जाते हैं तथा वैसे ही साधन एकत्र हो जाते हैं। यदि हम निरन्तर यह सोचते रहें कि 'मैं सत्पुरुष बनूँगा' तो हमारे गुण, कर्म और स्वभाव वैसे ही बनने लगेंगे और एक दिन ऐसा आयेगा कि हम अपने लक्ष्यकी प्राप्ति कर लेंगे। किन्तु ऐसे चिन्तनके साथ आत्मविश्वास और क्रियाशीलताकी भी अत्यन्त आवश्यकता है, इसके बिना अभीष्टकी सिद्धि नहीं हो सकती।

शुभ संकल्पशक्तिसे सम्पन्न व्यक्ति कभी भी विषम परिस्थितियोंमें घबड़ाता नहीं, अपितु कठिनाइयोंके होते हुए भी वह निरन्तर आगे बढ़ता ही जाता है। फलतः प्रतिकूलताएँ अनुकूलताओंमें बदल जाती हैं और उस दिशामें निरन्तर प्रगति होने लगती है, जिस दिशाको मनुष्यने अपने लिये चुना है। दिशा चाहे सही हो चाहे गलत, प्रगति मात्र संकल्पशक्तिके बलपर ही निर्भर करती है।

यदि हम विचारोंके महत्त्वको भलीभाँति समझ लें तथा पूर्ण आत्मविश्वास और संकल्पशक्तिके साथ उन विचारोंको कार्यरूपमें परिणत करना प्रारम्भ कर दें तो हमारी प्रगतिके मार्ग स्वतः खुल जायेंगे तथा आनन्दकी विचारधारा हमारे हृदयमें नव-उत्साहका सृजन करने लगेगी और फिर प्रत्येक कार्यमें हमें प्रसन्नताकी ही अनुभूति होगी। फलतः असफलताएँ घटेंगी और सफलताओंकी संख्यामें वृद्धि होगी।

हमारा जीवन हँसी-खुशीका जीवन है। इसलिये हमें प्रत्येक क्षण प्रफुल्लित और प्रसन्नचित्त रहना चाहिये। विचार और कार्य परस्पर अटूट रूपसे सम्बद्ध हैं। अतः हमें कार्य करनेसे पूर्व अच्छी तरहसे सोच-विचार लेना चाहिये, अन्यथा बिना सोचे-विचारे कार्य करनेसे पश्चात्ताप ही हाथ लगता है। इसीलिये कहा गया है—

बिना विचारे जो करै सो पाछे पछिताय।
काम बिगाड़ै आपनो जग में होत हँसाय॥

इस प्रकार सिद्ध है कि सुविचारित कर्मोंके सहयोगसे ही जीवनमें सफलता मिलती है। जीवनमें जब हमारी विचारधारा दृढ़ होती है तो हमारे मुखपर आनन्दकी ऐसी रेखाएँ उभर आती हैं, जो हमें दूने उत्साहके साथ कार्यमें संलग्न कर देती हैं। विचारोंमें दृढ़ता आते ही परिस्थितियाँ भी अनुकूल हो जाती हैं तथा सारे साधन स्वयं सुलभ हो जाते हैं, जो हमें सफलताके शिखरपर पहुँचानेसे नहीं चूकते।

यदि कोई किसी कार्यको सम्पन्न करनेमें असफल होता है तो इसका कारण उसका दुर्भाग्य नहीं है, अपितु उसके संकल्पकी निर्बलता है। दृढ़ संकल्पमें तो एक ऐसी शक्ति छिपी होती है, जो अनुकूल अवस्थाको स्वयं अपनी ओर खींच लेती है। संकल्पशक्ति ही मनको एकाग्रकर विचारोंको मस्तिष्ककी ओर भेजती है। इसीलिये हमें जैसा बनना हो, वैसे ही विचार पूर्ण आत्मविश्वासके साथ अपने मनमें उत्पन्न करने चाहिये।

ध्यातव्य है कि विचारोंद्वारा ही हमारे शरीरमें स्वास्थ्य और रोग—दोनोंका संचार होता है। विचार ही भूखको उत्पन्न करता है तथा विचार ही भूखका शमन भी करता है। अतः अत्युक्ति न होगी, यदि हम कहें कि पूर्ण आत्मविश्वास एवं दृढ़ संकल्पशक्तिसे सम्पन्न व्यक्ति ही जीवनमें सफल होता है और वही जीवनमें चरमोत्कर्षकी प्राप्ति भी करता है। अन्य शब्दोंमें हम कह सकते हैं कि यदि जीवनमें सफल होना है तथा अपने लक्ष्यकी प्राप्ति भी करनी है तो शुभ संकल्पवान् बनो! यही है संकल्पशक्तिका शाश्वत सन्देश।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्त-गाथा—

संत नरहरि महाराज

(श्रीरमेश गणेशजी दुसाने)

शक संवत्‌की बारहवीं शतीकी बात है, महाराष्ट्रकी पण्ढरपुर-जैसी पावन भूमिमें शिवभक्त अच्युत बाबा अपनी पत्नी सावित्रीके साथ भगवान् शंकरके मल्लिकार्जुन नामक मन्दिरमें रहकर अपना जीवन-यापन करते थे। सुवर्णकार होनेके नाते सोने-चाँदीके अलंकार बनानेका उनका व्यवसाय था। प्रतिदिन सुबह चन्द्रभागा नदीमें स्नान और भगवान् शिवशंकरकी पूजा-अर्चा किये बिना अपना व्यवसाय शुरू करना उन्हें पसन्द नहीं था। एक बार प्रतिदिनकी तरह पूजा-अर्चा करनेके पश्चात् उन्होंने अपना नित्यनियमित व्यवसाय शुरू ही किया था कि सोनेके अलंकार बनाते समय हथौड़ी अचानक हाथसे निकलकर मल्लिकार्जुन भगवान् शिवशंकरके पिण्डपर जा पड़ी। यह देखकर उन्हें बहुत दुःख हुआ। तुरंत अपना कार्य छोड़कर वे मन्दिरमें जा पहुँचे और भगवान्‌से कहने लगे—हे भगवन्! कार्य करते समय भूलसे हथौड़ी आपको लग गयी। कृपया अपराधको क्षमा करें। स्वयंको दोष देते हुए वे रोने लगे। तुरंत ही पिण्डसे त्रिशूल-डमरू धारण किये भवानीपति भगवान् शिवशंकरजी प्रकट हुए। भगवान्‌का दर्शनकर अच्युत बाबाने उनके पैर छूते हुए रोते-रोते क्षमा माँगी। भगवान्‌ने आशीर्वाद देते हुए कहा—अच्युत बाबा! यह आपका अपराध नहीं है, परंतु आपकी प्रेमभरी भक्तिके कारण मैं आपसे मिलने आया हूँ, साथ ही एक सुखद सूचना भी आपको देनी है कि प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके प्यारे भक्त जाम्बवन्त आपके घर बालकके रूपमें जन्म ले रहे हैं। उनका अच्छी तरहसे पालन-पोषण करो—यह कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। अच्युत बाबाने यह सुखद समाचार अपनी पत्नी सावित्रीको सुनाया तो उन्हें भी बहुत आनन्द हुआ।

शक संवत् १११५के श्रावणमासकी शुद्ध नवमीको प्रातःकालमें सावित्रीबाईने एक सुन्दर बालकको जन्म दिया। दोनों पति-पत्नीने भगवान्‌को धन्यवाद देते हुए सोमवारके दिन बालकका नामकरण करनेका निश्चय किया। नित्य-नियमसे अच्युत बाबाने सोमवारके दिन सुबह चन्द्रभागा नदीमें स्नान किया और मल्लिकार्जुन भगवान् शिवशंकरकी पूजा-अर्चना की। उसी समय वहाँ श्रीचांगदेव महाराज दर्शनहेतु मन्दिरमें आये। चांगदेव महाराजको देखते ही अच्युत बाबाको बड़ा आनन्द हुआ। बाबाने बड़ी प्रसन्नतासे उनका स्वागत करते हुए कहा—भगवन्! आप हमारे यहाँ आये, यह हमारा बहुत बड़ा भाग्य है।

आज हमारे यहाँ पुत्रका नामकरण-संस्कार है, अतः आप बालकको अपना शुभ आशीर्वाद देनेकी कृपा करें। चांगदेव महाराजने अच्युत बाबाका आतिथ्य स्वीकार किया। नामकरण करते समय सावित्री माताने अपने बालकको चांगदेव महाराजकी गोदमें दिया। चांगदेव महाराज तो अष्टसिद्धिके महान् योगी थे। गोदमें लेते ही महाराजने बालकके सन्दर्भमें भविष्यवाणी करते हुए कहा—यह बालक भविष्यमें बहुत बड़ा संत होनेवाला है, इस बालकको नरहरि नामसे पुकारा जाय। इतना कहकर बालकको आशीर्वाद दिया और चल पड़े। महाराजकी आज्ञासे बालकका नाम नरहरि निश्चित किया गया।

बचपनमें पाठशालामें पढ़ते समय नरहरि प्रतिदिन पिताजीके साथ चन्द्रभागा नदीमें स्नान और मल्लिकार्जुन भगवान् शिवशंकरकी पूजा-अर्चा करनेमें पूरा समय व्यतीत करते थे। पिताजीके साथ स्वर्णकारी-व्यवसायमें उनका सहयोग करनेमें उन्हें बहुत आनन्द मिलता था। ये दोनों पिता-पुत्र केवल भगवान् शिवशंकरकी पूजा करते थे। पण्ढरपुरमें रहते हुए अपनी पूरी जीवनयात्रामें वे न तो कभी श्रीपाण्डुरंग-भगवान्‌के मन्दिरमें गये, न दर्शन किया। भगवान् शंकरको ही वे एकमात्र आराध्य देव मानते थे।

संत नरहरि सोनेके अलंकार बनानेमें अत्यन्त निपुण थे। व्यवसायमें चोरी, हेरा-फेरी या बुरा व्यवहार करना उन्हें पसन्द नहीं था। केवल सरल स्वभाव, शुद्ध आचरण और नेकीसे कार्य करना वे जानते थे। पण्ढरपुरके आसपास सुवर्णके अलंकार-निर्माणमें उनका नाम मशहूर था। पण्ढरपुरके पास ब्रह्मपुरी नामके छोटे गाँवमें श्रीपति पोतदार नामक एक सुवर्णकार था। उसकी कन्या गंगाबाई भी भगवान् शंकरकी पूजा और सेवा करती थी। एक समय सुबह-सुबह भगवान् शंकरने श्रीपति पोतदारको स्वप्नमें आदेश दिया कि अपनी कन्या गंगाबाईका विवाह पण्ढरपुरके नरहरिसे कर दो। भगवान्‌का आदेश शिरोधार्यकर श्रीपतिने गंगाबाईका नरहरिके साथ विवाह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर दिया। नरहरि और गंगाबाई दोनों भगवान् शंकरकी पूजा-अर्चा और दर्शन करनेमें ही अपना समय व्यतीत करते थे। जीवन आनन्दमें चलता रहा, परंतु अचानक माता-पिताका देहान्त होनेके कारण सभी जिम्मेदारी नरहरि और गंगाबाईपर आ गयी।

भगवान्को भक्तोंके साथ खेलना या उनकी परीक्षा लेना बहुत अच्छा लगता है। अतः भगवान्ने भक्त नरहरिके साथ एक नया खेल शुरू कर दिया। औरंगाबाद शहरके पास दौलताबाद गाँवमें एक श्रीमन्त साहूकार रहते थे। उनके पास धन-दौलत-सम्पत्तिकी कमी नहीं थी। केवल कमी थी एक पुत्रकी। इसलिये साहूकारदम्पती दुःखी थे। बच्चोंकी मनोकामना लेकर साहूकार अपनी पत्नीके साथ भगवान् विठूरायाके दर्शन करनेके लिये पण्ढरपुर आये। भगवान्का दर्शन किया। मूर्तिके पैरपर नतमस्तक होकर विठूरायासे प्रार्थना की—हे भगवन्! घरमें रुपया-पैसा, धन-दौलतकी कोई कमी नहीं, परंतु मनको आनन्द देनेवाला नन्हा-सा बालक घरमें नहीं है; अतः हम दोनों बहुत दुःखी हैं। प्रभो! आपके द्वारपर आये हुए हमपर कृपा करें और एक बालक प्रदान करें, ताकि हम आपके कमरपर शोभा देनेवाला माणिक्य, मोती और रत्नजटित सुवर्णका कमरपट्टा आपके चरणकमलोंमें अर्पित कर सकें। ऐसी मनोकामना भगवान्के समक्ष व्यक्त की और बादमें वापस अपने गाँव चले गये।

एक सालके पश्चात् साहूकारकी मानी हुई मनौती पूर्ण हुई और उन्हें एक पुत्रकी प्राप्ति हुई। घरमें आनन्द छा गया। साहूकार मनमें सोचने लगे—पुत्रप्राप्तिका आनन्द मनानेहेतु गाँवमें रहनेवाले सभीको स्वादिष्ट भोजनकी व्यवस्था होनी चाहिये, परंतु भोजन करानेके पूर्व पण्ढरपुरके पण्ढरिनाथ भगवान्को मानी हुई मन्नत पूर्ण करना आवश्यक है। इस कार्यहेतु साहूकार अपने बालक और परिवारके साथ पण्ढरपुर चले आये। भगवान्का दर्शन होनेके पश्चात् वहाँके पुजारी पण्डितजीसे उन्होंने पूछा कि इस शहरमें सोनेका कटिबन्ध बनानेवाले किसी अच्छे कारीगरका पता दें। पण्डितजीने तुरंत श्रीनरहरि सोनारका नाम और पता बता दिया। साहूकार मल्लिकार्जुन-मन्दिरमें नरहरिके पास आ गये। संत नरहरिने यथोचित स्वागत किया। साहूकारने सभी मूल्यवान् वस्तुएँ नरहरिको सौंपते हुए कहा—नरहरिजी! हमने पुत्र होनेपर भगवान् पण्ढरिनाथको सुवर्णांकित कमरपट्टा देनेकी मन्नत मानी थी और भगवान्की कृपासे हमें पुत्रप्राप्ति हो भी गयी। इसी कारण ये सभी आपको दिया है। कृपया भगवान् पण्ढरिनाथकी मूर्तिके लिये एक अच्छा-सा कटिबन्ध बना दीजिये। नरहरिने मेहमानका कार्य स्वीकार करते हुए कहा कि आप मूर्तिके कमरका माप ले आइये, ताकि मैं कटिबन्ध बना सकूँ। साहूकार मन्दिरमें गये और पण्डितजीके द्वारा कमरका माप लेकर नरहरिको दिया और तुरंत बनानेकी विनती की।

दो दिनके पश्चात् तैयार हुआ कटिबन्ध मूर्तिको अर्पण करनेके लिये साहूकारपरिवार मन्दिरमें पहुँचा। कमरपट्टा लगाया तो वह बहुत लम्बा हुआ। वापस वे नरहरिके पास गये और कमरके हिसाबसे छोटा कराया, परंतु वह कमरको लगाया तो और बड़ा बन गया। तुरंत नरहरिने छोटा किया तो छोटा बन गया। जैसे यशोदा माताजीद्वारा अपने प्यारे लाडले श्रीकृष्ण कन्हैयाको ऊखलसे बाँधनेके प्रयासमें डोरी छोटी हो जाती थी, वैसे ही कटिबन्ध छोटा-बड़ा होनेके नाते दोनों परेशान हो गये। अन्तमें साहूकारने नरहरिसे विनती की कि महाराज! आप मन्दिरमें साथ चलें और अपने करकमलोंसे कमरपट्टा लगायें। नरहरिने तुरंत उत्तर दिया—मैं केवल भगवान् शिवशंकरका पूजन और दर्शन करना जानता हूँ। जटा और त्रिशूलधारी भोला शिवशंकर ही मेरे पूज्य इष्टदेव हैं। मैंने जीवनमें कभी भी दूसरे भगवान्का दर्शन या स्मरण नहीं किया है, इसी कारण वहाँ जानेमें मैं असमर्थ हूँ, परंतु साहूकारके अति आग्रह करनेपर नरहरि एक शर्तपर मन्दिरमें आनेके लिये राजी हो गये। वे बोले—मैं घरसे ही अपनी आँखोंपर पट्टी बाँधकर आपके साथ मन्दिर चलता हूँ। आँखोंपर कपड़ेकी पट्टी लगायी और साहूकारका हाथ पकड़कर मन्दिरमें प्रवेश किया।

नरहरिजीने अपने दोनों हाथोंसे भगवान् पाण्डुरंगकी मूर्तिका स्पर्श किया। कमरकी माप लेनेका प्रयास करते समय वे महसूस करने लगे कि यहाँ तो भगवान् शिवशंकरके पिण्डको स्पर्श कर रहे हैं। वे मनमें शंका करके सोचने लगे कि यह पिण्ड है या मूर्ति! आँखसे पट्टी खोलकर देखा तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कटिप्रदेशके दोनों ओर बायें और दायें हाथ रखे हुए विट्ठलभगवान्की मूर्ति नजर आयी। पुनः आँखें बन्द कीं तो स्पर्शसे पिण्ड महसूस होने लगा। आश्चर्यसे वे सोचने लगे कि यह क्या चमत्कार है! आँखें बन्द करनेमें पिण्डका स्पर्श और आँखें खोलनेमें मूर्तिका दर्शन! ऐसे पाँच-छः बार होनेके बाद उनको पता चला कि हाथोंसे बनाया कमरपट्टा अब भगवान्के कमरके बराबर होता है। यह देखकर पुजारी और साहूकार-परिवारको बहुत आनन्द हुआ, परंतु नरहरि महाराज अपने आँसुओंको बाहर निकलनेसे न रोक सके और रोने लगे। वे बोले—हे भगवन्! कृपया मुझे क्षमा करें, मैंने अपने अज्ञानसे आपमें द्वैत देखा। गाँवमें रहते हुए भी अहंकारसे आपका दर्शन नहीं किया। कृपया मेरे इस बड़े अपराधको क्षमा करें! क्षमा करें!! आप हरि और हर एक ही हैं। अद्वैतदर्शनसे नरहरि महाराजकी दृष्टि विश्वव्यापक बन गयी। मूर्तिको गले लगाया। विठूरायाने भी नरहरिको आशीर्वाद देते हुए प्रत्यक्ष दर्शन दिया। इसी क्षणसे नरहरि महाराज पण्ढरपुरनिवासी विट्ठलभगवान्के परम भक्त बन गये। पण्ढरपुरके विट्ठलभगवान्की मूर्तिको प्रत्यक्ष देखा जाय तो मूर्तिकी जटामें श्रीशिवशंकर भगवान् शिवके पिण्डका दर्शन होता है और वक्षःस्थलपर भृगुऋषिके पैरका चिह्न नजर आता है। ऐसी यह पाण्डुरंग तथा विठूराया भगवान्की माया है। शक संवत् १२०७ माघ बदी तृतीयाको संत नरहरि महाराजकी प्राणज्योति विठूरायामें समा गयी। नरहरि महाराजकी अभंगावली (पद्य) प्रसिद्ध है, जिसमेंसे निम्नलिखित एक महत्त्वपूर्ण अभंग मराठीमें प्रेमसे गाया जाता है—
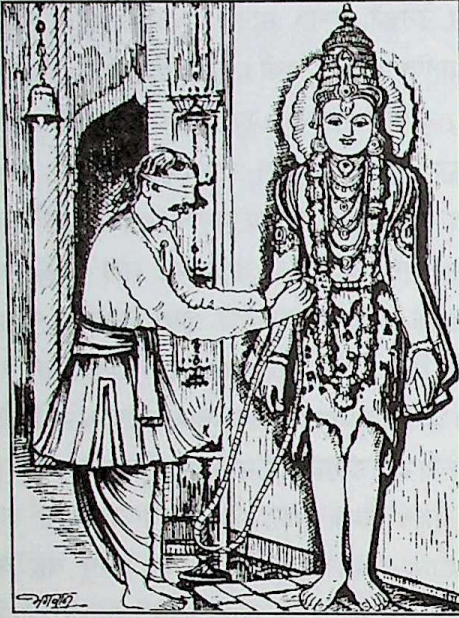
देवा तुझा मी सोनार। तुझे नामाचा व्यवहार॥ १॥
देह बागेसरी जाण। अन्तरात्मा नाम सोने॥ २॥
त्रिगुणाची करूनी मूस। आत ओतिला ब्रह्मरस॥ ३॥
जीव शिव करूनी फुंकी। रात्रंदिवस ठोका ठोकी॥ ४॥
विवेक हातोडा घेऊनी। काम क्रोध केले चूर्ण॥ ५॥
मन बुद्धिची कातरी। रामनाम सोने चोरी॥ ६॥
ज्ञान ताजवा घेऊनि हाती। दोन्हीं अक्षरे जोखीती॥ ७॥
खांदा वाहूनी पोतड़ी। उचले पाऊल पैलथड़ी॥ ८॥
नरहरि सोनार हरीचा दास। भजन करितो रात्रंदिवस॥ ९॥

गोसेवा कितनी सुखदायी?

अनादिकालसे मानवजाति गोमाताकी सेवाकर अपने जीवनको सुखी, समृद्ध, निरोग, ऐश्वर्यवान् एवं सौभाग्यशाली बनाती चली आ रही है। 'गोमाताकी सेवा' के माहात्म्यसे शास्त्र भरे पड़े हैं। आइये, शास्त्रोंसे गोमहिमाकी कुछ झलकियाँ देखें—

गौको घास खिलाना कितना पुण्यदायी!

तीर्थस्थानोंमें जाकर स्नान-दानसे जो पुण्य प्राप्त होता है, ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे जिस पुण्यकी प्राप्ति होती है, सम्पूर्ण व्रत-उपवास, तपस्या, महादान तथा श्रीहरिकी आराधना करनेपर जो पुण्य प्राप्त होता है, सम्पूर्ण पृथ्वीकी परिक्रमा, सम्पूर्ण वेदोंके पढ़ने तथा समस्त यज्ञोंके करनेसे मनुष्य जिस पुण्यको पाता है, वही पुण्य बुद्धिमान् पुरुष गौओंको घास खिलाकर पा लेता है—

तीर्थस्नानेषु यत्पुण्यं यत्पुण्यं विप्रभोजने।
सर्वव्रतोपवासेषु सर्वेष्वेव तपःसु च॥
यत्पुण्यं च महादाने यत्पुण्यं हरिसेवने।
भुवः पर्यटने यत्तु वेदवाक्येषु यद्भवेत्॥
यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु दीक्षायां च लभेन्नरः।
तत्पुण्यं लभते प्राज्ञो गोभ्यो दत्त्वा तृणानि च॥

(ब्रह्मवैवर्तपु०, श्रीकृष्णजन्मखण्ड २१। ८७—८९)

गोसेवासे वरदानकी प्राप्ति

जो पुरुष गौओंकी सेवा और सब प्रकारसे उनका अनुगमन करता है, उसपर सन्तुष्ट होकर गौएँ उसे अत्यन्त दुर्लभ वर प्रदान करती हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाश्च शुश्रूषते यश्च समन्वेति च सर्वशः।
तस्मै तुष्टाः प्रयच्छन्ति वरानपि सुदुर्लभान्॥

(महा० अनु० ८१। ३३)

गोसेवासे मनोकामनाओंकी पूर्ति

गौकी सेवा यानी गायको चारा डालना, पानी पिलाना, गायकी पीठ सहलाना, रोगी गायका इलाज करवाना आदि-आदि करनेवाला मनुष्य पुत्र, धन, विद्या, सुख आदि जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करता है, वे सब उसे प्राप्त हो जाती हैं, उसके लिये कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं होती—

गोषु भक्तश्च लभते यद् यदिच्छति मानवः।
न किंचिद् दुर्लभं चैव गवां भक्तस्य भारत॥

(महा० अनु० ८३। ५०, ५२)

भगवान् शिव कहते हैं—हे पार्वति! गौएँ सम्पूर्ण जगत्में श्रेष्ठ हैं। वे लोगोंको जीविका देनेके कार्यमें प्रवृत्त हुई हैं। वे मेरे अधीन हैं और चन्द्रमाके अमृतमय द्रवसे प्रकट हुई हैं। वे सौम्य, पुण्यमयी, कामनाओंकी पूर्ति करनेवाली तथा प्राणदायिनी हैं। इसलिये पुण्य-प्राप्तिकी इच्छावालोंको सदैव गायोंकी पूजा, सेवा (घास आदि खिलाना, पानी पिलाना, रोगी गायका इलाज कराना आदि-आदि) करनी चाहिये—

लोकज्येष्ठा लोकवृत्त्यां प्रवृत्ता
मय्यायत्ताः सोमनिष्यन्दभूताः।
सौम्याः पुण्याः कामदाः प्राणदाश्च
तस्मात् पूज्या पुण्यकामैर्मनुष्यैः॥

(महा० अनु० १४५)

भूमिदोष समाप्त होते हैं

गौओंका समुदाय जहाँ बैठकर निर्भयतापूर्वक साँस लेता है, उस स्थानकी शोभाको बढ़ा देता है और वहाँके सारे पापोंको खींच लेता है—

निविष्टं गोकुलं यत्र श्वासं मुञ्चति निर्भयम्।
विराजयति तं देशं पापं चास्यापकर्षति॥

(महा० अनु० ५१। ३२)

सबसे बड़ा तीर्थ—गोसेवा

देवराज इन्द्र कहते हैं—गौओंमें सभी तीर्थ निवास करते हैं। जो मनुष्य गायकी पीठ छूता है और उसकी पूँछको नमस्कार करता है, वह मानो तीर्थोंमें तीन दिनोंतक उपवासपूर्वक रहकर स्नान कर लेता है—

त्र्यहं स्नातः स भवति निराहारश्च वर्तते।
स्पृशते यो गवां पृष्ठं बालधिं च नमस्यति॥

(महा० अनु० १२५। ५०)

असार संसारके छः सार पदार्थ

भगवान् विष्णु, एकादशी-व्रत, गंगानदी, तुलसी, ब्राह्मण और गौएँ—ये छः इस दुर्गम असार संसारसे मुक्ति दिलानेवाले हैं—

विष्णुरेकादशी गङ्गा तुलसीविप्रधेनवः।
असारे दुर्गसंसारे षट्पदी मुक्तिदायिनी॥

(गरुडपु० उत्तर० १९। २३)

मंगल होगा

जिसके घर बछड़ेसहित एक भी गाय होती है, उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं और उसका मंगल होता है। जिसके घरमें एक भी गौ दूध देनेवाली न हो,* उसका मंगल कैसे हो सकता है और उसके अमंगलका नाश कैसे हो सकता है—

यस्यैकापि गृहे नास्ति धेनुर्वत्सानुचारिणी।
मङ्गलानि कुतस्तस्य कुतस्तस्य तमः क्षपः॥

(अत्रिसंहिता २१७)

ऐसा न करें

गौओं, ब्राह्मणों तथा रोगियोंको जब कुछ दिया जाता हो, उस समय जो न देनेकी सलाह देते हैं, वे मरकर प्रेत बनते हैं। (स्कन्दपुराण प्रभास० २२३। ४९)

गोपूजा—विष्णुपूजा

भगवान् विष्णु देवराज इन्द्रसे कहते हैं कि हे देवराज! जो मनुष्य अश्वत्थवृक्ष, गोरोचना और गौकी सदा पूजा, सेवा करता है, उसके द्वारा देवताओं, असुरों और मनुष्योंसहित सम्पूर्ण जगत्की भी पूजा हो जाती है। उस रूपमें उसके द्वारा की हुई पूजाको मैं यथार्थ रूपसे अपनी पूजा मानकर ग्रहण करता हूँ—

अश्वत्थं रोचनां गां च पूजयेद् यो नरः सदा॥

* गाय न रख सकनेकी हालतमें कहीं भी गोसेवा की जा सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूजितं च जगत् तेन सदेवासुरमानुषम्।
तेन रूपेण तेषां च पूजां गृह्णामि तत्त्वतः॥

(महा० अनु० १२६।५-६)

गोधूलि महान् पापोंकी नाशक है

गायोंके खुरोंसे उठी हुई धूलि, धान्योंकी धूलि तथा पुत्रके शरीरमें लगी धूलि अत्यन्त पवित्र एवं महापापोंका नाश करनेवाली है—

गवां रजो धान्यरजः पुत्रस्याङ्गभवं रजः।
एतद्रजो महाशस्तं महापातकनाशनम्॥

(गरुडपु० पूर्व० ११४।४२)

चारों समान हैं

नित्य भागवतजीका पाठ करना, भगवान्‌का चिन्तन करना, तुलसीको सींचना और गौकी सेवा करना—ये चारों समान हैं।

गोसेवाके चमत्कार

गौओंके दर्शन, पूजन, नमस्कार, परिक्रमा, गायको सहलाने, गोग्रास देने तथा जल पिलाने आदि सेवाके द्वारा मनुष्यको दुर्लभ सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

गोसेवासे मनुष्यकी मनोकामनाएँ शीघ्र पूरी हो जाती हैं।

गायके शरीरमें सभी देवी-देवता, ऋषि-मुनि, गंगा आदि सभी नदियाँ तथा तीर्थ निवास करते हैं। इसीलिये गोसेवासे सभीकी सेवाका फल मिल जाता है।

गायकी चरणरज मस्तकपर लगानेसे दुर्भाग्य सौभाग्यमें बदल जाता है।

गायको प्रणाम करनेसे—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारोंकी प्राप्ति होती है। अतः सुखकी इच्छा रखने वाले बुद्धिमान् पुरुषको गायोंको निरन्तर प्रणाम करना चाहिये।

ऋषियोंने सर्वश्रेष्ठ और सर्वप्रथम किया जानेवाला धर्म गोसेवाको ही बताया है।

प्रातःकाल सर्वप्रथम गायका दर्शन करनेसे जीवन उन्नत होता है।

यात्रापर जानेसे पहले गायका दर्शन करके जानेसे यात्रा मंगलमय होती है।

जिस स्थानपर गायें रहती हैं, उससे काफी दूरतकका वातावरण शुद्ध एवं पवित्र हो जाता है। अतः गोपालन करना चाहिये।

भगवान् विष्णु भी गोसेवासे सर्वाधिक प्रसन्न होते हैं, गोसेवा करनेवालेको अनायास ही 'गोलोक' की प्राप्ति हो जाती है।

प्रातःकाल स्नानके पश्चात् सर्वप्रथम गायका स्पर्श करनेसे पाप नष्ट होते हैं।

गोदुग्ध—धरतीका अमृत

गायका दूध धरतीका अमृत है। विश्वमें गोदुग्धके समान पौष्टिक आहार दूसरा कोई नहीं है। गायके दूधको पूर्ण आहार माना गया है। यह रोगनिवारक भी है। गायके दूधका कोई विकल्प नहीं है। यह एक दिव्य पदार्थ है।

वैसे भी गायके दूधका सेवन (प्रयोग) करना गो-माताकी महान सेवा करना ही है, क्योंकि इससे गोपालनको बढ़ावा मिलता है और अप्रत्यक्ष रूपसे गायकी रक्षा ही होती है। गायके दूधका सेवनकर गोमाताकी रक्षामें योगदान तो सभी दे ही सकते हैं।

पंचगव्य

गायके दूध, दही, घी, गोबर-रस, गो-मूत्रका एक निश्चित अनुपातमें मिश्रण पंचगव्य कहलाता है। पंचगव्यका सेवन करनेसे मनुष्यके समस्त पाप उसी प्रकार भस्म हो जाते हैं, जैसे जलती आगसे लकड़ी भस्म हो जाती है।

मानव-शरीरका ऐसा कोई रोग नहीं है, जिसका पंचगव्यसे उपचार नहीं हो सकता। पंचगव्यसे पापजनित रोग भी नष्ट हो जाते हैं।

यदि उपर्युक्त सूत्रोंको एक बारमें, अथवा एक या दो करके दूरदर्शन आदि प्रसार-माध्यमोंके द्वारा लिखा हुआ दिखाया जाय और कोई व्यक्ति पार्श्वसे (पीछेसे) बोलकर बताये तथा अन्य विज्ञापनोंकी तरह दिनमें अनेक बार और कुछ लम्बे समयतक इन विज्ञापनोंको जारी रखा जाय तो थोड़े समयमें देशमें 'गोक्रान्ति' हो सकती है और यदि 'गो-दुग्ध-सेवनके प्रचारको' अधिक महत्त्व दिया जाय तो गोवध तो अपने-आप ही धीरे-धीरे बन्द हो जायगा। **[प्रेषक—श्री के० एल० भटेजा]**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'दातव्यमिति यद्दानम्'

(श्रीरघुराजसिंहजी बुन्देला 'ब्रजभान')

आजके इस भौतिकवादी युगमें जहाँ संसारभरमें प्राय: सभी लोग धनसम्पदाकी छीनाझपटीमें लगे हुए हैं; दानकी महिमाकी चर्चा अपरिहार्य हो गयी है। आज प्राय: सभी लोग, सभी संस्थाएँ और सभी देश एक-दूसरेके शोषणमें पूरी शक्तिसे लगे हुए हैं। अमर्यादित परिग्रहकी आसुरी वृत्तिने सबके चिन्तनको बन्धक बना लिया है। फलस्वरूप समूचे विश्वमें प्राकृतिक प्रकोप तथा सामाजिक अशान्ति दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही है। दुनियाका भविष्य अन्धकारकी ओर गतिमान् है।

दानकी महिमाके विषयमें प्राय: सभी सद्ग्रन्थोंमें भरपूर सामग्री विद्यमान है; किंतु दानके तत्त्वको जिसे 'दातव्य' कहते हैं, समझनेमें हमने बहुत बड़ा प्रमाद किया है।

श्रीमद्भगवद्गीता, जो स्वयं भगवान्ने अपने श्रीमुखसे कही है, दानके तत्त्वको भलीभाँति समझाती है। गीताके अनुसार सात्त्विक दान ही दातव्य है, जिस दानके साथ श्रद्धा नहीं होती, वह दान असत् होता है। ऐसा दान दातव्य नहीं होता; जैसे कि कोई भी कर्म कर्तव्य नहीं होता।

दानका एक ऐसा विज्ञान है; जिसे देश, काल, परिस्थिति और व्यक्तिके अनुसार सात्त्विक बुद्धिसे निश्चित किया जाता है। दान वस्तुत: अपने पुण्यका दान करना है। दान और पुण्य परस्पर अन्योन्याश्रित हैं।

हम पापका फल भोगनेको विवश होते हैं, किंतु पुण्यका फल त्यागनेको सक्षम हो सकते हैं। पुण्यका फल यदि हमने त्यागा नहीं तो वह हमारे स्वभावमें भोगोंके संस्कार जमा कर देगा और जब पुण्य क्षीण होंगे तो हमारा सुखभोग—संस्कारित स्वभाव हमें बन्धनमें डालकर पतन कर देगा। इसलिये पुण्यका त्याग करना परमार्थकांक्षियोंके लिये अपरिहार्य होता है। पुण्यके भोगसे पुण्यका क्षरण होता है और पुण्यके त्यागसे क्षरण रुक जाता है। पुण्यका त्याग होता है दातव्य (देनेयोग्य)-के दानसे। दातव्यके दानसे पुण्य ऊर्ध्वगामी और वर्धमान होता है और यही हमें निष्काम बनाता है और परमार्थकी उपलब्धि कराता है। शुकदेव महाराज जीवन्मुक्त महात्मा हैं। वे सम्पूर्ण कर्मोंके बन्धनोंसे मुक्त हैं। उन्हें कोई भी कर्म करना कभी भी आवश्यक नहीं है, फिर भी उन्हें परीक्षित्के लिये उपस्थित होना पड़ा और उन्होंने राजा परीक्षित्को वह दान दिया, जिसके लिये देवता भी तरसते हैं। उनके उस दिव्यतम दानका फल इतना व्यापक हुआ कि अनन्त कालतक तीनों लोकोंको फल देनेवाला हो गया। उनके द्वारा प्रदत्त वह दान, जिसे हम श्रीमद्भागवत कहते हैं, परात्पर पुरुषोत्तम स्वयं भगवान् श्रीकृष्णकी साक्षात् वाङ्मयी मूर्ति है।

आज धनका दान ही दानकी सामान्य परिभाषा है, किंतु धनकी सृष्टि विधाताने भोगके लिये नहीं, अपितु यज्ञके लिये ही की है—**'यज्ञाय सृष्टानि धनानि धात्रा।'** अत: धनका सर्वोत्तम उपयोग उसके द्वारा यज्ञसिद्धि है। यज्ञ प्रत्येक व्यक्तिके समक्ष प्रत्येक परिस्थितिमें करणीय कर्तव्यके रूपमें सदा प्रस्तुत रहते हैं। जितने भी यज्ञ हैं, वे सभी कर्तव्य हैं। वे सभी दान भी हैं। ज्ञान-दान, धन-दान, समय-दान, श्रम-दान, अभय-दान आदि जितने भी दान हैं, सभी यज्ञ हैं; क्योंकि दान यज्ञ है। यज्ञसे पुण्य होता है और पुण्यसे यज्ञीय क्षमतामें वृद्धि होती है। हमारा कर्तव्य है कि हम अपनी तन-मन-धनकी सम्पूर्ण क्षमताको प्रमादरहित होकर यज्ञमें निवेश करें। यह सब दान है, अधियज्ञस्वरूप भगवान् कृष्ण ही सम्पूर्ण यज्ञोंके भोक्ता हैं। दाताके द्वारा दातव्यका दान सत्यत: स्वयं भगवान् ही भोगते हैं।

दान दारिद्र्यका प्रतिकारक और ऐश्वर्यका कारक कर्म है। इससे स्वयं भगवान् तृप्त होते हैं। दान न करनेसे हमारे स्वभावमें लोभ और कृपणताका दृढ़ीकरण होता है। हमारी आत्मचेतना एकदेशीय जड़ताकी ओर गतिमान् हो जाती है, जबकि दान देनेसे आत्मचेतना विस्तृत और परम स्वतन्त्रताकी ओर गति करने लगती है।

अत: कल्याणकी कामना रखनेवालेको अपनी क्षमताके अनुसार सदा दान करते ही रहना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लौकिक और अलौकिक सुख

(आचार्य श्रीअमरनाथजी दीक्षक)

संसारका प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है। आजका मनुष्य संसारके संसाधनोंमें सुख खोज रहा है। सुखकी प्रत्याशामें ही वह कर्म करता है, वह आशा करता है कि उसे सुख अवश्य मिलेगा, पर ऐसा होता नहीं है, निराशा और दुःख ही हाथ लगते हैं—*'सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।'* एक संस्कृत-सूक्तिमें सुख और दुःखको इस प्रकार परिभाषित किया गया है—**'सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्'** अर्थात् दूसरेके बन्धनमें—अधीन रहना दुःख है, जबकि आत्माधीन या स्वतन्त्र रहना सुख है। आजके मोहासक्त मानवने सुख-दुःखके अर्थ ही बदल लिये हैं। आजका मानव इच्छापूर्ति होनेको सुख और पूर्ति न होनेको दुःख मान बैठा है। हमारे धर्मग्रन्थोंमें सुखके दो रूप बताये गये हैं—लौकिक सुख और अलौकिक सुख। लौकिक सुखका आशय उस सुखसे है, जो संसारकी किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा परिस्थितिके संयोगसे मिलता है। दूसरे शब्दोंमें आपको अपनी इच्छित वस्तुएँ, मकान, दूकान, सोना-चाँदी मिले, आपको पति-पत्नी, सन्तान, भाई-बहन आदि परिवारजन मिलें, आपको अनुकूल परिस्थिति एवं सम्मान मिले—इन सबके मिलनेसे आपको जो आराम महसूस होता है, उसे लौकिक सुख कहते हैं। लौकिक सुख क्षणिक होते हैं। इन सुखोंका अभाव तो संसारी प्राणीके लिये दुःखकर होता ही है, इन सुखोंकी प्राप्ति भी दुःखकर ही होती है। जैसे एक व्यक्तिके पास मकान नहीं है, वह दूसरोंके मकानोंको देखकर स्वयंका मकान बनवानेके लिये कठिन परिश्रम करता है। कर्माकर्मका विचार किये बिना वह धन कमाता है, मकान बनवा लेता है, किंतु बादमें यह मकान उसे स्थायी सुख नहीं देता है। उसकी सुरक्षाकी चिन्ता, पुत्रोंके विवाद आदि विषय उसे दुःख देने लगते हैं। इसी प्रकार पुत्रप्राप्तिका सुख भी दुखदायी हो जाता है। अर्थात् लौकिक सुख कष्टप्रद एवं दुःख देनेवाले ही होते हैं। आजके मानवने लौकिक सुखोंको जीवनका आधार मान लिया है। संत कवि तुलसीने सांसारिक सुखोंको दादकी खुजलीके समान बताया है—*'ममता दादु कंडु इरषाई। हरष बिषाद गरह बहुताई॥'* लौकिक सुखजनित दुःखनिवृत्तिका एक ही उपाय है कि इन सुखोंमें आसक्ति न रखें। इन सुखोंको भगवत्कृपासे प्राप्त हुआ मानें तथा कर्तापनका अभिमान भुला दें। ऐसा मान लेनेपर व्यक्तिको इन सुखोंके नष्ट हो जानेपर दुःखका अनुभव नहीं होगा।

अलौकिक सुख, वह सुख है, जो संसारपर आधारित नहीं है। वह संसारकी किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा परिस्थितिसे नहीं मिलता। अलौकिक सुखकी विचित्रता यह है कि वह मिलनेके बाद निरन्तर बढ़ता रहता है। उसके बढ़नेकी कोई सीमा नहीं है। अलौकिक सुखोंको तीन नामोंसे जाना जा सकता है—भगवद्भक्ति, परम शान्ति और जीवन्मुक्ति। इसी सुखका नाम है—परमानन्द, निजानन्द, स्थायी प्रसन्नता, अलौकिक आनन्द। कबीरदासके शब्दोंमें *'मन मगन भया तब क्या बोले। ×××हंसा पाया मान सरोवर, डाबर डाबर क्या डोले॥'*

अलौकिक सुख शारीरिक एवं मानसिक बल, बुद्धि, योग्यता, पद, अधिकार, धन-सम्पत्ति, सम्मान आदिसे नहीं मिलेगा। अलौकिक सुखकी प्राप्तिका सरल उपाय है—सत्संग एवं ईश्वरमें विश्वास। अलौकिक सुख भगवत्कृपासे प्राप्त होता है। उस अनन्त करुणामय परमात्माके दिव्य चरित्रोंमें श्रद्धा-विश्वासके साथ उनके श्रवण, चिन्तन एवं मननसे व्यक्तिको एक अपूर्व आनन्दका अनुभव होने लगता है। इसी आनन्दका नाम है—अलौकिक सुख। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम एवं उनके नामको आनन्दसिन्धु एवं सुखोंका धाम कहा गया है। नामकरण करते हुए महामुनि वसिष्ठने कहा है—*'जो आनंद सिंधु सुखरासी। सीकर तें त्रैलोक सुपासी॥'* अलौकिक सुखकी प्राप्तिके लिये हमें सत्संगकी वृत्ति अपनानी होगी। आत्मचिन्तन करना होगा, परमात्माके उन अनन्त उपकारोंके प्रति कृतज्ञताका भाव रखना होगा, जो उसने हमें प्रदान किये हैं। स्मरण रहे अलौकिक सुखका आनन्द मानवजीवनमें ही सम्भव है। निरन्तर सत्संग एवं आत्मचिन्तन-प्राप्तिका संयोग बनायें। अपने जीवनमें इन उपायोंकी अवधारणा करते ही धीरे-धीरे सांसारिक आसक्तिसे विरक्ति हो जायगी। अन्तःकरणमें आनन्दका अजस्त्र निर्झर झरने लगेगा और अलौकिक सुखकी अनुभूति होने लगेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधनोपयोगी पत्र

(१)

भगवान्‌की दयालुतापर विश्वास

प्रिय महानुभाव! सादर सप्रेम हरिस्मरण। पत्रके उत्तरमें यह समझना चाहिये कि जबतक मनुष्य परमात्माको नहीं प्राप्त कर लेता, तबतक नित्य नये जालोंमें फँसता ही रहता है। हमलोग अनन्त जन्मोंसे यही करते आ रहे हैं, परंतु यह नहीं मानना चाहिये कि 'उबरनेकी कोई सूरत ही नहीं है।' तुम्हें भगवान्‌पर श्रद्धा रखनी चाहिये कि वे उबारनेवाले हैं, उनकी शरण लेते ही सारे जाल सदाके लिये कट जाते हैं। घबड़ाओ नहीं, 'अटकी नाव' भगवत्कृपाके अनुभवरूपी अनुकूल वायुका एक झोंका लगते ही चल पड़ेगी। भगवान्‌की दयालुतापर विश्वास करो। जो दुःख, कष्ट और विपत्तियाँ आ रही हैं, उन्हें भगवत्कृपाका आशीर्वाद समझो और प्रत्येक कष्टके रूपमें कृष्ण-कन्हैयाके दर्शनकर उन्हें अपनी सारी सत्ता समर्पण करनेकी चेष्टा करो, कष्टोंको कृष्णरूपमें वरण करो, सिर चढ़ाओ, आलिंगन करो, परंतु उनसे छूटनेके लिये कभी भूलकर भी कुमार्गपर चलनेकी कायरताके वश मत होओ; लड़ते रहो—मनकी बुरी वृत्तियोंसे—ऐसा करोगे तो श्रीकृष्णकृपासे तुम्हारी एक दिन अवश्य विजय होगी, तुम सुखी होओगे। मैं भी चाहता हूँ तुमसे मिलना हो। परंतु संयोग ईश्वराधीन है। मेरे दिलको तुम अपने साथ समझो। तुम हर हालतमें मेरे प्रिय हो और रहोगे; शरीर और मनसे प्रसन्न रहनेकी निरन्तर चेष्टा करते रहो। भगवान्‌के नामका जप सदा करते रहो और उसे उत्तरोत्तर बढ़ाओ। शेष प्रभुकृपा।

(२)

आत्माकी नित्य आनन्दरूपता

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला, उत्तरमें निवेदन है कि सदैव बीमारीका द्रष्टा बनकर रहना चाहिये। वास्तवमें रोग आपको है भी नहीं। आप पांचभौतिक क्षयशील शरीरसे सर्वथा भिन्न हैं। शरीरके क्षय-वृद्धि, बुद्धिके सुख-दुःख या प्राणोंकी क्षुधा-पिपासासे असलमें आपका कोई यथार्थ सम्बन्ध नहीं है—भ्रमसे तादात्म्य हो गया है। इसीसे दृश्य-पदार्थोंके विकार आपको अपने शुद्ध, बुद्ध, नित्यमुक्त एकरस आनन्दस्वरूपमें भास रहे हैं। अपने यथार्थ स्वरूपको पहचानकर सदा निर्भय, निश्चिन्त रहना चाहिये। हो सके तो वाणी या मनसे '**हरिः शरणम्**' मन्त्रका जप करना चाहिये। हरिके साथ तादात्म्य प्राप्त करना ही वास्तविक 'हरिशरण' है। इस मन्त्रजपसे इहलौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकारका कल्याण होता है। इस बातका दृढ़ निश्चय रखना चाहिये कि रोग या मृत्युकी तो बात ही क्या है, महाप्रलय भी आपके कूटस्थ स्वरूपको नहीं हिला सकता।

मायाके खेल बनते और बिगड़ते हैं। इससे आपमें कुछ भी परिवर्तन कभी नहीं होता। मायाका स्वामी महामायावी प्रभु ही इस खेलको खेल रहा है। उसीने अपने रूपका एक खिलौना बना रखा है, जो अभी इस नामोपाधिसे युक्त है। वही खेलता है, वही खिलौना है और वही इस खेलको देख भी रहा है। फिर खिलौना अपनेको अलग समझकर चिन्ता क्यों करे? यदि थोड़ी देरके लिये अलग मान भी लिया जाय तो भी वह है तो खिलाड़ीके हाथोंमें ही, उसके हाथसे कभी हट नहीं सकता। इसलिये सदा प्रसन्न-प्रफुल्लित रहकर अपने नित्य आनन्दमें निमग्न रहना चाहिये। उपाधिसे व्यक्त होनेवाले भावोंमें भी आनन्दका ही प्रवाह बहना चाहिये। शेष प्रभुकृपा।

(३)

भक्तकी सच्चे हृदयकी पुकार भगवान् अवश्य सुनते हैं

प्रिय महोदय, सप्रेम हरिस्मरण। आपने अपने पत्रमें लिखा कि अच्छी स्थितिमें भी भगवान्‌पर भरोसा नहीं होता, तब साधनकी शिथिलतामें तो हो ही कहाँसे, परंतु अब ज्यादा निराशा नहीं होती। सो भगवान्‌पर भरोसा तो अच्छी-बुरी सभी स्थितियोंमें रखना चाहिये। इसके सिवा और सहारा ही क्या है? बलवान् और निर्बल सभीके बल एक भगवान् ही हैं, परंतु अपनेको वास्तवमें निर्बल मानकर भगवान्‌के बलपर भरोसा रखनेवालेका बल तो भगवान् हैं ही। भगवान्‌के इस बलको पाकर वह अति निर्बल भी महान् बलवान् हो सकता है—'**मूकं करोति**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम्।' प्रसिद्ध है।

भगवान्‌को पुकारनेभरकी देर है। बीमार बच्चा बाहर बैठी हुई माँको पुकारे तो क्या माँ उसकी पुकार नहीं सुनती या कातर पुकार सुनकर भी आनेमें कभी देर करती है? अवश्य ही यह बात होनी चाहिये कि माँ बाहर मौजूद नहीं होगी तो बिना सुने कैसे आयेगी और बच्चेकी पुकार केवल बनावटी और विनोदभरी होगी तो माँ सुनकर भी अपनी आवश्यकता न समझकर नहीं आयेगी। परंतु कातर पुकार सुननेपर तो माँसे रहा ही नहीं जायगा। जब माँकी यह बात है तब सारी माताओंका एकत्र केन्द्रीभूत स्नेह जिस भगवान्‌के स्नेहसागरकी एक बूँद भी नहीं है, वह भगवान्‌रूपी माँ दुःखी जीव-संतानकी कातर पुकार सुनकर कैसे रह सकेगी! जीव एक तो उसे अपने पास मौजूद मानता ही नहीं, दूसरे उसकी पुकार बनावटी और लोक-दिखाऊ होती है। यदि जीव यह माने कि भगवान् यहाँ मौजूद हैं (जो वे वास्तवमें हैं ही, क्योंकि वे सर्वव्यापी हैं) और वे बड़े दयालु हैं तथा यों मानकर उन्हें कातर स्वरसे पुकारे तो फिर उनके आनेमें देर नहीं होती। द्रौपदीकी पुकारपर चीर बढ़ाना और द्वारकासे तुरंत वनमें पहुँचकर पाण्डवोंको दुर्वासाके शापसे बचाना प्रसिद्ध ही है।

नियमोंका पालन प्रेम और अति दृढ़ताके साथ करते रहें। कृपा तो भगवान्‌की है ही। उस कृपाका अनुभव करते ही मनुष्य भगवदभिमुखी हो सकता है। सदा प्रसन्न रहिये और भगवान्‌की कृपाका दृढ़ भरोसा रखिये। भगवान्‌को नित्य अपने साथ मानिये, फिर पाप-ताप समीप भी नहीं आ सकते। × × × × निराश तो जरा भी न होइये। भगवान्‌के बलका भरोसा करनेपर निराशा कैसी? शेष प्रभुकृपा।

(४)

भगवत्साक्षात्कारके उपाय

प्रिय महोदय! आपके प्रश्नोंके उत्तर इस प्रकार हैं—

(१) उत्तम लेखोंके संग्रह करनेवाले तथा उत्तम लेख लिखनेवालोंको ईश्वरसाक्षात्कार होना ही चाहिये, यह कोई बात नहीं है। लेख संग्रह करना और लिखना तो परिश्रम, दक्षता, अध्ययन, अभ्यास तथा विद्यासे भी हो सकता है। प्रभुका साक्षात्कार तो प्रेम—सच्चे प्रभु-प्रेमसे होता है। वहाँ विद्या, यज्ञ, दान, कर्म, तप आदिका इतना महत्त्व नहीं, जितना प्रेमका है। वास्तवमें सत्य प्रेम ही प्रभुका स्वरूप है—

प्रेम हरीको रूप है, वे हरि प्रेमस्वरूप।
एकहि ह्वै द्वैमें लसै, ज्यों सूरज अरु धूप॥

प्रभु-प्रेम सर्वथा अनन्य और अव्यभिचारी हुआ करता है। उस प्रेमका भाग दूसरे किसीको किंचित् भी नहीं मिलता।

(२) इस कलिकालमें भगवान्‌का साक्षात्कार अवश्य हो सकता है। भगवान् नित्य हैं तो उनका साक्षात्कार भी सर्वकालमें नित्य है। भगवान्‌के साक्षात्कारका पहला उपाय तो साक्षात्कारकी अति तीव्र और एकमात्र इच्छाका होना है। भगवान्‌की माधुरी मूर्तिके दर्शनके लिये प्राणोंमें व्याकुलता, मनमें वेदना और अन्य सारी अभिलाषाओंका त्याग हो जाना चाहिये। परंतु यह बात सदा याद रखनी चाहिये कि अपने पुरुषार्थके बलसे भगवान्‌के दर्शन नहीं हो सकते। उस वस्तुकी कोई कीमत नहीं है, जिसके बदलेमें वह मिल जाय। व्याकुलता, वेदना और अन्य सारी आकांक्षाओंका त्याग कोई साधन नहीं है। ये तो प्रभु-विरहीके लक्षण हैं। भगवान्‌के दर्शन तो उन्हींकी कृपासे होते हैं। आप जिस स्वरूपके दर्शन चाहते हैं, उसीके दर्शन हो सकते हैं, परंतु इसमें किसी मनुष्यकी सहायता क्या काम दे सकती है। आपका और आपके प्रभुका बड़ा ही निकटका सम्बन्ध है; वे आपमें हैं और आप उनमें हैं, वे आपके हैं और आप उनके हैं। इस सीधे सम्बन्धको पहचानकर, पहचाननेमें न आये तो विश्वास करके ही सच्चे हृदयसे पुकारिये। आपकी व्याकुल पुकारसे बड़ा काम हो सकता है। भगवान् सब स्थानोंमें, सब कालमें पूर्णरूपसे विराजमान हैं। पुकार सुनते ही उत्तर देते हैं। आवश्यकता केवल सच्ची पुकारकी है। भगवान् यहाँपर हैं, मेरे एकमात्र प्रेमास्पद हैं। इस विश्वास और निश्चयपर दृढ़तासे आरूढ़ होकर जो भगवान्‌को पुकारा जाता है, वही सच्ची पुकार है। दो बातें होनी चाहिये—एक भगवान्‌के यहाँ होनेमें दृढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वास और दूसरी उन्हींको एकमात्र अपना परम प्रेमपात्र समझना। बस, ऐसा समझकर तीव्र इच्छा और प्राणोंकी व्याकुलतासे जिस किसीने उनको पुकारा है, उसीने उनकी दिव्य झाँकीका दर्शन प्राप्त किया है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। भगवान्के श्रृंगारकी जैसी आप ठीक समझें वैसी ही भावना करें। दर्शन होनेपर असलीका पता आप ही लग सकता है। नामका जप—जो नाम आपको प्रिय लगे, उसीका करें, परंतु श्रीकृष्णभगवान्के उपासकके लिये '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' या '**श्रीराम कृष्ण हरि**' अथवा '**श्रीकृष्णः शरणं मम**' ये मन्त्र बहुत उपादेय हैं। भगवान्को जल्दी आकर्षित करनेका उपाय तो प्रेम है—अनन्य प्रेम है। सारी इन्द्रियाँ उन्हींकी सेवामें लग जानी चाहिये, आरम्भमें नियमपूर्वक नाम-जप, सदा नाम जपते हुए ही कार्य करनेका अभ्यास, नियमित ध्यान करनेकी चेष्टा, ध्यानकी चेष्टा रखते हुए ही कार्य करनेका अभ्यास, असत्य, दम्भ और अभिमानका त्याग, दीनता, नम्रता, प्रेम, मैत्री आदिका ग्रहण करना—ये ही उपाय हैं।

भगवान्की कृपाका भरोसा रखना—'उनकी कृपासे मेरा अवश्य उद्धार होगा, भगवान् मुझे जरूर दर्शन देकर कृतार्थ करेंगे' ऐसा निश्चय रखना; भगवान् सदा मेरे साथ हैं, मैं उनके शरणागत हूँ, उनका वरद हाथ मेरे मस्तकपर है, मेरे कृतकार्य होनेमें कोई सन्देह नहीं, पाप मेरे पास नहीं आ सकते—इस प्रकारकी दृढ़ भावना करना बहुत लाभकारी है। शेष प्रभुकृपा।

(५)

भगवद्भक्तिसे हानि नहीं होती

प्रिय बहन! आपका पत्र मिला। आप लड़कपनसे ही यथाशक्ति पूजा-पाठ तथा जप करती हैं। आपके दो पुत्र चले गये। अब तीसरा बच्चा हुआ है, पर आपकी माताजी कहती हैं कि 'इस पूजा-पाठके कारण ही पहले बच्चे मर गये थे। तुम्हारे पूजा-पाठसे इस बच्चेका भी अनिष्ट हो जायगा।' सो यह उनका भ्रम है। भलेका फल कभी बुरा नहीं हो सकता। भगवान्की भक्ति, भगवान्के नाम-जप तथा अपने घरमें भगवान्की पूजा करनेका सभीको अधिकार है। स्त्री हो या पुरुष—यह सभीके लिये मंगलकारी कार्य है। भगवान्की भक्तिसे पुत्रोंके मरनेका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। हानि-लाभ, सुख-दुःख, जीवन-मरण सब प्रारब्धके फल हैं। भगवद्-भक्तिसे तो सकामभाव होनेपर ये प्रारब्धके विधान उलटे टल सकते हैं। न टलें तो भी अमंगल तो होता ही नहीं। मनुष्य-जीवनकी सफलता ही भगवान्की भक्तिमें है। आपको बड़ी नम्रता, विनय तथा सेवा करके माताजीको यह बात समझानी चाहिये। विवाद-झगड़ा कभी नहीं करना चाहिये।

फिर भी यदि माताजीको इससे बहुत ही दुःख होता हो तो आप धीरे-धीरे अपनी भक्तिके भावको मनके अन्दर ले जाइये। मनसे आप भगवान्को याद करेंगी, उनकी मानसिक पूजा करेंगी तो उससे कोई आपको रोक नहीं सकता। न किसीको पता ही लग सकता है। फिर किसीकी अप्रसन्नताका कोई प्रश्न ही नहीं रह जायगा और वास्तवमें जितना महत्त्व मानसिक भावोंका है, उतना बाहरी पूजाका है भी नहीं। पर इसका यह अर्थ नहीं मानना चाहिये कि मैं बाहरी पूजाका निषेध करता हूँ। बाहरी पूजा भी अवश्य करनी चाहिये, परंतु भीतरीके साथ-साथ और जहाँ-कहीं उससे कोई उपद्रव खड़ा होता हो (चाहे वह किसीकी भूलसे हो), वहाँ तो ज्यादा अभ्यास भीतरीका ही करना चाहिये।

अन्तमें आपकी माताजीसे भी मेरी प्रार्थना है कि वे इस भ्रमको छोड़ दें। भगवान्की भक्ति और पूजा स्त्री-पुरुष सभी कर सकते हैं और भगवान्की भक्ति-पूजासे लोक-परलोकमें कल्याण ही होता है। उसको रोकना, भक्ति करनेवालेका विरोध करना पाप है और उससे परिणाममें दुःख होता है। घरवालोंका तो यह परम धर्म होना चाहिये कि वे समझाकर, विनय करके, सेवा करके सभी घरवालोंको भगवान्की भक्तिके मार्गमें लगायें। वही सच्चा घरका मित्र, बन्धु और हितैषी है, जो अपने घरवालों, मित्रों और बन्धुओंको भगवान्की ओर लगाता है—

तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रानते प्यारो।
जासों होय सनेह राम-पद, एतो मतो हमारो॥

शेष भगवत्कृपा!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०६८, शक १९३३, सन् २०११, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-शरद्-ऋतु, आश्विन कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ३। २२ बजेतक	मंगल	पू० भा० प्रात: ६।५१ बजेतक	१३ सितम्बर	प्रतिपदा श्राद्ध, अशून्यशयनव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ६। २८ बजे।
द्वितीया सायं ५।२० बजेतक	बुध	उ० भा० दिनमें ९।१७ बजेतक	१४ "	मूल दिनमें ९। १७ बजेसे, द्वितीयाश्राद्ध, उत्तरा फाल्गुनीमें सूर्य सायं ४। १८ बजे।
तृतीया रात्रिमें ७।२६ बजेतक	गुरु	रेवती " ११।५४ बजेतक	१५ "	पंचक समाप्त दिनमें ११। ५४ बजे, मेषराशि दिनमें ११। ५४ बजेसे, संकष्टी गणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ७। ३६ बजे, भद्रा प्रात: ६। २३ बजेसे रात्रिमें ७। २६ बजेतक, तृतीयाश्राद्ध, शुक्रवालत्व निवृत्ति दिनमें १। ५१ बजे।
चतुर्थी " ९।२६ बजेतक	शुक्र	अश्विनी " २।३० बजेतक	१६ "	चतुर्थीश्राद्ध, मूल समाप्त दिनमें २। ३० बजे।
पंचमी " ११।१३ बजेतक	शनि	भरणी सायं ४।५४ बजेतक	१७ "	वृषराशि रात्रिमें ११। २५ बजे, विश्वकर्मापूजा, पंचमीश्राद्ध, भरणी श्राद्ध, कन्यासंक्रान्तिमें सूर्य रात्रिमें २। २५ बजे, शरद्-ऋतु प्रारम्भ।
षष्ठी " १२।४१ बजेतक	रवि	कृत्तिका रात्रिमें ७।२ बजेतक	१८ "	भद्रा रात्रिमें १२। ४१ बजेसे, संक्रान्तिजन्य पुण्यकाल, श्रीचन्द्रषष्ठीव्रत, षष्ठीश्राद्ध, चन्द्रोदय रात्रिमें ९। ४० बजे, सौर आश्विनमासारम्भ।
सप्तमी " १।४० बजेतक	सोम	रोहिणी " ८।४३ बजेतक	१९ "	भद्रा दिनमें १। ११ बजेतक, सप्तमीश्राद्ध।
अष्टमी " २।११ बजेतक	मंगल	मृगशिरा " ९।५७ बजेतक	२० "	मिथुनराशि दिनमें ९। १९ बजे, जीवत्पुत्रिकाव्रत, महालक्ष्मीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ११। १४ बजे, अष्टकाश्राद्ध।
नवमी " २।१० बजेतक	बुध	आर्द्रा " १०।४० बजेतक	२१ "	मातृनवमी नवमीश्राद्ध, अन्वष्टकाश्राद्ध।
दशमी " १।४० बजेतक	गुरु	पुनर्वसु " १०।५४ बजेतक	२२ "	भद्रा दिनमें १। ५६ बजेसे रात्रिमें १। ४० बजेतक, कर्कराशि सायं ४। ५१ बजेसे, दशमीश्राद्ध।
एकादशी " १२।४३ बजेतक	शुक्र	पुष्य " १०।४० बजेतक	२३ "	राष्ट्रीय आश्विनमासारम्भ, इन्दिरा एकादशीव्रत, (सबका) एकादशीश्राद्ध, मूल रात्रिमें १०। ४० बजेसे।
द्वादशी " ११।१८ बजेतक	शनि	आश्लेषा " ९।५९ बजेतक	२४ "	सिंहराशि रात्रिमें ९। ५९ बजेसे, द्वादशीश्राद्ध।
त्रयोदशी " ९।३४ बजेतक	रवि	मघा " ९ बजेतक	२५ "	मूल रात्रिमें ९। ० बजेतक, प्रदोषव्रत, भद्रा रात्रिमें ९। ३४ बजेसे, मासशिवरात्रिव्रत, त्रयोदशीश्राद्ध, मघाश्राद्ध।
चतुर्दशी " ७।३३ बजेतक	सोम	पू०फा० " ७।४३ बजेतक	२६ "	भद्रा दिनमें ८।३४ बजेतक, चतुर्दशीश्राद्ध, कन्याराशि रात्रिमें १।२० बजेसे।
अमावस्या सायं ५।१९ बजेतक	मंगल	उ० फा० सायं ६।१४ बजेतक	२७ "	स्नान-दान-श्राद्धादिकी पुण्यतमा अमावस्या, भौमवती अमावस्या, महालया समाप्ति, अमावस्या श्राद्ध, पितृविसर्जन।

सं० २०६८, शक १९३३, सन् २०११, सूर्य दक्षिणायन, शरद्-ऋतु, आश्विन शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें २।५६ बजेतक	बुध	हस्त दिनमें ४। ३६ बजेतक	२८ सितम्बर	तुलाराशि रात्रिमें ३।४५ बजे, चन्द्रदर्शन, शारदीय नवरात्रारम्भ, महाराज अग्रसेन जयन्ती, मातामहश्राद्ध, हस्त नक्षत्रमें सूर्य प्रात: ७।४१ बजे।
द्वितीया " १२। ३० बजेतक	गुरु	चित्रा " २।५५ बजेतक	२९ "	× × × ×
तृतीया " १०।७ बजेतक	शुक्र	स्वाती " १।१७ बजेतक	३० "	भद्रा रात्रिमें ८।५८ बजेसे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।
चतुर्थी प्रात: ७। ५० बजेतक पंचमी रात्रिशेष ५।४२ बजेतक	शनि	विशाखा " ११।४७ बजेतक	१ अक्टूबर	भद्रा प्रात: ७। ५० बजेतक, वृश्चिकराशि प्रात: ६। १० बजेसे, उपांगललिताव्रत।
षष्ठी रात्रिमें ३।५० बजेतक	रवि	अनुराधा " १०।२७ बजेतक	२ "	महात्मा गांधी एवं लालबहादुर शास्त्री जयन्ती, मूल दिनमें १०।२७ बजसे।
सप्तमी " २।२० बजेतक	सोम	ज्येष्ठा " ९।२५ बजेतक	३ "	भद्रा रात्रिमें २।२० बजेसे, धनूराशि दिनमें ९।२५ बजेसे।
अष्टमी " १।१२ बजेतक	मंगल	मूल " ८।४३ बजेतक	४ "	भद्रा दिनमें १। ४६ बजेतक, श्रीदुर्गामहाष्टमीव्रत, महानिशापूजा, मूल दिनमें ८।४३ बजेतक।
नवमी " १२।३१ बजेतक	बुध	पू०षा० " ८।२४ बजेतक	५ "	महानवमीव्रत, दुर्गानवमी, मकरराशि दिनमें २। २६ बजेसे।
दशमी " १२। २० बजेतक	गुरु	उ० षा० " ८।३४ बजेतक	६ "	विजयादशमी, अपराजितापूजन, नीलकंठदर्शन, शमीपूजन।
एकादशी " १२।४२ बजेतक	शुक्र	श्रवण " ९।१४ बजे	७ "	भद्रा दिनमें १२। ३१ बजेसे, रात्रिमें १२। ४२ बजेतक, कुम्भराशि रात्रिमें ९।४८ बजेसे, पापाङ्कुशा एकादशीव्रत (सबका), पंचकारम्भ रात्रिमें ९।४८ बजे।
द्वादशी " १। ३५ बजेतक	शनि	धनिष्ठा " १०।२४ बजे	८ "	पद्मनाभद्वादशीव्रत।
त्रयोदशी " २।५४ बजेतक	रवि	शतभिषा " १२।० बजेतक	९ "	प्रदोषव्रत।
चतुर्दशी रात्रिशेष ४।३८ बजेतक	सोम	पू०भा० " २।५ बजेतक	१० "	भद्रा रात्रिमें ४।३८ बजेसे, मीनराशि दिनमें ७।३४ बजेसे।
पूर्णिमा अहोरात्र	मंगल	उ० भा० " ४।२८ बजेतक	११ "	मूल दिनमें ४।२८ बजेसे, भद्रा सायं ५।३८ बजेतक, शरद पूर्णिमा, महर्षि वाल्मीकि-जयन्ती, चित्रा नक्षत्रमें सूर्य रात्रिमें ७।११ बजे।
पूर्णिमा प्रात: ६।३९ बजेतक	बुध	रेवती रात्रिमें ७।३ बजेतक	१२ "	मेषराशि रात्रिमें ७।३ बजेसे, पंचक समाप्त रात्रिमें ७। ३ बजे, पूर्णिमा, कार्तिकस्नानारम्भ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृपानुभूति

'असरन सरन दीन जन गाहक'

घटना सन् १९७० ई० की है। आर०बी० कॉलेज, दलसिंहसरायके कुछ सहकर्मियोंके साथ दुर्गापूजाके बाद मैं कश्मीरकी यात्रापर निकला था। साथमें कुछकी पत्नियाँ भी थीं। श्रीनगर पहुँचकर सर्वप्रथम हमने एक आवास ठीक किया। पहले दिन हम सभीने डल झीलमें नौकाविहार किया तथा वहाँकी अनेक मनोहारिणी पुष्पवाटिकाओंका अवलोकन किया। दूसरे दिन सरकारी बससे सुबह सात बजे हम गुलमर्गके लिये निकल पड़े। दस बजे वहाँ पहुँच गये। बसवालेने हमें आगाह कर दिया कि चार बजेतक निश्चित रूपसे लौट आना है।

बर्फीले पहाड़पर चढ़नेके लिये गुलमर्गमें हजारों यात्री पहुँचे हुए थे। देखते-ही-देखते भाड़ेके घोड़ेपर सवार हो वे सभी चढ़ाईके लिये निकल गये। एक व्यक्तिद्वारा शॉर्टकट रास्ता बताये जानेपर हम पैदल ही पगडंडी पकड़कर ऊपर चढ़ने लगे। लगभग एक घण्टेतक चलते-चलते और बहते पहाड़ी नालोंको पार करते हुए हम घनघोर जंगलमें पहुँच गये। न ऊपर आकाश और न चतुर्दिक् कोई आदमी ही नजर आ रहा था। मन-ही-मन हम सभी भयभीत हो रहे थे। तभी अचानक ऊपरकी ओर जंगलमें ही एक स्थान दिखायी पड़ा, जहाँ घोड़ेसहित कुछ यात्री भी नजर आ रहे थे। उस स्थानको लक्ष्य बनाकर हम ऊपरकी ओर बढ़ने लगे। वहाँ पहुँचकर हमने देखा कि एक छोटी-सी चाय-पानकी दूकानके अतिरिक्त वहाँ कुछ नहीं है। सभी घुड़सवार यात्री वहाँसे आगेकी ओर जा चुके थे। हम सभी थक चुके थे। वहाँ रुककर हमने पराठे खाये और चाय पी। यहाँसे बर्फीला पहाड़ दिखायी पड़ता है, इसीलिये इस स्थानको 'व्यू प्वाइण्ट' कहते हैं।

हमारे साथकी महिलाएँ और बड़े बाबू अब आगे जानेके लिये बिलकुल तैयार नहीं थे। विचार हुआ कि वे लोग वहीं रुक जायँ। प्रो० चौबे, प्रो० चौधरी और मैं—तीनों जन आगे बढ़े तथा ऊपरसे उतरनेपर हम सभी लोग साथ लौटेंगे—यह निश्चित हुआ। रिम-झिम बारिशकी बूँदें पड़ रही थीं। हम तीनों चल पड़े, किंतु थोड़ी ही दूर जानेपर थकानके कारण मेरे मनमें आया कि मैं भी लौट चलूँ और फिर प्रो० चौधरीके साथ मैं पीछे लौट चला। प्रो० चौबे हमारे मना करनेपर भी अकेले आगे बढ़ गये। पहलेवाले स्थानपर लौटकर हमने देखा कि बड़े बाबू और तीन महिलाओंको छोड़कर वहाँ कोई नहीं है। दूकान उठ चुकी थी। पूछनेपर पता चला कि दूकानवालोंने जाते-जाते इनसे कहा था कि आप सब निर्जन वनमें प्रतीक्षा नहीं करें, लौट जायँ; क्योंकि चढ़ाईपर जानेवाले इस रास्तेसे लौटते नहीं हैं, लौटनेका दूसरा रास्ता है। प्रभुकी महती कृपा हुई कि हम शीघ्र बीच रास्तेसे लौट आये।

दिनके ढाई बजे थे। हम पहलेवाले रास्तेसे लौटने लगे। सतर्कता बरतनेके बाद भी हम बसपड़ावसे आधा कि०मी० दूर नीचे उतरे। बसपड़ावकी ओर बढ़ते हुए हमने देखा कि प्रो० चौबे तेजीसे हमारी ओर आ रहे हैं। उनके चेहरेपर घबराहट थी। हमें आश्चर्य हुआ कि हमसे पहले ये कैसे नीचे पहुँच गये। मैंने पूछा—'क्या बात है?' प्रो० चौबेने कहा कि चार बज चुके हैं, जल्दी बस पकड़ें, अपनी बात मैं आवासपर बताऊँगा। यह सुनकर हमलोग घबड़ा उठे।

जैसे-तैसे रात्रि आठ बजे हम अपने आवासपर पहुँच गये। प्रो० चौबेने हमें बताया कि दूरवर्ती घुड़सवार यात्रियोंको आगे जाते देखकर वे भी उसी ओर बढ़ने लगे, किंतु जब बर्फकी चादर ओढ़े पर्वतके समीप पहुँचे तो आनन्दसे हृदय गद्गद हो गया। बर्फका शीतल स्पर्श करते ही दृष्टि आगेकी ओर गयी। देखा, यहाँ दूर-दूरतक कोई यात्री नहीं। सभी नीचे उतर चुके थे। अपनेको एकाकी पाकर शरीर रोमांचित हो उठा, मन विचलित होने लगा, नीचे उतरनेका कहीं कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था। आँखसे आँसू टपकने लगे थे। हे प्रभो, अब मैं क्या करूँ? हृदय चीत्कार कर उठा। किसी तरह पहाड़की ओर पीठ किये तथा दोनों हाथोंसे झाड़ियों-पत्थरोंको पकड़ते हुए नीचे उतरने लगा। रास्ता बिलकुल अनजान था। अचानक देखा कि नीचे एक आदमी खाली घोड़ा थामे खड़ा है। मैं खिसकते हुए उसके पास पहुँचा। उस आदमीसे बात हुई और उसने अपने घोड़ेपर मुझे 'रोप-वे' तक पहुँचा दिया। 'रोप-वे' से नीचे उतरकर तेजीसे मैं आपलोगोंकी खोजमें निकल पड़ा और भगवान्‌की ऐसी कृपा हुई कि मैं सकुशल आपतक पहुँच गया।

प्रभुकी इस असीम कृपाको यादकर आज भी हम रोमांचित हो जाते हैं। बीच रास्तेसे हम दोनोंका लौटना तथा प्रो० चौबेको निर्जन पहाड़की ऊँचाईपर खाली घोड़ा मिलना निश्चित रूपसे हमारी जीवनरक्षाके निमित्त परम प्रभुद्वारा अकल्पनीय संयोग बनाना था। हम दोनों नहीं लौटते तो उस घनघोर जंगलमें हमारी राह देखती महिलाएँ एवं बड़े बाबू कालके ग्रास बन जाते तथा घोड़ा नहीं मिलता तो प्रो० चौबेका प्राणान्त निश्चित था। हम क्यों लौटे और घोड़ा कहाँसे आ गया, यह सोचकर विश्वास हो जाता है कि विपरीत परिस्थितिके आ जानेपर परम प्रभु कृपा करके विविध रूप धारणकर ***'असरन सरन दीन जन गाहक'*** बन जाते हैं।—**पाण्डेय रामायणप्रसाद शर्मा**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

मानव तेरे रूप अनेक

१४ फरवरी सन् १९८३ ई० की बात है, शीतऋतुने अमेरिकामें एक कीर्तिमान स्थापित किया था, वह था सर्वाधिक बर्फ गिरनेका। उस दिन न्यूयार्क नगरमें ६ घण्टेके भीतर २७ इंच हिमपात हुआ था। यानी कार्यालय, स्कूल, बाजार, यातायात—सब ठप। इस स्थितिसे अनभिज्ञ मैं अपने पाँच माहके पुत्रको लेकर भारतसे अमेरिका जा रही थी। हम प्रवासियोंके लिये यह आना-जाना भी रोमांचकारी अनुभव लाता है। कोई भी प्रवासी भारतीय चाहे कितने ही वर्षसे दूसरे देशमें रह रहा हो, भारतभूमि छोड़ते हुए जब वायुयान हवाई पट्टीपर दौड़ता हुआ, चिंघाड़ता हुआ धीरे-धीरे ऊपर उठता है तो ऐसी ही उड़ान उसका मन भी भरता है। मानो मूक क्रन्दन करता हुआ, अपना एक हिस्सा वहीं छोड़कर ऊपर उठ रहा हो, अपने गन्तव्यकी ओर। कुछ घण्टे मन विचलित रहता है। यूरोप मानो सन्धिस्थल है। वहाँ वायुयान उतरता है, हम भारतीय भी भावावेश बदलकर अमरीकी मूडमें आनेका प्रयास करते हैं। अटलाण्टिक महासागरपर मानो हमारी चेतना अनवरत पंछी बन चक्कर काटती ही रहती है। प्रिय मिलनकी मिठास, अपना नीड़ सँवारनेकी चिन्ता हमें घेरने लगती है। ऐसे ही मिश्रित भाव लेकर मैं भी अपने नीड़की ओर उड़ान भर रही थी। माता-पिताके विछोहके आँसू सूख रहे थे, प्रिय-मिलनकी प्रतीक्षामें नयन ललक रहे थे।

'कृपया बेल्ट बाँध लीजिये। वायुयान कुछ क्षणोंमें जे०एफ०के० एयरपोर्टपर उतरनेवाला है।'—इस घोषणाके साथ मैंने भी विचारोंको पिटारीमें बंद किया एवं उस वातावरणमें सहज होनेका मैं प्रयास करने लगी। नीचे उतरते वायुयानका धीरे-धीरे धरा-स्पर्श करना मेरे लिये सदैव आह्लादकारी रहा है। तभी सर्वत्र श्वेत धरा देखकर याद आया कि यहाँ तो शीतकाल है, बर्फ गिर रही है और मैं सलवार, कुर्ता, स्वेटर एवं चप्पल पहने चली आ रही हूँ।

वायुयान धीरे-धीरे धरापर उतरा एवं सभी यात्रियोंने सन्तोषकी साँस ली। बाहर पतिदेव तो प्रतीक्षा कर ही रहे थे। हम बिना कुछ सोचे-विचारे कारमें बैठकर चल पड़े। सम्भवतः उन्हें भी मौसमकी गम्भीरता एवं जोखिमका आभास नहीं था। हम सौ मील दूर फिलाडेल्फिया नगरमें रहते थे। सोचा, दो घण्टेमें पहुँच ही जायँगे। जैसे ही एयरपोर्टसे निकले कारकी गति भी धीमी होने लगी। कार दौड़नेकी अपेक्षा रेंगने लगी। आगे-पीछे दूर-दूरतक कारोंकी पंक्ति एवं बर्फके अतिरिक्त कुछ दिखायी ही नहीं दे रहा था। तीन बजेके चले हुए अब छः बजनेको आ गये। रात घिरने लगी, अँधेरा फैलने लगा। अब हमारा आह्लाद आशंकामें बदलने लगा। अचानक कारका रेंगना भी बंद हो गया। वातावरण भयभीत हो शून्य हो गया। कारकी पीछेकी सीटपर सो रहा बेटा भी भूखके कारण जाग गया। थर्मसमें नजर डालकर देखा तो गर्म पानी भी आधा रह गया था। ठण्डसे बच्चेकी स्थिति बिगड़ती जा रही थी।

दूर-दूर जहाँतक निगाह जाती थी, असंख्य कारें पंक्तिबद्ध खड़ी नजर आती थीं। मानो लम्बी रेलगाड़ीके डिब्बे खड़े हों, जिसका इंजन खराब हो गया हो। गहराती रात एवं कड़कती ठंडमें हमारी सोच भी बुझ रही थी। आशाके दीप टिमटिमा रहे थे। परिवेशमें ऊँची इमारतें, कारोंकी पंक्तियाँ एवं बर्फके ढेर ही नजर आ रहे थे। मनुष्यका तो नामोनिशान ही नहीं था। हमें यह भी नहीं पता था कि यह न्यूयार्कका कौन-सा भाग है। पतिदेव सामनेकी बहुमंजिली इमारतमेंसे किसीके घरसे बेटेके लिये गरम पानी लानेके लिये कारसे उतरने लगे तो मैंने भयभीत हो उनका हाथ पकड़ लिया।

परंतु हमारे सामने कोई विकल्प नहीं था। बहुत देर दरवाजा खटखटानेके बाद एक व्यक्तिने खिड़कीसे बाहर झाँककर देखा तो सम्भवतः चोर-लुटेरेको नहीं याचकको खड़ा पाया, उसीसे पता चला कि यह ब्रांक्स (Bronx) है, जो कि इस महानगरका सबसे खतरनाक भाग माना जाता है। श्वेत, अफ्रिकी, स्पैनिश, क्यूबन, यूरोपियन, एशियन—सभी यहाँ साथ-साथ रहते हुए भी अपनेमें संकुचित चहारदीवारीके भीतर क्या कर रहे हैं, यह दीवारके दूसरी ओर रहनेवाला नहीं जानता। अतः किसीके द्वारपर दस्तक देना या किसीके लिये सहसा दरवाजा खोल देना बड़ा ही जोखिमका काम माना जाता है। ब्रांक्सका नाम सुनते ही हमारी श्वास रुक-सी गयी। रातका समय, जानका खतरा, पता नहीं क्या-क्या और कौन-कौन-से डरावने भाव हमारे सामने नृत्य करने लगे। किंतु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा डर निरर्थक था, हमें गरम पानी मिल गया। हम पानी लेकर वापस आ गये। थोड़ी ही देर बाद हमने अपनी कारपर दस्तक सुनी। वे लोग हर कारमें दस्तक देकर यह जानना चाह रहे थे कि अभी कुछ देर पूर्व जो व्यक्ति अपने बच्चेके लिये गरम पानी माँगने आये थे, वे किस कारमें हैं। वे पाँच माहके उस बच्चेको खोज रहे थे, जो कि बर्फमें फँस गया है। ज्यों ही हमने कारका दरवाजा खोला तो हम उन्हें देखकर अवाक् रह गये कि यह तो वही परिवार है, जिसने हमें गरम पानी दिया था। वे एवं अन्य अनेक लोग हमारी सहायताके लिये इस भीषण ठंडमें बाहर निकलकर हमें खोज रहे थे। हमारा भय तिरोहित हो गया। हमें उनमें अपनोंकी छवि नजर आने लगी। उनके हाथमें बिस्कुट एवं गरम चॉकलेट थी। उन्होंने हमें अपने घरमें रात बितानेका आमन्त्रण दिया और हमारी इस संकीर्ण मानसिकता कि हम वहाँ किसी भारतीय परिवारके लिये पूछताछ कर रहे थे, को झकझोर डाला।

मैं तो चप्पल पहने हुए थी, दो फुट बर्फमें बाहर कैसे निकलती। ग्यानाका एक भारतीय मूलका मध्यम आयुका दम्पती वहाँ रहता था, वे सज्जन अपनी पत्नीके जूते एवं कोट लेकर आये। हम कारमें सारा सामान छोड़कर उनके घरमें आ गये। अतिथि-धर्मका पूर्णतया पालन करते हुए उनलोगोंने रातके दस बजे हमारे लिये खाना बनाया। अपना बेडरूम हमें दिया और स्वयं लिविंगरूममें सोये। हम तो जड़मति-से, कृतज्ञतासे सराबोर हो हतप्रभ थे।

प्रातःकाल खिड़कीसे बाहरका दृश्य भी अद्भुत था। सैकड़ों स्थानीय नागरिक, मानो कोई आपातकालीन परिस्थिति हो, सड़कपर बर्फ साफ कर रहे थे। आस-पासके अपार्ट-मेण्टके अनेक लोग सुबह हमारा हाल पूछने आये। दोपहरके दो बजे जब सारे रास्ते साफ हो गये, तब ग्यानाके मित्रोंने हमें जाने दिया। विदाईके क्षण क्षणभरके लिये हमारा अन्तर्मन भिगो गये। मानो अपनोंसे ही दूर जा रहे हों।

आज लगभग छब्बीस वर्ष हो गये हैं इस घटनाको, यदि वे लोग हमें कहीं मिलें भी तो शायद हम उन्हें पहचान नहीं पायेंगे, परंतु वे मानवताकी जो अमिट छाप हमपर अंकित कर गये हैं, हम इसका निर्वाह कर सकें, यही प्रार्थना है।—**रेणु 'राजवंशी' गुप्ता**

(२)

अटूट आस्था

मैं मथुराके पास बाद रेलवे स्टेशनपर रेलवेमें कार्यरत हूँ, बाद रेलवे स्टेशन मथुरासे मात्र १० कि० मी० दूर है। मैं यहाँ नौकरी करनेके बाद बचा समय एवं बचे वेतनके रुपयोंसे धार्मिक पुस्तकें मँगाकर धार्मिक पुस्तकालय चलाता हूँ तथा धार्मिक पत्रिकाएँ भी मँगाता हूँ, प्रातःकाल पक्षियोंको दाना देना एवं पानी पिलाना मेरी दिनचर्या बन गयी है, शायद यही कारण है कि मुझे बड़े अच्छे-अच्छे लोगोंके दर्शन हो जाते हैं। ऐसा ही भगवान्पर अटूट आस्थाका एक प्रसंग प्रस्तुत है—

जिला इटावा (उत्तर प्रदेश)-में एक महेवा विकास खण्ड है, उसके पास अहेरीपुर कस्बेसे मात्र एक कि० मी० दूर जगमोहनपुर गाँव है। उस गाँवमें चेतरामपाल नामक व्यक्ति रहता है, वह मजदूरी करके अपना एवं अपने परिवारका पालन-पोषण करता है। उस व्यक्तिमें भगवान्के प्रति इतनी आस्था है कि ऐसा व्यक्ति मिलना कठिन है। मजदूरीसे अपना जीवन गुजारनेके बाद भी उसे यदि कहीं खोये रुपये मिल जायँ तो वह सभीको बताकर पूरी कोशिश करता है कि जिसके रुपये हैं, वे रुपये उसे मिल जायँ। एक बार ईंट भट्ठेपर किसीके दस हजार रुपये गिर गये, संयोगसे वे रुपये चेतरामको मिले। उसने वे रुपये एक ईंटसे दबा दिये, दूसरे दिन रुपयोंकी खोज करता हुआ वह व्यक्ति वहाँ आया तो चेतरामने कहा कि वहाँ ईंटसे दबे हैं, ले लो। उसने ईनाममें कुछ रुपये उसे देने चाहे, परंतु चेतरामने यह कहकर मना कर दिया कि मुझे जब भगवान् देगा, तब लेंगे। भाई उसको जमीन (खेती) देते हैं, तो मना कर देता है कि मैं मजदूरी करके खाऊँगा, मजदूरी करने जायगा तो १५ मिनट पहले पहुँचेगा एवं १५ मिनट बादतक काम करेगा। इस दौरान बैठेगा नहीं, काम करता रहेगा। एक रुपया न ज्यादा लेगा, न कम। मजदूरीके दौरान न किसीका भोजन करेगा और न पानी पियेगा, अपना भोजन एवं पानी लेकर जायगा। यदि सुबह किसी कार्यवश पत्नी भोजन न बना पाये तो स्वयं भोजन बनाकर मजदूरीपर चला जायगा, कहता है, कोई किसीका नहीं है, सब अकेले हैं। यदि कहीं धार्मिक कार्य भागवत-कथा आदि हो रही हो तो एक दिनकी मजदूरी भागवत-कथाके भण्डारेमें दे देगा और फिर मजदूरी करने नहीं जायगा। बल्कि रस्सी-बाल्टी एवं लोटा लेकर जो भागवत सुनने आये हैं, उन्हें पानी पिलायेगा। यदि कहीं रास्तेमें जा रहा है, रास्ता खराब है तो उसे ठीक करने लगेगा। गन्नेकी पेराई कर रहा है तो एक गिलास गन्नेका रस नहीं पियेगा, केवल अपनी मजदूरी लेगा। एक बार लकवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार गया। सबने इलाजके लिये कहा, उसने मना कर दिया कि जिसने मुझे बीमार किया है वही ठीक करे, मैं इलाज नहीं करवाऊँगा। उसकी आस्था इतनी दृढ़ थी कि वास्तवमें वह बिलकुल ठीक भी हो गया। एक बार ट्रैक्टर-ट्रालीके नीचे ईंट-भट्ठेपर दब गया। हाथ-पैर टूट गये, परंतु उसने बिलकुल इलाज नहीं कराया। बोला—जिसने हाथ-पैर तोड़े हैं, वही ठीक करे, वरना यदि उसकी यही इच्छा है तो हाथ-पैरटूटे बना रहूँगा। प्रभुकी ऐसी कृपा हुई कि चार-पाँच माह बाद वह बिलकुल ठीक हो गया। सरकारने मकान बनानेको रुपये दिये तो मना कर दिया, कहा—मैं तो झोपड़ीमें ही ठीक हूँ। यदि किसीकी गाय मर जाय तो स्वयं गड्ढा खोद देगा और उसे दफनायेगा। यदि कोई उसे कुछ देना चाहे तो एक रुपया भी नहीं लेगा। यदि लड़का भी बीमार पड़ जाय तो इलाज नहीं करायेगा। कहता है कि ठीक करना हो तो करो, वरना अपनी अमानत ले जाओ।

पूरा परिवार भगवान्‌पर अटल विश्वास करता है तथा ईमानदारीका जीवन जीता है। कैसी भी मुसीबत आ जाय, परंतु किसीकी मदद नहीं लेता, चाहे भूखा रह जाय, परंतु किसीका भोजन नहीं करेगा। कहता है कि यदि उसे मेरी भूखकी चिन्ता है तो स्वयं दे जाय। मजदूरी करते समय बहुत मेहनत करता है, कहता है कि मैं ईमानदारीके रुपये लेकर ही घर जाऊँगा और ईमानदारीका ही खाऊँगा।

भगवान्‌में ऐसी अटूट आस्थावाला व्यक्ति मुझे पहली बार मिला, हाथ-पैर टूट जाने एवं लकवा मार जानेपर भी कई महीनेतक इलाज नहीं कराया। आखिरमें भगवान्‌को ही इलाज करना पड़ता है और वह पूर्णतया स्वस्थ होकर फिर मजदूरी करने लगता है। धन्य हैं ऐसे लोग, धन्य है उनकी भगवान्‌में आस्था। यह सच है कि यदि कोई भगवान्‌पर विश्वास कर ले तो भगवान् पूरी जिम्मेदारी निभाते हैं। **प्रेषक—एस० एन० तिवारी**

(३)

सुन्दरकाण्डके पाठका चमत्कार

समय-समयपर जीवनमें आयी हुई अनेक आपत्तियों एवं विपत्तियोंके निवारणार्थ श्रीरामचरितमानस अथवा केवल 'सुन्दरकाण्ड' के पाठका अद्भुत चमत्कार अनेक श्रद्धालु व्यक्ति मानते आये हैं एवं लाभ उठा चुके हैं। विपत्ति-कालमें मनुष्यकी बुद्धिमें किस प्रकार पूर्ण सात्त्विक श्रद्धा जाग्रत् हो जाती है, यह तथ्य निम्नांकित एक प्राचीन सत्य घटनासे उद्घाटित हो जाता है।

मेरे एक पड़ोसी मित्र श्रीभटनागरजीका (जो स्वयं रामचरितमानसके बड़े प्रेमी पाठक हैं,) बारह वर्षीय लड़का देवेन्द्रकुमार अपने घरवालोंको बिना सूचना दिये कहीं चला गया। दोपहरको भोजनके लिये भी नियत समयपर जब वह घरपर न आया, तब घरवालोंने चिन्तित होकर मोहल्ले एवं आस-पासमें उसकी खोज की; किंतु कहीं कोई पता नहीं लगा। सायंकाल होनेतक पूरे मन्दसौर नगरमें सर्वत्र जहाँ-जहाँपर भी लड़केके आने-जानेके सम्पर्क-सूत्र हो सकते थे, वहाँ-वहाँ जाकर पूछ-ताछ की गयी। जब कहीं कुछ भी पता न चल पाया तो अन्तमें निराश हो पुलिस-स्टेशन जाकर रिपोर्ट दर्ज करायी गयी। बालकके दोनों बड़े भाइयोंने आस-पासके नगरोंमें पर्याप्त खोज की। मेरे मित्र भटनागरजी, जो स्वयं मध्य प्रदेश शासनके अवकाशप्राप्त पुलिस-कर्मचारी हैं, इतने अधिक चिन्ताग्रस्त और व्यग्र हो गये कि उन्होंने पुलिस-अधीक्षक-कार्यालयमें जाकर भारतके बड़े-बड़े नगरोंकी पुलिसको वायरलेससे बालकके लापता होनेकी सूचना भी प्रसारित करा दी।

दूसरे दिन जब वे अत्यन्त अधीर होकर मेरे पास आये तो मैंने उन्हें आश्वस्त करते हुए ***'दीन दयाल बिरिदु संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी॥'*** के सम्पुट तथा ***'उमा न कछु कपि कै अधिकाई। प्रभु प्रताप जो कालहि खाई॥'*** के उपसम्पुटके साथ श्रीहनुमान्‌जीके सम्मुख सुन्दरकाण्डका पाठ करनेकी सानुरोध प्रेरणा दी। मेरे मित्रने निकटके हनुमान्-मन्दिरमें बैठकर उपर्युक्त सम्पुटोंसहित सुन्दरकाण्डका पाठ करना आरम्भ कर दिया। उन्होंने एक सौ पाठ करनेका संकल्प किया था, किंतु चौथे दिनतक ४९ पाठ ही पूर्ण होते-होते जब बालक देवेन्द्र स्वयं ही घरपर आ गया तो घरवालोंके आश्चर्य और आनन्दका ठिकाना न रहा। श्रीभटनागरजीको मन्दिरपर जैसे ही इसकी सूचना मिली तो वे अश्रुपूरित नेत्रोंसे श्रीहनुमान्‌जीका अभिषेक करते हुए आत्मविस्मृत-से हो गये। उनके परिवारमें हर्षकी लहर दौड़ गयी। सुन्दरकाण्डके पाठ एवं हनुमान्‌जीकी कृपाका चमत्कार प्रत्यक्ष देखकर मैं भी कुछ क्षणोंके लिये उनकी महिमामें डूबकर आत्मविस्मृत हो गया। श्रीराम! जय राम!! जय हनुमान्!!!

—भृगुनन्दन मिश्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४)

गोमाताद्वारा हिंसाका सफल प्रतिरोध

सन् १९७६ में मैं सनातन-धर्म-विद्यालय, कानपुरमें बी०कॉम० प्रथम वर्षका छात्र था। उस दिन रक्षाबन्धनका पर्व था। रक्षाबन्धन मनानेके लिये छात्रावाससे मैं अपनी बुआजीके यहाँ ग्वालटोली जा रहा था। थाने और ताड़ीखानाके मध्यवाले चौराहेपर सूअरके मांसकी एक दूकान है। वहाँ दो वधिकोंने एक सूअरको बाँध रखा था। प्रातः ९ बजे जैसे ही वे वध करनेको उद्यत हुए, सूअर भयंकर आर्तनाद करते हुए चीखा। उसी समय कुछ गायें एवं भैंसें उसी मार्गसे चरनेहेतु जा रही थीं। उनमेंसे एक गायने उस चीखते हुए सूअरको देखा और उसकी करुण पुकारपर उसने तत्काल उन वधिकोंपर तीव्र आक्रमण कर दिया। रोमांचित कर देनेवाला दृश्य था वह। कुपित गायको आक्रामक मुद्रामें एकाएक अपनी ओर आते देखकर दोनों वधिक सूअरके प्राण लेनेके बजाय अपने-अपने प्राणोंके रक्षार्थ भाग खड़े हुए। क्रोध में भरी हुई गोमाताने कुछ दूरतक उन वधिकोंका पीछा भी किया। इस बीच मौका पाकर उपस्थित दर्शकोंमेंसे किसीने उक्त सूअरको बन्धन-मुक्त कर दिया, जिससे वह भी प्राण बचाकर भाग गया।

उस जीवने अवश्य ही गोमाताको ईश्वरका भेजा हुआ अपना प्राणरक्षक—दूत समझा होगा। गोमाता वधिकोंको खदेड़कर उस स्थानपर पुनः वापस आकर खड़ी हो गयीं। ऐसा लगता था, मानो वे अपने इस सत्कृत्यपर सगर्व उन्नत मस्तक किये खड़ी हों। घटना-स्थलपर खड़े लोगोंने गोमाताकी बड़ी सराहना की तथा कुछ भावुक लोगोंने जय-जयकार किया। इस घटनाका प्रत्यक्षदर्शी मैं स्वयं भावाभिभूत था। मैंने मन-ही-मन सश्रद्धा गोमाताको प्रणाम किया। वस्तुतः गायकी तत्परता और तेजस्विताके कारण ही उस दिन एक निरीह प्राणीकी प्राणरक्षा हो सकी थी। धन्य हैं गोमाता!—**अशोककुमार गुप्त**

(५)

संस्कार-सिंचन

बहुत वर्ष व्यतीत हो गये, परंतु भगु भाई अपनी ग्रामीण अपढ़ माँको अब भी श्रद्धासे स्मरण करते हैं। यह प्रसंग स्मरण आते ही वे प्रायः गद्‌गद हो जाते हैं।

जब उनकी आयु ८-९ वर्षकी थी, तब एक दिन उनकी माँने दूधवालेकी दूकानपर उन्हें दूध लेने भेजा। उस समय दो आनेवाला चौकोर सिक्का चलता था। दूधवालेको बिना पैसे दिये ही भगु भाई दूध ले आये। ग्राहकोंकी अत्यधिक भीड़ होनेसे दूकानदारको पैसे लेनेका ध्यान नहीं रहा। भगु भाईने अपने पराक्रमकी बात घर आकर माँसे कही।

'बेटा! दो आनेके लिये हममेंसे किसीको दूधवालेके यहाँ जन्म लेना पड़ेगा और बेटा बनकर पैसे चुकाने पड़ेंगे। तू अभी जा और क्षमा माँगकर उसके पैसे दे आ।' बुढ़िया माँने शिक्षा देते हुए कहा।

दो आने देकर वापस आनेपर माँने बेटेको पुरस्कारके रूपमें बड़े प्रेमसे एक पैसा खर्च करनेको दिया था। समय व्यतीत हो गया, परंतु इस घटनाकी स्मृति रह गयी। माँके वे शब्द उन्हें हमेशा स्मरण रहते हैं। वे चन्द शब्द कितने सार्थक, कितने प्रेरक तथा चरित्रके विकासमें कितने सहायक थे। माँके द्वारा संतानमें जिन सुसंस्कारोंका सिंचन हो सकता है, वैसे संस्कार कोई दूसरा कैसे दे सकता है?

—**अमृतलाल जोशी (अखण्ड आनन्द)**

(६)

प्रार्थनाकी शक्ति

प्रार्थनामें अपार शक्ति है, यह मैंने जीवनमें सदा अनुभव किया है। भगवान् हनुमान्‌जीसे जब भी मैंने सच्चे मनसे प्रार्थना की है, उनकी कृपा अवश्य हुई है। कई महीनोंसे हमारे घरमें सदा ही अशान्त वातावरण रहा है। किसीको किसीकी बात अच्छी नहीं लगती थी। विशेषकर बच्चे तो मेरे एकदम विरुद्ध हो गये थे। इसी कारण मैं घर छोड़कर करीब तीन महीने इधर-उधर रही और हनुमान्‌जीसे रो-रोकर प्रार्थना करती थी कि एक बार मेरा बेटा मुझे 'माँ' कहकर तो पुकारे। ईश्वरने मेरी प्रार्थना सुनी। एक दिन उसने फोन करके मेरा हाल-चाल पूछा और कहा—'माँ, आप कैसी हैं? कहाँ हैं? घर आ जाइये।' सुनते ही मेरी आँखोंसे आँसू टपकने लगे और मैं कितनी ही देर रो-रोकर इसे अपने प्रभु श्रीहनुमान्‌जीकी प्रार्थनाका चमत्कार मानकर गद्‌गद होती रही। मैं अपने घर आ गयी और फिर सब कुछ ठीक हो गया। घरका वातावरण शान्त हो गया। भगवान्‌से प्रार्थना है कि वे सदा ही ऐसी कृपादृष्टि बनाये रखें।—**प्रभा**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनन करने योग्य

(१)
प्रतिभाकी पहचान

यूनान देशके थ्रेस प्रान्तमें एक निर्धन बालक दिनभर परिश्रम करके जंगलमें लकड़ियाँ काटता, फिर उनका गट्ठर बनाकर शामको बाजारमें बेचता था। एक दिन एक सम्भ्रान्त व्यक्ति उस बाजारसे जा रहा था। उसने देखा कि उस बालकका गट्ठर बहुत ही कलात्मक रूपसे बँधा हुआ है।

उसने उस लड़केसे पूछा—'क्या यह गट्ठर तुमने बाँधा है?' लड़केने जवाब दिया, 'जी हाँ, मैं दिनभर लकड़ी काटता हूँ, स्वयं गट्ठर बाँधता हूँ और फिर रोज बाजारमें बेचता हूँ।'

उस व्यक्तिने लड़केसे कहा—'क्या तुम इसे खोलकर इसी प्रकार दुबारा बाँध सकते हो?' जी हाँ, यह देखिये—इतना कहकर उस लड़केने गट्ठर खोला तथा बड़े ही सुन्दर तरीकेसे पुनः गट्ठर बाँध दिया। यह कार्य वह बड़े ध्यान, लगन और फुर्तीके साथ कर रहा था।

उस व्यक्तिपर इस लड़केकी एकाग्रता, लगन तथा कलात्मक प्रतिभाका बहुत प्रभाव पड़ा। उसने देखा कि बालकमें छोटे-से कामको भी दिलचस्पी, लगन और कलात्मक ढंगसे करनेका गुण विद्यमान है। ऐसा विचारकर उसने बालकसे कहा—'क्या तुम मेरे साथ चलोगे? मैं तुम्हें शिक्षा दिलाऊँगा और तुम्हारा सारा व्यय वहन करूँगा।' बालक सोच-विचारमें मग्न हो गया। फिर उसने उस व्यक्तिको अपनी स्वीकृति दे दी और उसके साथ चला गया। उस व्यक्तिने बालकके रहने और उसकी शिक्षाका प्रबन्ध किया। वह स्वयं भी उसे पढ़ाता था।

थोड़े समयमें ही उस बालकने अपनी लगन तथा कुशाग्र बुद्धिसे उच्च शिक्षा आत्मसात् कर ली। बड़ा होनेपर यही बालक यूनानके महान् दार्शनिक पाइथागोरसके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

वह भला आदमी जो बालककी आदतों, बुद्धि तथा लगनपर मोहित हो गया था, जिसने एक दृष्टिमें बालकके अन्दर छिपे हुए महानताके बीजको पहचानकर उसे पल्लवित किया था, वह था यूनानका विख्यात तत्त्वज्ञानी डेमोक्रीट्स। जो व्यक्ति अपने छोटे-छोटे कार्य भी लगन एवं ईमानदारीसे करते हैं, उन्हींमें महानताके बीज छिपे रहते हैं।

(२)
सच्ची भक्ति

तमिल स्त्री-सन्त अव्वय्यारकी छोटी अवस्थामें ही उसके माता-पिताका निधन हो चुका था। एक दयालु कविने उसका पालन-पोषण किया। जब उसकी आयु सोलह वर्षकी हुई तो योग्य वरकी खोज की जाने लगी। देखनेमें वह सुन्दर थी ही, एक राजकुमारने उसे पसन्द कर लिया, किंतु अव्वय्यारका तो ध्यान बचपनसे ही भगवद्भजनमें था। उसने अपने अभिभावकोंसे स्पष्ट शब्दोंमें कहा—मैंने तो अपना जीवन भगवद्भजन, काव्यरचना और जनसेवामें बितानेका निश्चय किया है, आप मेरे विवाहका विचार त्याग दें, किंतु उन्होंने सोचा कि विवाहके बाद यह राजमहलके वैभवमें सब कुछ भूल जायगी, इसलिये उन्होंने उसकी बात अनसुनी कर दी।

जब अव्वय्यारने देखा कि उसके शब्दोंका कोई असर नहीं हुआ है, तो उसने विचार किया कि जिस यौवन और रूपसम्पदाके कारण उसे वैवाहिक बन्धनमें जकड़ा जा रहा है, यदि वह रहे ही न तो अपनी इच्छा पूरी हो सकती है। वह भगवान्‌की शरणमें गयी और कातर स्वरमें प्रार्थना करने लगी—भगवन्! मेरा यौवन और सौन्दर्य भजन-पूजन, सरस्वतीकी उपासना और ज्ञान-दानमें बाधक बन रहा है, इसलिये हे प्रभो! मेरे इस तनको कुरूप कर दो ताकि मैं बेहिचक सबकी सेवा कर सकूँ।

दीनदयालु परमेश्वरने उसकी आर्त पुकार सुन ली और एक दिन-रात्रिमें ही अव्वय्यारके शरीरका सारा तेज जाता रहा। वह एक अधेड़की भाँति कुरूप दिखायी देने लगी। लोगोंने जब देखा तो हैरान हो गये, मगर बादमें उन्हें सही स्थिति मालूम हो गयी और वे उसके त्यागकी प्रशंसा करने लगे। अब अव्वय्यारने निवृत्तिमार्गका आश्रय लिया तथा जीवन भगवद्भजन और धार्मिक ग्रन्थरचनामें व्यतीत किया। उनके एक ग्रन्थ 'नीति नेरि विलख्खम' में आता है—शरीर यानी पानीका बुलबुला और धन-सम्पत्ति यानी समुद्रकी उत्तुंग लहरें। पानीसे लिखी रेखाएँ जितने समयतक टिकती हैं, शरीर और धन भी उतने ही कालतक रहता है। इसलिये मनुष्यको स्वयंको भगवद्भजनमें लीन करना चाहिये।—**श्रीमती ऊषा अग्रवाल**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कल्याण' के ग्राहकोंसे नम्र निवेदन

'कल्याण' के सितम्बर माहका अङ्क आपके समक्ष है। इससे पूर्वके अङ्क भी नियमित रूपसे प्रेषित कर दिये गये हैं। आशा है आपको 'कल्याण' के अङ्क प्राप्त हो ही रहे होंगे। वर्तमानमें जिस पतेसे आपको 'कल्याण' के अङ्क भेजे जा रहे हैं, उसमें सही पिन कोडका होना नितान्त आवश्यक है, इससे डाक पहुँचनेमें शीघ्रता होती है। यदि पतेमें पिन कोड नहीं है या गलत है अथवा पता किसी प्रकारसे अधूरा या त्रुटिपूर्ण है तो तत्काल पत्र/इमेल, फैक्स भेजकर सुधार करा लेनेकी कृपा करें, जिससे आपको सुगमतापूर्वक 'कल्याण' प्राप्त होता रहे।

विशेष निवेदन—वर्तमान वर्षके विशेषाङ्क **'दानमहिमा-अङ्क'** की सीमित प्रतियाँ मासिक अङ्कोंके साथ अभी भी उपलब्ध हैं। इच्छुक सज्जनोंको मँगानेमें शीघ्रता करनी चाहिये।

आवश्यक सूचना—कुछ लोग अपनेको गीताप्रेस व 'कल्याण' हिन्दी मासिक पत्रका प्रतिनिधि बताकर भोले-भाले लोगोंसे पुस्तकोंके ऑर्डर एवं 'कल्याण' की सदस्यता चालू करानेके लिये अप्रत्याशित रूपसे रकम प्राप्त कर उन्हें सन्तोषार्थ फर्जी नाम-पताकी छपी रसीद देकर तथा गीताप्रेस, गोरखपुरसे सम्पर्क करनेको कहकर भारी धन उगाही कर रहे हैं, जबकि गीताप्रेस द्वारा इस कार्य-हेतु अपना कोई भी प्रतिनिधि नियुक्त नहीं है। अतः आपसे अनुरोध है कि ऐसे अवांछनीय-तत्त्वोंसे सावधान रहें तथा ऐसी कोई भी घटना आपके संज्ञानमें आवे तो उसकी त्वरित सूचना स्थानीय प्रशासनको देकर उन्हें पकड़वानेमें सहयोग प्रदान करें। अपनी वांछित पुस्तकें अथवा 'कल्याण' की सदस्यता प्राप्त करने-हेतु आपको सीधे गीताप्रेस, गोरखपुर अथवा गीताप्रेसकी निजी दूकानों एवं स्टेशन-स्टॉलसे सम्पर्क करना चाहिये।

व्यवस्थापक—कल्याण-कार्यालय, पो० गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

Hardwar-249404 (U.A.)
131852

पिछले कुछ दिनोंसे अनुपलब्ध—अब छपकर तैयार

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण अंग्रेजी-अनुवाद (कोड 452, 453)—त्रेतायुगमें महर्षि वाल्मीकिके श्रीमुखसे साक्षात् वेदोंका ही श्रीमद्रामायणरूपमें प्राकट्य हुआ था, ऐसी आस्तिक जगत्की मान्यता है। इसके एक-एक श्लोकमें भगवान्के दिव्य गुण, सत्य, सौहार्द, दया, क्षमा, मृदुता, धीरता, गम्भीरता, ज्ञान, पराक्रम, प्रजा-रंजकता, गुरुभक्ति, मैत्री, करुणा, शरणागत-वत्सलता-जैसे अनन्त पुष्पोंकी दिव्य सुगन्ध है। दोनों खण्डोंका मूल्य रु० ४००, डाकखर्च रु० ७५ अतिरिक्त।

गीता-दैनन्दिनी—गीता-प्रचारका एक साधन

(प्रकाशनका मुख्य उद्देश्य—नित्य गीता-पाठ एवं मनन करनेकी प्रेरणा देना।)

व्यापारिक संस्थान दीपावली/नववर्षमें इसे उपहारस्वरूप वितरित कर गीता-प्रसारमें सहयोग दे सकते हैं।

गीता-दैनन्दिनी (सन् २०१२)-की सितम्बर/अक्टूबर माहमें उपलब्धि सम्भावित

पूर्वकी भाँति सभी संस्करणोंमें सुन्दर बाइंडिंग तथा सम्पूर्ण गीताका मूल-पाठ, बहुरंगे उपासनायोग्य चित्र, प्रार्थना, कल्याणकारी लेख, वर्षभरके व्रत-त्योहार, विवाह-मुहूर्त्त, तिथि, वार, संक्षिप्त पञ्चाङ्ग, रूलदार पृष्ठ आदि।

पुस्तकाकार—विशिष्ट संस्करण (कोड 1431)—दैनिक पाठके लिये गीता-मूल, हिन्दी-अनुवाद,		मूल्य रु० ५५
बँगला—विशिष्ट संस्करण (कोड 1489)—	,, बँगला-अनुवाद,	,, ५५
ओड़िआ—विशिष्ट संस्करण (कोड 1644)—	,, ओड़िआ-अनुवाद,	,, ५५
तेलुगु—विशिष्ट संस्करण (कोड 1714)—	,, तेलुगु-अनुवाद,	,, ५५
सुन्दर प्लास्टिक आवरण (कोड 503)—नित्य पाठके लिये गीताके श्लोक एवं सूक्तियाँ		,, ४०
पॉकेट साइज—	**डीलक्स संस्करण (कोड 506)**—पूर्वकी भाँति फोमकी जिल्द, गीता-मूल श्लोक,	,, २५
लघु आकार—	**(कोड 1769)**—अच्छे पतले कागजपर, प्लास्टिक आवरणसे युक्त, गीता-मूल श्लोक, मूल्य रु० १५	

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र० ति० २०-८-२०११
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2011-2013
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2011-2013

पिछले कुछ दिनोंसे अनुपलब्ध विशेषाङ्क—अब छपकर तैयार
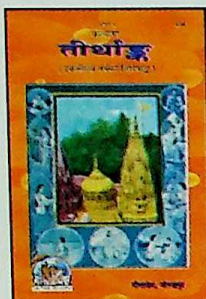
तीर्थाङ्क (कोड 636) सचित्र, सजिल्द, ग्रन्थाकार—इस विशेषाङ्कमें तीर्थोंकी महिमा, उनका स्वरूप, स्थिति एवं तीर्थ-सेवनके महत्त्वपर उत्कृष्ट मार्ग-दर्शन-अध्ययनका विषय है। इसमें देव-पूजन-विधिसहित, तीर्थोंमें पालन करनेयोग्य तथा त्यागनेयोग्य उपयोगी बातोंका भी उल्लेख है। भारतके प्राय: समस्त तीर्थोंका अनुसन्धानात्मक ज्ञान करानेवाला यह एक ऐसा संकलन है जो तीर्थाटन-प्रेमियोंके लिये विशेष महत्त्वपूर्ण और संग्रहणीय है। *इस विशेषाङ्कमें मार्ग इत्यादिकी जानकारी सन् १९५७ के अनुसार दी गयी है।* मूल्य रु० १५०, डाकखर्च रु० ४५ अतिरिक्त।

परलोक और पुनर्जन्माङ्क (कोड 572) सचित्र, सजिल्द, ग्रन्थाकार—मनुष्यमात्रको पतनकारी आसुरी सम्पदाके दोषोंसे सदा दूर रहने तथा परम विशुद्ध उज्ज्वल चरित्र होकर सर्वदा सत्कर्म करते रहनेकी शुभ प्रेरणाके साथ इसमें परलोक और पुनर्जन्मके रहस्यों तथा सिद्धान्तोंपर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। परलोक और पुनर्जन्ममें विश्वाससे मनुष्य अशुभ कर्मोंसे बचकर शुभ कर्म करनेकी प्रेरणा ग्रहण करता है। आत्म-कल्याणकामी पुरुषों तथा साधकमात्रके लिये इसका अध्ययन-अनुशीलन अति उपयोगी है। मूल्य रु० १५०, डाकखर्च रु० ४० अतिरिक्त।
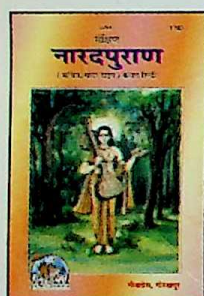
संक्षिप्त नारदपुराण (कोड 1183) सचित्र, सजिल्द, ग्रन्थाकार—देवर्षि नारद भगवान् विष्णुके अनन्य भक्त थे। उनके द्वारा प्रणीत इस पुराणमें विविध पारमार्थिक विषयोंका अद्भुत संगम है। इसमें सदाचार-महिमा, वर्णाश्रम-धर्म, भक्ति तथा भक्तके लक्षण, विविध प्रकारके मन्त्र, देवपूजन, तीर्थ-माहात्म्य, दान-धर्मके माहात्म्य और भगवान् विष्णुकी महिमाके साथ अनेक भक्तिपरक उपाख्यानोंका विस्तृत वर्णन किया गया है। यह पुराण भारतीय धर्म-दर्शनके अध्येताओंके लिये मनन एवं संग्रहके योग्य है। मूल्य रु० १५०, डाकखर्च रु० ४५ अतिरिक्त।

संक्षिप्त भविष्यपुराण (कोड 584) सचित्र, सजिल्द, ग्रन्थाकार—यह पुराण विषय-वस्तु एवं वर्णन-शैलीकी दृष्टिसे अत्यन्त उच्च कोटिका है। इसमें धर्म, सदाचार, नीति, उपदेश, अनेकों आख्यान, व्रत, तीर्थ, दान, ज्योतिष एवं आयुर्वेद शास्त्रके विषयोंका अद्भुत संग्रह है। वेताल-विक्रम-संवादके रूपमें कथा-प्रबन्ध इसमें अत्यन्त रमणीय है। इसके अतिरिक्त इसमें नित्यकर्म, संस्कार, सामुद्रिक लक्षण, शान्ति तथा पौष्टिक कर्म, आराधना और अनेक व्रतोंका भी विस्तृत वर्णन है। मूल्य रु० १२०, डाकखर्च रु० ४० अतिरिक्त।
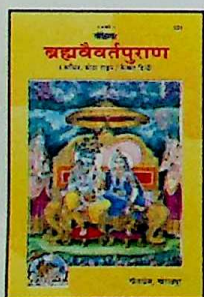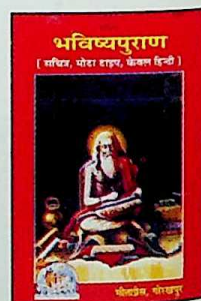
संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्तपुराण (कोड 631) सचित्र, सजिल्द, ग्रन्थाकार—इस पुराणमें चार खण्ड हैं—ब्रह्मखण्ड, प्रकृतिखण्ड, गणपतिखण्ड और श्रीकृष्णजन्मखण्ड। इसमें भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंका विस्तृत वर्णन, श्रीराधाकी गोलोक-लीला तथा अवतार-लीलाका सुन्दर विवेचन, विभिन्न देवताओंकी महिमा एवं एकरूपता और उनकी साधना-उपासनाका सुन्दर निरूपण किया गया है। अनेक भक्तिपरक आख्यानों एवं स्तोत्रोंका भी इसमें अद्भुत संग्रह है। मूल्य रु० १७५, डाकखर्च रु० ४० अतिरिक्त।

प्रत्येक पुस्तकके डाकखर्चमें पैकिंगखर्च तथा रजिस्ट्रीके रु० १७ शामिल हैं। एकसे अधिक पुस्तक एक पैकेटमें जानेपर रजिस्ट्रीखर्च मात्र रु० १७ ही लगता है।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वदेवमयी गोमाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वदेवमयी गोमाता

कल्याण

याद रखो—जबतक किसी वस्तुका मनमें महत्त्व है, जबतक उसकी ओर देखकर मन ललचाता है, जबतक किसीके पास अमुक वस्तु है, इसलिये उसे सौभाग्यवान् तथा ईश्वरका कृपापात्र समझा जाता है, जबतक उस वस्तुका अपने पास न होना अभाग्यका चिह्न माना जाता है, जबतक उसकी आवश्यकताका अनुभव होता रहता है और उसके प्राप्त होनेपर अभाव तथा कष्टका नाश एवं सुख-सुविधाकी प्राप्ति होगी, ऐसी धारणा रहती है, तबतक मनुष्य उसकी कामनासे कभी मुक्त नहीं हो सकता। उसमें निष्कामभाव नहीं आ सकता।

'निष्काम' शब्दके रटनेमात्रसे तुम निष्काम नहीं हो सकते। निष्कामभाव मनमें आता है और वह तभी आयेगा, जब तुम जिस वस्तुकी कामना करते हो, उस वस्तुमें वस्तुतः तुम्हारी दुःख-दोष-बुद्धि, मलिन-बुद्धि—'वह तुम्हारे लिये हानिकारक है, तुम्हारे यथार्थ सुख-सुविधामें बाधक है, ऐसी बुद्धि—और उसमें असत्-बुद्धि हो जायगी।'

याद रखो—कामनाका त्याग मनसे हुआ करता है, वाणीसे नहीं। सत्यकी कल्याणमयी सुन्दर प्रतिष्ठा मनमें ही हुआ करती है। अतएव तुम यदि जीवनमें निष्कामभाव लाना चाहते हो तो काम्य-वस्तुओंमें अनित्यता, मलिनता, दुःखरूपता और विनाशिताको देखो। भगवान्‌के बिना जितने भी भोग हैं—सब दुःख हैं, भयानक दुःखोंकी उत्पत्तिके स्थान हैं—यह अनुभव करो। फिर उनकी ओर मनका प्रवाह अपने-आप ही रुक जायगा। (काम्य वस्तुओंकी रमणीयता आपाततः है—ऊपर-ऊपरसे है। वास्तवमें उनमें परिहरणीयता ही है।)

याद रखो—तुम्हारे मनका जो यह विश्वास है, तुम्हारी बुद्धिका जो यह निश्चय है कि भोगोंमें सुख है—चाहे वह विश्वास और यह निश्चय वाणीसे फूट न निकलता हो, पर तुम्हें भोगोंमें लगाये बिना नहीं रह सकता। तुम हजार निष्काम-शब्दकी रटना करो, निष्कामके महत्त्वका गुणगान करो, किंतु तुम सुखके लिये भोगोंका होना अनिवार्य समझोगे। तुम्हारा अन्तर्हृदय भोगोंके लिये छटपटाता रहेगा। तुम ऊपरसे चाहे जितना भी हँसो—तुम्हारा अन्तर भोगोंके अभावमें रोता-कलपता रहेगा। यही तो भोगकामना है। इसके रहते तुम निष्काम कैसे बनोगे? (भोग्यका त्याग होनेपर योग्य आनन्दकी प्राप्ति होती है। **'त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्'** की ऐसी ही दिशा है।)

भोग-पदार्थोंमें सुख-बुद्धि, आवश्यकता-बुद्धि, आदर-बुद्धि जबतक रहेगी, तबतक भोगोंके प्रति, जिनके पास भोग-पदार्थ अधिक हैं, उनके प्रति तथा जिन साधनोंसे भोग-पदार्थोंकी प्राप्ति सुगम समझी जाती है, उन साधनोंके प्रति तुम्हारे मनमें सम्मान और प्रीतिका भाव होगा ही। तुम स्वयं उस सम्मान तथा प्रेमको प्राप्त करना चाहोगे और उसीमें अपना गौरव तथा सौभाग्य समझोगे, जिनके पास भोग-पदार्थ नहीं हैं या अपेक्षाकृत कम हैं, उनकी तुम उपेक्षा करोगे। इसलिये तुम स्वयं भी इस अभाग्य, इस सम्मान तथा प्रेमके अभाव और लोगोंकी उपेक्षासे डरोगे। जबतक इस प्रकारकी मनोवृत्ति रहेगी, तबतक कामनाके कठिन चंगुलसे तुम नहीं छूट सकोगे।

याद रखो—सुख-शान्ति वस्तुओंमें नहीं है, वह मनकी निष्काम-स्थितिमें ही है। जब तुम्हारा मन कामना और स्पृहासे रहित हो जायगा, जब तुम्हारी ममताकी बेड़ी कट जायगी एवं जब तुम्हारा अहंकार भगवान्‌के दिव्य चरणकमल-युगलमें समर्पित होकर धन्य हो जायगा, तभी तुम सच्ची शान्ति पा सकोगे और तभी तुम्हें यथार्थ सुखका शुभ साक्षात्कार होगा। (वास्तविक सुख, सच्चा आनन्द चाहते हो तो मनसे निष्काम बनो। कर्तव्य-कर्मोंमें लगे रहो, पर फलमें मनकी आसक्ति न रखो। फिर कल्याण-ही-कल्याण है।) **'शिव'**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान्‌का विस्मरण कभी न हो

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

मनुष्यके लिये सर्वोत्तम बात यह है कि वह एक क्षणके लिये भी भगवान्‌को न भूले। जो मनुष्य यह नियम लेता है कि 'मैं एक क्षणके लिये भी भगवान्‌को नहीं भूलूँगा' और उसका पालन भी करता है, उसको इसी जन्ममें भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है—इसमें तनिक भी संदेहके लिये स्थान नहीं है। स्वयं भगवान्‌ने गीता (८।१४)-में कहा है—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

'हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।'

भगवान्‌की इस घोषणापर विश्वास करके यह निश्चय कर लेना चाहिये कि 'इसी क्षणसे मृत्युपर्यन्त मैं जान-बूझकर भगवान्‌को नहीं भूलूँगा।' ऐसा निश्चय सच्चा होनेपर भगवान् उसमें सहायता करते हैं और अन्तमें उस भक्तकी इच्छा पूर्ण करते हैं। कभी कुछ भूल भी हो जाती है तो भगवान् उसे क्षमा कर देते हैं। यदि कोई कहे कि 'अठारह घंटे तो मनुष्य भगवान्‌का स्मरण कर सकता है, परंतु सोनेके समय छः घंटे उनका स्मरण करना उसके वशकी बात नहीं है' तो इसके लिये यह नियम है कि जाग्रत्-अवस्थामें मनुष्य जो काम करता है, स्वप्नमें उसका मन प्रायः उसीकी स्मृतिमें लीन रहता है। ऐसा देखनेमें आया है कि जो जाग्रत्-अवस्थामें निरन्तर भगवान्‌को स्मरण रखते हैं, स्वप्नमें भी उन्हें भगवान्‌की ही स्मृति रहती है। इतना ही नहीं, जो सोनेके कुछ समय पूर्व ही भगवान्‌का स्मरण करते हैं और स्मरणके बीचमें निद्राग्रस्त हो जाते हैं, उन्हें भी प्रायः भगवद्-विषयक ही स्वप्न आते रहते हैं। अतएव यह चेष्टा रखनी चाहिये कि होश रहते हुए भगवान्‌का स्मरण न छूटे। जान-बूझकर भगवान्‌को एक क्षणके लिये भी नहीं भूलना चाहिये; क्योंकि जिस क्षण हमने भगवान्‌को भुलाया, उस समय यदि मन पशु-पक्षी, कीट-पतंग, मनुष्य-देवता आदिके चिन्तनमें लग गया और संयोगसे उसी क्षण प्राण छूट गये तो हमारे चिन्तनके अनुसार हमें पशु-पक्षी आदिकी योनि ही प्राप्त होगी। भगवान्‌ने गीता (८।६)-में यह भी कहा है कि—

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥

'हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! यह मनुष्य अन्तकालमें जिस-जिस भी भावको स्मरण करता हुआ शरीरका त्याग करता है, उस-उसको ही प्राप्त होता है; क्योंकि वह सदा उसी भावसे भावित रहा है।'

यह मानव-जीवनकी कितनी बड़ी हानि है। मानव-जीवनकी दुर्लभतापर विचार करनेसे इस हानिकी भयानकताका कुछ अनुमान हो सकता है। चौरासी लक्ष योनियोंमें भटकता-भटकता जीव जब अत्यन्त दुःखित हो जाता है, तब भगवान् विशेष कृपा करके उसे मानव-देह प्रदान करते हैं—

कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥
(रा०च०मा० ७।४३।३)

ऐसा सुदुर्लभ मानव-जीवन व्यर्थ न जाय, इसके लिये भगवान् गीताके आठवें अध्यायके ७वें श्लोकमें उपाय बताते हैं—

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥

'इसलिये हे अर्जुन! तू सब समयमें निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर। इस प्रकार मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिसे युक्त होकर तू निःसन्देह मुझको ही प्राप्त होगा।'

भगवान्‌ने स्मरणकी बात मुख्यरूपमें कही है, युद्ध करनेकी गौणरूपमें। इससे यह स्पष्ट है कि भगवान्‌का स्मरण एक क्षणके लिये भी न छूटे, अन्यथा मानव-जीवन व्यर्थ सिद्ध हो सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो मनुष्य भगवान्‌में अपने मनको लगा देते हैं, उनको निश्चय ही गीता (१०। १०)-के अनुसार भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

'मुझमें मनको लगा और मुझमें ही बुद्धिको लगा, इसके अनन्तर तू मुझमें ही निवास करेगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।'

भगवान् जब इतना विश्वस्त आश्वासन देते हैं, तब फिर हमारे मन-बुद्धि और क्या काम आयेंगे? इन दोनोंको इसी क्षणसे भगवान्‌के काममें ही लगा देना चाहिये। इसीलिये मानव-जन्म मिला है।

भगवान्‌को छोड़कर किसी भी पदार्थका चिन्तन करना आत्मघातके सदृश है; क्योंकि उससे हमारा मानव-जीवन नष्ट हो जाता है। मूल्यवान्-से-मूल्यवान् पदार्थका चिन्तन भी हमें भगवान्‌की प्राप्ति नहीं करा सकता। इसलिये बड़ी तत्परतापूर्वक ऐसा अभ्यास डालना चाहिये कि भगवान्‌को छोड़कर मन और किसी पदार्थके चिन्तनमें लगे ही नहीं। समय बड़ा मूल्यवान् है। मानव-जीवनके गिने-गिनाये श्वास हमें मिले हैं। लाख रुपये खर्च करनेपर भी उससे अधिक एक मिनटका भी समय नहीं मिल सकता। मानव-जीवनके एक क्षणकी भी कीमत नहीं आँकी जा सकती; क्योंकि भगवान्‌का चिन्तन करनेसे वह क्षण भगवान्‌की प्राप्ति करा सकता है। फिर समूचे मानव-जीवनकी तो बात ही क्या है। मानव-जीवनका यह महत्त्व इसीमें है कि वह भगवान्‌की प्राप्तिमें हेतु बन सकता है। अन्य किसी भी योनिमें यह सम्भव नहीं है। अतएव मानव-जीवनके समयको बितानेमें बड़ी सावधानी बरतनी चाहिये। परमात्माके अतिरिक्त दूसरे कामोंमें समय लगानेवालोंको संतोंने मूर्ख कहा है।

सांसारिक पदार्थोंके संग्रहमें लगाया हुआ समय भी व्यर्थ है। मान लीजिये, एक महीनेमें हमारा लाख रुपयेका रोजगार होता है। बारह महीनोंमें हमारा बारह लाखका हुआ, तो इससे क्या प्रयोजन सिद्ध हुआ? रुपयोंकी थैलियाँ यहीं रह जायँगी, जीवको अकेले ही जाना पड़ेगा। हाँ, रुपयोंको बटोरनेमें जो पाप हमने किये हैं, वे अवश्य हमारे साथ रहेंगे। अतएव रुपयोंके संग्रहमें दो बातोंका ध्यान रखना चाहिये—(१) न तो उसके संग्रहके लिये भगवान्‌को भुलाये और (२) न उसके संग्रहमें पापका आश्रय ले। मरनेपर रुपयोंसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं रह जायगा। गधा ढो-ढोकर मिट्टी इकट्ठी करता है, भगवान्‌को भूलकर रुपये बटोरना ठीक ऐसा ही है। मरनेपर न गधेको मिट्टी काम आती है और न रुपया हमारे काम आता है। इस न्यायसे मनुष्य-जीवनका समय धन बटोरनेमें क्यों बरबाद किया जाय?

कुछ भाई इस शरीरके पोषणमें समयको लगाते हैं। नाशवान् शरीरके पोषणमें समयका लगाना भी उसका अपव्यय है। विशेष खान-पान, सावधानी आदिसे शरीरमें दस सेर मांस बढ़ गया तो क्या हो गया। आखिर तो मरना ही पड़ेगा। शरीर अधिक भारी हो गया तो शव भी भारी होगा। शव ढोनेवाले यही कहेंगे कि 'लाश बड़ी भारी है।' इस मोटापेसे और होगा क्या? मोटे शरीरके जलनेपर एक-दो सेर राख हो जायगी। शवकी राख किस कामकी? किसीकी आँखमें गिरकर वह उसको कष्ट ही दे सकती है। अतएव शरीरको अधिक पुष्ट करनेमें समयको लगानेसे कोई लाभ नहीं।

कुटुम्ब-पालनमें भी भगवान्‌को भूलकर ममता और रागसे युक्त हो समय नहीं लगाना चाहिये; क्योंकि कुटुम्बका राग तो और अधिक दुःख देनेवाला है। अनन्तकालसे कुटुम्ब हमको धोखा देता चला आ रहा है। आजसे पूर्व भी तो हमलोग किसी कुटुम्बके थे। क्या उसकी अब हमको कुछ स्मृति भी है? अब हमें कुछ भी स्मरण नहीं है कि पूर्वजन्ममें हम कहाँ थे, हमारा कौन कुटुम्ब था? इसी प्रकार यहाँसे विदा होनेपर यह कुटम्ब भी याद नहीं रहेगा। सौ-दो सौ वर्षोंके बाद तो यह कुटुम्ब कहाँ-से-कहाँ चला जायगा, कुछ भी पता नहीं है। अतएव मृत्यु होनेके साथ ही जिससे बिलकुल सम्बन्ध-विच्छेद हो जानेवाला है, उस अपने कुटुम्बके प्रति मोह-ममता रखकर भगवान्‌को भुला देना और समयको उसके पालन-पोषणमें नष्ट कर देना मानव-जीवनका दुरुपयोग है। इससे बचना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसारके जिन-जिन पदार्थोंसे हमारा सम्बन्ध है, वे अवश्य बिछुड़नेवाले हैं। इस शरीरके सभी सम्बन्ध काल्पनिक और नाशवान् हैं, यों समझकर उनके प्रति मोह-ममताको पहलेसे समेट लें तो उत्तम है। हम विवेकपूर्वक उपर्युक्त प्रकारसे साधन कर लेंगे तो मुक्त हो जायँगे और यदि साधन न करनेके कारण हमको विवश होकर इन सम्बन्धोंको छोड़ना पड़ा तो हम भटकते फिरेंगे। जो जन्मा है, उसे अवश्य मरना पड़ेगा। लाख प्रयत्न करनेपर भी मृत्युसे छुटकारा नहीं हो सकता; क्योंकि नियम है कि ***'जो फरा सो झरा जो बरा सो बुताना।'*** अतः जिस कामके लिये आये हैं, उसे अवश्य कर लेना चाहिये, नहीं तो आगे जाकर घोर पश्चात्ताप करना पड़ेगा। गोस्वामी तुलसीदासजी श्रीरामचरितमानस (७। ४३)-में कहते हैं—

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोष लगाइ॥

'जो मनुष्य इस समय सचेत नहीं होता, उसको आगे चलकर सिर धुन-धुनकर घोर पश्चात्ताप करना पड़ेगा। वह मूर्ख उस समय काल, कर्म और ईश्वरपर झूठा दोष लगायेगा।' वह यही कहेगा—'कलियुगके कारण मैं अपने आत्माका कल्याण नहीं कर सका। मेरे कर्म ही ऐसे थे, मेरे भाग्यमें ऐसी ही बात लिखी थी। ईश्वरने मेरी सहायता नहीं की, आदि-आदि।' उसका यह रोना व्यर्थ है—मिथ्या है। अतएव अभीसे सावधान हो जाना चाहिये। घर-कुटुम्ब और विषय-भोग तो अन्य योनियोंमें भी मिल चुके हैं और आगे भी मिल सकते हैं, पर भगवान्को प्राप्त करनेका यही सर्वोत्तम जीवन है—भागवतकारने यही बात कुछ शब्दान्तरसे कही है—

लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहु सम्भवान्ते
मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः।
तूर्णं यतेत् न पतेदनुमृत्यु याव-
न्निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात्॥

(११। ९। २९)

परमात्माकी प्राप्ति स्वयं अपने किये ही होगी। कोई दूसरा हमारे लिये इस कार्यको नहीं कर सकेगा। संसारका कोई काम बाकी रह गया तो हमारे पीछे हमारे उत्तराधिकारी अथवा दूसरे लोग कर लेंगे, पर परमात्माकी प्राप्तिमें यदि त्रुटि रह गयी तो हमको पुनर्जन्म लेना पड़ेगा। अतएव जो काम हमारे ही किये होगा, दूसरेसे नहीं और जिसको करना अनिवार्य है, उसीमें समय लगाना चाहिये।

संसारके सब सम्बन्ध मिथ्या हैं, स्वप्नवत् हैं, मायामात्र हैं, स्वप्नके संसारमें जो कुछ होता है, सब सत्य प्रतीत होता है, परंतु वास्तवमें उसकी सत्ता नहीं होती। आँख खुलनेपर न तो वह संसार रहता है, न शरीर और न वह व्यवहार ही। इस प्रकार संसारके जितने भी सम्बन्ध हैं, ये सब शरीरको लेकर ही हैं; शरीर शान्त होनेपर इनसे हमारा कुछ भी सम्बन्ध नहीं रह जायगा। इसलिये आवश्यकता है कि हम इन सम्बन्धोंका त्याग मनसे पहलेसे ही कर दें, जिससे आगे चलकर पश्चात्ताप न हो। याद रखें कि वे सभी सम्बन्धी हमें त्याग देंगे; फिर हम क्यों न अभीसे उन्हें त्याग दें? महात्मा तुलसीदासजी विनय-पत्रिकामें कहते हैं—

'अंतहु तोहिं तजैंगे पामर! तू न तजै अबही ते॥'

जबतक मानव-जीवन शेष है, तबतक सब कुछ हो सकता है। परमात्माकी शरण लेकर मनुष्य जो चाहे, वह प्राप्त कर सकता है।

भगवान्की प्राप्ति इच्छासे ही होती है। इच्छा जहाँ यथेष्ट तीव्र एवं अनन्य हुई कि भगवान् मिले। भगवान्को छोड़कर अन्य कोई भी पदार्थ हमारी इच्छापर निर्भर नहीं है। जगत्के सभी प्राणी चाहते हैं कि सुख मिले, दुःख नहीं, किंतु अधिकतरको दुःखकी ही उपलब्धि होती है। अतएव जड़-पदार्थोंके लिये इच्छा करना मूर्खता है, यतः इच्छा करनेसे जड़-पदार्थ प्राप्त नहीं होते। उनके लिये पूर्वकृत कर्मोंका फलरूप प्रारब्ध चाहिये और वह अब हमारे हाथमें नहीं है; पर भगवान्के लिये तीव्र इच्छा करनेपर वे अवश्य मिल सकते हैं। अतः भगवान्को प्राप्त करनेकी प्रबल इच्छा करनी चाहिये और उसे यथेष्ट तीव्र एवं अनन्य बनानेका प्रयत्न करना चाहिये। भगवत्प्राप्ति होकर ही रहेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ममता

(ब्रह्मलीन स्वामी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती)

एक श्लोक बड़े महत्त्वका है—

ममेतिमूलं दुःखस्य निर्ममेति च निर्वृतिः।
शुकस्य विगमे दुःखं न दुःखं गृहमूषिके॥

—इसका भाव यह है कि ममता ही दुःखका मूल है और कहीं ममता न बाँधना ही परम सुख-शान्तिका उपाय है। मनुष्य शुक पालता है। उसको खिलाता-पिलाता है और पुत्रवत् उसमें ममता रखता है। इससे शुकके मरनेपर मनुष्य शोक करता है। पक्षी तो प्रतिदिन हजारों मरते हैं, शुक भी कितने ही मरते होंगे; परंतु उनके लिये किसीको दुःख नहीं होता। परंतु अपना पाला हुआ शुक जब मर जाता है, तब मनुष्य शोक करता है। चूहे भी घरमें रहते हैं, परंतु उनके मरनेपर कोई शोक नहीं करता; क्योंकि उनमें मनुष्यका ममत्व-सम्बन्ध नहीं बँधा होता। इसलिये ममता ही दुःखका मूल है, यह इस श्लोकका तात्पर्य है।

अब यह देखना है कि ममता क्या वस्तु है और वह कैसे बँधती है? 'मम' यानी मेरा और मेरापनका जो भाव है, वही ममता है? जो 'मेरा' नहीं है, उसमें भी 'मेरा है' यह भाव हो जानेपर उसमें ममता बँध जाती है और ममताके विषयके वियोगसे दुःख हुए बिना नहीं रहता।

ममता कैसे बँधती है—यह समझनेके लिये शास्त्रने जगत्को दो भागोंमें बाँट रखा है—

ईक्षणादिप्रवेशान्ता सृष्टिरीशेन निर्मिता।
जाग्रदादिविमोक्षान्तः संसारः जीवकल्पितः॥

परमात्मा योगनिद्रामें सोये थे। जागकर देखा तो कुछ भी दीख न पड़ा, तुरंत ही संकल्पकी स्फूर्ति हुई **'एकोऽहं बहु स्याम्'**—मैं अकेला हूँ, अनेक रूप हो जाऊँ—यह संकल्प प्रकृतिके ऊपर प्रतिफलित होते ही उसके गुणोंमें क्षोभ हुआ और उससे विविध प्रकारकी सृष्टि उत्पन्न हुई। सृष्टि उत्पन्न तो हुई, परंतु उसमें कोई क्रिया या गति न दीख पड़ी, इसलिये जैसे सूर्य अपनी अनन्त किरणोंसे सारे ब्रह्माण्डको प्रकाशित करता है, उसी प्रकार परमात्माने अपने अनन्त अंशोंसे सृष्टिमें प्रवेश किया, ऐसा करनेपर सारी सृष्टि चेतनामय हो गयी और सब अपना-अपना व्यवहार करने लगे।

क्योंकि सृष्टिकी रचना प्रकृतिसे हुई है, इसलिये वह स्वभावसे ही विकारवाली है। इसका अर्थ यह है कि पदार्थोंमें रूपान्तर होता रहता है। एक प्राणी उत्पन्न होता है, कुछ समयतक रहता है और फिर नाशको प्राप्त होकर अपने उपादान कारणमें मिल जाता है। शास्त्रोंने इस विकारकी छः अवस्थाएँ (उत्पन्न होना, जीवित रहना, रूपान्तर होना, बढ़ना, घटना और मर जाना) बतलायी हैं, परंतु यहाँ तीन विकारोंके समझ लेनेपर भी काम चल जायगा, यानी उत्पन्न होना, जीना और मर जाना।

इस ईश्वरनिर्मित यानी ईश्वरके द्वारा रची हुई सृष्टिमें कुछ नया उत्पन्न नहीं होता तथा कुछ नाशको भी प्राप्त नहीं होता, केवल रूपान्तर हुआ करता है। उसको हम उत्पत्ति-विनाश कहते हैं। उदाहरणार्थ—एक गेहूँका दाना जमीनमें बोया गया, वह जमीनमें मिल गया और उससे एक अंकुर निकला, अंकुरके बढ़नेपर उससे गेहूँके अनेक दाने उत्पन्न हुए। पंचमहाभूतसे उत्पन्न हुआ दाना फिर पंचमहाभूतमें मिल गया और पंचमहाभूतमेंसे अंकुर उत्पन्न हुआ और उसमेंसे फिर गेहूँके दाने उत्पन्न हुए। इसी प्रकार जैसे समुद्रकी तरंगें उत्पन्न होती और विनाशको प्राप्त होती दीख पड़ती हैं, उसी प्रकार पंचमहाभूतोंकी तरंगें भी उत्पन्न होती और विनाशको प्राप्त होती दीख पड़ती हैं, परंतु वस्तुतः न तो कुछ उत्पन्न होता है और न विनाशको प्राप्त होता है। यह बात एक दृष्टान्तसे समझनेपर ठीक समझमें आ जायगी।

एक बकरी है। वह चरती-चरती दूर जंगलमें निकल गयी और एक बाघने उसको मार डाला। बकरीकी मृत्युसे ईश्वरकी सृष्टिमें कुछ भी कमी न हुई। पंचमहाभूतोंसे बकरीका शरीर उत्पन्न हुआ था, वह फिर पंचमहाभूतोंमें मिल गया। बाघका खाया हुआ भाग विष्ठा बनकर पृथ्वीमें मिल जायगा और शेष भाग भी अपने-आप अपने-अपने उपादानमें मिल जायँगे। चेतन सत्ता तो एक अविनाशी और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वव्यापक है। अतएव उसमें घट-बढ़ सम्भव नहीं, इसलिये बकरीकी मृत्युसे ईश्वररचित सृष्टिमें कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ। पंचमहाभूतकी एक तरंग बकरीके रूपमें दिखलायी दी थी। वह थोड़ी देर रहकर फिर पंचमहाभूतमें मिल गयी।

अब इस बकरीमें जिस मनुष्यकी ममता है, यानी 'यह बकरी मेरी है', ऐसा जो मानता है और उसमें सुख पाता है, उस मनुष्यको बकरीके विनाशसे दुःख हुए बिना न रहेगा। इस दुःख होनेका कारण बकरीकी मृत्यु नहीं। मनुष्यने जो ममताकी छाप अपने अन्तःकरणमें डाल रखी थी, उस छापके नाश होनेपर उसको दुःख होता है और वह छाप जितनी अधिक गहरी होती है, दुःख भी उतना ही अधिक होता है। यह बात शास्त्रमें इस प्रकार समझायी गयी है—

चिन्तां कुर्यान्न रक्षायै विक्रीतस्य यथा पशोः।
तथाऽर्पयन् हरौ देहं विरमेदस्य रक्षणात्॥

जबतक बकरी अपने कब्जेमें है, तबतक उसे खिलाने-पिलाने और दुहनेका तथा रक्षा करनेका भार अपने सिरपर है, परंतु किसी कारणवश उस बकरीको बेच दिया या किसीको दे दिया जाय तो उस दिनसे उस विषयसे अपनी सारी चिन्ता दूर हो जाती है। बकरीका वियोग तो यहाँ भी हुआ है, परंतु अपनी इच्छासे उसका त्याग करनेके कारण हमने अपने चित्तसे बकरीकी छाप स्वयं मिटा डाली है, इसलिये बकरीका वियोग हमें दुःख नहीं देता। इस प्रकार यदि मनुष्य ज्ञानदृष्टि प्राप्त करके, अपने शरीरके सहित सारे प्राणी-पदार्थ ईश्वरके हैं, अतएव उन्हें ईश्वरको सौंप दे, अन्तःकरणपर ममताकी छाप न पड़ने दे तो उन-उन प्राणी-पदार्थके वियोगसे मनुष्यको दुःख न हो।

'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।'

—इस श्रुतिका तात्पर्य भी यही है। एक ही ईश्वर जब अनेक रूप हो गया है, जिस ज्ञानीको इसकी साक्षात्कारप्रतीति हो गयी है, वह किस प्राणी या पदार्थमें ममता बाँधकर उसको अपना कहेगा या किस प्राणी-पदार्थको पराया समझकर उससे द्वेष ही करेगा? समुद्र किस तरंगको अपनी समझकर उसमें ममता बाँधता है और किस तरंगको परायी समझकर उसे दूर रखता है? क्योंकि सारी तरंगें समुद्ररूप हैं, इसी प्रकार सारे प्राणी ईश्वररूप ही हैं।

एक आदमीने एक घर बनाया। ज्यों-ज्यों घर तैयार होता जा रहा है—त्यों-ही-त्यों उस आदमीके चित्तमें घरविषयक ममताकी छाप पड़ती जा रही है। घर पूरा तैयार होनेपर चित्तमें छाप भी खूब गहरी पड़ गयी। दैवयोगसे चार-छः महीनेमें उस घरमें आग लग गयी और वह घर नष्ट हो गया। वह मकान जब तैयार हुआ, तब ईश्वरकृत सृष्टिमें कोई वृद्धि नहीं हुई, क्योंकि पंचमहाभूतोंके बने विविध पदार्थ ही घररूप बन गये थे। इसी प्रकार घरका नाश होनेपर उसमें कोई कमी नहीं हुई। जो पंचमहाभूतके पदार्थ घररूपमें दिखलायी पड़ते थे, वे उस रूपको छोड़कर दूसरे रूपमें जा रहे। परंतु मकान-मालिकको शोक हुए बिना नहीं रहेगा; क्योंकि उसने उस घरमें ममता बाँधी थी कि यह घर मेरा है। ममताकी छाप जितनी गहरी होगी, उतना ही दुःख भी अधिक होगा।

अब मान लो कि घर तैयार हो गया और तुरंत ही कोई अच्छा ग्राहक मिल गया तथा उस आदमीने उसको वह घर बेच दिया। बेच डालनेके बाद उस घरमें आग लगी और वह जलकर खाक हो गया, परंतु इससे उस आदमीको कुछ भी दुःख न होगा, क्योंकि उस आदमीने उस मकानके प्रति अपनी ममताकी छाप अपने चित्तसे मिटा डाली। यदि घरके विनाशसे दुःख हुआ होता तो उस आदमीको दोनों हालतोंमें दुःख होना चाहिये था। इस प्रकार 'अन्वयव्यतिरेक-युक्तिसे' सिद्ध होता है कि ममताके कारण ही दुःखका अनुभव होता है। अन्वय अर्थात् जहाँ ममता है, वहाँ दुःख भी है। इसलिये पहली हालतमें घर बेचनेके पहले जब आग लगी, तब घरमें ममता थी, इसलिये दुःख भी हुआ। और व्यतिरेक यानी अभाव—अर्थात् जहाँ ममता नहीं है, वहाँ दुःख भी नहीं है। इसलिये घर बेचनेके बाद आग लगनेपर उसमें ममता न होनेके कारण दुःख भी नहीं रहा।

एक दूसरा दृष्टान्त लीजिये। एक गृहस्थ है। उसका एक लड़का है, उसको पढ़ा-लिखाकर तैयार किया और यहाँकी पढाई पूरी होनेपर उसको अधिक पढ़नेके लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदेश भेजा। वहाँ वह पढ़ने और आनन्द करने लगा, परंतु किसी शत्रुने ऐसी खबर भेज दी कि वह लड़का मर गया। यह खबर मिलनेपर पिताके हृदयमें जो ममताकी छाप पुत्रके प्रति थी, उसपर आघात हुआ और इससे उसके दुःखका पार न रहा। अब इससे उलटा दृष्टान्त लीजिये। लड़का सचमुच मर गया है, परंतु इस विषयका समाचार किसीने उसके पिताको न दिया। इस प्रसंगमें लड़का तो मर गया है, परंतु पिताके चित्तमें जो ममताकी छाप है उसपर आघात नहीं हुआ, इससे उसको किसी प्रकारका दुःख भी नहीं हुआ। वह स्वाभाविक रीतिसे खाता है, पीता है, आमोद-प्रमोद करता है। अब यदि लड़केकी मृत्युसे ही दुःख हुआ होता तो इस बार उसे दुःख होना चाहिये था। इससे यह सिद्ध होता है कि दुःख होनेका कारण पुत्रका वियोग नहीं, बल्कि ममताकी छापका मिटना है।

वही लड़का परदेशमें पढ़ता है। परंतु वहाँ उसने दूसरा धर्म ग्रहण कर लिया है और वहीं शादी करके वह रह जाना चाहता है और माता-पिताका मुँह भी नहीं देखना चाहता, बल्कि पितासे द्वेष करता और उसका बुरा चाहता है। यह समाचार जब उसके पिताको मिलता है, तब पिताको क्षणिक आघात तो होता है, पर वह अपने चित्तसे उसके विषयमें जो ममताकी छाप थी, उसे मिटा देता है। ऐसा होनेपर वह पुत्र मरे या जीये इस विषयमें वह उदासीन हो जाता है। इसलिये ममता ही दुःखका कारण है।

अबतक हमने यह देखा कि ईश्वरनिर्मित सृष्टिमें कुछ भी घट-बढ़ नहीं होती। केवल रूपान्तर हुआ करता है। नाम-रूपकी तरंगें पंचभूतके समूहमें उठा करती हैं और नाशको प्राप्त होती हैं एवं उन तरंगोंको नचानेवाली चेतनसत्ता तो एक और सर्वव्यापक है। दुःख होता है तो केवल ममताके कारण ही। यदि ईश्वरके प्राणी-पदार्थोंमें मनुष्य ममत्वसम्बन्ध न बाँधे तो दुःख होनेका दूसरा कोई कारण नहीं है।

अब जीव अपना संसार कैसे बनाता है, यह देखिये—

'जाग्रदादिविमोक्षान्तः संसारः जीवकल्पितः।'

इसका अर्थ यही है कि जीव स्थूलशरीर धारणकर माताके पेटसे निकलकर मरणपर्यन्त मेरा-मेरा करता हुआ प्राणी-पदार्थोंका संग्रह करता है, यह जीवकी कल्पनाका संसार है। अब देखना है कि यह किस प्रकार होता है। ईश्वरने पृथ्वी बनायी तो मनुष्यने, जितनी देख-भालकर सकता था उतनी, जमीनको घेर लिया और यह खेत मेरा है, यह बाग मेरा है—इस प्रकारका ममत्व बाँध लिया। दूसरे मनुष्यने भी वैसा ही किया और फिर कहा कि 'यह खेती-बारी मेरी है और वह तेरी है।' फिर ईश्वरनिर्मित जमीनके नन्हे-नन्हे टुकड़ोंके ऊपर मनुष्योंने ईश्वरके उत्पन्न किये हुए साधनोंके द्वारा ही घर बनाया और उसमें भी यह घर मेरा, यह घर तेरा और वह दूसरेका—इस प्रकार ममत्वका व्यवहार हो गया। आगे चलकर ईश्वरकी ही सृष्टिसे पदार्थोंको ले-लेकर उनमें विविध रूपान्तर करके अनेक प्रकारके सुखके साधन तथा विभिन्न जातिके दुःख देनेवाले और विनाशकारी साधन बनाये और उनमें भी मेरा-तेराका व्यवहार चालू हो गया। मनुष्यसे नया एक तिनका भी पैदा नहीं हो सकता। सृष्टिमें जो सामग्री है, उसीमें रूपान्तर कर-करके वह विविधताकी रचना करता है और गर्व करता है कि यह मैंने किया। इस प्रकार ईश्वरके बनाये हुए तत्त्वोंमें रूपान्तर करके मनुष्य 'मेरे-तेरे' के संसारकी रचना करता है—यह बात तो हुई जीवके पदार्थसंग्रहके विषयकी। अब प्राणियोंका संग्रह वह किस प्रकार करता है, यह देखना है। जीव जब मनुष्यशरीर धारण करके माताके गर्भसे बाहर निकलता है, तब वह सर्वथा अचेत दशामें रहता है, इसलिये परमात्मा उसकी सँभाल रखनेके लिये उसको एक माता प्रदान करता है। बालक कुछ बड़ा होता है, तब उससे परमात्मा पूछता है—'भाई यह कौन है?' उत्तर मिलता है—'यह मेरी माँ है।' उसके बाद परमात्माने उसी माँसे दो-चार बच्चे और दे दिये। और फिर उससे पूछा—'भाई, ये कौन हैं?' जवाब मिलता है—'ये तो मेरे भाई-बहन हैं।' पश्चात् परमात्मा उसका एक स्त्रीसे ब्याह कराता है और उसके पेटसे दो-तीन बच्चे देता है और फिर पूछता है—'भाई, ये कौन हैं?' जवाब मिलता है—'मैं खुद जाकर इस स्त्रीको ब्याहकर लाया था। क्या आपने नहीं देखा, जो यों पूछ रहे हो? और फिर मेरी स्त्रीके पेटसे पैदा हुए बच्चोंके विषयमें तो पूछना ही क्या है?' इस प्रकार अनादिकालसे जीव प्राणियोंका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संग्रह करता हुआ चला आ रहा है और जबतक वह ईश्वरकी वस्तु ईश्वरको नहीं सौंप देता, तबतक उसका भटकना बंद नहीं होता।

यह जीवरचित संसार तो उसकी कल्पनामात्र है, इससे इसमें घट-बढ़ होती ही रहती है और इससे अपने संसारमें वृद्धि होनेपर वह आनन्द मानता है तथा हानि होनेपर हाय-हाय करता है। एक बार परमात्माको इस मनुष्यकी स्त्रीकी जरूरत हुई। उसको अपनी सृष्टिका दूसरा काम सौंपना था, इससे परमात्माने उससे कहा—'तुमको दी हुई स्त्री मुझे वापस चाहिये।' तो वह कहता है—'वह तो मेरी है, उसे मैं तुमको क्यों दूँ?' तब परमात्मा उसे थप्पड़ मारकर उसकी स्त्री वापस ले लेता है और वह मनुष्य मुँह बाये रोता खड़ा रहता है।

अब देखो, उस मनुष्यके संसारमें एक मनुष्य कम हो गया, परंतु इससे ईश्वरकी सृष्टिमें कुछ भी फेर-फार नहीं हुआ; क्योंकि वह स्त्री फिर नया शरीर धारणकर अपने नये वेशमें ईश्वरकी सृष्टिमें किसीके संसारमें रहेगी ही।

ईश्वरकृत सृष्टि और जीवकल्पित संसारको एक नाटककी उपमा दें तो ठीक समझमें आ जायगा। सम्पूर्ण नाटक यह ईश्वरनिर्मित सृष्टि है और उसका एक-एक दृश्य जीवविशेषका संसार है। एक नाटकमें अनेक दृश्य होते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक जीवका संसार पृथक्-पृथक् होता है। किसी-किसी दृश्यमें पाँच आदमी अधिक भी आते हैं और किसी-किसी दृश्यमें ऐसा होता है कि दो-चार आदमी उसमेंसे चले भी जाते हैं। किसी दृश्यमें जन्म होता है तो किसीमें मृत्यु भी होती है। किसीमें लड़ाई होती है तो किसीमें उत्सव भी मनाया जाता है। इस प्रकार दृश्योंमें विविधता रहती ही है और उनमें घट-बढ़, हानि-लाभ, सुख-दुःख, मान-अपमान, जन्म-मरण आदि भी होते ही रहते हैं, ऐसा न हो तो उसका नाम नाटक नहीं। परंतु सारे नाटकका विचार करें तो कहीं भी घट-बढ़ आदि द्वन्द्व देखनेमें नहीं आते; क्योंकि जो घट-बढ़ दृश्योंमें दीखती थी वह सच्ची नहीं थी, परंतु ममताके कारण जीवकी अपने-आप कल्पना की हुई थी।

यह जीवकल्पित संसार केवल जीवकी कल्पना ही है, इसलिये अपनी-अपनी कल्पनाके अनुसार प्रत्येक जीवका संसार अलग-अलग ही होना चाहिये। यह संसार यदि सच्चा होता तो शरीरके मरणसे जीवका अपने संसारके साथ सम्बन्ध नहीं छूटता, परंतु हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि शरीरके छूट जानेपर उस शरीरके द्वारा रचा हुआ संसार भी छूट जाता है और जीव जब दूसरा शरीर धारण करता है तब वहाँ भी नया संसार रचता है और गत शरीरके संसारकी उसे स्मृति भी नहीं होती। हमारे सभीके पिछले जन्ममें हमारी कल्पनाके संसार रहे ही होंगे; परंतु आज उनकी स्मृति भी नहीं है, इससे यह समझना चाहिये कि जीवके रचे संसारमें उसकी अपनी कल्पनाके सिवा और कुछ भी नहीं है।

अब देखो, ईश्वरकृत सृष्टि कुछ बन्धनकारक नहीं है। वह तो शरीरके निर्वाहमें तथा सच्ची समझ प्राप्त करनेमें सहायक होती है। बन्धनकारक तो हैं—'मेरे और तेरेकी कल्पना।' जो ईश्वरका है उसे 'मेरा' मानकर संसार रचना करनेसे बन्धनकारक होता है। इसीका नाम माया है और जबतक जीव मायाको नहीं छोड़ता, तबतक उसका जन्म-मरण बंद नहीं होता।

श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—***'मैं अरु मोर तोर तैं माया।'*** यानी 'यह मैं और यह मेरा', 'यह तू और यह तेरा'—यही मायाका स्वरूप हैं। 'मैं और मेरा' छोड़ दे और सब कुछ ईश्वरका है—ऐसा मान ले तो मायाके बन्धनसे जीव मुक्त हो जाय।

श्रीशंकराचार्यजी कहते हैं कि **'अहं ममेति चाज्ञानम्'**—यानी 'मैं और मेरा' की कल्पना ही अज्ञान है। अज्ञान अर्थात् अविद्या या माया।

ज्ञान-अज्ञानकी परिभाषा करते हुए श्रीरामकृष्ण परमहंस कहते हैं कि 'मैं और मेरा' यही अज्ञान है और 'तू और तेरा' यही ज्ञान है।

श्रुति भगवती भी कहती हैं—**'ममेति बध्यते जन्तुर्निर्ममेति विमुच्यते'**—यानी 'मैं और मेरा' यही जन्म-मरणरूपी बन्धनका कारण है और सब कुछ—अपने-आप भी ईश्वरका है, यों माननेका नाम मुक्ति है।

ममताका अर्थ है 'बन्धन' और ममताके त्यागका अर्थ है 'भव-बन्धनसे मुक्ति।' ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवनमें सेवाका महत्त्व

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

(रा०च०मा० ४। ३)

श्रीरामचरितमानसमें यह बड़ा सुन्दर सैद्धान्तिक उपदेश है। ***'सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ'***—अनन्य कौन है? कहते हैं कि इस प्रकारकी बुद्धि जिसकी सदा अविचल रहती है, कभी टलती नहीं है। किस प्रकारकी बुद्धि? कि ***'मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत'***—मैं तो सेवक हूँ और जड़-चेतनात्मक सारा जगत् मेरे प्रभु—स्वामीका रूप है और मैं एकमात्र उनका सेवक हूँ। इस प्रकारकी जिसकी अनन्य बुद्धि सदा अटल बनी रहती है, वह अनन्य भक्त है।

तुलसीदासजी महाराजकी हमलोगोंपर बड़ी कृपा है कि उन्होंने श्रीरामचरितमानसमें और अपने अन्यान्य ग्रन्थोंमें इस तरहकी चीजें हमलोगोंको दे दी हैं कि यदि उनमें एकपर भी ध्यान दिया जाय और उसे जीवनमें उतार लिया जाय तो हमारा जीवन सफल हो सकता है। यह सारा जगत् भगवान्‌का रूप है। जड़-चेतन जगत्‌में प्रकृति और पुरुषात्मक यह जगत् है। प्रकृति भक्तकी दृष्टिमें भगवान्‌की शक्ति है। शक्ति और शक्तिमान् अलग-अलग भी हैं, वहाँ जहाँ कि शक्तिकी क्रिया अलग होती है और शक्ति तथा शक्तिमान् नित्य एक भी हैं। शक्ति है तो शक्तिमान् है और शक्तिमान् है तो शक्ति है। दोनों अन्योन्याश्रित हैं। यहाँ भक्तकी वाणी है। वह कहता है—सारा जड़-चेतनात्मक जगत् मेरे प्रभुका रूप है और मैं उसका सेवक हूँ। वहाँ भगवान्‌को नहीं कहता है। भक्तकी वाणी है न! वह कहता है कि सारे भगवान् हैं और मैं सारे भगवान्‌का सेवक हूँ। उसने कितना ऊँचा दर्जा बना लिया है अपने लिये। एकमात्र मैं ही सेवक हूँ। इतने बड़े चराचर जगत्‌रूप भगवान्‌की सेवाका भार मुझे दे दिया गया है। मैं सेवक हूँ और सारा जगत् भगवान्‌का रूप है। इसमें दो बातें सिद्धान्तकी आयी हैं।

प्रथम सिद्धान्त यह कि भगवान्‌के सिवाय दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं—

'मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।'

(गीता ७। ७)

मेरे सिवाय कोई वस्तु है ही नहीं और दूसरी चीज सिद्धान्तमें है भक्तकी। भक्तमें सबसे बड़ी चीज है—सेवा। भक्तिका अर्थ ही है—सेवा। जहाँ सेवा है, वहीं भक्ति सम्पन्न होती है और जहाँ केवल सेवा न हो करके अन्य चीजें हैं, भक्तिके बाहरी उपकरण हैं, परंतु सेवा नहीं है, वहाँ भक्ति नहीं है। सेवाका रूप क्या है? श्रीमद्भागवतमें हिरण्यकशिपुको मारनेके बाद प्रह्लादजीसे जब भगवान्‌ने प्रसन्न होकर कहा कि प्रह्लाद! तुम कुछ माँगो। तब प्रह्लादके मनमें एक शंका उठी कि भगवान् कहते हैं माँगो। भगवान् अन्तर्यामी हैं। मेरे मनमें कोई-न-कोई माँगनेकी बात रही है, तभी भगवान् माँगो कह सकते हैं और मेरे मनमें माँगनेकी कोई बात यदि न रही होती—कल्पना न रही होती तो भगवान्‌के संकल्पमें यह बात आती कैसे कि वे माँगनेके लिये कहते। तब प्रह्लादने अपने हृदयको टटोला तो कहीं माँगनेकी कोई इच्छा दिखायी नहीं दी। जब दिखायी नहीं दी, तब पहले भगवान्‌को उलाहना दिया। यह सेवकका स्वरूप है। प्रह्लादजीने भगवान्‌से कहा—भगवन्! यह आप देने-लेनेकी बात कैसे करते हैं? मैं तो आपका सेवक हूँ न! सेवकको कभी कुछ दिया जाता है क्या? और सेवक कभी कुछ सेवाके बदले लेता है क्या?

'न स भृत्यः स वै वणिक्'

(श्रीमद्भा० ७। १०। ४)

जो सेवक सेवाके बदले कोई चीज ले ले। उस सेवाका विनिमय कर ले तो वह भृत्य नहीं है, वह तो वणिक् है। वणिक्-वृत्ति है, जो देन-लेन करता है। वणिक् अर्थात् व्यापारी। एक चीज दी, बदलेमें दूसरी ले ली। पैसा दिया, बदलेमें कपड़ा ले लिया और चीज ले ली। पहले जब मुद्रा नहीं थी तब ग्रामोंमें वस्तुओंका विनिमय हुआ करता था। तेलीने तेल दे दिया, जुलाहेने कपड़ा दे दिया। जुलाहा जाकर गेहूँ ले आया कपड़ेके बदलेमें। इस प्रकार विनिमय होता था। जहाँ विनिमय है, वहाँ लेन-देन होता है और लेन-देन सेवक तथा स्वामीमें होता नहीं है। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धान्त बताया गया।

जो सेवक सेवा करके बदलेमें ले ले, वह सेवक सेवक नहीं है। यह बड़ी सुन्दर सेवककी व्याख्या है। दूसरी चीज सेवकमें क्या होती है? सेवक कभी भी अपने मालिकको संकोचमें नहीं डालता है। जो सुस्वामी होते हैं, अच्छे स्वामी होते हैं—उनके लिये कहा गया है—

'राम सदा सेवक रुचि राखी'

(रा०च०मा० २।२१९।७)

सेवक मालिककी रुचि देखता रहे—यह अलग चीज है, परंतु मालिक देखता रहता है कि सेवककी रुचि क्या है? ऐसे मालिक जहाँ हों, वहाँ सेवक कैसे होंगे? आज न सेवक हैं और न मालिक हैं। मालिक अपना स्वार्थ साधना चाहते हैं और सेवक अपना स्वार्थ चाहते हैं। स्वार्थका सम्बन्ध है। सेवक-स्वामीका पवित्र सम्बन्ध नहीं है। स्वामी वह है, जो सेवककी रुचि रखे और सेवक वह है, जो स्वामीको कभी संकोचमें न डाले। जो अपने स्वामीको संकोचमें डालता है, वह अधम सेवक है। सेवकका अर्थ यह है कि स्वामीकी आभ्यन्तरिक रुचिके अनुसार अपना जीवन बना ले। एक तो कहनेपर कार्य होता है और एक इशारे-संकेतपर कार्य होता है तथा एक मन जानकर कार्य होता है। जहाँ मन जानकर कार्य होता है, वहाँ इशारेकी आवश्यकता नहीं होती और कहनेकी बात ही नहीं आती है। वहाँ एक बड़ी विलक्षण बात यह होती है कि मालिकके मनका चित्र उस सेवकके मनमें अपने-आप आता रहता है।

आदिपुराणमें भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा है कि मैं कैसे सेवा चाहता हूँ और मेरे मनमें क्या है? इस बातको केवल गोपिकाएँ ही जानती हैं—

मन्माहात्म्यं मत्सपर्यां मच्छ्रद्धां मन्मनोगतम्।
जानन्ति गोपिकाः पार्थ नान्ये जानन्ति तत्त्वतः॥

मेरी महिमाको, मेरी सेवाको, मेरी श्रद्धाको और मेरे मनकी बातको केवल गोपिकाएँ जानती हैं। क्यों जानती हैं? इसलिये कि वे सेविका हैं। जिस सेवकके जीवनमें अपने स्वामीकी रुचिके अनुसार जीवन बनानेके सिवाय दूसरी कोई कल्पना ही नहीं है, उस सेवकके हृदयमें मालिकके हृदयका चित्र आ जाता है। यह एक नियम है कि जहाँ अत्यन्त प्रगाढ़ता होती है, वहाँ हृदयके साथ हृदयका आभ्यन्तरिक मिलन हो जाता है। दोनोंके हृदयकी बात एक-दूसरेके हृदयमें आ जाती है। बल्कि यह हृदय अन्तरंगतामें इतना आकर्षण करता है कि वह शरीर भी वहाँ जा पहुँचता है।

महाभारतमें कथा आती है कि युद्ध होनेके बाद भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवोंके यहाँ थे। वे अपने कमरेमें अकेले बैठे थे। उसी समय युधिष्ठिरको कोई कार्य आ गया और उनका श्रीकृष्णसे मिलनेका मन किया तो वे उनके पास गये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि श्रीकृष्णका शरीर तो वहाँ बैठा है, लेकिन उनमें कोई और स्फूर्ति नहीं थी। निश्चल शरीर बैठा है। युधिष्ठिर दंग रह गये कि यह क्या है? उनका श्वास चलता नहीं है, बिलकुल निश्चल बैठे हैं। कुछ देरके बाद श्रीकृष्णके शरीरमें हलचल हुई। भगवान्ने आँखें खोलीं। तब धर्मराजने पूछा—महाराज! यह क्या हो गया था? भगवान् श्रीकृष्णने कहा—मुझे भीष्मने याद किया था। मैं उनसे मिलने चला गया था। इसलिये यहाँ नहीं था। इस प्रकार जहाँ प्रेम होता है, वहाँ प्रेमके आकर्षणसे केवल मनकी बात ही मनमें नहीं आती है बल्कि शरीर भी आ जाता है। मनकी बात तो लक्षणोंसे स्वाभाविक ही जान लेते हैं। भीष्मजी शर-शैय्यापर पड़े हैं। समस्त शरीरमें बाण बिद्ध हैं। महाभारतमें आया है कि भीष्मके शरीरमें दो अंगुल जगह भी नहीं बची थी, जहाँपर बाण न बिंधे हों। शरीरको छेद करके बाण जमीनपर गिर गये और उनपर शरीर टिक गया। सिर लटक रहा था; क्योंकि उनके सिरमें किसीने बाण नहीं मारा था। इसमें एक कारण था कि जब युद्ध शुरू हुआ तो भीष्म थे पितामह। वे वयोवृद्ध थे। इसलिये सभी उनका सम्मान करते थे। पाण्डवोंकी ओरसे तो यह चीज थी ही। जब-जब अर्जुन भीष्मके सामने आते तो सबसे पहले उनके दोनों चरणोंमें दो-दो बाण मारते। यही उनका प्रणाम था रणांगणमें। परंतु भीष्मका इतना सम्मान था कि किसीने उनके मस्तकमें बाण नहीं मारा। उनका मस्तक लटक रहा था। भीष्मने कहा—तकिया लाओ। सिर लटक रहा है। अब **'मन्मनोगतम्'**—सबलोग तकिया लाये अपने मनके अनुसार। अच्छी-से-अच्छी तकिया, मसनद लाये। तब भीष्मने कहा—तुम सब यहाँसे हटो। अर्जुनको बुलाओ। अर्जुन वहाँ थे ही। वे सामने आये, तब भीष्मने कहा—बेटा! तकिया दो, सिर लटक रहा है। अर्जुनने तरकशसे तीन बाण निकाले और उनके मस्तकमें तीनों बाण मार दिये। मस्तकको बेधकर तीनों बाण जमीनपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टिक गये। उन्हें यथोचित तकिया मिल गया। भीष्मने कहा—बेटा! तेरा यश फैले, तुम चिरंजीवी होओ। तेरी जय हो। उन्होंने आशीर्वाद दिया। उस समय वही तकिया चाहिये था।

किसीके मनमें क्या है? इस बातको वही जान सकता है, जो उसकी सेवाके द्वारा अन्तरंगतामें आ चुका है। जो उसकी भाषाको समझता है। भाषा केवल जबानकी नहीं होती है। गीतामें अर्जुनने भगवान्से पूछा—'**स्थितप्रज्ञस्य का भाषा**' (२।५४) भाषा वहाँ बोली नहीं है। उसका स्वरूप क्या है? उसका जीवन क्या बोल रहा है? इसका अर्थ भाषा है। इसे जानता कौन है? जो उसकी अन्तरंगतामें आता है। '*समुझइ खग खगही कै भाषा*'—अन्तरंगतामें जो आ गया, उसे इशारेकी जरूरत नहीं है। वह जानता है कि कब क्या आवश्यकता है? कब इनकी क्या रुचि है? सेवा-पद्धतिको हमलोग भूल गये हैं। अष्टकालीन सेवा-पद्धति वैष्णवोंमें है। वहाँ प्रत्येक समयका, अलग-अलग सेवाका व्यवस्थित रूप है। वहाँ जो सेवक हैं, वे जानते हैं—अन्तरंग जगत्के सेवक कि इनको कब-किस वस्तुकी आवश्यकता होती है। ये पहचान लेते हैं उनकी आकृतिको देख करके। उन्हें इशारा नहीं करना पड़ता है। [क्रमशः]

श्रीचैतन्यमहाप्रभु एवं श्रीरामानन्दरायका अद्भुत सत्संग

(श्रीयोगेश्वरजी त्रिपाठी 'योगी')

दक्षिणापथकी यात्राके समय—श्रीचैतन्यदेवकी भेंट श्रीरामानन्दरायसे हो गयी।* ये परम कृष्णभक्त थे। पुरीमहाराजकी ओरसे सुदूर उत्कल एवं आन्ध्रप्रदेशकी सीमापर इन्हें नियोजित किया गया था। आपकी प्रार्थनापर श्रीचैतन्यमहाप्रभु उनके निवासपर कुछ दिनोंके लिये ठहर गये। भगवच्चर्चामें दोनों महापुरुषोंका अधिकांश समय सुखपूर्वक व्यतीत होता। सत्संगका प्रभाव ही ऐसा है कि उसमें संसार ही दुर्लभ हो जाता है। यदि सत्संगमें संसार याद आता रहा तो फिर वह सत्संग कैसा? बहुधा देखनेको मिलता है कि जो गूढ़ तत्त्व स्वाध्याय अथवा तप आदिसे नहीं मिलता, वह सत्संगसे सहज ही सुलभ हो जाता है। तभी मनीषियोंने कहा है—

खोदि खोदि मूसा मरै मौज करै भुजंग।
पढ़ि पढ़ि पढ़ि पण्डित मरै अनन्द करै सत्संग॥

अर्थात् चूहा तो जमीन खोद-खोदकर बड़े परिश्रमपूर्वक अपने लिये बिल बनाता है, किंतु सर्प बिना परिश्रमके ही उस बिलमें रहने लगता है, ऐसे ही विद्वान् लोगोंका जीवन भी तत्त्वज्ञानके अन्वेषणमें व्यतीत हो जाता है, किंतु सत्संगीजन बिना परिश्रमके ही उसे सत्संगमें प्राप्त कर लेते हैं। स्वर्ग तथा अपवर्गका सुख भी लवमात्रके सत्संगसुखको तोल नहीं सकता। सत्संग सहज रूपसे मनुष्यको कहाँसे कहाँ पहुँचानेका सामर्थ्य रखता है। इन दोनों महापुरुषोंमें चर्चाएँ होती रहतीं और दोनों ही प्रेमानन्दमें विभोर होते रहते। एक दिन श्रीकृष्णकथा सुनते-सुनते श्रीचैतन्यदेवने श्रीरामानन्दरायसे पूछा कि मनुष्यका वस्तुतः कर्तव्य क्या है? तब रामानन्दजीने कहा—प्रभो! इस विषयमें गीता कहती है—

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।

अर्थात् अपने-अपने वर्णाश्रमधर्मके अनुकूल कर्म करते रहनेसे मनुष्य परम सिद्धिको प्राप्त कर सकता है। अतः जो जिस वर्णमें हो, वह उसीके कर्मोंको करता हुआ उन्हींके द्वारा विष्णुभगवान्की आराधना कर सकता है, वर्णाश्रमधर्मको छोड़कर भगवान्को प्रसन्न करनेका दूसरा कोई उपाय नहीं दीखता। यही बात विष्णुपुराण (३।८।९)-में कही गयी है—

वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान्।
विष्णुराराध्यते पन्था नान्यस्तत्तोषकारकः॥

वर्णाश्रमधर्मकी बात सुनकर चैतन्यदेव बोले कि निश्चित ही आपने बड़ी सुन्दर बात बतायी है, किंतु पाप-पुण्यके अनुसार जीवको मानवशरीर प्राप्त होता है। अतः जिनकी वासनाएँ विषयभोगोंमें फँसकर रह गयी हों, उनके

* श्रीरामानन्दरायजी उत्कल देशके अन्तर्गत विद्यानगर राज्यके शासक थे। इनके पिताका नाम राजा श्रीभवानन्द था। श्रीरामानन्दजीको राजा और रायकी उपाधियाँ मिली हुई थीं। ये विनयी, शूर तथा सदाचारी पुरुष थे, ये संस्कृतके महान् विद्वान् थे। सभी शास्त्रोंमें इनकी समान गति थी। इनका आचार-विचार बड़ा ही शुद्ध तथा पवित्र था। ये वैदिक श्रौत-स्मार्तकर्मोंका विधिवत् अनुष्ठान करते थे। ये नित्य पुण्यतोया गोदावरीमें स्नान, तर्पण, सन्ध्या आदि नियमसे किया करते थे। भगवान्में इनकी भक्ति अत्यन्त सुदृढ़ थी, ये परममहाभागवत थे और वन्दनीय महापुरुष थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये (धर्म, अर्थ, काम) त्रिपुरुषार्थयुक्त कर्म करनेका विधान कहा गया है। यदि मनुष्य स्वेच्छासे विषयभोगोंमें लिप्त हो जाय तब तो उसका पतन हो जायगा। अतः उसे धर्मके आश्रयकी आवश्यकता है। उन धार्मिक कार्योंके फलस्वरूप वह स्वर्गीय सुखको प्राप्त करता है। परंतु वह भी सदाके लिये नहीं होता। पुण्य क्षीण होनेपर पुनः संसारमें आना पड़ता है। अतः आप कुछ ऐसा उपाय बताइये कि जिससे फिर पतित न होना पड़े।

रामानन्दजीने कहा कि तब तो कर्ममें आसक्ति नहीं होनी चाहिये। सकामकर्मका फल तो मिलता ही है। भगवत्प्रीत्यर्थ किये गये कर्म निष्काम होनेके कारण फलदायी नहीं होते।

इसपर चैतन्यदेव बोले कि सचमुच निष्कामकर्म त्रैलोक्यसुखसे भी ऊँचेकी ओर ले जानेवाले होते हैं, परंतु उनके द्वारा तो मात्र आत्मशुद्धि ही होती है। वे मुक्तिके प्रधान कारण न होकर गौण ही होते हैं। उनका फल ज्ञान न होकर आत्मशुद्धि है—**'योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये'** (गीता ५।११)। अतः आप कृपा करके इससे बढ़कर कुछ बताइये।

श्रीरामानन्दजी बोले—यदि आपकी दृष्टिमें निष्कामकर्म भी श्रेष्ठ नहीं। तब तो सभी प्रकारके कर्मोंका स्वरूपतः परित्याग करके निरन्तर श्रीभगवान्के भजनमें अपनेको लगा देना चाहिये। सत्-असत् कैसे भी कर्म करनेपर उनसे त्रितापोंकी निवृत्ति नहीं होती। अतः भगवान् कृष्णकी बातपर ध्यान देना चाहिये—**'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।'** (गीता) यही मनुष्यका श्रेष्ठ कर्तव्य है।

श्रीचैतन्यदेव बोले—साधु! साधु!! शरणागत होना सबसे श्रेष्ठ धर्म है, परंतु यह तो उन सांसारिक साधकोंके लिये है, जिन्हें तापोंके अभावकी इच्छा होती है। परंतु जो साधक इससे भी उच्चकोटिके हैं, उन्हें तो सांसारिक तापोंका भान ही नहीं होता। आप कृपया उन साधकोंके लिये कोई उपाय बताइये।

इस विवेचनासे रायजी सोचमें पड़ गये। फिर सोच-विचारकर उन्होंने कहा कि तब तो समभावमें अवस्थित होकर निरन्तर भक्ति करना ही मनुष्यका मुख्य कर्तव्य है। तब इसपर विचार करके श्रीचैतन्यदेवने कहा कि यह तो अत्यन्त सुन्दर उपाय है, परंतु यदि किसीको असली आनन्दकी इच्छा हो तो उससे दो वस्तुओंका विचार कैसे हो सकता है? उसके भयका कारण तो वही द्वैधी भाव ही है। सत् और असत्का विचार बहुत ही उत्तम है, पर इसमें मुझे सरसता नहीं दिखायी देती। कोई अन्य सरस उपाय बतानेकी कृपा करें।

श्रीरामानन्दजी बोले—स्वामीजी! तब तो भगवान्की विशुद्ध भक्ति ही मनुष्यका श्रेष्ठतम कर्तव्य है। पितामह ब्रह्माजीने भगवान्की स्तुति करते हुए कहा था—

ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव
जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीयवार्ताम्।
स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभि-
र्ये प्रायशोऽजित जितोऽप्यसि तैस्त्रिलोक्याम्॥

(श्रीमद्भा० १०।१४।३)

अर्थात् हे अजित्! जो मनुष्य ज्ञानमें कुछ भी प्रयत्न न करके केवल साधु-सन्तोंके स्थानपर उपस्थित रहकर उनके मुखसे आपके गुणानुवादोंका ही श्रवण करते हैं और मन-वचन-कर्मसे आपको नमस्कार करते हुए जीवन व्यतीत करते हैं, तीनों लोकोंमें वे ही आपको प्राप्त कर सकते हैं।

श्रीरामानन्दजीके मुखसे यह श्लोक सुनते ही चैतन्यदेव प्रसन्नतासे झूम उठे। कुछ संयत होनेपर उन्होंने कहा—आप सत्य कह रहे हैं कि भगवान्की अहैतुकी भक्ति करना मनुष्यका सर्वश्रेष्ठ धर्म तथा परम पुरुषार्थ है। इसे हम भी पूर्णतः स्वीकार करते हैं। यहाँपर प्रश्न यह उठता है कि भक्ति किस प्रकारसे की जाय? कृपा करके आप इसपर कुछ प्रकाश डालिये।

राय रामानन्दजीने कहा—हे प्रभो! प्रेमपूर्वक भक्ति करणीय है; क्योंकि ***'प्रेम हरीको रूप है त्यों हरि प्रेमस्वरूप।'*** वे तो ***'रसो वै सः'*** के अनुरूप रससिन्धु हैं। उसमें घुसकर जीभरके गोते लगानेका सौभाग्य मिलना असम्भव नहीं, पर कठिन अवश्य है।

मनुष्यको श्रीकृष्णभक्तिरससे भावित मति जैसे भी प्राप्त हो सके, उसे प्राप्त कर लेना चाहिये। उसके प्रति लोलुपता सदा हृदयमें बनी रहना ही उसका मूल्य है, जिससे उसे खरीद लेना चाहिये। उसे मनुष्य कोटि-कोटि जन्मके सुकृतसे भी प्राप्त नहीं कर सकता—

कृष्णभक्तिरसभावितामतिः
क्रीयतां यदि कुतोऽपि लभ्यते।
तत्र लौल्यमपि मूल्यकेवलं
जन्मकोटिसुकृतैर्न लभ्यते॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धन्य है! धन्य है!! कहते हुए श्रीचैतन्यदेवने इस विषयको आगे बढ़ाते हुए कहा कि तैत्तिरीय उपनिषद्का मत है—**रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति**। भगवान् रसस्वरूप हैं, उस रसको पाकर जीव आनन्दमय हो जाता है, परंतु एक बात विचारणीय यह है कि उस रसका आस्वादन किसी प्रकारके सम्बन्ध-स्थापनद्वारा ही किया जा सकता है। आप कृपा करके हमें यह बतलाइये कि भगवान्के साथ किस सम्बन्धसे उस रसका आस्वादन किया जाय?

इसपर श्रीरामानन्दजीने कहा कि मेरे विचारसे दास्यभाव श्रेष्ठ है; क्योंकि बिना इसके प्रेम हो नहीं सकता। यह भाव तो शान्त, सख्य, वात्सल्य तथा मधुर आदि सभी भावोंमें छिपा रहता है। दास्यभाव तो स्नेहका स्वामी है। अतः यह भाव ही श्रेष्ठ है।

इसपर चैतन्यदेवने अपना मत प्रकट करते हुए कहा कि यह भाव श्रेष्ठ तो अवश्य है, परंतु इसमें कुछ संकोच तो रहता ही है। सेवकको अपने स्वामीके ऐश्वर्य, मान-सम्मानका सदा ध्यान रहता है, अतः निर्भय होकर आनन्दरसका पान करनेमें कुछ संकोच होता है। कृपया ऐसा कोई सम्बन्ध बताइये, जिसमें लेशमात्र भी संकोच न हो।

कुछ क्षण विचार करनेके पश्चात् रायरामानन्दजीने कहा कि तब तो सख्यभाव ही उत्तम प्रतीत होता है। इस भावमें ऐश्वर्य, धन, मान-सम्मान किसीकी परवाह नहीं रहती। ग्वालमण्डली भगवान्से रुष्ट भी होती थी। उनसे गौएँ भी घिरवाती थी। उनके पीठपर लदकर रौब भी जमाती थी। अतः यथार्थ रसास्वादन सख्यभावमें ही होता है।

इसपर चैतन्यमहाप्रभुने कहा कि आप ठीक कह रहे हैं। यथार्थ रसास्वादन सख्यभावमें ही होता है, पर एक कठिनाई है कि वह सबको प्राप्त नहीं होता। उसमें दूसरेके प्रेमकी अपेक्षा रहती है। यदि अज्ञानतासे यह भ्रम हो जाय कि हमारा प्रेमी हमारे जितना प्रेम नहीं करता, तब तो स्वाभाविक रूपसे हमारे प्रेममें कुछ कमी आ जायगी। अतः आप प्रेमका कोई ऐसा सम्बन्ध बतानेकी दया करें जो निरपेक्ष तथा हर हालतमें एक रस बना रहे।

यह सुनकर श्रीरामानन्दजीने कहा कि प्रभो! यह बात तो वात्सल्यमें ही है। ***'पुत्र कुपुत्र भले हो होती न कुमाता माता'*** सन्तान भले ही प्रेम करे या न करे, पर माता-पिताका प्रेम उसपर वैसा ही बना रहता है। तभी व्यासजी कहते हैं—

नेमं विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यङ्गसंश्रया।
प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत् प्राप विमुक्तिदात्॥

(श्रीमद्भा० १०।९।२०)

अर्थात् प्रेमदाता श्रीहरिकी जैसी कृपा यशोदाजीपर हुई थी, वैसी कृपा शिव-ब्रह्माकी तो बात ही क्या लक्ष्मीजीपर भी नहीं हुई। अतः वात्सल्यभाव ही सर्वोत्तम ठहरता है।

ऐसा सुनकर श्रीचैतन्यदेवने प्रसन्नतापूर्वक कहा कि आप तो रसज्ञ हैं। आपसे कुछ भी छिपा नहीं है, पर मैं एक बात अवश्य कहना चाहता हूँ कि यह भाव श्रेष्ठ होते हुए भी मेरी समझमें इसमें पूर्ण निर्भरता प्रतीत नहीं होती। छोटे-बड़ेपनका कुछ भाव तो रहता ही है। कृपा करके आप हमें कोई ऐसा भाव बतायें, जिसमें इन विचारोंका अभाव हो।

बहुत-कुछ सोच-विचारकर श्रीरायजी बोले कि प्रभो! इससे आगे तो कहनेका विषय नहीं है। वस्तुतः अब एक ही भाव शेष रह जाता है। वही अन्तिम भाव है जिसे 'कान्ताभाव' कहा जाता है। इस भावमें समस्त भावोंकी, सभी रसोंकी और समस्त सम्बन्धोंकी परिसमाप्ति हो जाती है।

रायमहाशयके मुखसे यह वाक्य सुनते ही श्रीचैतन्यदेवका शरीर पुलकित हो गया। उन्होंने रायमहाशयको अपने बाहुपाशमें बाँध लिया तथा प्रेमविह्वल होकर धन्य है! धन्य है!! कहते हुए बोले कि आप सर्वज्ञ हैं। आपने तो हमारा उद्धार ही कर दिया। हम कृतार्थ हो गये, परंतु मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि आप इससे भी आगेका कुछ संकेत हमें देनेकी कृपा करें। अन्तिम साध्यतत्त्वका अनधिकारी एवं शुष्कहृदय संन्यासी समझकर आप मुझे बहलानेका प्रयास न करें। कृपा करके मुझे इस तत्त्वसे वंचित न रखें। ऐसा सुनते ही राय रामानन्दजी महाप्रभुके चरणोंमें लोट गये और गद्गदकण्ठसे बोले—

अनयाराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद्रहः॥

(श्रीमद्भा० १०।३०।२८)

रासके समय भगवान्के अन्तर्धान हो जानेपर गोपियोंने कहा कि निश्चय ही श्रीराधाजीने भगवान् हरिका आराधन किया है; क्योंकि जिनके प्रेमके पीछे भगवान् हम सबको त्यागकर उनके साथ एकान्तमें चले गये।

इतना कहते ही रायमहाशय प्रेमविह्वल हो गये। कण्ठ अवरुद्ध हो गया। इस कथोपकथनका प्रभाव यह पड़ा कि प्रेमातिरेकसे दोनों प्रेमी मूर्च्छित हो गये। उसी अवस्थामें दोनों ही न जाने कबतक पड़े रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधकोंके प्रति—

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

संसारकी तरफसे खिंचाव हटकर भगवान्‌में खिंचाव हो जाय—यह काम मनुष्य ही कर सकता है। संसार-(जड़)-में आकर्षण होनेसे पतन-ही-पतन होता है। भगवान्‌में आकर्षण उत्थानका मार्ग है। भगवान्‌को याद करना और सबकी सेवा करना मनुष्यका काम है। मनुष्यके लिये ही पाँच महायज्ञोंका विधान है।* मनुष्य सबका पालन कर सकता है। नीचेसे लेकर ठेठ भगवान्‌तककी सेवा कर सकता है।

× × ×

सभी वस्तुओं और व्यक्तियोंका वियोग होगा—इस बातका अपनेपर प्रभाव हो जाय तो हम निहाल हो जायँ। संयोगका भोग करेंगे तो वियोगका दुःख भोगना ही पड़ेगा।

संसारमें लगे हुएका साथी कोई भी नहीं होता, पर भगवान्‌में लगे हुएके सब साथी हो जाते हैं। डाकू भी सन्तकी सेवा करते हैं। साधु होनेमात्रसे कितनी आफतें मिट जाती हैं। साधु, वृद्ध और विधवाके लिये भगवद्भजनके सिवाय क्या काम बाकी रहा? ये भजन न करें तो भगवान् नाराज होते हैं। जो भगवद्भजनमें लग जाता है, उसके लोक-परलोक दोनों ठीक हो जाते हैं।

× × ×

किसीके दोष या कमी देखनेका क्या हमें अधिकार मिला हुआ है? दोष दिखायी देता है तो यह अपना दोष है। अपने दोषसे ही दूसरेमें दोष दीखता है। अपना अन्तःकरण जितना दोषी होगा, उतना ही दूसरोंमें दोष अधिक दीखेगा। रेडियोकी तरह दोषी अन्तःकरण ही दूसरोंके दोषको पकड़ता है। झाड़ू देनेवाला बाजारमें जाकर कूड़ा-करकट ही एकत्र करके अपनी टोकरी भरता है। क्या बाजारमें कूड़े-करकटके सिवाय दूसरी वस्तुएँ नहीं थीं? आप किसीका दोष न देखें तो आपके द्वारा दुनियाकी सेवा हो जायगी। दोष देखेंगे तो **'वासुदेवः सर्वम्'** कैसे दीखेगा?

गुण सदा रह सकते हैं, पर दोष सदा नहीं रह सकते।

× × ×

हमारे ऋषियों-मुनियोंने विचित्र खोज करके शास्त्रोंकी रचना की है। उनकी सबपर बहुत कृपा रही है। उन्होंने अपने स्वार्थके लिये शास्त्रोंकी रचना नहीं की है।

पहलेकी अपेक्षा आज धर्मकी महिमा ज्यादा है। आज भगवान् बहुत सस्ते हो गये हैं। इसलिये भगवान्‌को याद करो और दूसरोंकी सेवा करो। किसीकी बुराई न करें तो संसारकी सेवा हो गयी—

यह हमारि अति बड़ि सेवकाई। लेहिं न बासन बसन चोराई॥

(मानस, अयो० २५१।२)

भलाई करनेमें बहादुरी नहीं है, प्रत्युत बुराई छोड़नेमें बहादुरी है। दैवी सम्पत्ति स्वतः है, उद्योगसाध्य नहीं। बुराई मत करो तो भलाई अपने-आप आयेगी।

शंकर-स्तवन

(डॉ० श्रीदानबहादुरजी पाठक 'वर')

जय-जय शंकर, जय करुणाकर
काम-विनाशक, जय प्रलयंकर,
हर, हर विघ्न-विपत्ति-दोष-दुख
दारिद, भव-भय, भूत-भयंकर।
जय-जय आशुतोष परिपूरन
चूरन-दर्प दयाकर शंकर,
दीन-दयालु, शम्भु गिरिजापति
रहूँ सदा तेरा ही किंकर॥

* अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्। होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥ (मनुस्मृति ३।७०)
वेदोंका अध्ययन-अध्यापन करना 'ब्रह्मयज्ञ' है, तर्पण करना 'पितृयज्ञ' है, हवन करना 'देवयज्ञ' है, बलिवैश्वदेव करना 'भूतयज्ञ' है और अतिथि-सत्कार करना 'मनुष्ययज्ञ' है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान्‌को सन्तुष्ट करनेका सुगम उपाय

एक बारकी बात है, देवर्षि नारदजीने महाज्ञानी श्रीसनकजीसे पूछा—हे महामुने! आप तो भगवान्‌के परम प्रिय हैं और सब बातोंको जाननेवाले हैं, अतः भगवान् जनार्दन जिस प्रकार सन्तुष्ट होते हैं, वह उपाय मुझे बतानेकी कृपा करें।

इसपर श्रीसनकजीने कहा—नारदजी! सच्चिदानन्दस्वरूप परमदेव भगवान् नारायणका सम्पूर्ण चित्तसे भजन करनेसे परम शान्तिकी प्राप्ति होती है। भगवान्‌की शरण लेनेवाले मनुष्यको शत्रु मार नहीं सकते, ग्रह पीड़ा नहीं दे सकते तथा राक्षस उसकी ओर आँख उठाकर नहीं देख सकते। भगवान्‌में जिसकी दृढ़ भक्ति है, उसके सम्पूर्ण श्रेय सिद्ध हो जाते हैं। अतः भक्तपुरुष सबसे बढ़कर है। मनुष्योंके उन्हीं पैरोंको सफल जानना चाहिये, जो भगवान् के मन्दिरमें दर्शनके लिये जाते हैं। उन्हीं हाथोंको सफल समझना चाहिये, जो भगवान्‌की पूजामें तत्पर होते हैं। पुरुषोंके उन्हीं नेत्रोंको पूर्णतः सफल जानना चाहिये, जो भगवान्‌का दर्शन करते हैं। साधुपुरुषोंने उसी जिह्वाको सफल बताया है, जो निरन्तर हरिनामके जप और कीर्तनमें लगी रहती है। मैं सत्य कहता हूँ, हितकी बात कहता हूँ और बार-बार सम्पूर्ण शास्त्रोंका सार बतलाता हूँ कि इस असार-संसारमें केवल श्रीहरिकी आराधना ही सत्य है। यह संसारबन्धन अत्यन्त दृढ़ है और महान् मोहमें डालनेवाला है। भगवद्भक्तिरूपी कुठारसे इसको काटकर अत्यन्त सुखी हो जाना चाहिये। वही मन सार्थक है, जो भगवान्‌के चिन्तनमें लगता है तथा वे ही दोनों कान समस्त जगत्‌के लिये वन्दनीय हैं, जो भगवत्कथाकी सुधाधारासे परिपूर्ण रहते हैं। नारदजी! जो आनन्दस्वरूप, अक्षर एवं जाग्रत् आदि तीनों अवस्थाओंसे रहित तथा हृदयमें विराजमान हैं, उन्हीं भगवान्‌का तुम निरन्तर भजन करो। मुनिश्रेष्ठ! जिनका अन्तःकरण शुद्ध नहीं है—ऐसे लोग भगवान्‌के स्थान या स्वरूपका न तो वर्णन कर सकते हैं और न दर्शन ही। विप्रवर! यह स्थावर-जंगमरूप जगत् केवल भावनामय है और बिजलीके समान चंचल है। अतः इसकी ओरसे विरक्त होकर भगवान् जनार्दनका भजन ही श्रेयस्कर है।
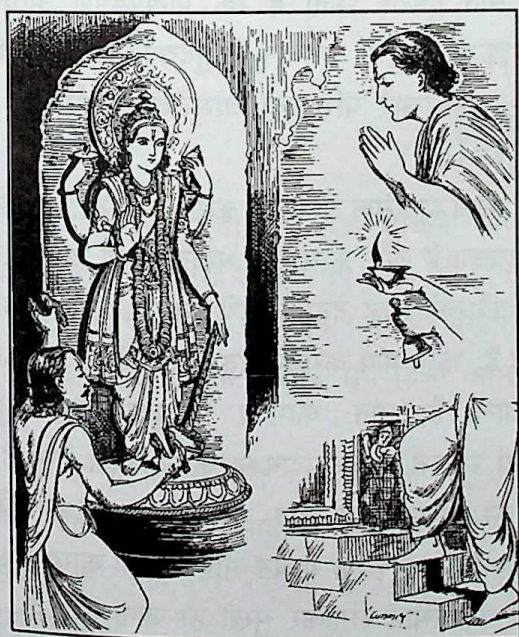
जिनमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह विद्यमान हैं, उन्हींपर जगदीश्वर श्रीहरि सन्तुष्ट होते हैं। जो सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति दयाभाव रखता है और ब्राह्मणोंके आदर-सत्कारमें तत्पर रहता है, उसपर जगदीश्वर भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं। जो भगवान् और उनके भक्तोंकी कथामें प्रेम रखता है, स्वयं भगवान्‌की कथा कहता है, साधु-महात्माओंका संग करता है और मनमें अहंकार नहीं लाता, उसपर भगवान् प्रसन्न रहते हैं। जो भूख-प्यास और लड़खड़ाकर गिरने आदिके अवसरोंपर भी सदा भगवान्‌के नामका उच्चारण करता है, उसपर भगवान् अधोक्षज प्रसन्न होते हैं। मुने! जो स्त्री पतिको प्राणके समान समझकर उनके आदर-सत्कारमें सदा लगी रहती है, उसपर प्रसन्न हो जगदीश्वर श्रीहरि उसे अपना परम धाम दे देते हैं। जो ईर्ष्या तथा दोषदृष्टिसे रहित होकर अहंकारसे दूर रहते हैं और सदा देवाराधन किया करते हैं, उनपर भगवान् केशव प्रसन्न होते हैं। देवर्षे! शरीर मृत्युसे जुड़ा हुआ है। जीवन अत्यन्त चंचल है। धनपर राजा आदिके द्वारा बराबर बाधा आती रहती है और सम्पत्तियाँ क्षणभरमें नष्ट हो जानेवाली हैं। आधी आयु तो नींदसे ही नष्ट हो जाती है और कुछ आयु भोजन आदिमें समाप्त हो जाती है। आयुका कुछ भाग बचपनमें, कुछ विषय-भोगोंमें और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ बुढ़ापेमें व्यर्थ बीत जाता है। फिर धर्मका आचरण कब होगा? बचपन और बुढ़ापेमें भगवान्‌की आराधना नहीं हो सकती, अतः अहंकार छोड़कर युवावस्थामें ही धर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये। मुने! यह शरीर मृत्युका निवासस्थान और आपत्तियोंका सबसे बड़ा अड्डा है। शरीर रोगोंका घर है। यह मल आदिसे सदा दूषित रहता है। फिर मनुष्य इसे सदा रहनेवाला समझकर व्यर्थ पाप क्यों करते हैं! यह संसार असार है। इसमें नाना प्रकारके दुःख भरे हुए हैं। निश्चय ही यह मृत्युसे व्याप्त है, अतः इसपर विश्वास नहीं करना चाहिये। इसलिये विप्रवर! सुनो, मैं यह सत्य कहता हूँ—देह-बन्धनकी निवृत्तिके लिये भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये। अभिमान और लोभका त्यागकर काम-क्रोधसे रहित होकर सदा भगवान्‌का भजन करना चाहिये; क्योंकि मनुष्यजन्म अत्यन्त दुर्लभ है।

मुनिश्रेष्ठ! जीवोंको कोटि सहस्र जन्मोंतक स्थावर आदि योनियोंमें भटकनेके बाद कभी किसी प्रकार मनुष्यशरीर मिलता है। मनुष्यजन्ममें भी देवाराधनकी बुद्धि, दानकी बुद्धि और योगसाधनाकी बुद्धिका प्राप्त होना मनुष्योंके पूर्वजन्मकी तपस्याका फल है। जो दुर्लभ मानवशरीर पाकर एक बार भी श्रीहरिकी पूजा नहीं करता, उससे बढ़कर मूर्ख, जड़बुद्धि कौन है? दुर्लभ मानव-जन्म पाकर जो भगवान्‌की पूजा नहीं करते, उन महामूर्ख मनुष्योंमें विवेक कहाँ है? ब्रह्मन्! जगदीश्वर भगवान् विष्णु आराधना करनेपर मनोवांछित फल देते हैं। फिर संसाररूप अग्निमें जला हुआ कौन मानव उनकी पूजा नहीं करेगा? अतः काम, क्रोध आदिको त्यागकर अविनाशी भगवान् नारायणका भजन करना चाहिये। उनके प्रसन्न होनेपर सब सन्तुष्ट होते हैं; क्योंकि वे श्रीहरि ही सबके भीतर विद्यमान हैं। जैसे सम्पूर्ण स्थावर-जंगम जगत् आकाशसे व्याप्त है, उसी प्रकार इस चराचर विश्वको भगवान्‌ने व्याप्त कर रखा है। उनके भजनसे जन्म और मृत्यु दोनोंका नाश हो जाता है। ध्यान, स्मरण, पूजन अथवा प्रणाममात्र कर लेनेपर भगवान् जनार्दन जीवके संसारबन्धनको काट देते हैं। ब्रह्मर्षे! उनके नामका उच्चारण करनेमात्रसे महापातकोंका नाश हो जाता है और उनकी विधिपूर्वक पूजा करके तो मनुष्य मोक्षका भागी होता है। ब्रह्मन्! यह बड़े आश्चर्यकी बात है, बड़ी अद्भुत बात है और बड़ी विचित्र बात है कि भगवान्‌के नामके रहते हुए भी लोग जन्म-मृत्युरूप संसारमें चक्कर काटते हैं।[1] जबतक इन्द्रियाँ शिथिल नहीं होतीं और जबतक रोग-व्याधि नहीं सताते, तभीतक भगवान् विष्णुकी आराधना कर लेनी चाहिये। जीव जब माताके गर्भसे निकलता है, तभी मृत्यु उसके साथ हो लेती है। अतः सबको धर्मपालनमें लग जाना चाहिये। अहो! बड़े कष्टकी बात है, कि यह जीव इस शरीरको नाशवान् समझकर भी धर्मका आचरण नहीं करता।

नारदजी! बाँह उठाकर यह सत्य-सत्य और पुनः सत्य बात दुहराई जाती है कि पाखण्डपूर्ण आचरणका त्याग करके मनुष्य भगवान् वासुदेवकी आराधनामें लग जाय—**'दम्भाचारं परित्यज्य वासुदेवं समर्पयेत्।'** (ना० पूर्व० ३४।५३)

क्रोध मानसिक सन्तापका कारण है। क्रोध संसारबन्धनमें डालनेवाला है और क्रोध सब धर्मोंका नाश करनेवाला है। अतः क्रोधको छोड़ देना चाहिये। **काम** इस जन्मका मूल कारण है, काम पाप करानेमें हेतु है और काम यशका नाश करनेवाला है, अतः कामको भी त्याग देना चाहिये। **मात्सर्य** समस्त दुःखसमुदायका कारण माना गया है, वह नरकोंका भी साधन है, अतः उसे भी त्याग देना चाहिये।[2]

मन ही मनुष्योंके बन्धन और मोक्षका कारण है। अतः मनको परमात्मामें लगाकर सुखी हो जाना चाहिये। अहो! मनुष्योंका धैर्य कितना अद्भुत, कितना विचित्र तथा कितना आश्चर्यजनक है कि जगदीश्वर भगवान् विष्णुके होते हुए

१. अहो चित्रमहो चित्रमहो चित्रमिदं द्विज। हरिनाम्नि स्थिते लोकः संसारे परिवर्तते॥ (ना० पूर्व० ३४।४८)

२. क्रोधमूलो मनस्तापः क्रोधः संसारबन्धनम्। धर्मक्षयकरः क्रोधस्तस्मात्तं परिवर्जयेत्॥
काममूलमिदं जन्म कामः पापस्य कारणम्। यशःक्षयकरः कामस्तस्मात्तं परिवर्जयेत्॥
समस्तदुःखजालानां मात्सर्यं कारणं स्मृतम्। नरकाणां साधनं च तस्मात्तदपि संत्यजेत्॥ (ना० पूर्व० ३४।५५—५७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी वे मदसे उन्मत्त होकर उनका भजन नहीं करते हैं।[१] सबका धारण-पोषण करनेवाले जगदीश्वर भगवान् अच्युतकी आराधना किये बिना संसार-सागरमें डूबे हुए मनुष्य कैसे पार जा सकेंगे? अच्युत, अनन्त और गोविन्द—इन नामोंके उच्चारणरूप औषधसे सब रोग नष्ट हो जाते हैं। यह मैं सत्य कहता हूँ, सत्य कहता हूँ।[२] जो लोग नारायण! जगन्नाथ! वासुदेव! जनार्दन! आदि नामोंका नित्य उच्चारण किया करते हैं, वे सर्वत्र वन्दनीय हैं। देवर्षे! दुष्ट चित्तवाले मनुष्योंकी कितनी भारी मूर्खता है कि वे अपने हृदयमें विराजमान भगवान् विष्णुको नहीं जानते हैं। मुनिश्रेष्ठ! सुनो, मैं बार-बार इस बातको दुहराता हूँ कि भगवान् विष्णु श्रद्धालु जनोंपर ही सन्तुष्ट होते हैं, अधिक धन और भाई-बन्धुवालोंपर नहीं। इहलोक और परलोकमें सुख चाहनेवाला मनुष्य सदा श्रीहरिकी पूजा करे तथा इहलोक, परलोकमें दुःख चाहनेवाला मनुष्य दूसरोंकी निन्दामें तत्पर रहे। जो देवाधिदेव भगवान् जनार्दनकी भक्तिसे रहित हैं, ऐसे मनुष्योंके जन्मको धिक्कार है। जिस धनको सत्पात्रके लिये दान नहीं दिया जाता, उस धनको बारंबार धिक्कार है। मुनिश्रेष्ठ! जो शरीर भगवान् विष्णुको नमस्कार नहीं करता, उसे पापकी खान समझना चाहिये। जिसने सुपात्रको दान न देकर जो कुछ द्रव्य जोड़ रखा है, वह लोकमें चोरीसे रखे हुए धनकी भाँति निन्दनीय है। संसारी मनुष्य बिजलीके समान चंचल धन-सम्पत्तिसे मतवाले हो रहे हैं। वे जीवोंके अज्ञानमय पाशको दूर करनेवाले जगदीश्वर श्रीहरिकी आराधना नहीं करते हैं।

दैवी और आसुरी सृष्टिके भेदसे सृष्टि दो प्रकारकी बतायी गयी है। जहाँ भगवान्‌की भक्ति (और सदाचार) है, वह दैवी सृष्टि है और जो भक्ति (और सदाचार)-से हीन है, वह आसुरी सृष्टि है। अतः विप्रवर! सुनो, भगवान्‌के भजनमें लगे हुए मनुष्य सर्वत्र श्रेष्ठ कहे गये हैं; क्योंकि भक्ति अत्यन्त दुर्लभ है। जो ईर्ष्या और द्वेषसे रहित हैं, नित्य भगवद्भजनपरायण हैं तथा काम आदि दोषोंसे दूर हैं, उनपर भगवान् सदा सन्तुष्ट रहते हैं। [नारदपुराण]

'हे माँ! तेरी जय हो!'

[एक भक्तके उद्‌गार]

(श्रीइन्दरचन्दजी तिवारी)

✿ हे शिवे! तेरी ही परम दिव्य शक्तिके कारण शिव शक्तिमान् हैं। बिना तेरी शक्तिके तो शिव भी शववत् हैं।

✿ हे चण्डिके! हे जगन्मातः! तेरे ही मुखारविन्दकी शोभाका अंश पाकर प्रातःकालीन सूर्य दिव्य आभा लेकर प्राचीमें चमकता है।

✿ हे महाविद्ये! तेरी दन्त-पंक्तिकी दिव्य छटाका आश्रय लेकर कृष्णघनसमूहके मध्य उज्ज्वल विद्युत् दमकती है और यही दन्त-पंक्तिकी आभा समग्र ज्योतिराशिका कारणरूप है।

✿ हे कल्याणी! चन्द्र तेरी ही अनुकम्पासे उदित होता है। हे कृपामयी! जिसकी दिव्य ज्योत्स्नाका स्पर्श पाकर सकल विश्व आनन्दित हो उठता है, जिस दिव्य चन्द्रिकाका स्पर्श पाकर समस्त जड़-जंगम-चेतन झूम उठता है, कुमुदनी प्रस्फुटित होने लगती है, सुरभित वायु बहने लगती है, पावन पैजनियाँ झुनझुना उठती हैं, विरह-व्यथित होकर चकई चकवेसे मिलनेहेतु दौड़ पड़ती है, वह दिव्य चन्द्रिका हे सुरेश्वरी! आपका आह्लाद ही है और कुछ नहीं।

✿ माँ! तेरी ही कृपासे समग्र सृष्टि खिलने लगती है, सुरभित पुष्पोंकी कलियाँ खिल उठती हैं, अम्बुज खिल उठते हैं और सर्वत्र प्रकाश फैल जाता है।

✿ हे भवानी! तेरी ही कृपाकोरसे ऋतु-परिवर्तन होता है, वसन्त आता है, हेमन्त जाता है, शिशिर गाती है, जेठकी दोपहरी तपती है, वर्षामें मेघ अमृत झरता है, सावनमें पुरवा चलती है, रसधार बहती है, व्याकुल घटा तृप्त हो जाती है और समस्त जड़-जंगम-चेतनकी प्यास

१. अहो धैर्यमहो धैर्यमहो धैर्यमहो नृणाम्। विष्णौ स्थिते जगन्नाथे न भजन्ति मदोद्धताः॥ (ना० पूर्व० ३४।५९)

२. अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात्। नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥ (ना० पूर्व० ३४।६१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुझती है।

✿ हे करुणामयी! तेरी ही करुणाके प्रतिफलस्वरूप समस्त वनस्पतियाँ उगती हैं, पुष्प प्रस्फुटित होते हैं, जीवनदाता अन्न उत्पन्न होता है। माँ! तेरी ही कृपासे जीवको जीवन मिलता है।

✿ हे सरस्वती! तेरी ही कृपादृष्टिसे कविको मिलती है काव्यशक्ति, कलाकारको कला और संगीतज्ञको रसमय संगीत। हे वागीश्वरी! बिना तेरी कृपाके कुछ भी सुलभ नहीं है।

✿ हे ज्योतिर्मयी! मन-मानसमें व्याप्त तमका विनाश बिना तेरी दिव्य ज्योतिके कदापि सम्भव नहीं। बिना तेरी अनुकम्पाके मायाबद्ध जीव संसारमें चक्कर काटता रहता है और कृपाकटाक्षका सूक्ष्मतर अंश प्राप्तकर दिव्य ज्ञान पा जाता है, खुल जाते हैं दिव्यचक्षु, दृष्टिगोचर हो जाता है अगोचर और प्राप्त हो जाती है भक्ति एवं मुक्ति।

✿ हे महामाये! संसारकी समस्त शक्ति, ज्ञान, वैराग्य क्षमा, करुणा, ममता, तेज, बल, विद्या, बुद्धि—सब कुछ तेरे चरणोंमें—पदपंकजोंमें समाहित है। तेरी कृपाके बिना पत्ता भी नहीं हिल सकता।

✿ हे भुवनेश्वरी! तेरे सिरपर विद्यमान रेशमसदृश केशराशिकी हल्की-सी कालिमा पा ली है सावनके कारे-कजरारे बादलोंने और बन पाये हैं वे जीवनदाता समस्त जड़-जंगम-चेतनके लिये। हे माँ! मात्र तेरी कृपाके कारण ही तेरे मस्तकपर विद्यमान तृतीय नेत्र योगीजनों, ज्ञानीजनों, भक्तजनोंके लिये साधना-शक्तिका, ऊर्जाका दिव्य स्रोत बना हुआ है, जिसकी हल्की-सी झलक पाकर योगीका योग सिद्ध हो जाता है, ज्ञानीको ज्ञान प्राप्त हो जाता है, वैरागीके मनमें विरागका सागर उमड़ पड़ता है और भक्तके मनमें भक्तिका दिव्य संगीत प्रस्फुटित होने लगता है। हे ललिते! उसी दिव्य ऊर्जाके प्रवाहसे दिव्यताके स्वर-ताल-लय आह्लादित होकर तेरी वन्दनाहेतु, तेरे गायनहेतु लालायित हो उठते हैं। हे भवानी! तेरा गुणगान करनेहेतु ताण्डव-मुद्रामें खड़े भगवान् शिवके थक जानेपर और फिर दूसरा पद भूमिपर रखनेसे जो सप्त स्वर उत्पन्न हुए थे, वे आपका अभिवादनकर गरिमामय हो उठते हैं, उन्हीं सप्तस्वरोंमें गुम्फित भजन-गायन, गीत-प्रार्थना, अर्चना-वन्दनाके माध्यमसे भक्तका मन उन्मादित हो उठता है, तन थिरक उठता है और मानव-जीवन सफल हो जाता है। हे माँ! तब विश्वकी सारी ध्वनियाँ तेरा स्तवन, तेरा वन्दन बन जाती हैं।

✿ हे भावमयी! तेरे दिव्य नेत्रोंसे प्रस्फुटित दिव्य ज्योति समस्त ज्ञानका, चेतनाका, स्फुरणका, दिव्यताका, भावनाओंका और भक्तिका मूल उत्स है।

✿ माँ! तेरा वक्षःस्थल अमृतसदृश पयःपयोधिसे परिपूर्ण है, जिससे निरन्तर प्रेम, स्नेह, माधुर्य एवं करुणाका दिव्य अमृत प्रवाहित होता रहता है। हे करुणामयी! जब बालकको उरसे लगाकर तू दुलार करती है तो विश्वकी प्रेम-सुधाका चषक छलक उठता है और फिर तेरे वक्षःस्थलसे प्रवाहित स्नेहस्रोतसे, ममताके स्रोतसे, दिव्यताके स्रोतसे, करुणाके स्रोतसे, स्नेहके स्रोतसे परिपूर्ण पयका तेरा लाल चुभुर-चुभुरकर पान करने लगता है। हे जीवनदायिनी! हे प्राणदायिनी! तेरी अकारणकरुणा धन्य है।

✿ अम्बे! तेरे वरदहस्त जब भक्तोंके कल्याणके लिये उठते हैं तो भक्तिका अमृत बरसने लगता है और वे ही कर जब दुष्टोंके उद्धारके लिये खड्ग, गदा, तीर-धनुषसे सुशोभित होते हैं, तो साक्षात् कालस्वरूप हो जाते हैं। हे माँ! तेरी त्रिवलीमें समग्र विश्वकी चेतना-शक्ति, प्राण-शक्ति समाहित है। तेरे इसी प्राण-ऊर्जाके केन्द्रसे प्रत्येक चेतन एवं अर्धचेतन प्राणवायु प्राप्त करते हैं। हे जननि! तेरे पद-पंकजमें समस्त करुणाका, ममताका, दयाका, मातृत्वका वास है, जिसकी धूलि मैं अपने माथेपर चढ़ाता हूँ, जिसकी पगधूलिमें लोटकर गाता हूँ, नाचता हूँ, उत्सव मनाता हूँ, उन्मादित हो जाता हूँ पुष्प-सा, ऊर्जासे भरकर, शक्तिसे परिपूर्ण होकर, निर्भय होकर, आह्लादित होकर प्रफुल्लित हो जाता हूँ।

✿ हे शक्तिदायिनी! महाकाल भी तेरे अनुग्रहके लिये सतत नर्तन करते रहते हैं। बिना तेरी आज्ञाके न विनाश हो सकता है न सृजन ही। हे माँ! तेरी जय हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोम-रोममें राम

(श्रीताराचन्दजी आहूजा)

मर्यादा पुरुषोत्तमका दो अक्षरका नाम 'राम' सबसे प्यारा नाम है। जिस नामके उच्चारणमात्रसे जीवनको आराम मिलता हो, मनको सुकून मिलता हो, वह तो प्यारा लगेगा ही, सबसे न्यारा होगा ही। राम परब्रह्म हैं, सृष्टिकी प्रत्येक जड़ एवं चेतन वस्तुके कण-कणमें व्याप्त हैं, रोम-रोममें समाये हुए हैं। इसीलिये तो उन्हें राम कहा गया है। प्रभु श्रीरामके जहाँ कई प्यारे भक्त उन्हें सगुण-साकार ईश्वरके रूपमें देखते हैं, दर्शन पाकर अपनेको धन्य मानते हैं; वहीं दूसरी ओर अनेकों प्रेमी और साधकगण उन्हें निर्गुण-निराकार परब्रह्मके रूपमें मानकर ध्यान करते हैं, उनकी आराधना करते हैं। सिक्खमतमें गुरुपरम्पराके प्रथम गुरु श्रीनानकदेवजी जहाँ परम सत्ताको निर्गुण-निराकार रामके रूपमें स्मरण करते हैं, वहीं संतमतके परम संत कबीरसाहिबजी दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामको साकार और निराकार दोनों रूपोंमें ही निहारते हैं, ध्याते हैं। श्रीरामके परम भक्त संतशिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजी तो चराचर जगत्की प्रत्येक वस्तुको अपने रामके साकाररूपमें दर्शन करते हुए कह उठते हैं—

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

गोस्वामीजीको तो भगवान्के हर विग्रहमें रामहीके दर्शन होते हैं। जब वे व्रजमें भगवान् श्यामसुन्दरके विग्रहके सामने पहुँचे तो देखा—त्रिभंगी और मुरलीमनोहर सलोना रूप तो मुग्ध हुए बिना न रह सके। बोले—देखो! राघवेन्द्रने कैसा रूप बनाया है आज! हमने ऐसी छवि तो कभी देखी नहीं। हे नाथ! तुम शरीरमें तीन जगहसे टेढ़े-मेढ़े हो, धनुष-बाण तो हैं ही नहीं और यह मोर-मुकुट बाँधे हुए, हाथमें वंशीको धारण किये यहाँ खड़े-खड़े मुसकरा रहे हो। कितने सुन्दर व सलोने लग रहे हो। इस शोभाका क्या बखान किया जाय। परंतु यदि मुझसे सिर झुकवाना हो तो धनुर्धारी बन जाओ रामभद्र! तुलसीका मस्तक झुक जायगा। कितनी अनन्यता है तुलसीदासके अन्तःकरणमें इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है—

कहा कहूँ छवि आजु की भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै धनुष बाण हो हाथ॥

रामका नाम बड़ा सरल और सहज है, जो प्रभुकी चाहमें उठते-बैठते, सोते-जागते, चलते-फिरते स्वतः ही जिह्वापर आ जाता है। विपत्तिमें तो रामका नाम सबसे बड़ा सम्बल बन जाता है। यह कहने-सुनने और स्मरण करनेमें बड़ा मधुर है—***'कहत सुनत सुमिरत सुठि नीके'*** रामनाम यदि कलियुगके कष्टोंसे मुक्ति दिलानेका अमोघ मन्त्र है तो रामकथा हमारे जीवनरथकी धुरी है। इसलिये भारतीय लोक-आस्थाके रोम-रोममें राम बसे हैं। वस्तुतः राम ऐसे सांस्कृतिक प्रतीक बन गये हैं, जिसमें हरेक युग अपनी समस्याओंका समाधान खोज सकता है। रामनाम और रामकथा एक-दूसरेके पूरक हैं। रामनाम रामकथाका सार है तो रामकथा रामनामका विस्तार। रामनाम उच्चारित करते हैं तो उसमें सम्पूर्ण रामत्व और रामचरित आलोकित है। इसीलिये राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्तने कहा है—***'राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है, कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है।'*** रामनामकी रस-निमग्नता ही रामभक्तिका वास्तविक स्वरूप एवं आनन्द है।

शील, सौन्दर्य और शक्ति—इन तीन गुणोंकी पराकाष्ठा हैं राम। राम जनमानसके हृदयके सम्राट् हैं, तो इसमें इन तीनों तत्त्वोंका गहरा योगदान है। रामका रूप-माधुर्य करोड़ों कामदेवोंको लज्जित कर देनेवाला है। उनका रूप निरखनेके लिये ब्रह्माजीको आठ नेत्र भी कम पड़ते हैं—***'निरखि राम छबि बिधि हरषाने। आठइ नयन जानि पछिताने॥'***

रामके मनमें न हिंसा है, न घृणा और न प्रतिस्पर्धा; फिर भी शस्त्र उनके हाथोंमें आभूषणोंकी तरह शोभा देते हैं। फूल-सा व्यक्तित्व होते हुए भी वे श्रेष्ठ योद्धा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, शक्तिसम्पन्न हैं। गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—**'रामः शस्त्रभृतामहम्'** शस्त्रधारियोंमें मैं श्रीराम हूँ। रामावतारके समय रावण, बालि और परशुराम प्रसिद्ध योद्धा थे। रामने रावण और बालिका तो दर्प-दलन किया ही, सीतास्वयंवरमें महान् वीर परशुरामका मान-मर्दन भी किया। रामकी सरलता और सुशीलता ऐसी है कि भक्त नतमस्तक हो जाता है। अपने साथ बुरा करनेवालोंके साथ भी रामका शीलप्रदर्शन नहीं रुकता। निराकार एवं साकार दोनों रूपोंमें वे भक्तोंको आकर्षित करते हैं। इसलिये कबीरसाहिबजीने उनके विभिन्न रूपोंका गुणगान करते हुए कहा है—

एक राम दशरथ का बेटा, एक राम घट-घट में बैठा।
एक राम का सकल पसारा, एक राम सब जग से न्यारा॥

श्रीराम सत्, चित् एवं आनन्दस्वरूप परात्पर परब्रह्म हैं। अखिल ब्रह्माण्डनायक एवं जगन्नियन्ता होनेपर भी मानवोपयोगी आदर्शोंकी स्थापनाहेतु युग-युगमें धराधामपर अवतीर्ण होते हैं। भारतवर्षकी पावन वसुन्धरापर प्रादुर्भूत हुए प्रायः सभी सम्प्रदायोंने अपने-अपने चिन्तनके सौजन्यसे श्रीरामके अलौकिक, मंगलकारी एवं आदर्शमय चरित्रका निरूपण किया है। श्रीसनत्कुमारसंहितामें कहा गया है—

रामः सत्यं परंब्रह्म रामात् किञ्चिन्न विद्यते।
तस्माद्रामस्य रूपोऽयं सत्यं सत्यमिदं जगत्॥

वस्तुतः एक ही राम सर्वत्र पूरी सृष्टिमें भासित हो रहा है।

वही राम दशरथ का बेटा। वही राम घट-घट में लेटा॥
वही राम है सबका प्यारा। वही राम है सबसे न्यारा॥

एक प्रभुप्रेमी और रामभक्त अपने एक गीतमें रामकी सर्वव्यापकताका सटीक एवं सुन्दर चित्रण करते हुए कहते हैं—

मेरे तन में भी राम मेरे मन में भी राम
रोम रोम में समाया मेरा राम है, हे राम अजब तेरी माया है।
मैंने फूलों में भी राम देखा, कलियों में भी राम देखा
पत्ते-पत्ते में समाया मेरा राम है, हे राम अजब तेरी माया है।
मैंने चन्दा में भी राम देखा, सूरज में भी राम देखा
तारे-तारे में समाया मेरा राम है, हे राम अजब तेरी माया है।
मैंने कूकर में भी राम देखा, सूकर में भी राम देखा
जन-जन में समाया मेरा राम है, हे राम अजब तेरी माया है।

तुलसीदासजी तो रामसे अधिक रामके दासको महत्त्व देते हैं—***'राम ते अधिक राम कर दासा'***। ऐसा प्राणी नीच—पतित होनेपर भी भगवान् रामको अत्यन्त प्रिय है। भगवान् श्रीराम स्वयं कहते हैं—***'भगतिवंत अति नीचउ प्रानी। मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी॥'*** महापुरुष कहते हैं कि भक्ति एक क्षुद्र जीवको भी बहुमूल्य रत्नमें परिवर्तित कर देती है। प्रभु श्रीराम सम्पूर्ण मानवजातिके आराध्य हैं। गुरुग्रन्थसाहिबमें हजारों बार रामके नामका उल्लेख मिलता है। महर्षि वाल्मीकि एवं संत तुलसीदासजीकृत रामायण व श्रीरामचरितमानस ही केवल घर-घरमें भक्तिग्रन्थके रूपमें पूजित नहीं हैं, अपितु हिन्दू एवं मुसलिम सम्प्रदायके कवियों, फकीरोंने भी मुक्तहृदयसे श्रीरामका गुणगान किया है। सूफी साधक और हिन्दू-मुसलिम-एकताके अग्रदूत अमीर खुसरोने रामके गुणगानमें लिखा है—***'तन मन का वह है मालिक। वाने दिया मेरे गोद में बालिक।'*** रहीमने रामकथाके अहल्याप्रसंगपर लिखा है—

भजि मन राम सियापति रघुकुल ईस।
दीनबन्धु दुःख टारन कोसलाधीस॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरामके चरित तो सौ करोड़ हैं अर्थात् अपार हैं। श्रुति और शारदा दोनों मिलकर भी उनका गान नहीं कर सकते—

राम चरित सत कोटि अपारा । श्रुति सारदा न बरनै पारा॥

इतना ही नहीं रामनामकी महिमाका वर्णन तो स्वयं प्रभु राम भी नहीं कर सकते—***कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥****

---

* रामनाम प्रतीकरूपमें यहाँ प्रस्तुत किया गया है। अपने इष्टदेवके अनुसार भगवान्‌के किसी भी नामका कीर्तन-भजन और जप कल्याणकारी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पितृसेवा

(पं० श्रीवेणीरामजी शर्मा गौड़, वेदाचार्य, काव्यतीर्थ)

रक्षणार्थक 'पा' धातुके आगे 'नप्तृनेष्टृत्वष्टृहोतृ०' इत्यादि औणादिक सूत्रसे 'तृच्' प्रत्यय लगाने तथा आकारको 'इत्व' का निपातन करनेसे 'पितृ' शब्दकी निष्पत्ति होती है। अनन्तर 'पितृ' शब्दसे प्रातिपदिकसंज्ञा करनेपर 'सु' विभक्ति आती है, पश्चात् 'अनङ्' और 'दीर्घ' करनेपर 'पिता' रूप बनता है।

अब 'पिता' शब्दके निर्वचन-सम्बन्धी कुछ वचनों[१] का भावार्थ दिया जा रहा है—

'जो धर्मकी शिक्षा देता हुआ अधर्मसे निवृत्त करे, जो विद्या पढ़ाये तथा लोकव्यवहारमें कुशल बनाये, जो सुख-साधनोंको उपस्थित करे तथा पुत्रकी गलतीसे किये हुए अपराधोंको क्षमा करे, जो अपनी पैदा की हुई समस्त सम्पत्ति पुत्रको दे, जो अपने पुत्रद्वारा दी हुई जलांजलिको ग्रहण करे, जो उत्तम सन्तान उत्पन्न करनेके लिये अपनी धर्मपत्नीसे समागम करे, जो अपनी सन्तानकी रक्षाके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करे, जो अच्छे कार्योंमें प्रेरित करे, जो पुत्रद्वारा की गयी सेवाको स्वीकार करे, जो पतनके गर्तमें गिरानेवाले समस्त लोकविरुद्ध अवगुणोंका पानकर अपने पुत्रसे अनुराग (प्रेम) करे, जो दोषोंसे तथा शत्रुओंसे बचाये, जो नौकर-चाकर आदिके द्वारा पुत्रकी रक्षाका प्रबन्ध करे, उसे 'पिता' कहते हैं।'

पुराणोंके आचार्य श्रीव्यासजीने ब्रह्मवैवर्तपुराणमें क्रमशः सात और पाँच प्रकारके 'पिता' का उल्लेख किया है—

कन्यादातान्नदाता च ज्ञानदाताभयप्रदः।
जन्मदो मन्त्रदो ज्येष्ठभ्राता च पितरः स्मृताः॥[२]

(कृष्णजन्मखण्ड ३५।५७)

अन्नदाता भयत्राता पत्नीतातस्तथैव च।
विद्यादाता जन्मदाता पञ्चैते पितरो नृणाम्॥

(ब्रह्मखण्ड १०।१५३)

उशनःसंहितामें सात प्रकारके पिता बतलाये गये हैं। चाणक्यनीतिमें पाँच प्रकारके 'पिता' का उल्लेख मिलता है। यथा—

जनिता चोपनेता च यस्तं विद्यां प्रयच्छति।
अन्नदाता भयत्राता पञ्चैते पितरः स्मृताः॥[३]

(५।२२)

उपर्युक्त पिताओंमें शास्त्रज्ञोंने जन्म देनेवाले पिताको ही सबसे श्रेष्ठ और पूज्य बतलाया है। धर्मशास्त्रादि सद्ग्रन्थोंका सिद्धान्त तो यह है कि—

'सर्वेषामपि पितॄणां जन्मदाता परो मतः।'

'दुर्लभो मानुषो देहः' के अनुसार मानव-देह अत्यन्त दुर्लभ है, उस अप्राप्य शरीरको प्रदान करनेका समस्त श्रेय केवल 'पिता' को ही है। पिताके ही कृपा-कटाक्षसे प्राणी मानव-शरीरद्वारा संसारमें अवतीर्ण होकर कल्याण-साधनके योग्य बनता है। अतः संसारमें पितासे बढ़कर पुत्रके लिये और कोई मान्य नहीं है। जैसा कि ब्रह्मवैवर्तपुराणके गणपतिखण्डमें स्पष्ट कहा है—

मान्यः पूज्यश्च सर्वेभ्यः सर्वेषां जनको भवेत्।
अहो यस्य प्रसादेन सर्वान् पश्यति मानवः॥
जनको जन्मदानाच्च रक्षणाच्च पिता नृणाम्।
ततो विस्तारकरणात् कलया स प्रजापतिः॥

(४४।५९-६०)

जिस पिताके प्रसादसे मनुष्य इहलोक तथा परलोकके समस्त सुखोंका भाजन बन जाता है, वह सर्वथा सबका

---

१. (१) पाति धर्मान् बोधयति—शिक्षयति चाधर्मान्निवर्तयति पुत्रमिति पिता। (२) पाति पाठयति विद्यां व्यञ्जयति लौकिकव्यवहारानिति पिता। (३) पाति क्षमतेऽपत्यकृतानपराधानाकलय्यसुखसाधनानीति पिता। (४) पाति ददाति स्वोपार्जितधनधान्यादीनि यः स पिता। (५) पाति गृह्णाति सदपत्यप्रत्तजलाञ्जल्यादिकमिति पिता। (६) पाति गच्छति सदपत्योत्पादनाय स्वदारानिति पिता। (७) पाति प्रार्थयते भगवन्तं स्वापत्यरक्षणाय यः स पिता। (८) पाति प्रयोजयति सत्कार्येषु यः स पिता। (९) पाति लभतेऽपत्यकृतां शुश्रूषामिति पिता। (१०) पाति पिबति सकलावगुणरसान् पतनकारिणो लोकविद्विष्टान् स्वापत्यकृतान् यः स पिता। (११) पाति रक्षति दोषेभ्यः शत्रुभ्यो वेति पिता। (१२) पाति रक्षयतीति पिता।

२. कन्या देनेवाला (श्वशुर), भरण-पोषण करनेवाला, ज्ञान देनेवाला, आपत्तिसे उबारनेवाला, जन्म देनेवाला, मन्त्र देनेवाला और बड़ा भाई—ये सात प्रकारके पिता शास्त्रोंमें कहे गये हैं।

३. जन्मदाता, गायत्रीका उपदेश देनेवाला, विद्या पढ़ानेवाला, भरण-पोषण करनेवाला और विपत्तिसे रक्षा करनेवाला—ये पाँच प्रकारके पिता शास्त्रोंमें कहे गये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूजनीय होता है। जन्म देनेसे पिताकी 'जनक' संज्ञा, रक्षा करनेसे 'पिता' संज्ञा तथा सृष्टिका विस्तार करनेके कारण एक अंशसे 'प्रजापति' संज्ञा होती है।

इस संसारमें बन्धु-बान्धव, मित्र आदि जितने भी लोग हैं, वे अपनेसे अधिक अन्य किसी मनुष्यको उन्नतिशाली देखना-सुनना नहीं चाहते; किंतु इस स्वाभाविक इच्छाका अभाव सिर्फ एक 'पिता' कहलानेवाले व्यक्तिविशेषमें ही पाया जाता है, जो सर्वदा अपने पुत्रको अपनेसे सर्वतोभावेन उन्नत देखना चाहता है। इसीलिये '**पुत्रादिच्छेत् पराजयम्**' कहा गया है। प्रत्येक पिता अपनी-अपनी सन्तानके लिये अनेक प्रकारके कष्ट सहन करता है, पद-पदपर लोगोंकी जी-हुजूरी करता है, अर्थात् अपने पुत्रको सुयोग्य बनानेके लिये यथाशक्ति मानवसाध्य कोई बात उठा नहीं रखता। अधिक क्या, वह अपने पुत्रके सुख-दुःखमें ही अपना सुख-दुःख समझता है। अतः निष्कर्ष यह निकला कि पुत्रके लिये अहैतुक कल्याण चाहनेवाला पितासे बढ़कर और कोई नहीं है। अतः पुत्र अपने पितासे जन्म-जन्मान्तरमें भी कदापि उऋण नहीं हो सकता अर्थात् पुत्रद्वारा पिताके उपकारोंका बदला कभी नहीं चुकाया जा सकता। यदि कुछ हो सकता है तो इतना ही कि वह अपने पिताकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक जीवनपर्यन्त सेवा-शुश्रूषा करता रहे। पितृसेवाका महत्त्व पद्मपुराणके भूमिखण्ड (६३। १३)-में इस प्रकार लिखा है—

मखानामेव सर्वेषां यत् फलं प्राप्यते बुधैः।
तत् फलं प्राप्यते पुत्रैः पितुः शुश्रूषणादपि॥[1]

और भी—

देवास्तस्यापि तुष्यन्ति ऋषयः पुण्यवत्सलाः।
त्रयो लोकाश्च तुष्यन्ति पितुः शुश्रूषणादिह॥[2]

(पद्मपु०, भूमिख० ६२।७३)

पुत्रके लिये पिता सर्वस्व है। अर्थात् वही धर्म, कर्म, स्वर्ग, तीर्थ, जप, तप, पूजा-पाठ आदि है; उससे बढ़कर और कोई देवता नहीं है। लिखा भी है—

पिता धर्मः पिता स्वर्गः पिता हि परमं तपः।
पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः॥

और भी—

नास्ति तातसमो देवो नास्ति तातसमो गुरुः।
नास्ति तातसमो बन्धुर्नास्ति तातसमः क्वचित्॥

तथा अन्यान्य धर्मग्रन्थोंमें—

नास्ति पितृसमो गुरुः। (उशनःसंहिता १। ३५)
न च मित्रं पितुः परम्। (ब्र०वै० ब्रह्मखण्ड ११। १८)
मातापित्रोः परं तीर्थम्। (व्याससंहिता ४। १२)
पिता देवो जनार्दनः। (चाणक्यनीति १०। १४)
पितृदेवो भव। (तैत्ति० उप० १। ११। २)

जिस पिताने जन्म प्रदानकर हमें मनुष्य बनाया, जिसने सत्-शिक्षा देकर लोकव्यवहारमें कुशल बनाया, जिसने तन-मन-धनसे लालन-पालन किया, जिसने सुयोग्य बनानेके लिये यथाशक्ति कोई कर्तव्य नहीं छोड़ा, आज हम उसकी अहैतुकी कृपाके बलसे सुयोग्य बन जानेपर उसके उपकारोंको भूल बैठे, उससे विद्वेष करने लग गये, उससे बोलने-चालनेतकका नाता तोड़ चुके—इससे बढ़कर हमारे लिये दुःख और शोककी बात क्या होगी!

जिस समय इस पवित्र भारतभूमिमें पितृभक्त बालक विराजमान थे, उस समय यह देश सब प्रकारके सुख-वैभवसे समृद्ध था और समस्त प्राणी सुख-शान्तिसे जीवन-यापन करते थे। अब भी पितृभक्ति एवं पितृसेवाके प्रभावसे भावी सन्तान सदाचारी और पितृभक्त हो सकती है। पितृभक्त बालकोंसे देशका सदा कल्याण होता रहा है और होता रहेगा।

प्राचीन इतिहासोंको देखिये—भगवान् रामचन्द्र, पितामह भीष्म और वीरवर परशुराम-जैसे अनेक पितृभक्त पुत्र उत्पन्न हो चुके हैं, जिनकी अटल कीर्ति आज भी अजर-अमर है। इसी प्रकार अनेक ऋषि-मुनि, राजा-महाराजाओंकी पितृभक्ति प्रसिद्ध है, जिससे हमें भी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

आज भी ऐसे अनेक पितृभक्त विद्यमान हैं, जो पितृसेवाद्वारा आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक उन्नति प्राप्त कर रहे हैं। अतएव हमें भी अपने परमाराध्य पितृदेवकी सेवाद्वारा अपने सर्वविध कल्याणका साधन सुगम करना चाहिये।

---

१. विज्ञलोगोंको सब प्रकारके यज्ञोंका जो भी फल प्राप्त होता है, वही फल पुत्रोंको पिताकी सेवासे मिल जाता है।

२. पिताकी सेवासे देवता, ऋषि तथा तीनों लोकोंकी प्रसन्नता प्राप्त होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आध्यात्मिक उन्नतिके पथपर

महाकवि गेटेने एक प्रसंगमें कहा है—

"What you can do, or think you can,—
Begin it!

Boldness hath genius, power and magic in it.

Only engage—and then the mind grows heated:

Begin!—and soon your task will be completed."

जो कुछ भी तुम कर सकते हो, या सोचते हो कि तुम कर सकते हो—शुरू कर दो। अध्यवसायमें एक ऐसा बल होता है कि समस्त प्रतिभा और योग्यता जादूकी तरह काम करने लग जाती है। कार्यमें अपनेको लगा दो। इस प्रकार लगा देनेसे ही तुम्हारी बुद्धिमें एक प्रकारकी उष्णता—एक प्रकारकी गर्माहट भर आयेगी। इसलिये शुरू कर दो, और तुरंत ही देखोगे कि तुम्हारा चिन्तित कार्य पूरा होते देर न लगी, बात-की-बातमें उसे कर लिया।

प्राय: अधिकांश कार्योंमें हम असफल इसीलिये होते हैं कि उसे शुरू ही नहीं कर पाते। कुछ भी यदि हमें पूरा करना है तो उसे शुरू तो करना ही होगा और आरम्भके इस प्रयत्नका तिरस्कार करके हम कुछ भी कर ही कैसे पायेंगे? मान लीजिये, आप एक मकान बनवाना चाहते हैं, उसके विषयमें राय-मशविरा लेते हैं, उसके लिये नक्शा भी बनवाते हैं, परन्तु यह सब कुछ स्वप्न-ही-स्वप्न है। जबतक मकानकी नींव न खोदी जाने लगे और इसमें सन्देह नहीं कि कार्य शुरू होते ही आपको प्रसन्नता होगी।

गेटेके उपर्युक्त शब्द जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें लागू होते हैं—अध्यात्मके क्षेत्रमें तो विशेषरूपसे। हम ग्रन्थोंमें साधनाकी बातें पढ़ सकते हैं, सन्तोंसे उसके सम्बन्धमें सुन सकते हैं और इस पथमें साधकको कैसा-कैसा आनन्द मिलता है, किस-किस् प्रकारकी अनुभूतियाँ होती हैं आदि बातोंका किताबी ज्ञान हमें खूब हो सकता है। परंतु जबतक हम साधनामें लगें नहीं, तबतक उन किताबी बातोंके कोरे ज्ञानसे हमारा क्या लाभ हो सकता है? हमें तो अध्यात्मके पथमें चल देना चाहिये और फिर राहके खट्टे-मीठे अनुभवोंका आस्वादन करते जाना चाहिये, आगे बढ़ते जाना चाहिये। फिर जो हमारा लक्ष्य है, उसके ज्यों-ज्यों पास हम पहुँचेंगे, त्यों-त्यों हमें आनन्दकी अधिकाधिक उपलब्धि होती जायगी और कविके शब्द सत्य प्रतीत होंगे—

"What you can do, or think you can,—
Begin it!

केवल पढ़ते रहने या जान लेनेसे काम चलनेका नहीं—करना चाहिये। सन्तोंने बार-बार करनीपर जोर दिया है। कोरी कथनी कौड़ी-कामकी नहीं। एक जो बराबर पढ़कर ही या जानकर ही सन्तोष कर लेता है, अध्यात्मके वास्तविक आनन्दसे अपरिचित ही रहता है, परंतु जो पुरुष अपनी थोड़ी-सी जानकारीपर इस पथमें चल पड़ता है, उसे सच्चे आनन्दकी अनुभूति होती है; क्योंकि 'साधना' सुनने या पढ़नेकी वस्तु नहीं है, करनेकी वस्तु है। कितने ही लोगोंको 'सत्संग सुनने' का मर्ज है—वे सुनते जाते हैं—बस, सुनते ही जाते हैं—करना-धरना तेरह-बाईस। ऐसे लोग वंचनाका जीवन बिताते हैं; क्योंकि करते तो कुछ नहीं, केवल सुनते हैं और प्रमाद-आलस्यका पोषण करते हैं।

आध्यात्मिक जीवनमें अल्पारम्भ ही क्षेमकर है; क्योंकि इस पथमें हम ज्यों-ज्यों ऊँचे चढ़ते जाते हैं, हमारे सामने विशाल व्यापक क्षेत्र अपने पूरे विस्तारके साथ खुलता जाता है और यहाँतक कि एक ऐसे स्थानपर हम पहुँचते हैं—जहाँ सब कुछ भीतर-बाहर अनन्त प्रेम, आनन्द और सौन्दर्यके समुद्रमें डूबता-सा नजर आता है—

बेहिजाबी यह कि हर जर्रेमें जलवा आशकम्।
और परदा यों कि सूरत आजतक देखी नहीं॥

अध्यात्मके पथमें छोटी-से-छोटी क्रियाका भी महान् फल होता है। क्रोधको प्रेममें, क्षोभको क्षमामें, घृणाको करुणामें बदलनेके लिये महीने और साल नहीं लगते—यह एक क्षणका कार्य है, परंतु इस एक ही क्षणमें साधकको महान् फल—महान् आध्यात्मिक लाभ हो जाता है—वह बात-की-बातमें साधनाकी अनेक सीढ़ियाँ एक छलाँगमें पार कर जाता है और उसी एक क्षणमें वह अशान्तिके केन्द्रसे उठकर शान्तिके केन्द्रमें, नरकके केन्द्रसे उठकर स्वर्गके केन्द्रमें जा पहुँचता है।

आकाशमें रातमें सितारे चमकते होते हैं, परंतु यदि हम अपना सिर न उठायें तो उन्हें कैसे देख सकते हैं? और ये वृक्ष जो अपने हाथ सदा प्रार्थनामें जोड़े हुए होते हैं—इनकी सुषमा भी हम कहाँ देख पाते हैं? इन पंछियोंके मीठे गीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम कैसे सुन पायेंगे, जबतक जगत्‌के तुमुल कोलाहलसे अपने कानोंको मूँद न लें। और इसी प्रकार, हमें अपने जीवनमें भी आध्यात्मिक आनन्दकी उपलब्धि तबतक नहीं हो सकती, जबतक हम अपने नित्यके जीवनमें छोटी-छोटी बातोंमें अध्यात्मकी ओर उन्मुख न हों।

भगवान्‌के सान्निध्यमें एक क्षणकी शान्ति सारे जीवनको सुरभित कर देती है। प्रार्थनामें, हृदयसे उठी हुई सच्ची कातर प्रार्थनामें जीवनको सहसा पलट देनेकी अमोघ शक्ति है। हमारा विचार, हमारा कार्य, हमारी इच्छाएँ—सब-की-सब जगत्‌की ओरसे मुड़कर भगवान्‌की ओर उन्मुख हो जाती हैं; क्योंकि जब हम प्रभुकी प्रीति पानेके लिये उत्सुक हो उठते हैं, उसी क्षण प्रभु अपनी शान्तिके कुछ कण हमारे हृदयपर बिखेर देते हैं—भगवान् तो प्रीति बरसानेके लिये सदा ही तैयार हैं—हम ग्रहण करनेकी स्थितिमें हों—यही आवश्यक है। यदि हमें आध्यात्मिक उन्नति वांछनीय है तो हमें अपने जीवनमें उस दिव्य शक्तिको उतारना होगा, जो मानवी शक्तिसे परे है, उस शान्तिको लाना पड़ेगा, जो समस्त प्रकृतिके मूलमें है और उस समतामें स्थित होना पड़ेगा, जिसमें ये नक्षत्र स्थित हैं और जिसमें सम्पूर्ण हलचल होते हुए भी स्थिरता और शान्ति है। हम ऐसी शक्ति, ऐसी शान्ति और ऐसी समताको अपनेमें पूरा-पूरा उतार सकें, उसके पहले यह आवश्यक है कि हम क्षणभरके लिये शान्त, स्तब्ध, स्थिर होना सीखें, जिसमें न किसी प्रकारकी लालसाकी लहर ही हो न चिन्तनका उभार ही। चिन्तनको पारकर भावनाके क्षेत्रमें हम प्रवेश करते हैं—जो आत्मदेवके साक्षात्कारका क्षेत्र है—जहाँ सम्पूर्ण पवित्रता और शक्तिका उत्स है। यही है प्रेमका साम्राज्य, वह प्रेम जो पक्षियोंके हृदयमें सुमधुर संगीत उठाता है, वह प्रेम जो फूलोंकी मुसकानपर मँडराता रहता है, वह प्रेम जो मेघोंकी रिमझिममें फुहियाँ बरसाता है, हवामें तरंगित होता रहता है और जो समस्त चर-अचरके पर्देमेंसे झाँकता रहता है—और जिसका स्पर्शमात्र पाकर सब कुछ 'सुन्दरमय' बन जाता है। यह प्रेम जड़को स्पर्शकर चेतन, मानवको स्पर्शकर 'देव' बना देता है। यदि हम अपने मन-प्राणको शान्त और स्थिर कर सकें—तो क्षणभरमें ही अन्तरिक्षसे झरते हुए प्रेमकी इस रिमझिममें हमारा मन-प्राण नहाने लगे! ठीक जैसे रातमें चुपके-से ओस घासकी पत्तियोंको नहला देती है। कितना मधुर हो जाय हमारा जीवन, कितना सुन्दर, कितना पवित्र!

तो फिर क्या यह स्वप्न सदा स्वप्न ही रह जायगा? नहीं, क्षणभर चित्तमें उठनेवाले कोलाहलको शान्तकर अपने चित्तको भगवान्‌के चित्तमें लीन कर दें। इसलिये भगवान्‌के चरणोंमें अपनेको झुका दो, अपनी सारी चिन्ताएँ प्रभुको सौंप दो—भगवान् तुम्हें अपनी छातीसे लगाकर ऊपर उठा लेंगे, तुम्हारे हृदयके जख्मपर अपनी प्रीतिका मरहम लगा देंगे। तुम निहाल हो जाओगे।

पवनतनय-स्तवन

(श्रीहरीकिशनजी पण्डित 'प्रियदर्शी')

जय पर्वत धर अंजन नन्दन,
करत चलत सब खल दल भंजन।

जब-जब रघुवर जन्मत नर तन,
तब-तब हर प्रकटत मर्कट बन।
रघुवर चरण सरस रस अमृत,
चखत रहत पल-पल क्षण-क्षण।
पवन तनय बल पवन रहत तन,
चलत पवन सम सब नभ मण्डल।
जय पर्वत धर अंजन नन्दन,
करत चलत सब खल दल भंजन।

हस्त बज्र ध्वज रक्त बसन कर,
रक्त बसन धर स्वर्ण बदन पर।
नगर, नगर बन पर्वत-पर्वत,
नजर रखत हर घर, घर, घर।
जयत-जयत मृग मर्कट नृप जय,
जयत-जयत जग रक्षक जय जय।
भजत भक्त जब अभय करत जन,
जय पर्वत धर अंजन नन्दन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रोधपर करुणाकी विजय

[महारानी द्रौपदीद्वारा क्षमादान]

(श्रीजगदीशप्रसादजी गुप्त, ज्योतिषविशारद)

द्यूत-क्रीड़ामें हार जानेपर शर्तके अनुसार पाण्डवोंने द्रौपदीके साथ बारह वर्षका वनवास तथा एक वर्षका अज्ञातवास पूरा किया, किंतु कौरवोंने उनका राज्य वापस करना तो दूर उन्हें मात्र पाँच गाँव देना भी स्वीकार नहीं किया। युद्ध अनिवार्य न बने इसलिये भगवान् श्रीकृष्ण शान्तिहेतु सन्धिप्रस्ताव लेकर हस्तिनापुर जाना चाहते थे, पर द्रौपदीने विरोध किया—केशव! मेरे ये केश दु:शासनके रक्तसे सिंचित होनेपर ही बँधेंगे। मेरे अपमानका प्रतिशोध लेनेमें अभिमन्युसहित मेरे पाँच महाबली पुत्र सक्षम हैं। सन्धि तथा धर्मकी बातें अब सहन नहीं होतीं। कहते-कहते द्रौपदी फूट-फूटकर रोने लगीं। भगवान् श्रीकृष्ण अत्यन्त गम्भीर स्वरमें कहने लगे—कृष्णे! वही होगा, जो तुम चाहती हो। अपने अश्रु रोको। मेरी बात मिथ्या नहीं होगी।

द्रौपदीको आश्वासन मिला। उसने अपने अश्रु पोंछे। भगवान् श्रीकृष्ण शान्तिदूत बनकर हस्तिनापुर पहुँचे। उनकी सन्धिवार्ता निष्फल रही। उन भक्तवत्सलके दिये आश्वासनको अन्यथा करनेकी शक्ति भला किसमें हो सकती है! युद्ध अनिवार्य हो गया। भयंकर महाभारत युद्ध हुआ। युद्धके अन्तिम—अठारहवें दिन भीमसेनके गदा-प्रहारसे दुर्योधनकी जाँघें टूट गयीं और वह भूमिपर गिर पड़ा। भीमसेनका क्रोध शान्त नहीं हुआ और वे उसे कपटी कहकर बार-बार उसका सिर अपने पैरसे दबाते-रगड़ते रहे। तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवोंको साथ लेकर कौरव-शिविरको अधिकृत करने चल दिये। शिविर पहुँचकर सात्यकि, श्रीकृष्ण और पाण्डवोंने वह रात्रि शिविरसे बाहर ओघवती नदीके किनारे व्यतीत की।

उधर कौरवपक्षसे युद्धमें बचे अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा दुर्योधनको देखने आये। दुर्योधनकी दशा देखकर अश्वत्थामाको बहुत क्रोध आया और उसने पांचालोंका वध करनेकी प्रतिज्ञा की।

दुर्योधनने कृपाचार्यसे जल मँगवाकर उनसे ही अश्वत्थामाका महासेनापतिके पदपर अभिषेक कराया। दुर्योधनके समीपसे वे तीनों कौरव-शिविरकी ओर चल दिये, लेकिन कौरव-शिविरपर अधिकार करने आ रहे पाण्डवोंको देखकर आक्रमणके भयसे वे एक साथ भागे और भागते चले गये। बहुत दूर वनमें जाकर एक घने वटवृक्षके नीचे तीनोंने रात्रि व्यतीत करनेका निश्चय किया। कृपाचार्य और कृतवर्मा तो सो गये, पर क्रूर अश्वत्थामा जागता रहा। उसने देखा कि उस वट-वृक्षपर सो रहे बहुत-से कौओंको एक उलूक आकर मार रहा था। यह दृश्य देखकर अश्वत्थामा उत्तेजित हो गया और उसने कृपाचार्य और कृतवर्माको जगाकर बताया कि उसने उलूकके द्वारा शिक्षा ली है कि रात्रिमें असावधान सोते हुए पाण्डवों और पांचालोंपर आक्रमण करके उन्हें मार डालना चाहिये। कृपाचार्यने उसे धर्म और नीतिकी बातें समझाकर ऐसा कुकृत्य करनेको मना किया, पर उसने कृपाचार्यका प्रतिवाद किया और रथ जोड़कर अकेले ही जानेको उद्यत हो गया। अन्ततः कृपाचार्य और कृतवर्मा अपने महासेनापतिका अनुगमन करनेको धर्मतः बाध्य हुए।
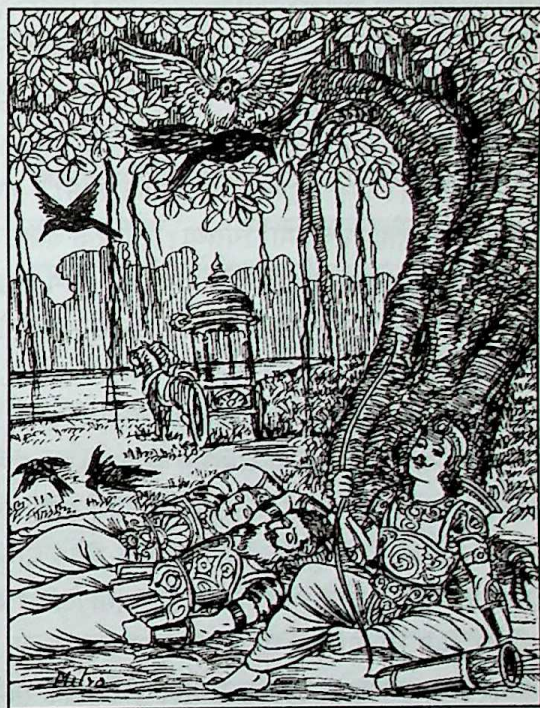
पाण्डवोंके शिविरमें सो रहे प्राणियोंका जीवनकाल समाप्त होनेको है, यह जानकर साक्षात् भगवान् महाकाल रुद्र शिविरद्वारपर खड़े रहे। अश्वत्थामाने महाकाल रुद्रसे युद्ध किया। युद्धमें परास्त होकर वह अग्निमें अपनी बलि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देने लगा, इससे प्रसन्न होकर भगवान् महाकालने उसे महासंहार करनेको एक तलवार दी और स्वयं उसके शरीरमें रात्रिभरके लिये आविष्ट हो गये।

रुद्रावेशमें निसर्गक्रूर अश्वत्थामाने कृपाचार्य और कृतवर्माको शिविरद्वारपर नियुक्त किया कि वे शिविरसे बाहर भागनेवालोंका वध कर दें और स्वयं शिविरमें चला गया। सर्वप्रथम उसने धृष्टद्युम्नको सोतेसे जगाकर बुरी तरह मारा। फिर द्रौपदीके पाँचों पुत्रों—१-प्रतिविन्ध्य, २-सुतसोम, ३-शतानीक, ४-श्रुतकर्मा और ५-श्रुतकीर्तिने उसपर बाणवर्षा की और उसे मारनेका अथक प्रयास किया, लेकिन अश्वत्थामाने दिव्य तलवारसे उन्हें काट-काटकर मार गिराया। अश्वत्थामाने शिखण्डी आदि वीरों और राजा विराटकी सेनाका संहार किया। वह द्रुपदके पुत्रों-पौत्रों और सम्बन्धियोंको एक-एक करके मारने लगा। उसने पाण्डवोंकी सेनाके सैकड़ों-हजारों वीरों और घोड़े-हाथियोंको मार गिराया। शिविरके बाहर खड़े कृपाचार्य और कृतवर्माने शिविरमें तीन ओरसे आग लगा दी और भागनेवालोंको मारने लगे। एकमात्र धृष्टद्युम्नका सारथी किसी प्रकार कृतवर्माकी दृष्टि बचाकर निकल भागा।

पौ फटते ही अश्वत्थामा शिविरसे बाहर निकला और उसने दुर्योधनको महासंहारका समाचार सुनाया। यह सुनकर दुर्योधनके प्राण शरीरसे विदा हो गये। कृपाचार्य हस्तिनापुरमें अपने घर आ गये और कृतवर्मा द्वारका चले गये। श्रीकृष्ण, सात्यकि और पाण्डवोंसे भयभीत अश्वत्थामा अपने रथसे जितनी दूर भाग सकता था, भागता चला गया।

अश्वत्थामासे बचकर शिविरसे भागे धृष्टद्युम्नके सारथीने रोते-चिल्लाते धर्मराज युधिष्ठिरसे पुकार की—महाराज! अश्वत्थामाने क्रूर पशुकी भाँति सबको सोते समय मार दिया। आपके शिविरमें कोई नहीं बचा। भगवान् श्रीकृष्णके साथ पाण्डव शिविरमें आये। सात्यकिसे दुःखद समाचार पाकर द्रौपदी एवं समस्त स्त्रियाँ भी रोती-क्रन्दन करती हुई शिविरमें आ गयीं। सबसे अधिक चिन्ताजनक स्थिति द्रौपदीकी थी। उनके पाँचों पुत्र मार दिये गये थे। वे बार-बार उनके शवोंके समीप मूर्च्छित होकर गिरती थीं।

भीमसेन, अर्जुन, युधिष्ठिर सभी द्रौपदीको आश्वासन दे रहे थे। सहसा वह सिंहनीके समान दहाड़ उठी—मेरे पुत्रोंको मारनेवाला जीवित है और आप सब मुझे शोकत्यागका उपदेश करते हैं।

वह जीवित नहीं रहेगा। क्रोधसे काँपते भीमसेनने गदा उठायी—मैं उसे मार दूँगा, भले ही वह पातालमें जाकर छिपा हो।

वे उसी समय रथपर बैठकर अश्वत्थामाके रथचक्रके चिह्नोंका अनुगमन करते चल पड़े। अर्जुनने भी प्रतिज्ञा की—देवि! जब मैं तुम्हारे समीप द्रोणपुत्रका सिर ला दूँगा, तब तुम पुत्रोंकी अन्त्येष्टिका स्नान करना। भगवान् श्रीकृष्ण जानते थे कि क्रूर अश्वत्थामा भीमसेनपर अमोघ ब्रह्मास्त्र चलानेमें एक क्षण भी नहीं हिचकेगा और भीमसेन अग्निभस्म हो सकते हैं। अर्जुनके पास वह ब्रह्मास्त्र है और दूसरा कोई अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रका प्रतीकार नहीं कर सकता। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनको साथ लेकर भीमसनेकी रक्षाके लिये चल पड़े।

सचमुच अश्वत्थामाने भीम और अर्जुनको आते देखकर अमोघ ब्रह्मास्त्रका सन्धान किया। प्रलयकारी तेजसे भयभीत अर्जुनको भगवान् श्रीकृष्णने सावधान किया कि वह भी ब्रह्मास्त्रका प्रयोग करे और फिर दोनोंको लौटा ले। अर्जुनने यही किया और भगवान् श्रीकृष्णकी सन्निधिने इन दोनोंको बचाया।

अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रको अपने ब्रह्मास्त्रसे शान्त करके अर्जुनने उसे पकड़ लिया। उसे अपने उत्तरीयसे रथपर बाँधकर वे अपने शिविरकी ओर वापस चल दिये। अर्जुनने द्रौपदी और महाराज युधिष्ठिरके सम्मुख अपराधीके रूपमें अश्वत्थामाको खड़ा कर दिया और कहा—यह है तुम्हारे पुत्रोंका हत्यारा।

श्रीहीन अश्वत्थामाको लज्जासे सिर झुकाये देखना द्रौपदीको असह्य हो गया और उनके हृदयमें करुणा उमड़ पड़ी। वे बोलीं—ये आचार्यपुत्र हैं। इन्हें छोड़ दीजिये, छोड़ दीजिये। ये ब्राह्मण हैं, पुत्रके रूपमें स्वयं द्रोणाचार्य ही हैं, जिनसे आप सभीने सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रकी शिक्षा प्राप्त की है। मैं माता हूँ, पुत्रोंके मारे जानेकी मुझे मर्मान्तक पीड़ा है, मैं नहीं चाहती कि ऐसी ही पीड़ा इनकी माताको भी हो। मेरे पुत्र तो अब जीवित नहीं हो सकते। इनका बन्धन शीघ्र खोल दीजिये। ये हम सभीके सम्माननीय हैं।

इस महनीयाके पुत्र मारे थे मैंने—यह सोचकर अश्वत्थामाका हृदय विदीर्ण हो गया, नेत्रोंसे अश्रु गिरने लगे। भीमसेनके नेत्र अंगार हो रहे थे, वे गरज रहे थे—नहीं, नहीं, इस नराधमको, इस पापीको क्षमा नहीं किया जा सकता। भगवान् श्रीकृष्ण, धर्मराज युधिष्ठिर और वहाँपर उपस्थित सभी लोग द्रौपदीकी करुणासे द्रवित हो गये और उनकी यह आवाज चारों ओर गूँजती रही—धन्य हो पांचाली, धन्य हो। भीमसेनकी गरजती हुई आवाज किसीको नहीं सुनायी दी। द्रौपदीका यह क्षमादान चिरस्मरणीय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः'

(डॉ० श्रीअजितजी कुलकर्णी)

मानव-जीवनमें शुद्ध अन्नसेवनका बड़ा महत्त्व है। उत्तम निरोगी और स्वस्थ जीवनके लिये शुद्ध आहारकी जरूरत है—

सर्वेषामेव शौचानामन्नशौचं विशिष्यते।

(बृहस्पति)

सब प्रकारकी शुद्धिमें अन्नशुद्धि सर्वश्रेष्ठ है। इसका कारण यह है कि अन्नसे शरीर, मन और प्रजा उत्पन्न होती है; इसलिये अन्नशुद्धि और आहारशुद्धि आवश्यक मानी गयी है। आज लोग जो अन्नसेवन करते हैं, इसमें शुद्धि-अशुद्धिका ख्याल ही नहीं रखते हैं। उसका बुरा असर युवा पीढ़ीपर पड़ा है। इसीलिये हर-एकको अन्न और आहारशुद्धिको अग्रस्थान देना चाहिये।

शुद्ध सात्त्विक आहारकी जरूरत—अन्नसे जैसे शरीर, मन और प्रजाका निर्माण होता है, वैसे ही अन्नके स्थूलरूपसे पुरीष (मल), इसके सूक्ष्मभागसे रक्त और सूक्ष्मेतर भागसे मन भी तैयार होता है। नीतिशास्त्रका वचन है—

दीपो भक्षयते ध्वान्तं कज्जलं च प्रसूयते।
यदन्नं भक्षयेन्नित्यं जायते तादृशी प्रजा॥

(वृद्धचाणक्य)

जैसे दीप अन्धकारका भक्षण करता है और कज्जल उत्पन्न करता है, वैसे ही मनुष्य जिस प्रकारका अन्नसेवन करता है, उसी प्रकारकी अपत्य (सन्तान)-को जन्म देता है।

मनुष्य जो आहार—अन्नसेवन करता है, उससे पुरुषके शरीरमें 'शुक्रजन्तु' और स्त्रीके शरीरमें 'आर्तव' यानी 'स्त्रीबीज' निर्मित होते हैं और स्त्री-पुरुष-संयोगसे अपत्यका जन्म होता है। माता-पिता जो अन्नसेवन करते हैं, उस अन्नसे सात्त्विक, राजस, तामस—तीन प्रकारके गुण अपत्यमें संक्रमित होते हैं; इसलिये जीवनमें शुद्ध अन्नसेवनकी आवश्यकता है।

छान्दोग्योपनिषद्में ऋषि कहते हैं—'**आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः**।'

अतः हम जो आहार सेवन करें, वह शुद्ध होना चाहिये, इससे अन्तःकरणकी शुद्धि होती है। जब अन्तःकरण—मन शुद्ध होता है, तब सद्विवेकका निर्माण होता है। इससे मनुष्य सदाचारी होता है और उसका शरीर एवं मन स्वस्थ रहता है तथा उसे जीवनमें सुख और शान्तिका लाभ होता है। अस्तु, स्वस्थ समाजके लिये शुद्ध अन्नका सेवन करना आवश्यक है।

शुद्ध सात्त्विक आहारका शास्त्रीय स्वरूप—मनुस्मृतिमें मनुमहाराज कहते हैं—'**अन्नं ब्रह्म इत्युपासीत।**' अन्न ब्रह्म है—यह समझकर उसकी उपासना करनी चाहिये। महाराष्ट्रीय संत समर्थ रामदास बोलते हैं, अन्न क्या समझकर लेना—

'उदर-भरण नो हे जाणीजे यज्ञ कर्म।'

जो अन्न सेवन करते हैं, वह एक यज्ञकर्म है, केवल उदर-भरण नहीं है, केवल पेट भरना नहीं है। अन्नसेवन करना केवल क्षुधा-निवृत्ति नहीं है। ब्रह्मकी यज्ञ-उपासना समझकर अन्न-सेवन करो। पवित्र कार्य समझकर अन्न-सेवन करना चाहिये।

आहार-अन्न कैसा लेना है, मनुमहाराज कहते हैं—

उपस्पृश्य द्विजो नित्यमन्नमद्यात् समाहितः।
भुक्त्वा चोपस्पृशेत् सम्यगद्भिः खानि च संस्पृशेत्॥
पूजयेदशनं नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन्।
दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः॥

(मनुस्मृति २।५३-५४)

दोनों हाथ, दोनों पैर और मुख—इन पाँचों अंगोंको जलसे स्वच्छ करके नित्य सावधान होकर आहार-सेवन करना चाहिये। भोजनके उपरान्त भली प्रकार आचमन करना चाहिये तथा जलके द्वारा छहों छिद्रों (दो नासाछिद्र, दो आँख और दो कान)-का स्पर्श करना चाहिये। नित्य पहले भोजनका पूजन करना चाहिये और फिर बिना निन्दा किये उसे ग्रहण करना चाहिये। भोजनको देखकर हर्षयुक्त होना चाहिये और प्रसन्नतापूर्वक उसका अभिनन्दन करना चाहिये।

अन्न ब्रह्मा है, रस विष्णु है और खानेवाला महेश्वर है—यह समझकर अन्न सेवन करो तो विश्वचक्रमें सन्तुलन रहता है।

अन्नं ब्रह्मा रसो विष्णुर्भोक्ता देवो महेश्वरः।

दूसरी बात ऐसी है कि भगवान्‌को भोग न लगा हुआ अन्न विष्ठाके समान है और जल मूत्रके तुल्य बन जाता है—

अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं यद्विष्णोरनिवेदितम्।

(ब्रह्मवैवर्त० ब्रह्मखण्ड २७।६)

इसलिये आहारशुद्धिके लिये भगवान्‌के प्रति शुद्धभाव चाहिये, हर-एक दिन भगवान्‌को भोग (नैवेद्य) समर्पण करके ही आहार-सेवन करना चाहिये—इसीमें भावकी शुद्धि है। भगवान्‌ने इस भोजन—आहारको ग्रहण कर लिया है, अब यह पदार्थ शुद्ध—पवित्र हो गया है, वही हम सेवन करें—यही हमारा भाव होना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्कन्दपुराणमें कहा गया है कि बिना स्नान किये भोजन करना मल खानेके तुल्य है, बिना जप किये भोजन करना पीप-रुधिर खानेके समान है, बिना हवन किये भोजन करनेवाला कृमिभोक्ता होता है तथा बिना दान दिये भोजन करनेवाला विष्ठाभक्षक होता है—

अस्नाताशी मलं भुङ्क्ते त्वजपी पूयशोणितम्।
अहुताशी कृमीन् भुङ्क्तेऽप्यदत्त्वा विड्विभोजनः॥

(काशीखण्ड १०।५२)

जीवन-स्वास्थ्यके लिये पवित्र आहार-सेवन करनेका यह शास्त्रीय स्वरूप ध्यानमें लेना चाहिये।

आहारसेवनमें सावधानी रखनी चाहिये—

अन्न—आहार दिखनेमें उत्तम, सुन्दर और स्वादिष्ट हो तो भी वह पवित्र और शुद्ध है, ऐसा नहीं कहा जा सकता है। धर्मका प्रथम साधन शरीरको निरोग रखना है। इसलिये कौन-सा अन्नसेवन नहीं करना चाहिये, यह ध्यानमें रखना चाहिये। शास्त्रीय दृष्टिसे कतिपय दूषित अन्नोंका विवरण इस प्रकार है—

१-आश्रयदुष्ट—किसीके भी द्वारा—विशेषत: दुष्ट व्यक्तिद्वारा और जहाँ-कहीं भी तैयार किया हुआ आहार आश्रयदुष्ट आहार है, उसे नहीं ग्रहण करना चाहिये।

२-कालदुष्ट—कलका आहार आज लेना अथवा असमय बनाया हुआ आहार नहीं लेना चाहिये। ऐसे आहारकी कालदुष्ट संज्ञा है।

३-भावदुष्ट—बुरी भावनासे बनाया हुआ अन्न भावदुष्ट होता है, ऐसा अन्न नहीं ग्रहण करना चाहिये।

४-स्वभावदुष्ट—कुछ पदार्थोंका अलग गुण-धर्म है, वह पदार्थ सेवन ही नहीं करना चाहिये। उदाहरणके लिये प्याज, लहसुन अथवा एक बार पकानेके बाद फिर गरम किया हुआ पदार्थ अपनी गन्धविशेषके कारण स्वभावदुष्ट बन जाता है।

५-वाग्दुष्ट—अन्न बनाते समय अगर दुर्वचन बोलते हुए खाद्यसामग्री पकायी जाय तो ऐसा आहार वाग्दुष्ट होता है, ऐसा आहार हानिकर होता है।

६-संसर्गदुष्ट—भोज्य पदार्थ तैयार करनेवाला मनुष्य बीमार हो अथवा पदार्थ विषमय हो अथवा किसी पशु-पक्षीने स्पर्श किया हो तो ऐसा पदार्थ नहीं सेवन करना चाहिये। ऐसा आहार संसर्गदुष्ट कहा गया है।

निष्कर्षत: मन, शरीर, इन्द्रियोंपर नियन्त्रण करनेके लिये शुद्ध आहारसेवनकी जरूरत है। इसीलिये ऊपर लिखे हुए प्रकारके अन्न-आहार सेवन न करनेकी सावधानी रखनी चाहिये। श्रुतिवचन है कि अन्नकी कभी भी निन्दा मत करो, **'अन्नं न परिचक्षीत'** (तैत्तिरीयोपनिषद्)। अन्नका कभी भी त्याग नहीं करना चाहिये, यह व्रत है।

इसी प्रकार मनुष्यजीवनमें शुद्ध आहारसेवनका महत्त्व है। आखिर एक ही सत्त्वशुद्ध आहार हो सकता है, वह है—

सर्वरोगोपशमनं सर्वोपद्रवनाशनम्।
शान्तिदं सर्वारिष्टानां हरेर्नामानुकीर्तनम्॥

हरिनाम-संकीर्तन सभी रोगोंका उपशमन करनेवाला, सभी उपद्रवोंका नाश करनेवाला और समस्त अरिष्टोंकी शान्ति करनेवाला है। अत: हरिनाम-संकीर्तन करके ही आहार तैयार करना चाहिये और सेवन करते समय भी हरिनाम लेकर ही भोजन करना चाहिये—ऐसा करनेसे आहार शुद्ध-सात्त्विक हो सकता है।

नैतिक जीवन या अपना ज्ञान

(श्रीरघुनाथप्रसादजी पाठक)

मनुष्यमें गुण और दुर्गुण दोनों होते हैं, मनुष्यको दुर्गुणोंका बोध प्राय: मित्रोंके निर्देश और शत्रुओंकी निन्दासे होता है। मनुष्य अपनी त्रुटियों, कमजोरियों और पापोंको जितना स्वयं जान सकता है, उतना अन्य कोई प्राणी नहीं जान सकता। अपने हृदयको टटोलनेसे ही मनुष्य यह जान पाता है कि मैं क्या हूँ, मुझे क्या बनना चाहिये, जिससे इस जगत्‌में मैं सुख और आनन्दसे रह सकूँ और परलोकका सुधार कर सकूँ।

अपने हृदयको टटोलते हुए हमें यह देखना चाहिये कि हम परमात्मा और जगत्‌के सामने अपना सिर ऊँचा करके चल सकते हैं या नहीं? हम बुद्धिमान् और भले हैं या नहीं? हमें परमात्मा और अन्तरात्माका आशीर्वाद एवं संसारके मनुष्योंका आदर और विश्वास प्राप्त है या नहीं?

रातको सोते समय अपने दिनभरके कार्योंपर हमें दृष्टि डालनी चाहिये और यदि दिनमें हमसे कोई बुरा काम हो गया हो तो उसपर पश्चात्ताप करके आगे उस कामको न करनेकी प्रतिज्ञा करनी चाहिये। जीवन-सुधारका यह सुपरीक्षित उत्तम साधन है, इसे आत्मनिरीक्षण कहते हैं। जब हम प्रात:काल उठकर जीवनके कामोंमें लगें तो यह ध्यान रखें कि रात्रिको आत्मनिरीक्षण करते समय हमें अपने दिनभरके किसी कार्य या व्यवहारपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुःखी होनेका अवसर उपस्थित न हो।

अपना सुधार करनेकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको अपनेपर अत्यधिक विश्वास न करना चाहिये। जीवनमें गुणोंको धारण करना तो अच्छा है, परंतु उनपर अभिमान करना अच्छा नहीं है। अपने गुणोंसे परिचित रहनेसे मनुष्यमें आत्मविश्वास उत्पन्न होता है, जो जीनेकी सफलताके लिये महत्त्वपूर्ण तत्त्व होता है। गुणोंपर अभिमान करनेसे मनुष्यके अपेक्षित सुधारमें बाधा उपस्थित होती है। दूसरोंकी विशेषताओंके प्रति उदार और अपनी विशेषताओंके प्रति अनुदार रहनेसे मनुष्य अपना बहुत-कुछ सुधार करनेमें समर्थ हो जाता है।

मनुष्यको अपने वास्तविक स्वरूपका बोध कर्तव्य-पालनसे होता है; केवल मनन और विचार करनेसे नहीं। कर्तव्यपालनमें निरत व्यक्तिकी उपयोगिता और विशेषताएँ दूसरे व्यक्ति ही ठीक-ठीक जान पाते हैं, दूसरोंकी दृष्टिमें उसका जितना मूल्य होता है, उसे वह व्यक्ति स्वयं नहीं जान पाता, अपनी उपयोगिताका यह अज्ञान मनुष्यको अधिकाधिक विनम्र और योग्य बना देता है।

अपनी त्रुटियोंको जाननेवाले कर्तव्यपरायण बुद्धिमान् व्यक्ति किसी उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यको सहसा ही हाथमें लेते हुए डरते हैं। जब सुलेमानको न्यायाधीशका पद अर्पण किया गया तो उन्होंने डरते-डरते उस पदको ग्रहण किया। न्यूटन-जैसे महान् विज्ञानवेत्ता और गणितज्ञ कहा करते थे कि मैं 'ज्ञानके असीम समुद्रमें मोतियोंकी खोजके लिये गोते लगाता हूँ; परंतु मुझे कतिपय कंकड़ ही हाथ लग पाते हैं।' न्यूटनकी यह विनम्रता और अपनी उपयोगिताके प्रति यह उपरामता ही थी, जिसने न्यूटनको अपने जीवन-ध्येयमें निरत रखकर चमका दिया था।

मनुष्यके गुणों और बुद्धिकी पहुँचकी सीमा होती है। वह न तो निर्भ्रान्त होता है और न सर्वज्ञ। बुद्धिमान् व्यक्ति अपने विकासके लिये दूसरोंकी विशेषताओंको सामने रखते और धीरे-धीरे परमात्माको, जो परमादर्श होता है, अपना आदर्श बनाकर उसतक पहुँचनेका प्रयास करते हैं। परमात्मातक पहुँचनेमें समर्थ होनेके लिये मनुष्यको अपना और परमात्माका ज्ञान उपलब्ध करना होता है। जिसने अपनेको जान लिया, उसने सब कुछ जान लिया। आत्मज्ञानकी प्राप्ति मनुष्यको जानमें या अनजानमें परमात्माकी ओर प्रेरित करती है और परमात्माके ज्ञानसे आत्मज्ञानमें परिपक्वता आकर मनुष्य दिव्यालोकसे प्रकाशित हो उठता है। इस आत्मज्ञानका अर्थ है—अपने प्रति सच्चा बनना। जो व्यक्ति अपने प्रति सच्चा नहीं होता, वह दूसरोंके प्रति क्योंकर सच्चा बन सकता है? अपने ज्ञानसे जहाँ मनुष्यका अपना लाभ होता है और उसे अपने गुणोंका ज्ञान होता है, वहाँ मनुष्य अपने और दूसरोंके प्रति न्याय करनेमें समर्थ हो जाता है। वस्तुतः मनुष्यमें दूसरोंके भावोंको समझने और उनका आदर करनेकी वास्तविक योग्यता भी इस आत्मज्ञानसे आती है। जब हम दूसरोंकी त्रुटियोंकी चर्चा करने लगें तो हमें यह सोचना चाहिये कि वे त्रुटियाँ हममें हैं या नहीं? अपने दोषोंको और त्रुटियोंको आइना बनाना चाहिये।

खाने-पीने और मौज उड़ानेमें रत रहनेवाले व्यक्तियोंको अपना ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त कठिन होता है। उनका ध्यान और उनकी समस्त प्रक्रिया स्वार्थसिद्धि, भोगविलास और सांसारिकतापर केन्द्रित होकर उनकी आत्मामें खो जाती है।

अबसे हजारों वर्ष पूर्व यूनानियोंकी घोर विलासितामें यूनानके सांस्कृतिक ह्रासके बीजका वपन हुआ था। यूनानके निवासीजन भौतिक सुख और भौतिक चमकसे प्रभावित होकर शरीरके उपासक और इन्द्रियोंके दास बनकर चारित्रिक पतनकी ओर अग्रसर हो रहे थे। तब एक दिव्यात्मा महात्मा सुकरातके रूपमें अवतरित हुई। महात्मा सुकरात दिनमें चिराग लेकर एथेन्स (यूनानकी राजधानी)-की सड़कोंपर घूमने लगे। लोगोंने उन्हें पागल कहा, उनकी हँसी उड़ायी। जब एक व्यक्तिने इसका कारण पूछा तो उन्होंने कहा—'एथेन्सके निवासी अपनेको भूल गये हैं। आँखें होते हुए भी वे अन्धे हो गये हैं। उनके हृदयकी आँखें ज्योतिहीन हो गयी हैं। वे दिनमें भी अन्धकारमें टटोल रहे हैं। इसीलिये उन्हें प्रकाशकी आवश्यकता है।'

'तू अपने आपको जान' सुकरातका यह महान् सन्देश था। इस सन्देशका प्रसार और प्रचार करनेका मूल्य उन्हें अपने प्राणोंके द्वारा चुकाना पड़ा। स्वार्थ और भोग—अज्ञान और अन्धकारमें विलीन प्रजा उनके इस सन्देशका मूल्य उनके जीवनकालमें न समझ सकी। समय आया, जब उनका यह सन्देश यूनानकी तीन देववाणियोंमें प्रतिष्ठित होकर डेलफीके मन्दिर-द्वारपर स्वर्णाक्षरोंमें अंकित हुआ।

आजकी भोगप्रधान संस्कृतिमें जीवन-संघर्ष और शक्तिसंचयके कारण मानवका जीवनध्येय पेट और पैसा बना हुआ है। मनुष्यका आत्मविषयक अज्ञान बड़ा दुःखद और शोकपूर्ण बन गया है, जिसके कारण जीवनमें और जगत्में अशान्ति व्याप्त हो रही है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाय कैसे बचे ?

(श्रीमुलखराजजी विरमानी)

भारतके कत्लखानोंमें और अवैध रूपसे चोरी-छिपे गायोंकी निर्मम हत्याएँ हो रही हैं। हजारों गायें रोज तस्करीके माध्यमसे बंगलादेशको जा रही हैं। ये गायें या तो रातके अँधेरेमें सड़कोंसे उठा ली जाती हैं या किसानोंसे २००-४०० रुपयोंमें खरीदी जाती हैं।
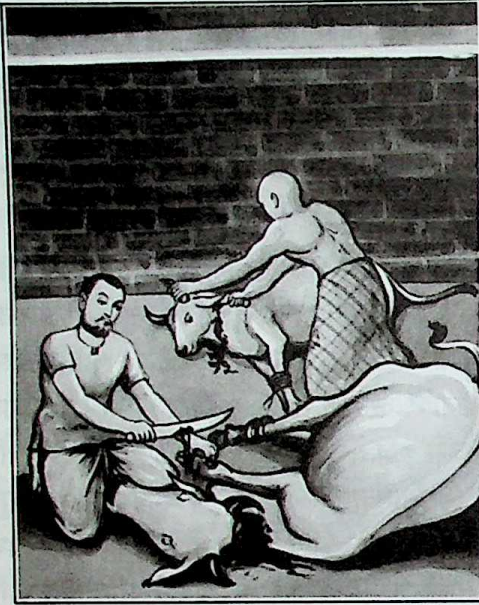
बंगलादेशमें कत्लखानोंमें कसाई हर गाय या बैलके रक्त, मांस, हड्डियों, चमड़े इत्यादि से २५,००० से ३०,००० रुपये तक कमाता है। किसानद्वारा २००-४०० रुपयेमें बेची हुई गाय बंगलादेश पहुँचकर तस्करोंसे १५०० से २००० रुपयेमें बिकनेके पश्चात् कसाईको २५०००-३०००० रुपये देती है।

'गोमाता' कही जानेवाली इन गायोंका वहाँ जिस क्रूरतासे वध होता है, उसकी कल्पना भी बड़ी ही भयानक है। जीवित-अवस्थामें ही गोमाताको इतना पीटा जाता है कि पूरा शरीर सूज आये, तत्पश्चात् उनपर खौलता हुआ गर्म जल डाला जाता है। फिर जिस तरह उबली हुई आलूसे उसका छिलका उतारा जाता है, वैसे ही गोमाताके शरीरसे उनका चमड़ा उतारा जाता है, अबतक भी गायको मरने नहीं दिया जाता, जिससे कि उसका चमड़ा कड़ा न हो और मुलायम बना रहे।

जिन गोमाताने हमें अपना दूध पिलाया, जिनके बछड़ोंने हमारे खेतोंमें हल चलाकर हमारे लिये अन्नका उत्पादन किया, क्या उनके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन करनेका हमारा यही तरीका होना चाहिये कि हम बूढ़ी होनेपर उन्हें कुछ रुपयोंके लिये बेच दें ? आज हमें यह हल ढूँढना ही पड़ेगा कि किसान बूढ़ी गायको बोझ समझनेके कारण २००-४०० रुपयेमें नहीं बल्कि २०००-४००० रुपयेमें भी न बेचे। गोबर और गोमूत्र कुछ स्थानोंपर बहुत सारी वस्तुएँ बनानेके काममें लिया जा रहा है, जैसे कानपुर गोशाला सोसायटी, राजस्थान गो-सेवा संघ, जयपुर; इनके अतिरिक्त दो नये कारखाने मथुरा और आगराके बीच लगे हैं, इनमें बोर्ड टाइल्स, फिनायल, दवाइयाँ, पंचगव्य इत्यादि बन रहे हैं।

गाय कैसे बचे ? यह प्रश्न आज हर बुद्धिजीवीके समक्ष है। गौमाताके प्रति उपेक्षाभावका ही दुष्परिणाम है कि स्थान-स्थानपर नकली घी, नकली दूध, नकली दही और अन्य नकली खाद्य पदार्थ बन एवं बिक रहे हैं, जिनसे व्यक्तिका स्वास्थ्य तो प्रभावित हो ही रहा है, साथ ही वह भयंकर बीमारियोंसे ग्रस्त होता जा रहा है। आज दुग्ध- उत्पादनके लिये तो गोपालन, होना ही चाहिये, साथ ही बूढ़ी या बाँझ गाय, बैल और बछड़ोंके गोबर और गोमूत्रसे भिन्न-भिन्न प्रकारकी खादें, फिनायल, खपरैल, टाइल्स, दवाइयों इत्यादिके निर्माण भी बड़ी मात्रामें होने चाहिये। उद्योगपतियोंको चाहिये कि वे अनुसंधानकर गव्य पदार्थोंसे बननेवाली वस्तुएँ अधिक बनायें ? उस स्थितिमें बूढ़ी गाय या बैल किसानके लिये बोझ नहीं, बल्कि आर्थिक लाभदायक होकर उसके परिवारका भी पालन करेगी। कुछ धर्मभीरु किसान गायको बेचनेसे डरते तो हैं परंतु रुपयोंके लोभमें वे रस्सी जमीनपर रख देते हैं, इसी प्रकार कसाई भी रुपयोंको जमीनपर रख देता है। कसाई गायको लेकर चला जाता है और किसान रुपये उठा लेता है, परंतु यह प्रथा भी गो-विक्रय अर्थात् महापाप ही है। कुछ किसान बूढ़े होनेपर गाय-बैलोंको रातमें छोड़ देते हैं, जिससे वे कसाइयोंके हाथ पड़ जाते हैं। यह भी अनुचित ही है। जिस प्रकार बूढ़े माता-पिता आदरणीय हैं, वैसे ही बूढ़े गो-बैल भी पालनीय हैं। उनका विक्रय या उनके पालनके प्रति उदासीनता महापाप ही है।

गोरक्षाका एक उपाय यह भी है कि गोचर-भूमि और गोशालाओंका निर्माण प्रत्येक नगर एवं गाँवोंमें किया जाय, जहाँ दूध न देनेवाली गायोंको रखा जा सके और उनकी सेवाकी व्यवस्था हो, यह अत्यन्त पुण्यका कार्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवेकशील जीवनके लिये मानसिक सन्तुलन धारण कीजिये

(प्रो० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम०ए०)

मनुष्यका अन्तर्जगत् सब जीवोंसे उच्चतर है। उसकी व्यवस्था जगन्नियन्ताकी अद्भुत कुशलताकी द्योतक है। मकड़ीके जालेके सदृश नाना स्मृतियों, इच्छाओं, कल्पनाओं तथा विचारोंके सूक्ष्म तन्तुओंका ताना-बाना उसमें फैला रहता है, जिनका सामूहिक प्रभाव मानव-शरीरपर दृष्टिगोचर होता है। प्रायः मनुष्य विचित्र-विचित्र कार्य करते देखे जाते हैं, किंतु वे अपनी विभिन्न क्रियाओंके मूल केन्द्र—अन्तर्जगत्से अपरिचित होते हैं। उन्हें विदित नहीं कि उनके सब सांसारिक या आध्यात्मिक कार्योंका आदिस्रोत उनका मन है। बाह्य संसारका सुख-दुःख, आह्लाद अथवा क्लेशमयी मनःस्थिति, भलाई-बुराईकी ओर प्रवृत्ति, विक्षिप्तावस्था अथवा मनमोहिनी मुद्रा हमारे उन संस्कारोंके परिणाम हैं, जो हमने अपने अन्तर्जगत्में उपजाये हैं। संसारमें जो व्यक्ति दुःखी रहता है या जो बहुत अल्प साधनोंमें ही आनन्द लूटता है, इसका कारण उस व्यक्तिका मन ही है। अपने अन्तर्जगत्की प्रतिच्छाया ही हम इस लोकमें, व्यक्ति-व्यक्तिमें प्रतिफलित देखते हैं। हमारे संस्कारोंकी छाप हमारी दृष्टिमें निहित रहती है। अपने संस्कारोंके अनुसार ही इस सर्वगुणसम्पन्न सृष्टिसे हम पाप-पुण्य, भलाई-बुराई, आनन्द-क्लेश खींचते रहते हैं।

शरीरपर मनका अद्भुत प्रभाव देखा जाता है। जो रोग वास्तवमें शरीरमें नहीं हैं, उनकी कल्पना करने तथा वैसे ही रोगी-विचारोंको अन्तर्जगत्में स्थान देनेसे वे रोग-व्याधि शरीरमें प्रकट होते देखे जाते हैं। अपने संस्कारोंके अनुसार ही हम स्वास्थ्य, यौवन, सौन्दर्य इर्द-गिर्दके वातावरणसे खींचते रहते हैं।

रोगीका मन रोगी होता है। रोगमय मनःस्थितिसे शरीरमें रोगका प्रादुर्भाव होता है, काल्पनिक भयकी आशंकासे शरीर सन्तप्त हो उठता है; वासना तथा क्रोध उत्तेजना उत्पन्नकर शरीरको कँपा डालते हैं; निराशा, वेदना और पूर्वकष्टके विचारोंसे क्लेशमयी परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। ईर्ष्या और प्रतिहिंसाके विचारोंसे शरीर दग्ध हो उठता है। लोभमें मनुष्य कल्पनाके महल निर्मित करता रहता है। सन्देहदृष्टिसे मनुष्य प्रत्येक व्यक्ति अथवा स्थितिपर अविश्वास प्रकट करता रहता है। दुष्ट तथा अहितकर मनोवृत्तियोंके उद्दीप्त होनेसे मनका अन्तःप्रदेश अस्त-व्यस्त तथा सन्तप्त हो उठता है।

हमारा कोई अनुभव व्यर्थ नहीं जाता। वह हमारे अन्तर्जगत्में अपनी जड़ अवश्य छोड़ जाता है। जैसे फसल कट जानेपर भी खेतमें वृक्षोंकी जड़ें उगी रहती हैं, वैसे ही हमारे सब अच्छे-बुरे, कड़वे-मीठे अनुभव, बाह्यजगत्की अनुभूतियाँ सदा-सर्वदाके लिये अन्तर्जगत्में अंकित हो जाती हैं। उसी ज्ञान तथा संस्कारसे हमारा कार्य संचालित होता रहता है। हमारे आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक सभी प्रकारके दुःख मनद्वारा संगृहीत किसी दुष्ट विचारके परिणाम होते हैं।

दुर्भावना तथा सद्भावना

हमारे अन्तर्जगत्का निर्माण करनेवाली दो वृत्तियाँ हैं—सद्भावना तथा दुर्भावना। ये जीवनके देखनेके दो विभिन्न मार्ग हैं। आप जिस मार्गसे जीवन-यात्रापर निकलते हैं, उस मार्गमें वैसी ही वस्तुएँ आपको स्थान-स्थानपर मिलती जाती हैं। दुर्भावनाका मार्ग कण्टकों तथा शूलोंसे परिपूर्ण है। इस रास्तेसे जानेवालोंको सदा अतृप्तिका सामना करना पड़ता है। वह ईर्ष्या, प्रतिशोध, संघर्ष तथा हिंसाकी वृत्तियोंमें उलझा रहता है। दूसरोंपर अविश्वास और शंका करता है, सबको अपना शत्रु समझता है, जगत् उसे अपनी उन्नतिके मार्गमें अवरोध करता दिखायी देता है। उसके आत्मविरोधी विचार दुःखोंकी सृष्टिकर उसे मनकी नारकीय स्थितिमें धक्का दे देते हैं। वह सदा अशान्त और अतृप्त रहता है।

दूसरा मार्ग सद्भावनाका है। इसमें मनुष्यके दैवी गुणोंका पावन प्रकाश है। यह मनुष्यकी उच्च स्थितिको लानेवाला आध्यात्मिक मार्ग है। इस पथमें विचरण करनेवाला पथिक प्रत्येक व्यक्तिको आत्मरूपसे देखता है, सबको अपना हितैषी मानता है, सबसे स्नेह करता है और सबकी उन्नतिमें सहायता करता है। अन्य जीव भी उससे प्रेम, सेवा, सहायता, उन्नति, उदारता प्राप्त करते हैं। संसारके समग्र प्राणियोंमें आत्मभाव रखनेके कारण स्वयं उसकी मनःस्थिति शान्त और सन्तुलनकी रहती है। उसमें व्यर्थके संघर्ष, प्रतिहिंसा, स्वार्थ या वासनाके ताण्डव नहीं होते। आध्यात्मिक शक्ति उसके मनमें एकत्रित होती चलती है। वह दूसरोंके लिये आत्मत्याग करनेके आनन्दसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिचित होता है। त्याग, बलिदान और सेवाभाव उसके संकल्पोंको दृढ़ता प्रदान करते हैं। आध्यात्मिक शक्ति उसके अन्तर्जगत्‌में संचित होती चलती है।

सद्भावना सदा फलित होनेवाली जादूकी शक्ति है। जो जितनी ही सद्भावना दूसरोंको देता है, वह उनसे दुगुनी-चौगुनी सद्भावनाएँ बदलेमें पाता है। सद्भावना कभी व्यर्थ नहीं जाती। सद्भावनाएँ गुप्तरूपसे दूसरोंको हमारी ओर आकृष्ट करती हैं। यदि दूसरा आकृष्ट न भी हो, तो ये स्वयं हमें अमित शान्ति, धैर्य और साहस देनेवाली हैं। ये हमें संकुचितताासे बचाकर उदार बनाती हैं और अन्ततः कल्याणका कारण बनती हैं।

मानसिक द्वन्द्वोंसे मुक्त रहिये

मानसिक सन्तुलन भंग होनेसे पूर्व हमारे मनमें मानसिक द्वन्द्वोंकी उत्पत्ति होती है। दो विरोधी भावोंमें संघर्षकी स्थितिको द्वन्द्व कहते हैं। द्वन्द्वोंमें भय एक महत्त्वपूर्ण विकार है। इच्छा और भय; लोभ तथा भय; प्रलोभन, चोरी तथा पकड़े जानेका भय अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न करते हैं। भय एवं अनिश्चितता, चिन्ता और आशंका मानसिक उलझनें बनाती हैं। मनमें तनावकी स्थिति पैदा हो जाती है। भयसे गुप्त मानसिक उलझनें (न्यूरासिस) बनती हैं। प्रायः हमारे मनमें कोई इच्छा उत्पन्न होती है, किंतु उसे प्राप्त न करनेके कारण भावना ग्रन्थि बनती है। ये ग्रन्थियाँ नाना विकारजन्य मूर्खताओंमें प्रकट होती हैं।

भय मनुष्यके विकासको रोकनेवाला दुष्ट विकार है। माता-पिताओं, गुरुओंको चाहिये कि बच्चोंको अधिक सजाएँ न दें; बच्चोंपर अनुचित सख्ती न बरतें। कठोर व्यवहारसे बच्चोंमें भयकी गुप्त ग्रन्थियाँ सदाके लिये बन जाती हैं, जो जीवनभर उनके कार्योंमें अर्धविक्षिप्तता, बेढंगापन, आत्महीनता या व्यर्थ चिन्ताएँ, बेबसी उत्पन्न करती हैं। मनुष्यके संकल्पोंकी कमजोरीका कारण यही द्वन्द्व है। अच्छे व्यक्तित्ववाले आदमी भी कभी-कभी इसके शिकार बन जाते हैं। सन्तुलनके अभावमें वे आत्म-भर्त्सना किया करते हैं।

उन्नति, समृद्धि तथा स्वस्थताके लिये मानसिक द्वन्द्वोंसे बचे रहें। मनमें उचित विचार रखना, भविष्यके अनिष्टोंसे मुक्त रहना, वाणीसे मधुर बोलना, सबका भला चाहना, मनको उदार रखना—ये वे विचार-पद्धतियाँ हैं, जिनसे मनुष्य सभी प्रकारकी परिस्थितियोंमें शान्त बना रहता है। उचित विचार क्या है? जिन विचारोंसे किसीका अनिष्ट नहीं होता, जो सबके प्रति सद्भावना, प्रेम, उदारतासे युक्त हैं, जिनमें मनुष्यमात्रकी भलाईके लिये लगन, प्रेम, उत्साह और सेवा-भावना है, जो सदा नयी आध्यात्मिक भावनासे स्निग्ध हैं, वे ही सही विचार हैं।

सदा नये समाजोपयोगी कार्य करने, आशावादी भावनाएँ बनाये रखने और आध्यात्मिक चिन्तन करनेसे मनुष्य द्वन्द्वोंसे बच सकता है। जो व्यक्ति नये-नये लोकोपकारी कार्य करेगा, उसके मनमें द्वन्द्व कैसे ठहर सकते हैं? जहाँ सद्ज्ञानका दिव्य प्रकाश है, वहाँ अज्ञानान्धकार कैसे ठहर सकता है? कार्यमें निरत रहनेसे मनुष्य गन्दगीसे बच सकता है। परोपकाररत साधकमें आत्मविश्वास बढ़ता है। एक कार्यके पश्चात् यह दूसरे कार्यमें सफलताएँ प्राप्त करता चलता है। सही विचार, उचित दृष्टिकोण, मौलिक दृष्टि और निरन्तर कार्य करनेसे द्वन्द्व दूर होते हैं।

संक्षेपमें, हमारे मनको उन्नत या अवनत करनेवाली दो शक्तियाँ हैं—ज्ञान तथा कर्म। हम अध्ययन, मनन, सत्संग तथा संसारके नाना अनुभवोंसे ज्ञान प्राप्त करते हैं। फिर उनकी सहायतासे कर्ममें प्रविष्ट होते हैं। यदि ज्ञान और कर्म बराबर मात्रामें अपना कार्य करते हैं, तो मानसिक सन्तुलन स्थिर रहता है। ज्ञान और कर्मका महत्त्व हमारे प्राचीन विचारकोंने* माना है। बिना कर्मके ज्ञान अधूरा है; इसी प्रकार बिना ज्ञानके कर्म अन्धा है। दोनोंका पूर्ण सामंजस्य ही अपेक्षित है। ज्ञान और कर्म जब साथ-साथ बढ़ते हैं, तब जीवन आगे बढ़ता है। कर्म तथा ज्ञानके सामंजस्यद्वारा द्वन्द्वोंका निवारण करें। निरर्थक अनुचित और अनुपयोगी कार्योंसे समय बचाकर अपना समय उपयोगी कर्मोंमें व्यतीत करना चाहिये। कर्मक्रमको धर्ममय बनानेसे द्वन्द्व छूटते हैं।

मानसिक तनाव या खिंचावकी स्थिति न आने दें। अर्थात् जैसे ही कोई इच्छा उत्पन्न हो, वैसे ही उसके पक्ष या विपक्षमें निर्णय कर डालें। यह करूँ या न करूँ—ऐसी संशयात्मक मनःस्थिति उत्पन्न न होने दें। संशयमें पड़े रहनेसे मनुष्यमें बड़ी दुर्बलता आती है। तनाव बढ़ता है। यदि कोई इच्छा उत्पन्न हो, तो उसकी पूर्ति इस ढंगसे करें कि वह सदा-सर्वदाके लिये निवारित हो जाय।

* कर्म और ज्ञान जीवरूपी पक्षीके दो पंख हैं—योगवासिष्ठ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन वस्तुओं, नामों या सजाओंसे बच्चोंको भय उत्पन्न होता है, वे व्यवहारमें न लायें। बच्चोंको उत्साहित किया जाय और सजा इस प्रकार दी जाय कि वे मानसिक ग्रन्थियोंसे बच सकें।

बड़े व्यक्तियोंमें आत्म-संकेत तथा सजेशनसे ग्रन्थियोंका निवारण करे। आत्महीनता या आत्म-लघुतासे ग्रसित व्यक्तियोंको संकेतद्वारा प्रोत्साहित या निरुत्साहित किया जाय।

पूर्ण विकसित व्यक्तियोंको चार प्रकारके भय होते हैं—१-मृत्युका भय, २-वृद्धत्वका भय, ३-गरीबीका भय, ४-प्रियजनोंके अनिष्टका भय। मृत्यु तो अवश्यम्भावी है। जब हम कहते हैं कि अमुक वयस्क मृत्युसे डरता है, तब हम वास्तवमें यह कहना चाहते हैं कि वह मृत्युसे नहीं, अपने पापोंके दुष्परिणामोंसे भयभीत होता है। वह इस बातसे शंकित रहता है कि अब उसे अपने दुष्टताके कर्मोंकी सजा मिलेगी। उसकी अन्तश्चेतना ऐसा अनुभव करती है कि इस दिव्य जीवनका मैंने जो दुरुपयोग किया है, उसके फलस्वरूप मरनेके पश्चात् मुझे दुर्गतिमें जाना पड़ेगा, अत: मनुष्यको अपने कार्य उन्नत करने चाहिये। आत्मोन्नतिके कामों—सद्ग्रन्थावलोकन, परोपकार, सेवा, त्याग, तपश्चर्या, साधना-सत्कर्मोंमें निरत रहना चाहिये। ऐसे कार्य करने चाहिये कि उसे पछताना या आत्मभर्त्सना न करनी पड़े। आप ऐसा जीवन व्यतीत कीजिये कि आत्मग्लानि उत्पन्न न हो। मृत्युको अधिक उन्नत अवस्थामें जानेकी एक स्थिति मानिये। जब कोई व्यक्ति वर्तमानकी अपेक्षा अधिक अच्छी, उन्नत और सुखकर अवस्थामें जाता है, तब उसे कष्ट नहीं, प्रसन्नता होती है। अपने जीवनको धार्मिक बनाकर शुभ भावनाओंमें निरत रह सत्कर्म करनेसे मृत्युका भय छूट सकता है।

वृद्धावस्थाको जीवनका अन्त नहीं, मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टियोंसे समुन्नत जीवनका प्रवेशद्वार मानिये। वृद्धावस्था आदरकी पात्र है। वह घृणाकी वस्तु नहीं है। वृद्ध जवानोंकी अपेक्षा शारीरिक शक्तिको छोड़कर हर प्रकारसे बढ़ा हुआ होता है। वृद्धावस्था वह परिपुष्ट समुन्नत दशा है, जिसके लिये प्रकृति आरम्भसे तैयारी करती है। अत: बुढ़ापेका डर मनसे सदाके लिये निकाल दीजिये।

गरीबीका भय व्यर्थ है, यदि आपका जीवन संयम और दूरदर्शितासे व्यतीत हो रहा है। आप जिस स्थिति, जिस अवस्था, हैसियत या आयके व्यक्ति हों, कुछ-न-कुछ अवश्य बचा सकते हैं। यह संचित धन आपको गरीबीसे सुरक्षित रख सकता है।

प्रियजनोंके अनिष्टका भय त्याज्य है। आप उनके प्रति शुभ भावनाएँ रखिये, यथासम्भव सेवा कीजिये, उनके लिये बलिदान करनेको प्रस्तुत रहिये। बस, इससे अधिक आप कुछ नहीं कर सकते। समाजमें मजबूरियाँ होती हैं। आदमी उनका दास है। उनमें फँसकर जो हो जाय, उसके प्रति कोई चारा नहीं है।

मानसिक सन्तुलन स्थिर रखनेके लिये मनोबलकी अतीव आवश्यकता है। जिसका मनोबल बढ़ा हुआ है, वह द्वन्द्वोंसे मुक्त रहता है। मनोबल वह शक्ति है, जो हमारे समस्त अन्तर्द्वन्द्वोंके ऊपर नियन्त्रण रखती है। समुन्नत मनोबलसे हमारी क्रियाएँ शुभ रहती हैं। ध्यान और एकाग्रताके अभ्यासद्वारा मनोबलकी वृद्धि करते रहिये। विचार, भाव तथा आचार—इन तीनोंका पूर्ण सामंजस्य रखिये। शुभ मति, शुभ विचार तथा अच्छा आचार रखनेसे मनोबल बढ़ता है। गन्दी ओर प्रवृत्त होने, दुराचार करने, विषय-वासनामें लगे रहने, अपनी शक्तिसे बड़ा काम ले लेनेसे मनोबल घटता है। सद्विचार सीखें। उन्नत विचारोंसे सद्भाव, सद्भावसे सदाचार उत्पन्न होता है। पहले छोटे कार्योंमें सफलता प्राप्त करें, फिर अपेक्षाकृत कुछ बड़े कामोंको हाथमें लें और इस प्रकार मनोबलको बढ़ाते रहें। धीरे-धीरे सफलता प्राप्त करते रहनेसे मनुष्यको अपनी शक्तियोंके प्रति विश्वास बढ़ जाता है और निर्णयात्मक बुद्धि जाग्रत् होती है।

ध्यानका अभ्यास करनेसे मानसिक सन्तुलन बना रहता है। ध्यान जम जानेपर मनुष्य जब चाहे तब चित्तवृत्ति और विचारशक्तियोंका प्रवाह फेंक सकता है। इसके लिये दीर्घकालीन सतत अभ्यासकी आवश्यकता है।

अपने कार्यों, संकल्पों और मन्तव्योंमें तन्मय हो जाइये और व्यर्थके निकम्मे चिन्तनसे बचिये। जो अपने उद्देश्यमें तन्मय रहता है, वह सन्तुलित रहता है। निकम्मा सदैव व्यग्र और अशान्त बना रहता है। गीतामें वर्णित कर्मयोगका तात्पर्य यही है कि अपने कुशलतापूर्वक निष्कामभावसे कर्ममें तन्मय हो जाइये, उद्देश्यहीन चिन्तनसे दूर रहिये, कर्मरत व्यक्ति पूर्ण सन्तुलित होता है। आपका जीवन सदुद्देश्योंकी प्राप्तिमें व्यतीत होना चाहिये और कार्यक्रम सदा धर्ममय होना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधनोपयोगी पत्र

(१)

भगवान्‌से तुरंत उत्तर मिलेगा

प्रिय महोदय! सादर सप्रेम हरिस्मरण। आपके चारों पत्र मिल गये। उत्तर लिखनेमें मेरी ओरसे बहुत ही अवहेलना हुई, इसके लिये मनमें बड़ा संकोच है। कई बार पत्र लिखनेका विचार किया। दो-चार पंक्तियाँ लिखीं भी; परंतु कोई-न-कोई विघ्न आ गया, जिससे लिखना रुक गया। आप इतनेपर भी मुझसे नाराज नहीं हुए और पत्रोंका उत्तर न लिखनेपर भी बराबर पत्र लिखते रहे, इस कृपा और प्रेमके बदलेमें मैं तो कुछ भी करनेमें असमर्थ हूँ। आपने मेरे लिये जो कुछ भी शब्द लिखे हैं, उनको पढ़कर मुझे तो लज्जा आती है। मैं ऐसे शब्दोंके लिये सर्वथा अयोग्य हूँ। वास्तवमें आपके पत्रोंका उत्तर वही दे सकता है, जिसमें आपके लिखे शब्दोंका अर्थ घटता हो। हाँ, मैं आपकी श्रद्धापर इससे कोई आक्षेप नहीं करता। पाषाण या धातुमयी मूर्तिमें भी श्रद्धा और प्रेमके कारण भगवान्‌के दर्शन हो सकते हैं। वस्तुतः सब जगह भगवान् हैं भी। मेरा तो यही लिखना है कि आपको मुझमें जो बातें दिखायी देती हैं, उसका कारण श्रद्धा ही है। मेरी दृष्टिसे तो मुझे ऐसी कोई बात नहीं दिखायी देती। आप अपनी श्रद्धामयी सज्जनतासे मुझको चाहते हैं, यह आपकी महिमा है। मेरा तो यह निवेदन है कि आप जिस प्रकार मुझे स्मरण करते हैं और मुझको पत्र लिखते हैं, उसी प्रकार दयार्णव, सर्वशक्तिमान्, सर्वगुणगणालंकृत, परम सुहृद्, आपके नित्य परम आत्मीय, सदा अतिसमीप रहकर आपकी सारी स्थितियोंको भलीभाँति जानने-समझनेवाले और किसीकी भी बड़ी-से-बड़ी भूलपर भी कभी उसका अहित न करनेकी इच्छा करनेवाले भगवान्‌का स्मरण कीजिये और मनकी भाषामें उन्हें पत्र लिखिये। एक पत्र भी पूरा नहीं लिख पायेंगे—तुरंत आपको आश्वासनपूर्ण उत्तर मिलेगा।

'निरबल ह्वै बल राम पुकार्‌यो आये आधे नाम॥'

भक्तशिरोमणि गजेन्द्र पूरा नाम भी उच्चारण नहीं कर पाये थे, उनके सामने भगवान् प्रकट हो गये और उन्होंने गजराजको तुरंत बचा लिया। यह अनहोनी या कल्पित कथा नहीं है।

रोगमें क्या समझना चाहिये?

परंतु रोगकी निवृत्तिके लिये भी उन्हें क्यों पुकारना चाहिये। रोगकी सौगात भेजनेवाले क्या कोई दूसरे हैं? और यदि प्रियतमके हाथसे भेजी हुई चीज रोग है, तो फिर हमें उससे दुःख क्यों होना चाहिये? जिस वस्तुसे प्रियतमका सम्बन्ध है, जो उनके घरसे आयी है, जिसको उन्होंने भेजा है, जो उनके हाथोंसे स्पर्शित है, जिसको लेकर वही आये हैं, उससे हमें भय और शोक क्यों होना चाहिये? प्रियतमकी प्यारी छवि उसके पीछे छिपी है, उनका हाथ उससे संलग्न है, अगर यह बात है तो हमें प्रियतमका प्यारा हाथ देखकर उस वस्तुका आलिंगन करना चाहिये। और प्रियतम स्वयं ही स्वाँग बदलकर आये हैं तब तो कहना ही क्या है। वस्तुतः दोनों ही बातें सत्य हैं। हम इनमेंसे एकको भी स्वीकार कर लें तो हमारे लिये प्रत्येक क्षण परमानन्दसे पूर्ण हो जायगा। यह तो प्रेममार्गकी बात हुई। शरणागति और निर्भरतामें भी यही बात है। भगवान्‌के प्रत्येक विधानमें परमानन्दका अनुभव होना और सर्वतोभावसे उन्हींपर निर्भर करना शरणागतिका लक्षण है। इसमें सारी क्रियाएँ भगवत्प्रेरित होती हैं। यहाँ क्रियाहीनता नहीं है। परंतु वह क्रिया कठपुतलीके नाचके समान है। वह किसी फलके लिये किया जानेवाला साधन नहीं है। इस निर्भरताके मार्गसे भी रोगके लिये चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है। चिन्ता तो एकमात्र चिन्तामणिकी ही होनी चाहिये, जिसकी चिन्तासे अन्यान्य समस्त चिन्ताएँ सदाके लिये नष्ट हो जाती हैं।

ज्ञानकी दृष्टिसे तो मायाके कार्यमें मोह होना ही अज्ञान है। अज्ञानकी अपने हाथों दी हुई गाँठको तो खोलना ही चाहिये। ज्ञान और भक्तिके समन्वय पक्षमें भी शरीरकी बीमारीके लिये चिन्ताकी आवश्यकता नहीं। आप विद्वान् हैं, स्वयं विचार कीजिये।

भगवान्‌की दयामें विश्वास

मेरे निवेदनके अनुसार तो आपको श्रीभगवान्‌में, उनकी अपार करुणामें, उनके अनन्त प्रेममें, उनकी अहैतुकी सुहृदतामें, उनकी असीम दयामें विश्वास करके यह दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिये 'हमारा परम कल्याण ध्रुव है।' यदि भगवान्‌पर विश्वास करके आप अपने कल्याणके लिये संशयहीन हो जायँगे तो आपका कल्याण निश्चित है। बस, भगवान्‌की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयापर विश्वास करनेभरकी देर है। इस विश्वासकी प्राप्तिके लिये भी भगवान्से करुण प्रार्थना करनी चाहिये। एक बारकी हृदयकी करुणायुक्त पुकार भगवान्के आसनको डुला देती है। *'जिन्हहि परम प्रिय खिन्न।'* जो उनके लिये खिन्न होता है, जिनको उनका विरह-ताप जलाये डालता है, उससे मिले बिना वे नहीं रह सकते। रोगसे घबराइये नहीं। यह रोग यदि आपके अनन्तकालीन जीव-जीवनका अन्तिम रोग बन सके, तो रोगका स्वागत करना चाहिये, और ऐसा बन सकना आपके हाथ है। आपके हाथसे मेरा मतलब आपके पुरुषार्थसे नहीं है, आपके हृदयसे है। जो यह कह सके कि 'मेरे हाथमें कुछ नहीं है, हे नाथ! सब कुछ तुम्हारे हाथ है, जो चाहे सो करो, तुम्हारी चीजमें मैं एतराज करनेवाला कौन? फिर मैं भी तुम्हारी ही चीज हूँ। एतराज करता हूँ, तो तुम्हीं करते-करवाते हो। तुम्हीं तुम्हारी जानो और जो चाहे सो करो-कराओ।'

(२)

प्रतिकूल स्थितिमें प्रसन्न रहना

प्रिय महोदय, सप्रेम हरिस्मरण। पत्रके उत्तरमें यह कहना है कि प्रतिकूल समयमें सभी कुछ सम्भव है। परंतु इन सब बातोंके होते हुए भी आप-सरीखे विचारशील पुरुषके चित्तमें अशान्ति क्यों रहनी चाहिये? वेदान्त, भक्ति और कर्म—तीनों ही दृष्टियोंसे चित्तका निरुद्वेग रहना उचित है। वर्तमान दुःस्थिति कर्मका फल है, तो उसका भोग अवश्य ही सिर चढ़ाकर प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करना चाहिये। ज्ञानकी दृष्टिमें जहाँ दृश्य-जगत्का अभाव है, वहाँ जगत्की तुच्छातितुच्छ स्थूल स्थितियोंकी तो सत्ता ही कहाँ है? स्वप्नका दुःख जागे हुए बुद्धिमान् पुरुषको क्यों होना चाहिये? अनुकूलता, प्रतिकूलता सारी ही असत् हैं, अज्ञानसे आरोपित हैं। निन्दा-स्तुति,मानापमान, लाभ-हानि—सभी तो मोहके कार्य हैं। इनसे बुद्धिमान्की चित्तवृत्तिमें विकार क्यों होना चाहिये?

सच्चे भक्तकी दृष्टिमें तो सभी कुछ प्रियतम प्रभुकी देन है। वह तो प्रत्येक स्थितिमें प्रियतमका कोमल मधुर स्पर्श पाकर सुखी होता है। किसी भी स्वाँगमें आये, आता वह प्रियतम ही है। फिर भय-चिन्ता किस बातकी? यदि उसका विधान मानें तो उस मंगलमयका प्रत्येक विधान हमारे मंगलके लिये होता है। फिर उसका किया हुआ विधान होनेसे हमारे लिये प्रतिकूल भी अनुकूल हो जाना चाहिये; क्योंकि इसीमें उसको सुख है, ऐसी ही उसकी इच्छा है। और विचार करके देखें तो विधानके रूपमें स्वयं विधाताका ही प्रकाश है।

आपको किसी वैषयिक अनुकूल समयकी आशा और प्रतीक्षा क्यों करनी चाहिये। यदि वैसा अनुकूल समय न भी आया तो क्या हर्ज है? प्रत्येक प्रतिकूलतामें ही अनुकूलताका प्रत्यक्ष अनुभव करना चाहिये। श्रीभगवान्के इन शब्दोंको याद रखना चाहिये—

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्।
स्थिरबुद्धिरसम्मूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः॥

(गीता ५। २०)

समस्त जीवनके वेदान्ताभ्याससे लाभ उठानेका यही तो अवसर है।

फिर भगवान्ने भागवतमें एक जगह ऐसा भी कहा है कि 'जिनपर मैं अनुग्रह करता हूँ, उनके धनका क्रमशः हरण कर लेता हूँ! और अपनी कृपाके द्वारा उनके प्रत्येक उद्योगको असफल करता हूँ।' अतएव आपको तो हरेक दृष्टिसे ही अन्तरमें प्रसन्न, निर्विकार, सम और शान्त रहना चाहिये। यह पत्र मैं आपके लिये ही लिखता हूँ। परंतु इसका यह अर्थ नहीं कि यथासाध्य उद्योग नहीं करना चाहिये, अथवा कष्टमें पड़े हुए घरवालोंके कष्टमें हिस्सा नहीं बँटाना चाहिये। करना सब चाहिये और पूरे बलसे करना चाहिये। परंतु करना चाहिये नाटकके कुशल पात्रकी भाँति ही।

एक बात और ध्यानमें आ गयी। चित्त बहुत ही घबड़ाये तो श्रीमद्भागवतके आठवें स्कन्धके तीसरे अध्यायका कुछ दिनोंतक रोज लगातार आर्तभावसे पाठ करना चाहिये। इससे अद्भुत कार्य होता है; परंतु यह बहुत ऊँचा भाव नहीं है।

खर्च यथासाध्य घटना चाहिये और काम-काजके लिये भी प्रयत्न करते रहना चाहिये। नामस्मरण तो सतत चालू रहना ही चाहिये।

घबड़ाना नहीं चाहिये। याद रखिये, प्रभु सदा आपके साथ हैं। उनकी कृपासे सब कुछ हो सकता है। विषाद करके उनका अपमान नहीं करना चाहिये।

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।

(गीता १८। ५८)

उनका आश्रय लेनेपर, उनमें चित्त लगानेपर उनकी कृपासे सारे कष्टोंसे सहज ही पार हुआ जा सकता है। शेष प्रभुकृपा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०६८, शक १९३३, सन् २०११, सूर्य दक्षिणायन, शरद्-ऋतु, कार्तिक कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ८।४५ बजेतक	गुरु	अश्विनी रात्रिमें ९।३९ बजेतक	१३अक्टूबर	मूल रात्रिमें ९।३९ बजेतक, **अशून्यशयनव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ६।७ बजे।
द्वितीया ,, १०।४९ बजेतक	शुक्र	भरणी ,, १२।८ बजेतक	१४ ,,	भद्रा रात्रिमें ११। ४३ बजेसे।
तृतीया ,, १२।३९ बजेतक	शनि	कृत्तिका ,, २।२० बजेतक	१५ ,,	भद्रा दिनमें १२। ३९ बजेतक, **वृषराशि** प्रातः ६। ४२ बजे, **श्रीगणेशचतुर्थीव्रत (करवाचौथ), चन्द्रोदय** रात्रिमें ७। ३० बजे।
चतुर्थी ,, २।८ बजेतक	रवि	रोहिणी रात्रिशेष ४।८ बजेतक	१६ ,,	
पंचमी ,, ३।१० बजेतक	सोम	मृगशिरा ,, ५।३१ बजेतक	१७ ,,	**मिथुनराशि** सायं ४। ५० बजे।
षष्ठी ,, ३।४४ बजेतक	मंगल	आर्द्रा अहोरात्र	१८ ,,	भद्रा दिनमें ३। ४४ बजेसे रात्रिमें ३। ४४ बजेतक, **तुलासंक्रान्तिमें** सूर्य दिनमें १। २१ बजे।
सप्तमी ,, ३।४५ बजेतक	बुध	आर्द्रा प्रातः ६।२३ बजेतक	१९ ,,	**कर्कराशि** रात्रिमें १२। ३७ बजे, **अहोईव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें १०। ५९ बजे, **सौरकार्तिकमासारम्भ।**
अष्टमी ,, ३।१६ बजे	गुरु	पुनर्वसु ,, ६।४३ बजेतक	२० ,,	**श्रीराधाजयन्ती।**
नवमी ,, २।१९ बजेतक	शुक्र	पुष्य ,, ६।३५ बजेतक आश्लेषा रात्रिशेष ६।० बजेतक	२१ ,,	भद्रा रात्रिमें १। ३७ बजेसे, **सिंहराशि** रात्रिशेष ६। ० बजे, **मूल** प्रातः ६। ३५ बजेसे।
दशमी ,, १२।५७ बजेतक	शनि	मघा ,, ५।७ बजेतक	२२ ,,	मूल रात्रिशेष ५। ७ बजेतक, भद्रा दिनमें १२। ५७ बजेतक।
एकादशी ,, ११।१४ बजेतक	रवि	पू०फा० रात्रिमें ३।५३ बजेतक	२३ ,,	**रम्भाएकादशीव्रत** (सबका), **गोवत्स द्वादशी, राष्ट्रीय कार्तिकमासारम्भ।**
द्वादशी ,, ९।१५ बजेतक	सोम	उ० फा० ,, २।२६ बजेतक	२४ ,,	**सोमप्रदोषव्रत, धनतेरस, धन्वन्तरिजयन्ती, कन्याराशि** दिनमें ९। ३२ बजे, **स्वाती नक्षत्रमें** सूर्य रात्रिशेष ५। ५१ बजे।
त्रयोदशी प्रातः ७।३ बजेतक चतुर्दशी रात्रिशेष ४।४१ बजेतक	मंगल	हस्त ,, १२।५० बजेतक	२५ ,,	भद्रा प्रातः ७। ३ बजेसे रात्रिमें ५। ५२ बजेतक, **नरकचतुर्दशी, हनुमज्जयन्ती, मासशिवरात्रिव्रत।**
अमावस्या रात्रिमें २।१७ बजेतक	बुध	चित्रा ,, ११।४ बजेतक	२६ ,,	**तुलाराशि** दिनमें ११। ५७ बजे, **स्नान-दानश्राद्धादिकी अमावस्या, दीपावली।**

सं० २०६८, शक १९३३, सन् २०११, सूर्य दक्षिणायन, शरद्-ऋतु, कार्तिक शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ११।५६ बजेतक	गुरु	स्वाती रात्रिमें ९।३० बजेतक	२७ अक्टूबर	**अन्नकूट, गोवर्धनपूजा,** काशीसे अन्यत्र।
द्वितीया ,, ९।४१ बजेतक	शुक्र	विशाखा ,, ७।५७ बजेतक	२८ ,,	**वृश्चिकराशि** दिनमें २।२० बजे, **चन्द्रदर्शन, यमद्वितीया, भ्रातृद्वितीया (भइया दूज) गोवर्धनपूजा काशीमें।**
तृतीया ,, ७।३५ बजेतक	शनि	अनुराधा ,, ६।३३ बजेतक	२९ ,,	मूल रात्रिमें ६।३३ बजेसे।
चतुर्थी ,, ५।४७ बजेतक	रवि	ज्येष्ठा सायं ५।२६ बजेतक	३० ,,	भद्रा प्रातः ६।४२ बजेसे रात्रिमें ५।४७ बजेतक, **धनूराशि** सायं ५।२६ बजे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
पंचमी सायं ४।१८ बजेतक	सोम	मूल ,, ४।३९ बजेतक	३१ ,,	मूल सायं ४।३९ बजेतक।
षष्ठी दिनमें ३।१२ बजेतक	मंगल	पू०षा० ,, ४।१३ बजेतक	१ नवम्बर	**मकरराशि** रात्रिमें १०।१३ बजे, **श्रीसूर्यषष्ठीव्रत।**
सप्तमी ,, २।३४ बजेतक	बुध	उ० षा० ,, ४।१६ बजेतक	२ ,,	भद्रा दिनमें २।३४ बजेसे रात्रिमें २।३० बजेतक।
अष्टमी ,, २।२६ बजेतक	गुरु	श्रवण ,, ४।४७ बजेतक	३ ,,	**कुम्भराशि** रात्रिशेष ५।१८ बजे, **पंचकारम्भ** रात्रिशेष ५।१८ बजे, **गोपाष्टमी।**
नवमी ,, २।२९ बजेतक	शुक्र	धनिष्ठा रात्रिमें ५।४९ बजेतक	४ ,,	**अक्षयनवमी, श्रीजगद्धात्री पूजा (बंगाल)।**
दशमी ,, ३।४४ बजेतक	शनि	शतभिषा ,, ७।२० बजेतक	५ ,,	भद्रा रात्रिमें ४।२४ बजेसे।
एकादशी सायं ५।६ बजेतक	रवि	पू०भा० ,, ९।१९ बजेतक	६ ,,	भद्रा सायं ५।६ बजेतक, **मीनराशि** दिनमें २।५० बजेतक, **प्रबोधिनी एकादशीव्रत** (सबका)।
द्वादशी रात्रिमें ६।५१ बजेतक	सोम	उ० भा० ,, ११।३६ बजेतक	७ ,,	**तुलसी-विवाह, विशाखाका** सूर्य दिनमें १२।५९ बजे, **चातुर्मास्यव्रत** समाप्त, **मूल** रात्रिमें ११।३६ बजेसे।
त्रयोदशी ,, ८।५३ बजेतक	मंगल	रेवती ,, २।९ बजेतक	८ ,,	**भौमप्रदोषव्रत, पंचकसमाप्त** रात्रिमें २।९ बजे, **मेषराशि** रात्रिमें २।९ बजे।
चतुर्दशी ,, ११।२ बजेतक	बुध	अश्विनी रात्रिशेष ४।४६ बजेतक	९ ,,	भद्रा रात्रिमें ११।२ बजेसे, **मूल** रात्रिशेष ४।४६ बजेतक, **श्रीवैकुण्ठ चतुर्दशीव्रत, चौमासी चौदश** (जैन)।
पूर्णिमा ,, १।८ बजेतक	गुरु	भरणी अहोरात्र	१० ,,	भद्रा दिनमें १२।६ बजेतक, **श्रीगुरुनानक-जयन्ती, स्नान-दान-व्रतादिकी कार्तिकपूर्णिमा, कार्तिकेय दर्शन, कार्तिक स्नान समाप्त।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०६८, शक १९३३, सन् २०११, सूर्य दक्षिणायन, शरद्-हेमन्त-ऋतु, मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ३।० बजेतक	शुक्र	भरणी प्रातः ७।१९ बजेतक	११नवम्बर	वृषराशि दिनमें १। ५३ बजे।
द्वितीया रात्रिशेष ४।३० बजेतक	शनि	कृत्तिका दिनमें ९।३४ बजेतक	१२ ,,	
तृतीया ,, ५।३३ बजेतक	रवि	रोहिणी ,, ११।२९ बजेतक	१३ ,,	भद्रा सायं ५। २ बजेसे रात्रिशेष ५। ३३ बजेतक, **मिथुनराशि** रात्रिमें १२। १३ बजे।
चतुर्थी ,,६।७ बजेतक	सोम	मृगशिरा ,, १२।५७ बजेतक	१४ ,,	**श्रीगणेशचतुर्थीव्रत**, चन्द्रोदय रात्रिमें ७। ५८ बजे।
पंचमी ,, ६।१० बजेतक	मंगल	आर्द्रा ,, १।५६ बजेतक	१५ ,,	
षष्ठी ,, ५।४३ बजेतक	बुध	पुनर्वसु ,, २।२३ बजेतक	१६ ,,	भद्रा रात्रिशेष ५। ४३ बजेसे,**कर्कराशि** दिनमें ८। १७ बजे।
सप्तमी ,, ४।४५ बजेतक	गुरु	पुष्य ,, २।२२ बजेतक	१७ ,,	मूल दिनमें २। २२ बजेसे, भद्रा सायं ५। १४ बजेतक, **वृश्चिक संक्रान्ति** दिनमें १०। ५६ बजे, हेमन्त-ऋतु प्रारम्भ।
अष्टमी रात्रिमें ३। २४ बजे	शुक्र	आश्लेषा ,, १।५४ बजेतक	१८ ,,	**सिंहराशि** दिनमें १। ५४ बजे, **काल भैरवाष्टमी, रुक्मिणी अष्टमी।**
नवमी ,, १।४२ बजेतक	शनि	मघा ,, १।५ बजेतक	१९ ,,	मूल दिनमें १। ५ बजेतक।
दशमी ,, ११।४३ बजेतक	रवि	पू०फा० ,, ११।५६ बजेतक	२० ,,	भद्रा दिनमें १२। ४३ बजेसे रात्रिमें ११। ४३ बजेतक, **कन्याराशि** रात्रिमें ५। ३५ बजे, **अनुराधा नक्षत्रमें सूर्य** रात्रिमें ५। ५५ बजे।
एकादशी ,, ९।३१ बजेतक	सोम	उ० फा०,,१०।३१ बजेतक	२१ ,,	**उत्पन्नाएकादशीव्रत** (सबका)।
द्वादशी ,,७।१२ बजेतक	मंगल	हस्त ,, ८।५६ बजेतक	२२ ,,	**तुलाराशि** रात्रिमें ८। ६ बजे,**भौमप्रदोषव्रत।**
त्रयोदशी सायं ४।४८ बजेतक	बुध	चित्रा प्रातः ७।१६ बजेतक स्वाती रात्रिशेष ५।३६ बजेतक	२३ ,,	भद्रा सायं ४। ४८ बजेसे रात्रिमें ३। ३८ बजेतक,**मासशिवरात्रिव्रत।**
चतुर्दशी दिनमें २।२८ बजेतक	गुरु	विशाखा रात्रिमें ३।५९ बजेतक	२४ ,,	**वृश्चिकराशि** रात्रिमें १०। २३ बजे,**श्राद्धकी अमावस्या।**
अमावस्या ,, १२।१५बजेतक	शुक्र	अनुराधा ,, २।३४ बजेतक	२५ ,,	मूल रात्रिमें २। ३४ बजेसे , **स्नान-दानादिकी अमावस्या।**

सं० २०६८, शक १९३३, सन् २०११, सूर्य दक्षिणायन, शरद्-हेमन्त-ऋतु, मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें १०।१३ बजे	शनि	ज्येष्ठा रात्रिमें १।२१ बजेतक	२६नवम्बर	**धनूराशि** रात्रिमें १। २१ बजे,**चन्द्रदर्शन।**
द्वितीया ,,८।२६ बजेतक	रवि	मूल ,,१२।३१ बजेतक	२७ ,,	मूल रात्रिमें १२। ३१ बजेतक।
तृतीया प्रातः ६।५९ बजेतक चतुर्थी रात्रिशेष ५।५६ बजेतक	सोम	पू०षा० ,, ११।५९ बजेतक	२८ ,,	भद्रा रात्रिमें ६। २८ बजेसे रात्रिशेष ५। ५६ बजेतक,**मकरराशि** रात्रिशेष ५। ५७ बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
पंचमी ,, ५।२३ बजेतक	मंगल	उ० षा० ,,११।५४ बजेतक	२९ ,,	**श्रीरामविवाहोत्सव।**
षष्ठी ,, ५। १७ बजेतक	बुध	श्रवण ,,१२।१७ बजेतक	३० ,,	**श्रीस्कन्दषष्ठीव्रत, चम्पाषष्ठीव्रत** (महाराष्ट्रमें)।
सप्तमी ,, ५।४३ बजेतक	गुरु	धनिष्ठा ,, १।११ बजेतक	१दिसम्बर	भद्रा रात्रिशेष ५। ४३ बजेसे,**पंचकारम्भ** दिनमें १२। ४४ बजे, **कुम्भराशि** दिनमें १२। ४४ बजे।
अष्टमी ,,६।४१ बजेतक	शुक्र	शतभिषा ,,२।३६ बजेतक	२ ,,	भद्रा रात्रिमें ६। १२ बजेतक।
नवमी अहोरात्र	शनि	पू०भा० रात्रिशेष ४।२७ बजेतक	३ ,,	**मीनराशि** रात्रिमें ९।५९ बजे, **ज्येष्ठा नक्षत्रमें सूर्य** रात्रिमें ९। ६ बजेसे, **महानन्दानवमीव्रत।**
नवमी प्रातः ८।६ बजेतक	रवि	उ० भा० ,,६।४० बजेतक	४ ,,	मूल रात्रिशेष ६। ४० बजेसे।
दशमी दिनमें ९।५४ बजेतक	सोम	रेवती अहोरात्र	५ ,,	भद्रा रात्रिमें १०। ५६ बजेसे।
एकादशी ,,११।५८ बजेतक	मंगल	रेवती दिनमें ९।१२ बजेतक	६ ,,	भद्रा दिनमें ११।५८ बजेतक, **पंचक समाप्त** दिनमें ९।१२ बजे, **मोक्षदा एकादशीव्रत** (सबका), **गीता-जयन्ती, मेषराशि** दिनमें ९। १२ बजे।
द्वादशी ,, २।९ बजेतक	बुध	अश्विनी,,११।४७ बजेतक	७ ,,	**प्रदोषव्रत,** मूल दिनमें ११। ४७ बजेतक।
त्रयोदशी सायं ४। १५ बजेतक	गुरु	भरणी,, २। २० बजेतक	८ ,,	**वृषराशि** रात्रिमें ८। ५५ बजेतक।
चतुर्दशी ,,६।८ बजेतक	शुक्र	कृत्तिका सायं ४।४२ बजेतक	९ ,,	भद्रा रात्रिमें ६। ८ बजे, **पिशाचमोचन यात्रा, कपर्दीश्वर दर्शन।**
पूर्णिमा रात्रिमें ७।३८ बजेतक	शनि	रोहिणी रात्रिमें ६।४२ बजेतक	१० ,,	भद्रा प्रातः ६।५३ बजेतक, **स्नान-दान-व्रतादिकी पूर्णिमा, दत्तात्रेय जयन्ती, चन्द्रग्रहण भारतीय समयानुसार रात्रिमें—प्रारम्भ ६। १५ बजे, मध्य ८।० बजे एवं मोक्ष ९।४८ बजे।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृपानुभूति

(१)

'मेरो भैया कृष्ण-कन्हैया'

मेरा गाँव बुलन्दशहर जिलेमें है। जब मैं कक्षा ४ में पढ़ती थी, तब मेरी हिन्दीकी किताबमें भगवान् श्रीकृष्णका एक पाठ था। उसमें एक चित्रमें श्रीकृष्ण सिरपर मोरपंख बाँधे, हाथमें लकुटी लिये ग्वाल-बालोंके साथ गाय चरा रहे थे, वह चित्र मुझे बहुत अच्छा लगता था। उनकी सुन्दर छवि मेरे मनको बहुत लुभाती थी। समय बीतता गया, मेरा विवाह मथुरा जिलेके एक गाँवमें हो गया। हमारी जाति जादो ठाकुर है और हम अपनेको कृष्णका वंशज मानते हैं। जब कभी कथा होती है, तब यहाँ सभी गाते हैं—*'जादौ पति जादौ राय सन्तन सदा सहाय याही पद गावे स्वामी परमानन्द। भजो राधे कृष्णा राधे कृष्णा राधे गोविन्द'* इसलिये हम सब कृष्णको अपना इष्ट मानते हैं। मेरी सासजी एवं पति कृष्णके चरणोंमें विश्वास रखनेवाले तथा उनके परम भक्त हैं। वे क्या; पूरा व्रजक्षेत्र ही कृष्णका दीवाना है। कृष्णकी भक्ति ब्रजवासियोंका जीवनाधार है।

अब मैं उस कृपामयी घटनाका उल्लेख करती हूँ, जिसने मुझे कृष्णके इतना नजदीक ला दिया। हम छः बहन-भाई थे। मैं सबसे बड़ी थी, बीचमें चार भाई थे; एक बहन सबसे छोटी थी। दो भाइयोंसे छोटा मेरा एक भाई था नाम था 'चन्द्रशेखर', परंतु जब वह थोड़ा बड़ा हुआ तो उसने अपना नाम चन्द्रशेखरसे बदलकर 'कृष्णशेखर' कर लिया; क्योंकि उसकी कृष्णमें भक्ति थी और उसे 'कृष्ण' यह नाम प्रिय लगता था। वह गीताको अपना आदर्श तथा भगवान् श्रीकृष्णको अपना इष्ट मानता था। वह गेहुँआ रंगका बहुत सुन्दर नाक-नक्शवाला, मेधावी, उदार, क्षमावान् एवं अच्छे संस्कारवाला हृष्ट-पुष्ट युवक था! उसका ऐसा स्वभाव था कि कोई भी उससे एक बार मिलकर जीवनभर उसे नहीं भूलता था।

वह बहुत ही दानशील था। किसीके लिये कुछ भी त्याग सकता था। गाँवके गरीब बच्चोंकी बहुत सहायता करता था। उसने खुर्जा पोलिटेकनिकसे जूनियर इंजीनियरका डिप्लोमा किया था। उसमें एक खास आदत थी कि वह गलत बात सहन नहीं कर सकता था। वह मुझे बहुत प्यार करता था। जब-जब मैं गाँव जाती, तब किवाड़की ओटसे मुझे डरानेकी शैतानी करनेसे वह बाज न आता। उसकी एक-एक बात अनोखी थी। वह बहुत अच्छा लिखता था। बहुत अच्छा गाता था। खेत-खलिहानके काम भी बड़ी सरलतासे कर लेता। आत्मविश्वास उसके अन्दर कूट-कूटकर भरा था। वह पढ़ाईमें हमेशा प्रथम आता। अत्यन्त प्रतिभाशाली युवकोंमें उसकी गणना होती थी।

६ अप्रैल १९९९ ई० दिन मंगलवार दोपहर दो बजेकी बात है, गाँवकी एक लड़ाईका बीच-बचाव करनेमें उसे गोली लग गयी, झगड़ा शान्त करनेके उद्देश्यसे वह झगड़ेमें कूद पड़ा और गोलीका शिकार हो गया, तब उसकी उम्र मात्र २८ सालकी थी। मेरे ऊपर तो शोकका पहाड़ टूट पड़ा, इतना प्रतिभाशाली भाई खोकर मैं विक्षिप्त-सी हो गयी, हृदय हाहाकार करके रोता था। मैं पागल-सी हो गयी और अन्दरतक टूट गयी, मुझे न दिनका पता चलता न रातका, खानेमें कोई स्वाद न रहा, मानो मिट्टी खा रही हूँ। मेरा मन हर समय उसकी यादोंमें खोया रहता। जीवन निराशासे भर गया। बच्चों एवं पतिके सामने रोनेसे वे भी दुःखी होते, इसलिये मैं अपना दुःख चुपचाप सहे जा रही थी। किसीसे मिलनेको, कहीं जाने-आनेका बिलकुल मन न होता, बस; एकान्त और भाईकी याद—ये दो चीजें मुझे अच्छी लगतीं।

इस घटनाको बीते हुए तीन-चार महीने हो गये थे तो रक्षाबन्धनका त्यौहार आया। उस दिन उसकी याद बहुत तीव्र हो गयी, जैसे कि वह मुझसे आज ही बिछड़ा हो। रेडियो एवं टी०वी० पर भाई-बहनके गाने आ रहे थे, जिन्हें सुन-सुनकर मेरी बार-बार आँखें भर आतीं, आँसू टपकने लगते, रोकते-रोकते भी हिचकी बँध जाती, पति एवं बच्चे मुझे देखकर बहुत उदास एवं दुःखी थे, परंतु कोई कुछ नहीं कर सकता था। जो भाग्यमें लिखा है, वही होता है एवं भोगना पड़ता है।

शाम हुई, मैंने न कुछ खाया न पीया, मन ही न हुआ। सुबह जो बनाया था, बच्चोंने वही खा लिया। मैं छतपर जाकर पड़ गयी, १० बज गये थे। बच्चे भी पासवाली छतपर जाकर सो गये। मन्दिरमें ११ का घण्टा बजा, पर मुझे नींद ही न आ रही थी। सारा गाँव सो गया। शान्त शीतल उजली पूर्णिमाकी चाँदनी छिटकी हुई थी, आसमान साफ था। चाँद अपनी छटा बिखेर रहा था, पर मेरे हृदयमें अँधेरा था। मैं चुप-चुप सिसक रही थी और रोते-रोते चाँदको देखकर कह रही थी। *'चन्दा रे मेरे भैया से कहना बहना याद करे'* यही कहते-कहते जाने कब मेरी आँख लग गयी, पता न चला, झपकी आते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही मैं क्या देखती हूँ कि भगवान् कृष्ण मेरी चारपाईके पास खड़े हैं। उनका चेहरा शेखर-जैसा है। सिरपर मोरपंख, कमरमें फेटा, उसमें मुरली खुसी है, सुन्दर जड़ाऊ पीताम्बर हवामें लहरा रहा है। वैजयन्तीमाला गलेमें शोभा दे रही है, कुण्डल झिलमिल कर रहे हैं। उन्होंने प्यारसे मेरे सिरपर हाथ रखा और अमृत-सी वाणीमें बोले—'लो मैं आ गया, राखी बाँध', मैं बहुत खुश हुई। मैं बोली—राखी तो बाँध दूँगी, पर आप तो भगवान् हैं मेरे शेखरको भी लेते आते, मुझे उसकी बहुत याद आती है, वे बहुत मधुर हँसी हँसे, फिर बोले—देख मैं तेरा कृष्णशेखर ही तो हूँ। मैंने देखा, सचमुच उनका चेहरा शेखर-जैसा था। मैंने कहा—मेरे शेखरके तो पैदाइशी दो अँगूठे थे। मेरा इतना कहना था कि उन्होंने अपना सीधा हाथ उठाया और मैंने देखा, उनके सचमुच शेखर-जैसे दो अँगूठे हैं। बिलकुल ऐसे ही जैसे शेखरके थे, मैंने दोनों हाथोंसे उनका हाथ पकड़कर आँखोंसे लगा लिया और बोली—तू कहाँ चला गया था, मैं तो रो-रोकर पागल हो गयी। देख, अब मुझे छोड़कर मत जाना, मैं तुझे कितना याद करती थी।

तब वे बड़ी मधुर वाणीमें बोले—तुझे पता है, मैं ही तेरा कृष्णशेखर हूँ, रोना मत। चल, राखी बाँध दे। मैंने तकियेके नीचेसे निकालकर राखी बाँध दी, उन्होंने दुबारा मेरे सिरपर हाथ रखा और उसी समय एक झटकेसे मेरी आँख खुल गयी। वहाँ कोई न था। चाँद हँस रहा था, चाँदनी खिल रही थी, मेरे अन्तरमें प्रकाश जगमगा रहा था। अँधेरा गायब था, एक नयी चेतना, नयी ज्योति, आनन्द एवं शान्ति मेरे हृदयमें समा गयी। चित्त शान्त एवं स्थिर हो गया, मानो कुछ हुआ ही नहीं। उसी दिनसे मैं कृष्णको ही राखी बाँधती हूँ, भैयादूजपर मिठाई खिलाती हूँ। अपनी सारी बातें, सारी परेशानियाँ उन्हींको सुनाती हूँ, उनसे खूब बातें करती हूँ। किसी दु:खसे ज्यादा दु:खी नहीं होती, किसी खुशीसे बहुत खुश नहीं होती। मुझे लगता है कि भगवत्कृपाकी सच्ची अनुभूति मुझे हो गयी है। भइयाके रूपमें प्रकट होकर उन्होंने मेरी पीर हर ली है। अब तो कृष्ण ही मेरी आशा एवं विश्वास बन गये हैं। वे ही मेरे जीवनके आधार बन गये हैं। मेरा मन गुनगुनाता है—***'मेरो भैया कृष्ण कन्हैया धीरको बँधैया कृष्ण कन्हैया, राहको दिखैया कृष्ण कन्हैया, पारको लगैया कृष्ण कन्हैया, नैया को खिवैया कृष्ण कन्हैया, भव को तरैया कृष्ण कन्हैया'***, बोलो भगवान् 'श्रीकृष्णचन्द्रकी जय।'—**श्रीमती उषा सिंह**

(२)

नामनिष्ठाका आनन्द

मैं सिण्डीकेट बैंकमें वरिष्ठ प्रबन्धककी हैसियतसे लगभग २८ साल देशके कई भागोंमें काम कर चुका था, जहाँ मैंने छोटे गाँवोंसे लेकर दिल्ली-जैसे महानगरोंमें बैंकके द्वारा जनसामान्यकी सेवा करनेका अवसर प्राप्त किया था।

दिल्ली-जैसे महानगरमें मेरा जीवन सदा यान्त्रिक और तनावसे भरा हुआ था। मैं जप आदि नित्य अनुष्ठानके लिये मुश्किलसे समय जुटा पा रहा था। फिर भी मैंने नित्य प्रात:काल निष्ठासे भगवान्की प्रार्थना करनेके प्रयत्नको नहीं छोड़ा था।

सन् २००१ ई०में भारत सरकारने बैंकके कर्मचारियोंके लिये स्वयंनिवृत्तिकी घोषणा की। मैं स्वयंनिवृत्तिके बारेमें सोचने लगा तो मेरे जो हितैषी थे, वे सब कहने लगे कि आप स्वयंनिवृत्ति न लें; क्योंकि आपके बच्चे अभी छोटे हैं और आपकी ग्यारह सालकी सर्विस अभी शेष है।

किंतु मुझे ऐसा लगा कि मैं नौकरीके साथ-साथ ठीकसे भगवान्का नाम-जप जितना करना चाहिये, नहीं कर पा रहा हूँ। इससे मेरे मनमें ग्लानि तथा पश्चात्तापका भावबोध बढ़ता जा रहा था, अन्ततः मैंने निर्णय लिया कि मैं अब नौकरी छोड़कर सामान्य जीवन अपना लूँ और निरन्तर भगवान्के पावन नामका जप किया करूँ।

फिर मैंने अपनी पत्नीके साथ इस विषयमें चिन्तन करनेके बाद स्वयंनिवृत्तिका निर्णय ले लिया।

स्वयंनिवृत्तिके बाद मैं अपनेको बड़ा हलका महसूस करने लगा। मैं अपने गाँव, जो मंगलूरके पास है, वहाँ लौट आया। गाँवमें आकर मैंने किताब और स्टेशनरीकी एक दूकान खोलनेके साथ अपने नये व्यावहारिक जीवनकी शुरुआत की। पत्नीके सहयोगसे घरके आँगनमें ही सब्जी और फलोंको उगानेके साथ स्वावलम्बी जीवनकी शुरुआत की।

अब पहले-जैसा तनाव न रहनेसे मुझे जप आदिके लिये समय मिलने लगा। भगवान्की ऐसी कृपा हुई कि नित्य अनुष्ठानके बाद मैं अपने व्यावहारिक कार्य भी सफलतासे सम्पन्न करने लगा।

मेहनत और भगवान्की कृपासे हम आध्यात्मिक जीवन बिता रहे हैं। सरल जीवन-शैली, भगवान्के प्रति अटल विश्वास और भगवान्की कृपासे ही यह सब सम्भव हुआ, ऐसा मैं मानता हूँ।—**कोडक्कल सुब्रह्मण्य भट**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

सदाचार और परोपकारसे इच्छामृत्यु

घटना पुरानी है, किंतु एकदम सत्य है। मेरे पूज्य पिताजी स्व० रतिराम साहू उत्तमसागर पर्वत-शृंखलाके प्रांगणमें बसे ग्राम वंडवी, तहसील मुलाई, जिला बैतूल (मध्यप्रदेश)-के निवासी थे। उनका जीवन सरल, सादगीपूर्ण, सदाचार एवं सत्यपर आधारित तथा धार्मिक था। वे पंढरिनाथ (पंढरपुरके भगवान् विट्ठलनाथ)-के परम भक्त थे। ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर स्नान करके 'विट्ठल-विट्ठल पाण्डुरंग-हरि' का भजन करना तुलसीमाताको जल चढ़ाना एवं पूजा करना उनका नित्यकर्म था। दीन-दुःखियोंकी सेवा करना वे अपना परम धर्म समझते थे। घर आये हुए दुःखी व्यक्तिको भोजन कराये बिना नहीं जाने देते थे। सभीसे स्नेह, प्रेम एवं भाईचारेका व्यवहार करते। जब भी गाँवमें कोई गम्भीर रूपसे बीमार होता, वहाँ जाकर सेवा करते और सान्त्वना देते कि मरण इस पंचतत्त्वके शरीरका होता है, आत्मा तो अमर है। सभी मिलकर भगवान्का भजन करो। रोना बिलकुल नहीं। स्वयं घरसे गंगा, यमुना तथा जिन तीर्थोंमें वे गये थे, वहाँका पवित्र जल एवं तुलसीपत्र मुमूर्षुके मुँहमें रखते और स्वयं भी भगवन्नाममें शामिल हो जाते। जीवनमें उन्होंने कभी सत्यका साथ नहीं छोड़ा, अपनी शक्ति-सामर्थ्यके अनुसार परोपकार ही किया।

समय बीतता गया, पिताजीकी अवस्था भी काफी हो गयी, किंतु वे अपने नियम-धर्मको यथासाध्य पूर्ण करनेका प्रयत्न करते रहते। उन्होंने छः माह पहले बता दिया कि मेरी मृत्यु होलीके धुरड्डीके दिन होगी। इस अवधिमें उन्होंने अपने सभी रिश्तेदारोंके यहाँ जाकर उनको प्रणाम करके कुशल-क्षेम पूछकर कहा—आपके प्रति मुझसे कोई गलती हुई हो तो क्षमा कर देना। चार माहमें सभी रिश्तेदारोंसे मिलकर गाँव आये। गाँवके, समाजके सभी लोगोंसे क्षमा-याचना की कि यदि जीवनमें मुझसे कोई गलती हो गयी हो तो क्षमा करना। मृत्युके पहले परिवारवालोंसे कहा—अपने इष्टदेवताकी पूजा पूरी करो। मेरा समय नजदीक आ गया है। भगवान् विष्णुके दूत आ रहे हैं। मैंने उन्हें प्रसाद लेकर चलनेका वचन दिया है। इष्टदेवताकी पूजा पूर्ण हुई। उन्होंने आरती ली प्रसाद लिया और अन्तमें सबको राम-राम कहा। फिर मेरी माँको कहा—'अपने यहाँ जितने अतिथि आये हैं, सबको भगवान्का प्रसाद दो' और फिर 'विट्ठल-विट्ठल पाण्डुरंग-हरि' कहते हुए थोड़ी ही देरमें उनकी ध्वनि धीरे-धीरे शान्त होती गयी। हमने कान लगाकर सुना तो धीमी गतिसे विट्ठल-विट्ठल पाण्डुरंगकी ध्वनि आते-आते उनकी आत्मा परम चिरशान्तिमें विलीन हो गयी। हम सब लोग यह देखकर अवाक् रह गये, दुःखी भी बहुत हुए, किंतु मनमें यह संतोष था कि पिताजीको अवश्य ही उत्तम गति प्राप्त हुई है। भगवन्नामकी मरणकालिक ध्वनिने उन्हें अवश्य ही वैकुण्ठधाम दिया होगा। पिताजीने अपनी मृत्युके सम्बन्धमें जैसा कहा, ठीक वैसा ही हुआ। इससे हमें यह लगा कि जो जीवनमें सदाचार, परोपकार और भगवन्नामको अपना आधार बना लेता है उसका लोक-परलोक दोनों सुधर जाता है।—**सौ० सुमनबाई सहदेवजी**

(२)

नेक कमाई या ईमानदारी

घटना मार्च १९७४ ई० की है। मैं हिमाचल प्रदेशकी लिखित शासकीय परीक्षामें उत्तीर्ण होकर साक्षात्कारहेतु शिमला गया हुआ था। घरसे शिमलातकका किराया बीस रुपये लगता है। साथमें मैं मात्र एक सौ तीस रुपये लेकर गया था। तीस रुपये तो रास्तेमें ही समाप्त हो गये थे। शिमला पहुँचनेपर मात्र सौ रुपयेका एक नोट ही बचा था। वहाँपर एक 'टूरिस्ट होटल' में मैं ठहरा। शामको मालरोडपर घूमने निकला तो मुझे मेरे कालेजका एक साथी, जो वहाँ एम०ए० कर रहा था, अचानक मिल गया। सौभाग्यसे हम दोनोंकी प्रवृत्ति कुछ अध्यात्मकी ओर रहती थी, अतः बहुत दिनों बाद मिलनेपर आज पुनः आत्मा-परमात्मा-विषयक चर्चा करते हुए हम यत्र-तत्र घूमते रहे। बीचमें एक रेस्टोरेंटमें जाकर हमने कॉफी पी। रातके आठ बज रहे थे। अतः अब हमलोग टूरिस्ट होटलके लिये चल दिये। विश्वविद्यालयमें मुझे कुछ कार्य था, सोचा—'दूसरे दिन सम्भवतः व्यस्ततावश मैं स्वयं वहाँ न जा पाऊँ'; अतः मैंने मित्रसे कहा—'विश्वविद्यालय जाकर हिन्दी-विभाग-कार्यालयमें मेरा यह फार्म तुम जमा करवा दो तो बड़ा अच्छा हो।' कहनेके साथ मैंने कोटकी जेबमें हाथ डाला और फार्म निकालकर उसे दे दिया। पुनः मालरोडकी सीढ़ियोंसे उतरकर हम दोनों रामबाजारसे होते हुए अपने गन्तव्य निवास-स्थानकी ओर बढ़ गये। मालरोडसे टूरिस्ट होटल लगभग दो मीलके फासलेपर पड़ता है। हम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पारस्परिक वार्तालापमें मग्न आगे बढ़े जा रहे थे। शिमला शहरमें व्यक्तियोंके आवागमनसे प्राय: रात-दिन समानरूपसे चहल-पहल बनी रहती है। इस समय भी बहुतसे लोग आ-जा रहे थे। निवास-स्थानसे हम अभी कोई फर्लांगभरकी दूरीपर ही पहुँचे होंगे कि दो पठान नवयुवक कुली भाई दौड़ते हुए हमारे पास आकर रुक गये। हाँफते-हाँफते उनमेंसे एकने मुझसे कहा—'बाबूजी! अपनी जेबोंकी आप फिरसे तलाशी ले लें। हो सकता है, कुछ गिर गया हो।'

इसपर मैंने कोट-पैंटकी जेबें उलट-पुलटकर देखीं। आश्चर्यकी बात कि जेबमें रखा मेरा सौ रुपयेका नोट गायब था। इसी नोटसे मुझे होटल-चार्जके साठ रुपये तथा घरतक पहुँचनेके लिये बीस रुपये खर्च करने थे। मैं घबरा गया। मुझे काटो तो खून नहीं। आँखोंमें आँसू छलक आये। पठान भाईसे मैंने कहा—'मेरे पास सौ रुपयेका एक नोट था। वही कहीं गिर गया है।' इसपर उनमेंसे एकने मुझे वही सौका नोट देते हुए कहा—'बाबूजी! मालरोडकी पौड़ियों (सीढ़ियों)-से उतरते समय जब आपने कोई कागज निकाला था, तभी यह गिर गया था। हम यह देख रहे थे। नोट लेकर हम दोनों आपके पीछे-पीछे दौड़े चले आये। खुदाका शुक्र है कि आप मिल गये।' यह कहते-कहते उनका गला भर आया था। मेरी आँखोंसे भी कृतज्ञताके आँसू छलक पड़े। अपने मित्रसे दस रुपये लेकर मैंने उन्हें पुरस्काररूपमें देना चाहा, पर उन्होंने नहीं लिया। कहाँ नानाविध लोगोंसे भरा-पूरा वह शिमला शहर, कहाँ हमारा मालरोडसे दो मील दूरतक चले आना और कहाँ पठान-बन्धुओंद्वारा गिरते हुए नोटको देख लेना तथा फिर हमें ढूँढ़-खोजकर हमारे सुपुर्द कर देना! इस घटना-क्रमसे मैं यह न जान सका कि इसे नेक कमाईका चमत्कार कहूँ या पठान-बन्धुओंकी ईमानदारी! वस्तुत: पठान कुली-भाइयोंकी ईमानदारी ही स्पष्टत: प्रत्यक्ष है। मेहनतकश गरीब अब भी ईमानदार हैं और इन्हींके द्वारा कभी-कभी आदर्श शिक्षा भी मिल जाती है।—**गिरिधर योगेश्वर**

(३)

उदार डॉक्टर-दम्पती

पूनाके टी०बी सेनेटोरियमके सुपरिन्टेन्डेन्ट डॉ० कौस्तुभने अपनी एक रसियन नर्स (सुचेता)-के गुणोंसे आकर्षित होकर उसके साथ विवाह कर लिया। विवाह करनेके पश्चात् उन्होंने नौकरीसे त्याग-पत्र दे दिया। वे मैसूरके सिविल-हॉस्पिटलमें रोगियोंकी बिना किसी प्रलोभनके (एकदम नि:शुल्क) नि:स्वार्थ सेवा करने लगे।

एक दिन उन्होंने देखा कि पाँच वर्षका एक बालक उनकी झोपड़ीके पास पड़ा-पड़ा कराह रहा है। बहुत पूछनेपर उसने इतना ही बताया कि 'मुझे टी०बी० हुई है, मेरा निर्धन पिता मुझे मरनेके लिये यहाँ फेंक गया है!'

संतानहीन डॉक्टर-दम्पतीको इस प्रकार अप्रत्याशित रूपसे बालक मिल जानेसे बड़ी प्रसन्नता हुई। लगनशील दम्पतीकी योग्य देखभाल तथा अथक सेवासे वह बालक थोड़े ही दिनोंमें पूर्णरूपेण रोगमुक्त हो गया। पश्चात् एक दिन डॉक्टर कौस्तुभके पास एक पागल-जैसी स्त्री आकर खड़ी हो गयी। वह कभी हँसती और कभी थोड़ी ही देरमें रोने लगती। कभी वह ऊँची आवाजमें बोलने लगती—'मेरा लाल कहाँ गया?' जब उसने उस बालकको देखा तो अत्यधिक हर्षके आवेगसे उसकी आँखोंमें आँसू उमड़ आये। उसने रोते हुए ही दौड़कर बालकको अपनी छातीसे लगा लिया। 'मिल गया, मिल गया, मेरा लाल। यही तो है मेरा बेटा।' हर्षावेशसे उन्मत्त हो वह चिल्लाने लगी।

डॉ० कौस्तुभने बहुत ही सावधानीसे उस स्त्रीकी सार-सँभाल की। दो महीनेके उपचार और देखभालसे ही वह पूरी तरह ठीक हो गयी। उसका मानसिक संतुलन बिल्कुल सामान्य हो जानेके बाद जब वह वहाँसे विदा होने लगी तो उसने डॉक्टर-दम्पतीके पैर पकड़ लिये और उनसे अनुनयके स्वरमें कहा—'आप आज्ञा दें तो मैं अपने बेटेको अपने साथ लेती जाऊँ?'

'लेती जाओ बहन! हम अपने सुखके लिये तुम्हें दु:खी करना नहीं चाहते। इसके वियोगने ही तुम्हें पागल बना दिया था। संयोगसे अब यह हमारा भी पुत्र हो गया था। अब यदि तुम इसे हमसे दूर (अपने साथ) ले जाओगी तो हमें इसके वियोगसे कोई विशेष दु:ख न होगा। कारण हमें तो कोई अन्य बालक भी पुत्ररूपमें मिल जायगा, परंतु यदि हमने तुम्हारा यह पुत्र (अपने पास रखकर) तुमसे अलग कर दिया तो फिर तुम अपना पुत्र कहाँ पाओगी? क्योंकि दूसरोंको अपना बनानेकी कला अभी तुमने नहीं सीखी है।' डॉक्टर दम्पतीने अपने अन्तर्भावोंको छिपाते हुए भर्राये स्वरमें इतना ही कहकर उस बालकको उसी क्षण उस दु:खी महिलाको सौंप दिया। अब डॉक्टर-दम्पतीकी आँखें आनन्द और पीड़ा (दोनों)-के मिश्रित भावोंके कारण चमकपूर्ण एवं सजल थीं। यह है उदारता एवं त्यागका भाव। किंतु निर्धनता भी कितनी क्रूर है!—**बी०जे० कापड़ी (अखण्ड आनन्द)**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनन करने योग्य

दयालु बादशाह

जर्मनीके सम्राट् जोसेफ द्वितीय अत्यन्त दयार्द्र हृदयके व्यक्ति थे। वे प्राय: साधारण वस्त्र पहनकर प्रजाकी परिस्थिति जाननेके लिये अकेले ही निकल पड़ते। एक बार वे इसी प्रकार गलियोंमें घूम रहे थे कि एक गरीब लड़का उनके सामने आया और बोला—'महाशय! कृपा करके मुझे कुछ पैसे दीजिये।' लड़का सम्राट्को पहचानता नहीं था, परंतु सम्राट्के दयालु चेहरेको देखकर उसको साहस हो गया और उसने पैसोंकी याचना की। लड़केका करुणाभरा मुँह देखकर बादशाहको दया आ गयी। उन्होंने कहा—'बच्चे! तेरा चेहरा देखनेपर ऐसा लगता है कि तूने थोड़े ही दिनोंसे भीख माँगनी आरम्भ की है।'

बच्चेने कहा—'महाशय! मैंने कभी भीख नहीं माँगी। हमारी स्थिति जब बहुत बिगड़ गयी, तब आज मैं पहले-पहल पैसे माँगने निकला हूँ। कुछ दिन हुए मेरे पिताजी मर गये। हम दो भाई हैं। हमारे पास कुछ भी नहीं है, जिससे हम अपना पेट भर सकें और न कोई सहायता ही करनेवाला है। एक माँ है जो बहुत बीमार है और बेहाल खटियापर पड़ी है।' यों कहते-कहते लड़केका गला भर आया।

सम्राट्ने पूछा—'तेरी माँकी दवा कौन करता है?'

लड़केने कहा—'महाशय! दवा कौन करता? हमारे पास दवाके लिये पैसा कहाँ है? इस दु:खसे ही तो मैं आज विवश होकर भीख माँगने निकला हूँ।'

लड़केकी बात सुनकर सम्राट् जोसेफका हृदय करुणासे भर गया। उन्होंने बालकसे घरका पता पूछकर उसके हाथमें कुछ रुपये देते हुए कहा—जा, जल्दी डॉक्टरको ले जाकर माँको दिखला। राहमें कहीं देर न करना।' बच्चा खुश होकर डॉक्टरको बुलाने दौड़ा।

इधर बादशाह ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उसके घर पहुँचे, उन्हें मालूम हो गया कि उसकी माँकी हालत बहुत खराब है। उन्होंने देखा वह खटियापर पड़ी है और उसका एक छोटा बच्चा पास बैठा रो रहा है। बादशाहने अपनेको डॉक्टर बतलाकर उसकी बीमारीका हाल और कारण पूछा। बादशाहके शब्दोंमें बड़ी मिठास थी और उनमें स्नेह भरा था। यह देखकर उस स्त्रीने कहा—'महाशय! मेरे रोगका कारण तो असलमें हमारी यह बुरी आर्थिक दशा है। कुछ दिन पहले मेरे पतिका देहान्त हो गया। जो कुछ पूँजी थी, सब महाजनोंमें डूब गयी। बच्चे अभी बहुत छोटे हैं, मेरे पास ऐसा कोई साधन नहीं, जिससे मैं उनका पेट भर सकूँ। मुझे अपने मरनेकी चिन्ता नहीं है, पर 'पीछे मेरे अनाथ बच्चोंका क्या होगा? इस चिन्तासे मेरा जी जला जा रहा है। मुझे अत्यन्त दु:खी देखकर बड़ा लड़का आज मेरी दवाके लिये कहीं पैसोंका प्रबन्ध करने गया है।'

गरीब माँ-बेटोंकी दुर्दशा देखकर बादशाहने आँसूभरी आँखोंसे कहा—'बहनजी! आप घबरायें नहीं। भगवान्की कृपासे आप शीघ्र ही अच्छी हो जायँगी और आपको पैसे भी प्राप्त होंगे। मुझे एक कागजका टुकड़ा दीजिये तो मैं आपके रोगकी दवा लिख दूँ।'

घरमें कागज तो था नहीं, उसने लड़केके पढ़नेकी पुस्तकका पिछला पन्ना फाड़ दिया।

बादशाहने उसपर कुछ लिखकर उसे रोगिणीको दे दिया और कहा—'मैंने इसमें दवा लिख दी है, इससे आपकी सारी बीमारी मिट जायगी।' इतना कहकर वे वहाँसे चले गये।

कुछ देर बाद लड़का डॉक्टरको लेकर आया। लड़केने आते ही प्रसन्नताके साथ कहा—'माँ! तू घबरा मत, मुझे रुपये भी मिल गये हैं और मैं डॉक्टरको भी ले आया हूँ।' लड़केको प्रसन्न देखकर माँको बड़ी प्रसन्नता हुई और उसकी आँखोंसे हर्षके आँसू निकल पड़े। उसने बच्चेका मुँह चूमकर कहा—'बेटा! प्रभु तुझे लम्बी आयु दें। अभी पहले भी यहाँ एक डॉक्टर आया था, वह भी कागजपर कोई दवा लिख गया है। डॉक्टर बड़ा ही दयालु था, बेटा!

उसकी बात सुनकर लड़केके साथ आये हुए डॉक्टरने कागज लेकर पढ़ा और उसमें स्वयं सम्राट् जोसेफका हस्ताक्षर देख आश्चर्यसे कहा—'अब तो आपका सारा संकट ही कट गया। मेरे पहले जो डॉक्टर आया था, वह कोई सामान्य डॉक्टर न था। वह जो दवा लिख गया है, वैसी दवा देनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। उस दवासे आपका बड़ा लाभ होगा। बहन! वे स्वयं जर्मनीके बादशाह जोसेफ द्वितीय थे और इस कागजपर आदेश लिख गये हैं कि आपको राजकोषसे बहुत बड़ी धनराशि दी जाय।'

यह सुनकर उस स्त्री और उसके बच्चोंका हृदय कृतज्ञतासे भर गया। वे हर्षसे सराबोर हो गये और कुछ भी बोल न सके। जब जबान खुली, तब गद्‌गद वाणीसे प्रभुसे जोसेफ बादशाहके अचल राज्य और दीर्घ आयुष्यके लिये प्रार्थना करने लगे। उनका रोम-रोम आशीर्वाद देने लगा।

डॉक्टरने भी दवा दी और वह स्त्री जल्दी ही अच्छी हो गयी, सब सुखसे रहने लगे। बादशाहकी दयालुता और बच्चेका मातृ-स्नेह—जिसके कारण वह भीख माँगने निकला—जगत्के लिये आदर्श बन गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना

(इस जपकी अवधि कार्तिक पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०६७ से चैत्र पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०६८ तक रही है)

ते सभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम्।
स्मरन्ति ये स्मारयन्ति हरेर्नाम कलौ युगे॥

'राजन्! मनुष्योंमें वे लोग भाग्यवान् हैं तथा निश्चय ही कृतार्थ हो चुके हैं, जो इस कलियुगमें स्वयं श्रीहरिका नाम-स्मरण करते और दूसरोंसे नाम-स्मरण करवाते हैं।'

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—इस वर्ष भी इस षोडश नाम-महामन्त्रका जप पर्याप्त संख्यामें हुआ है। विवरण इस प्रकार है—

(क) मन्त्र-संख्या ९३,९८,०४,००० (तिरानबे करोड़, अट्ठानबे लाख, चार हजार)

(ख) नाम-संख्या १५,०३,६८,६४,००० (पन्द्रह अरब, तीन करोड़, अड़सठ लाख, चौंसठ हजार)

(ग) षोडश नाम-महामन्त्रके अतिरिक्त अन्य मन्त्रोंका भी जप हुआ है।

(घ) बालक, युवक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, गरीब-अमीर, अपढ़ एवं विद्वान्—सभी तरहके लोगोंने उत्साहसे जपमें योग दिया है। भारतका शायद ही कोई ऐसा प्रदेश बचा हो, जहाँ जप न हुआ हो। भारतके अतिरिक्त बाहर कैलिफोर्निया, फ्रामिंघम, मिडिलटाउन, यू०के०, यू०एस०ए०, यूनाइटेड किंगडम, नेपाल आदिसे भी जप होनेकी सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं।

स्थानोंके नाम—

अंगनापारा, अंगुल, अंडी, अंधेरी इस्ट, अंबरनाथ, अंबाजोगाई, अंबा मुरैना, अंबाला कैंट, अंबाला छावनी, अंबाला शहर, अँवरी, अकबरपुर, अकराबाद, अकलतरा, अकलेरा, अकोट, अकोड़ा, अकोदियामंडी, अकोला, अगराई, अगराना, अचौसा, अछरेरा, अछलदा, अजबपुरा, अजमेर, अजीतगंज, अटेलीमंडी, अटोपनगर, अठहठा, अडावर, अतरपुरा, अतरी, अनपरा, अनूपपुर, अन्नानगर, अबरोलनगर, अबाड़ा, अबूरोड, अमजा, अमनौर, अमरपुरकोडला, अमरपुरा, अमरापुर, अमरा, अमरावती, अमरावती (घाट), अमानगंज, अमिलिया, अमिला नौकापुरा, अमृतपुर, अमृतसर, अरड़का, अरनेठा, अरनोदा, अरवन्ना, अर्जुनपुर, अर्रोली, अलकनन्दा, अलगप्पननगर, अलवर, अलीगढ़, अलीपुरकला, अल्मोड़ा, अवगिला अबाड़ा, अशोकनगर, असंद वार्ड नं० ४, असनावर, अहमदनगर, अहमदाबाद, अहिरवलिया, अहिरौलिया-टेला, अहेरी, अहेरीपुर, आँटाखास, आऊवा, आगरा, आजमपकरिया, आड़की, आढ़सरबास, आणंद, आदित्यपुर, आदिलाबाद, आनन्दनगर, आना, आबूरोड, आभानेरी, आमगाँवबड़ा, आमागढ़, आर्वी, आला, आलेफाटा, ऑवाबुजुर्ग, आष्टा, आसनकुंडिया, आसंग, इन्दौत, इन्दौर, इन्दौरी, इन्द्रप्रस्थनगर, इन्द्रापुर, इचलकरंजी, इजोत, इटही, इटावा, इलाहाबाद, ईशमेला, ईसरदा, ईशानगर, उछटी, उजानगंगोली, उज्जैन, उटकमण्ड, उत्तर दिनाजपुर, उदयपुर, उधमसिंहनगर, उन्नाव, उमरावगंज, उरतुम, उस्मानाबाद, ऊँचिया, ऊगू, ऊदपुर, ऊना, ऊमरी, ऊसरी, ऋषिकेश, एकान्तवाड़ा, एटा, एरिया अरिहनपुरवा, एरू, ऐंचाया, ऐनखेड़ा, ओझवलिया, ओडेकरा, ओरछा, औंवा-बुजुर्ग, औदहा, औरंगाबाद, औरैया, कंचनपिंडरा, कंजाड़ी, कंसोपुर, ककोला, कचन्दा, कछवा, कछुआ, कछुआरा, कटक, कटगी, कटनी, कटरा, कटराबाजार, कटिहार, कठार, कड़ीला, कदमपक्कम, कथगँवा, कथैयाँ, कनखल, कन्दवा, कन्नौज, कन्नौद, कपासन, कमरपुर, करम्मरपुर (ठेकमा), कम्पू, करड़ी, करतानगर, करनाल, करबगाँव, करसौत, करही (शुक्ल), कराह, कराहल, करनड़ी, करोरा, करौदी, कल्याण, कवलपुरा मठिया, कसहापूर्व, कसेरा बाजार, कसोलर, कॉन्धा, काँगड़ा, काउली, काईथवेद, काठमाण्डू (नेपाल), कादरगंज, कानड़ी, कानपुर, कानूनगोयान, कान्दीवली, कामटी, कापड़ीवास, कामता, कालाडेरा, कालापहाड, कालीकट, कालूखाँड़, कावट टाउन, काशीपुर, कासगंज, कासरगोड़, कासिम बाजार, किनाथी, किला, किसरौल, कीशमपुर, कुकडेश्वर, कुचामन सिटी, कुतबपुर, कुन्हील पनेरा, कुमड़ी, कुमारडीह, कुर्मा पाली, कुरदा, कुरुक्षेत्र, कुलुपटांगाबस्ती, कुवारिया, कुसुमपट्टी, कुसैला, कूँचलवाड़ाकला, कूड़ाघाट, कृष्णगढ़, कृष्णानगर, केनावली, केन्दुआ, केराप, केलोग (नागपुर) केशोपुर, केसिंगा, कैथल, कैराना, कोंच, कोईलारी, कोकड़ी, कोकलकचक, कोटद्वार, कोटवंदना, कोटवा, कोटा, कोठी, कोड़री, कोथराखुर्द,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोनैला, कोरबा, कोरदा, कोर्रा, कोलकाता, कोलिया, कोलीवाड़ा, कोसीकला, कोसीर, कौड़िया, कौराकुड़ा, कौलती (नेपाल), कौवाताल, क्योड़क, क्वारी, खंडवा, खकसीस, कुंजी, कुडई, कुंडल, कुंडा, कुंवाहेड़ी, खजुरी, खजुरीरूण्डा, खजुहा, खडगवॉकला, खड़ीत, खन्ना, खन्नौधी, खप्टिहॉकलाँ, खरगपुर, खरगोन, खरेड़ा, खाडसारोड, खारकलाँ, खालवागाँव, खालिखगढ़, खिरनी, खिरीथल लक्षीमा, खीरी, खुँटपला, खुतेही, खुन्टापड़ा (मयूरभंज), खुरई, खुर्जा, खुर्दा, खुरहानमिलिक, खूखूतारा, खेनड़िया, खेलदेश पाण्डेय, खैरखाँ, खैरनगर, खैरवा, खैराचातर, खैराबाद, खैल, खोकराकला, खोकसर, खोर, खोलापुर, खोलीघाट, खौर, गंगाखेड़, गंगापुर सिटी, गंगाशहर, गंगेव, गंज, गंजदारानगर, गढ़कोट, गढ़चन्दूर, गढ़पुरा गढ़फुलझर, गढ़बसई, गढ़िया रंगीन (शाहजहाँपुर), गणेती, गदर पिपरिया, गदरपुर, गनियावली, गम्हरिया, गया, गरनिया, गरसाहड़, गरियाखेड़ी, गरीबनगर, गरोढ, गरोढर खास, गलगलहा कोरी, गल्लाटोला, गहासाँड़, गाँधीधाम, गाँधीनगर, गांभौयान, गाजियाबाद, गाजीपुर, गाड़ाटोल, गाडरवारा, गायघाट, गिन्नौरी तलैया, गिरगाँव, गिरिजास्थान, गिरिडीह, गुंडरदेही, गुड़गाँव, गुड़कला, गुढ़ाकटला, गुढ़ानाथवता, गुदरीबाजार, गुना, गुरुदासपुर, गुलबर्गा, गुलाबबाग, गुवाहाटी, गुहला, गैतरा, गोकुल, गोगोला, गोपालपुर, गोरखपुर, गौरेगाँव, गोल, गोलाघाट, गोवडीहा, गोविन्दगढ़, गौतमबुद्ध नगर, गौर, गौरीपुर, ग्यासपुर, ग्वालियर, घगोंट, घघरा, घटियाली, घराकड़, घाटकोपर, घानीखेडी, घिंचलाया, घुंसी, घुघुली, घुराणा, घोराठी, चंडीगढ़, चंडीस्थान, चंदला, चंदेरी, चंदौसी, चन्द्रनगर, चंद्रपुर, चकमदारी, चकिया, चकौती, चम्पाघाट, चरखारी, चाँदपुर (बिजनौर), चाकरोद, चाकुलिया, चाचा (जैसलमेर), चार हजारे, चास, चिचोली, चितभवन, चित्तौड़गढ़, चित्रकूट, चिनारथलकला, चिनिया, चिलौली, चुल्हाड, चुरू, चेन्नई, चैतड़, चोधई, चोरौत, चौखुटिया, चौखुटी, चौमहला, चौरबा, चौरास, चौसार, चौहटन, छकना, छतर, छत्तीसगढ़, छपरा, छपोरा, छप्पर, छाणीबाजार, छापड़ा, छापर, छिन्दवाड़ा, छिरास, छोटालाम्बा, जंगबहादुरगंज, जंघोरा, जगदलपुर, जगदीशपुर, जगदेवपुर, जगाधरी वर्क्सशाप, जनापुर, जनोटी पालड़ी, जबलपुर, जमशेदपुर, जमोड़ी, जम्मू, जम्मूतवी, जयनारायण (व्यासनगर), जयपुर, जयप्रकाश नगर, जरूड़, जरौल, जलगाँव (जामोद), जलपाईगुड़ी, जलाड़ी, जलेश्वर, जशो, जसदेवपुर, जसवन्तपुरा, जॉजगीर-चॉपा, जाजली, जाजोड, जानडोल, जामनगर, जामपाली, जायधाकर्रा, जालना, जालन्धर, जालन्धर शहर, जालसू, जालोर, जालौन, जूनागढ़, जूना लखनपुर, जूनीहरदी, जियाराम राघवपुर, जुट्ठा, जुलाहकड़ी, जुलाहापाड़ा, जेरई, जैतगढ़, जैतारन, जैतो, जैसलमेर, जोकहाई, जोगीपुर, जोगेन्द्रनगर, जोधपुर जोरहाट, जोरी, जोहरठ, जौलजीवी, जौहा अंवाह, ज्योलीकोट, झज्जर, झाँसी, झापाहुलाक, झालरापाटन, झाला, झूँसी, झूलाघाट, झीमरकालरी, झोझूकला, टुंडी, टपरोग, टाउन, टारी, टिहोली, टीकमगढ़, टी०पी०वमन, टेघरा, टेमर, टोंक, टोडाराय सिंह, ठकुरापार, ठकठौलिया (कोड़िया), ठठारी, ठाणी, ठाणे, ठीकरिया, ठ्या, डंगनिया, डंगालपारा, डडूका, डबरा, डबोक, डालमियानगर, डालीगंज डिंडौरी, डिगुलपुरा, डिडवाड़ी, डिबोई, डिमौली, डिलारी, डीग, डुमरा, डुमराँव, डुमेहर, डूँगरपुर, डोंगरिया, डोमचॉच बाजार, ढकनालहिया, ढढ़ानामिल्ली, ढाणा, ढेकवारी, ढौरमिश्रा (दुर्ग), तॅवरा, तरकेरी तरभा, तरीचरकलॉ, तरौका, तलज, तल्याहड़, तात्यापारा चौक (रायपुर), ताथेड़, ताल, तालबन्ना, तिगाँव, तिलकवाड़ा, तिली, तिलोकपुर, तिल्दा, तितरिया, तुनी, तुलाह, तेजबाग, तोता, तोंडार-उदयगीर, तोसीणा, थरेट, थाणे, दड़ीबा, दातारपुर, दतिया, ददुवरी, दयालपुरा, दरगहिया, दवाला, दसरंगपुर, दसनकरेड़ा, दसूहा, दहमी, दहियावा, दहिवद, दहिसार, दातारामगढ़, दामनजोती, दिग्धी, दियरी, दिमनी, दिलोना, दिलौरी, दिल्ली, दीक्षितपुरा, दुबारी, दुबेपुर, दुमका, दुर्ग, देईखेड़ा, देव, देवका, देवखैरा, देवगाँव, देवतोली, देवनगर, देवपुर देवरी, देवरीकला, देवरीनाहर, देवास, देवीपुरा, देहरादून, दौलतगढ़, दौसा, द्वारका, धनहरा, धन्धौरा, धमतरी, धरमपेठ, धर्मपुर, धर्मापुरा, धामन्दा, धार, धारजोर, धारवाड़, धुले, धौलपुर, नईबाजार, नखन, नदियामी (गोठ), ननौरा, नन्दावता, नबीबाजार, नयापुरवा, नयी दिल्ली, नरपतगंज, नरसिंहपुर, नरीखेड़ा, नलखेड़ा, नल्लाजेरला, नवलखा, नांगलोई, नांदिया, नांदियाखेड़ा, नांदेड़, नाकोट, नागपुर, नागलपुर, नागौर, नाचनी, नाथूखेड़ी, नाथूनघाटी, नानामाण्डवा, नारकण्डा, नारनौल, नारायणगढ़, नारायणपुर, नारायणपुरा, नालछा, नासिक, नाहरगढ़, निम्बाहेड़ा, निगदी, निबिहा, निमसर, निमाज (पाली), नियमताबाद, निरालानगर, नियामताबाद, निरौधा, निवाड़ी, नीदर, नीमच, नीलगिरि, नेनूपट्टी, नेपाल, नेल्हारा, नेवढ़िया, नेवरा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेवारी (फुलवारी), नेहरूग्राम, नैनवा, नैनी (डोहरिया), नैनीताल, नोएडा, नोखा, नोनार (पीरो), नोनीहाट, नोहर, नौतनवाँ बाजार, नौगवाँ पकड़िया, नौगाँव, नौगॉव (पट्टीचौरा), पंडतेहड़, पंडरी, पंडेर, पकड़िया, पगारा, पचोर, पतालघुटकुरी, पत्योरा, पटना, पटना सिटी, पटियाला, पटियालीगेट, पटेगना, पटेलनगर, पटेल भीखापाली, पटोरी, पटौदी, पट्टी, पड़रिया चेतसिंह, पद्मनाभ नगर, पन्ना, पथुली, पन्हौना, परतावल, परतुर, परभड़ी, परवत्ती, परसवाड़ा घाट, परसाई-पिपरिया, परसाधाम, परसापाली, परसौली, पर्णा, पलवल, पलाई, पलाड़ा, पलानसरी, पलेई, पशुपुला, पहरा (महोबा), पाँगरी, पाण्डुकेश्वर, पाण्डेयडीह, पातुड़ी, पानगॉव, पानदा, पानापुर, पानीगॉव, पानीपथ, पायली, पालाक्कड़, पाली, पाली मारवाड़, पाहल, पिंडराई, पिछोर, पिंजड़ा, पिठौरा, पिथौरा, पिपरा तहसील, पिपरावा, पिपरिया, पिपलगाँव सराय, पिपला, पिपली आचार्यान्, पीठ पीलीभीत, पीसांगन, पुणे, पुनासा, पुपरीबाजार, पुरूलिया, पुरेना, पुलगॉव, पूर्व मुम्बई, पोखरभिण्डा, पोखरिया, पोटसो, पोथीपाथर, पौना, प्राचीन टिकैतगंज, प्रतापपुर तरहर, प्रवासपाल्या, प्रीतमपुरी, फतेहगढ़, फतेहपुर, फरकपुर, फरीदाबाद, फर्रुखाबाद, फागा, फागी, फाजिलका, फिरवासी, फिरोजपुर, फिरोजाबाद, फुलवरिया कैन्ट, फुलवरिया टोला, फुलहर, फुलेरा, फूलपुररामा, फूलबेहड़, फैजाबाद, बंगलौर, बगदड़िया, बगाय, बघेरा, बछौर, बटेरा, बड़कागाँव, बड़खेरवा, बड़यास, बड़ागॉव, बड़ाबाजार, बड़ारा, बड़ारावला-माचलपुर, बड़ालू, बड़ोदरा, बड़ेहरदी, बड़ौदा, बतरौली, बनबसा, बनियागॉव (कोड़ागॉव), बबेरू, बभनी, बभनौली, बमिढ़ा, बमूछपरा, बमरोली, बरईपारा, बरखेड़ा, बरखेडालोया, बरखेड़ासोमा, बरडा, बडेंज, बरमकेला, बरवाडीह, बरारी, बराभूम बाजार, बरेली, बरीपुरा, बरूड़ खरगोन, बरूड़ (टाडा), बरेलीकलॉं, बरेलीखुर्द, बरैल, बरैला, बरोरी, बरोहा, बर्धमान, बर्धमान, बलरामपुर, बलवड्डा, बलवाड़ा, बलिया, बलेवा, बलैया, बलौदा, बसंत, बसंतपुर, बसईकाजी, बसदेहड़ा, बसन्तनाथ, बसरेहर, बसान, बसुहार, बहनेरा, बहनोली, बहादुरपुर, बॉकी, बाँगरोद, बाँदा, बाँद्रा, बाँस, बाँसाकला, बाँसवाडा, बाकरगंज, बागपत, बाडमेर, बाड़ापारी, बाढ़, बाढ़बाजार (पटना), बाणगंगा, बाबापुर, बामौरीताल, बामनबाड़ा, बायतू, बार, बारा (लालगंज), बारासीवनी, बालसी, बालाघाट, बालापुर, बामनबाड़ा, बालीहबड़ा, बालेश्वर, बालोतरा, बावड़ियाकला, बावल, बिटकुली, बिटोरा, बिदोली, बिनौली, बिवार, बीकानेर, बीड़, बीड़काखेड़ा, बीदर, बीनागंज, बुढ़नापुर, बुरहानपुर, बुर्दा, बुलन्दशहर, बुल्ढाणा, बूदी, बूरमाजरा, बेउर, बेगू, बेनियाकाबास, बेनीपुर, बेनोड़ा (शहीद), बेमेतरा, बेलड़ा, बेलरगॉव, बेलसोन्डा, बेलोना, बैकुंड, बैगनी, बैतूल, बैतूलबाजार, बैरटी, बैला, बोदवढ़, बोधन, बोरनार, बोरीवली, बोरीस, ब्रह्मपुर, ब्रह्मपुरी, ब्यावर, भंडारा, भगबुआ, भगवानपुर, भजौरा, भट्टू (बैजनाथ), भटवलिया, भटवलिया (गढ़यानी), भटवाड़ा, भटिंडा, भटेवराबाजार, भदौला, भ्मकी-जबलपुर, भरगढ़, भरतनगर, भरतपुर, भरवाई, भरूच, भलस्वा ईसापुर, भवनपुरा, भवानीपुर, भॉटा, भाड़ापिपल्या, भावगढ़, भागलपुर, भादरा, भाभापुर, भरौलीखुर्द, भिडासरी, भिवण्डी, भिवानी, भीखनपुर, भीखापाली, भीमदासपुर, भुवनेश्वर, भुसावल, भूड़को, भूतौली, भून्तर, भूपालगंज (भीलवाड़ा), भेड़वन, भेलाखुर्द, भैसोड़ा, भोकरन, भोजपुर, भोजौली, भोपाल, भोपालगढ़, भोरडा, भौनापार, भ्रमरपुर, मंगलपुर, मंगरुवनाथ, मंचरियाल, मंजेश्वर, मंजलपुर, मंझौली, मंडी अटेली, मंडीगोविन्द, मंडीदीप, मंदसौर, मंसूरपुर, मऊनाथ भंजन, मकराना, मखदुमपुर, मगरलोड, मगराना, मगरिया, मगोरी, मघौना, मचाड़ी, मजगुवाँखुर्द, मझेवला, मझरैन, मटवा, मड़ोरी, मतवाना, मत्तेपुर, मथुरा, मदनगंजकिशनगढ़, मदारीचक, मधुपुर, मधुबनी, मनकहरी, मनसुली (आर) मनिगाँव, मन्नाडपल्ली, मलकापुर, मलगी, मलहद, मलाड, मलावर, मलासा, मलिका, मसमानो, महका, महगाँव, महतोडीह, महनियाबाँस, महमदाबाजार, महरौनी, महरौली, महलसरा, महाजनान, महादेवा, महाराजपुर महावीर नगर, महासमुन्द, महिदपुर, महिषी, महुआखेड़ा, महुआशाला, महुडर, महुदार, महुरा, महू, महेन्द्रगढ़, महेसाना, महेसाना, महोवा, माजलपुर, मांडल, मांडवी, मांडावास, माचलपुर, माजरा, माडलगढ़, माढ़ोताल, माणिकपुर, माधोडीह, माधोपुर, मानकपुर, मानसर खेड़ी, मान- सरोवर, मालवीय जंक्शन, माल्हनबाड़ा, माहिदपुर, मिर्जापुर, मिश्रपुर, मीन्डी, मीडसावंगी, मीतली, मीरकी सराय, मीरापुर, मुँगेली, मुम्बई, मुक्तेश्वर, मुखेड़ विद्यानगर, मुजफ्फरनगर, मुजफ्फरपुर, मुड़पार, मुबारकपुर (काँटी), मुरवानी, मुरादाबाद, मुरैना, मुर्रई, मुर्तुपार, मुल्लनपुर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुलुण्ड, मुसेदपुर, मूडी, मूढ़ीपार, मूल, मेघालय, मेघौल, मेठवाड़ा, मेडुआडीह, मेदिनीपुर, मेमोरान, मेरठ, मेवड़ा, मैनयोह, मैरमपुर, मैरून्दा, मैशांग, मोगा, मोदीनगर, मोरली, मोरिन्डा, मोहतरा, मोहनघाटी, मोहाली, मौजपुर, मौडमंडी, यमुनानगर, यमुनाविहार, युवराजपुर, यादवछापर, रंगिया, रक्षापुर, रेजवारी, रठेरा, रतनगवाँ, रतनपार, रतनपुर, रतनपुरा, रतनमहका, रतवाई, रन्मौद, रबूपुरा, रामपुर, रमलवत, ररी, रसूलपुर, रहुआ-तुलसियाही, रहली, राँची, राऊ, राजकिशोर नगर, राजनाद गाँव, राजपुर, राजपुरा, राजा आहर, राजरूपपुर, राजसमन्द, राजौरी गार्डन, राटन, राधाऊर, रानीकटरा, रानीगंज, रामकोला, रामगढ़ जबन्धे, रामचन्द्रपुर, रामनगर, रामपुर, रामपुर बाकेंपुर, रामपुर विद्युतनगर, रामपुरी पुरानी कर्वी, रामेश्वर कम्पा, रायगढ़, रायपुर, रायपुरसानी, रायरंगपुर, रायला, रिवालसर, रिसदा, रीवा, रूई, रूखाई नेवादा, रूड़की, रूदासी, रूदौली, रूधौली, रूद्रप्रयाग, रूद्रासी, रेनवाल किशनपुर, रैगाँव, रैहन, रोकड़ी, रोपा, रोहनिया, रोहिणी, लक्सर, लक्ष्मणगढ़, लक्ष्मीपुर सागर, लक्ष्मीपुर सायत, लखनऊ, लखनपुर, लखीमपुर खीरी, लखौरा, ललितनगर, लश्कर, लहरीतिवारीडीह, लहार हवेली, लहेरिया सराय, लाखेरी, लाडपुरा, लातूर, लालगंज, लालगढ़, लालनगर, लालपुर, लामाटोला, लारौन, लावन, लखमीसर, लिटाईपाली, लिलुआ, लीमाचौहान, लुधियाना, लुहारी, लुहासिंहा, लोहरियासाल पल्ला, लोपड़ा, लोफंदी, लोहटिया बाजार, लोहाघाट, लोहारा, वंडा, वदनरेंगगाई, वराटी, वर्धा, बल्लभनगर, वसई, वसाहल, वाड़गंगा, वाड़ा, वापी, वाराणसी, वाराहीहाट सप्लेड, वासीम, वाहेगाँव दिमनी, विजनौर, विजयपुर रेती, विजयाकाया कला, विदिशा, विनिका, विरहाकन्हाई, विलसंडा, विलेपारले पश्चिम, विशाखापट्टनम, विशाड़, विशुनपुरवा, विष्णुपुर, वीरपुर, वीरमित्रापुर, वीरवाँ बाबू टोला, वृन्दावन, वेल्डवार, वैदगंज (हरदोई), वैर, वैरगाछी, वैशाली नगर, व्यावर, व्यासनगर, शहडोल, शहादतगंज, शान्तिपुरी, शाजापुर, शामली, शासन, शास्त्रीनगर, शाहकोट, शाहजहाँपुर, शाहजहाँपुर निनायाँ, शाहतलाई, शाहपुर, शाहपुर (मनियारी-पट्टी), शाहपुरा (गोगावाँ), शाहबाद, शाहापुर, शिंदी, शिकारपुर, शिकोहाबाद, शिवगंज, शिवपुरी, शिवाड़, शेखपुर, शेखपुर अजीत, शेखपुर-आशिक, शेखपुर बुजुर्ग, शेगाँव, शेरगढ़, शेरूड़ा, शोलापुर, श्यामगढ़, श्रीगंगानगर, श्रीनगर, श्रीपाल वसन्त, श्रीबालाजी, श्रीरामपुर, श्रीरामपुरी भगवानपुर, श्रीवास शीतलापुरी, संगनेश्वर नगर, संगरिया, संगनेश्वरनगर, संगावली, संघर, संघोल, सकराया, सकरी, सक्ति, सठिया, सतना, सदाकद आश्रम (विहार), सदाशिवपेठ, समस्तीपुर, सरदमपिंडरा, सरहुला, सराईधेला, सराईपाली, सरेई-चम्पुआ, सरैयाँ, सरैया प्रवेशपुर, सल्लोपाट, सवाई माधोपुर, सवजपुरा, सवौर, ससना, सहडोल, सहरसा, सहार, सहारनपुर, सहुरिया, सांगरिया, साम्भरलेक, सावण, साइन, सागर, सादाबाद, सादीपुर, सादुल, सानण, सावरमती, सारवाड़ी, सारेयात, सालोन बी, सावड़, सावन, सावनेर, सावली, सासनी, साहिबाबाद, साहू, साहूकारा, सिंहा यूसुफपुर, सिंगोली, सिउरी गोपीनाथपुर, सिगाड़ी, सिधारी, सितारगंज, सिधौली, सिमडेगा, सिमलैगर बाजार, सिरपुर कागजनगर, सिरहौल, सिरोही, सिलीगुड़ी, सिवनी, सिसई, सीकर, सीतामढ़ी, सीनखेड़ा, सीहोर सुन्दरी, सुखलिया, सुगवा, सुजिया मोहलिया, सुठालिया सुधारबाजार, सुनाम, सुन्हेत, सुपौल बाजार, सुभाषनगर, सुरखेड़ा, सुरपूरा, सुरही, सुर्खी, सुर्री, सुल्तानपुर, सूठा, सूथा, सूरत, सूरजपुर, सूरजपुर कला, सूर्यगढ़, सेढ़ा, सेनाकला, सेमरडाड़ी (खजनी), सेमरा घुनवारा, सेमरा बाजार, सेमराहाट, सेमरिया, सेलापुर, सेवठागढ़, सैंथिया, सैमल चौड़, सोंगर, सोनई, सोनापुर, सोनापुर हाट, सोनाहातु, सोनीपत, सोलापुर, सोहन, हजारीबाग, हटनी (घोपरडीहा) हथौड़ाखेड़ा, हनुमानगढ़, हमीदपुर, हमीरपुर, हरदया, हरदा, हरदोई, हरसौली, हरिद्वार, हरिपुरकलाँ, हरिहरपुर, हल्द्वानी, हसनपालीया, हसनपुर, हसलपुर (बोडखी), हाँसी, हाँजीपुर, हातोद, हाथरस, हाथीथान (भून्तर), हापुड़, हामी, हालीशहरकोना, हिंगनघाट, हिंडौनसिटी, हुंडालखेल, हिगोलाकला, हिम्मतगंज, हिरनमगरी, हुबली, हुमायूँपुर, हुस्सेछापर, हूर, हैदराबाद, हौजे, होशंगाबाद, होशियारपुर।

श्रीभगवन्नाम-जपके जापक महानुभावोंको अपना नाम-पता साफ-साफ अक्षरोंमें लिखना चाहिये जिससे उनके ग्राम/नगरका शुद्ध नाम दिया जा सके। [सं०]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कल्याण' के वार्षिक ग्राहकोंसे नम्र निवेदन

आगामी वर्ष ८६ का विशेषाङ्क **'लिङ्गमहापुराणाङ्क'** का प्रेषण जनवरी मासके प्रथम सप्ताहसे प्रारम्भ करनेका प्रयास है। जिन ग्राहकोंका सदस्यता-शुल्क १५ दिसम्बरतक **'कल्याण-कार्यालय', गोरखपुर** या **गीताप्रेसकी निम्न निजी दूकानों**पर जमा हो जायगा, उन्हें विशेषाङ्क रजिस्ट्रीसे प्रेषित किया जायगा। शेष सभी वार्षिक ग्राहकोंको विशेषाङ्क वी०पी०पी० से प्रेषित होगा। वी०पी०पी० से अङ्क प्रेषित करनेपर ग्राहकोंको रजिस्ट्रीसे भेजे गये अङ्ककी अपेक्षा वी०पी०पी० खर्च रु० १० तथा डाक-विभागद्वारा लिया जानेवाला मनीआर्डर कमीशन भी देना पड़ता है। अतः सदस्यता-शुल्क मनीआर्डर/बैंक ड्राफ्ट या जिस बैंककी शाखा गोरखपुरमें हो उसके मल्टीसिटी चेकद्वारा शीघ्र भेज देना चाहिये। रकम भेजते समय अपनी ग्राहक-संख्या एवं पूरा नाम-पता, पिनकोडसहित स्पष्ट लिखना चाहिये।

किसी कारणसे यदि आगामी वर्षमें ग्राहक नहीं रहना हो तो पत्रद्वारा अवश्य सूचित कर दें, जिससे वी०पी०पी०से प्रेषण रोका जा सके।

'कल्याण' द्वारा सदस्यता-शुल्क प्राप्त करनेके लिये कोई भी एजेन्ट नियुक्त नहीं किये गये हैं। अतः 'कल्याण' का प्रतिनिधि बतानेवाले किसी अपरिचित व्यक्तिको 'कल्याण' का शुल्क न दें।

सदस्यता-शुल्क— *वार्षिक* भारतमें रु० १७० (सजिल्द रु० १९०), *पञ्चवर्षीय* शुल्क रु० ८५० (सजिल्द रु० ९५०)

अब आजीवन/पन्द्रहवर्षीय/दसवर्षीय सदस्य नहीं बनाये जाते हैं।

अन्य देशोंमें (वार्षिक सदस्यता-शुल्क)—US $ 45 (रु० २०००) Air Mail,
(US $ 6 Bank Collection Charges extra). (विदेशोंमें पञ्चवर्षीय ग्राहक नहीं बनाये जाते हैं।)

'गीताप्रेस' गोरखपुरकी निजी दूकानें

गोरखपुर-	गीताप्रेस—पो० गीताप्रेस
दिल्ली-	२६०९, नयी सड़क
कोलकाता-	गोबिन्दभवन-कार्यालय; १५१, महात्मा गाँधी रोड
मुम्बई-	२८२, सामलदास गाँधी मार्ग (प्रिन्सेस स्ट्रीट) मरीन लाईन्स स्टेशनके पास
कानपुर-	२४/५५, बिरहाना रोड
पटना-	अशोकराजपथ, महिला अस्पतालके सामने
राँची-	कार्ट सराय रोड, अपर बाजार, बिड़ला गद्दीके प्रथम तलपर
सूरत-	वैभव एपार्टमेन्ट, नूतन निवासके सामने, भटार रोड
इन्दौर-	जी० ५, श्रीवर्धन, ४ आर. एन. टी. मार्ग
जलगाँव-	७, भीमसिंह मार्केट, रेलवे स्टेशनके पास
हैदराबाद-	४१, ४-४-१, दिलशाद प्लाजा, सुल्तान बाजार
नागपुर-	श्रीजी कृपा कॉम्प्लेक्स, ८५१, न्यू इतवारी रोड
कटक-	भरतिया टावर्स, बादाम बाड़ी
रायपुर-	मित्तल कॉम्प्लेक्स, गंजपारा, तेलघानी चौक
वाराणसी-	५९/९, नीचीबाग
हरिद्वार-	सब्जीमण्डी, मोतीबाजार
ऋषिकेश-	गीताभवन, पो० स्वर्गाश्रम
कोयम्बटूर-	गीताप्रेस मेंशन, ८/१ एम, रेसकोर्स
बेंगलोर-	१५, फोर्थ 'इ' क्रास, के० एस० गार्डेन, लालबाग रोड

फुटकर पुस्तक-दूकानें

चूरू-	ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, पुरानी सड़क
ऋषिकेश-	मुनिकी रेती
तिरुपति-	शॉप नं० ५६, टी० टी० डी० मिनी शॉपिंग कॉम्प्लेक्स, तिरुमलाई हिल्स
बेरहामपुर-	म्युनिसिपल मार्केट काम्प्लेक्स, ब्लाक-बी, स्टाल नं० ५७—६०, प्रथम तल, के० एन० रोड (मुर्शिदाबाद)

स्टेशन-स्टाल

दिल्ली	(प्लेटफार्म नं० १२)
नयी दिल्ली	(नं० १६)
हजरत निजामुद्दीन [दिल्ली]	(नं० ४-५)
अन्तर्राज्यीय बस-अड्डा, दिल्ली।	
कोटा [राजस्थान]	(नं० १)
बीकानेर	(नं० १)
गोरखपुर	(नं० [illegible])
कानपुर	(नं० १)
लखनऊ	[एन० ई० रेलवे]
वाराणसी	(नं० ४-५)
मुगलसराय	(नं० ३-४)
हरिद्वार	(नं० १)
पटना	(मुख्य प्रवेशद्वार)
राँची	(नं० १)
धनबाद	(नं० २-३)
मुजफ्फरपुर	(नं० १)
समस्तीपुर	(नं० २)
हावड़ा	(नं० ५ तथा १८ दोनोंपर)
कोलकाता	(नं० १)
सियालदा मेन	(प्लेटफार्म नं० ८)
आसनसोल	(नं० ५)
कटक	(नं० १)
भुवनेश्वर	(नं० १)
अहमदाबाद	(नं० २-३)
राजकोट	(नं० १)
जामनगर	(नं० १)
भरुच	(नं० ४-५)
इन्दौर	(नं० ५)
वडोदरा	(नं० ४-५)
औरंगाबाद [महाराष्ट्र]	(नं० १)
सिकन्दराबाद [आं० प्र०]	(नं० १)
गुवाहाटी	(नं० १)
खड़गपुर	(नं० १-२)
रायपुर [छत्तीसगढ़]	(नं० १)
बेंगलोर	(नं० १)
यशवन्तपुर	(नं० ६)
श्री सत्यसाईं प्रशान्ति निलयम् [दक्षिण-मध्य रेलवे]	(नं० १)

Central Library Gurukul Kangri University Haridwar

उपर्युक्त सभी गीताप्रेस गोरखपुरकी निजी दूकानों एवं स्टेशन-स्टालोंपर कल्याणका शुल्क जमा कराके रसीद प्राप्त की जा सकती है।

निजी दूकानोंसे उपलब्ध होनेपर विशेषाङ्क/मासिक अङ्क लिया जा सकता है। ग्राहकोंके अनुरोधपर मासिक अङ्क गोरखपुरसे भी भेजनेकी व्यवस्था है।

व्यवस्थापक—**'कल्याण-कार्यालय', पो०—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५**

पुनः छपकर तैयार

श्रीरामचरितमानस रोमन—संस्करण पुस्तकाकार (कोड 1617) विशेष पतले कागजपर, मूल्य रु० १००, रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंग-खर्च रु० २८ अतिरिक्त।

श्रीगणेश-अङ्क—(कोड 657) मूल्य रु० १००, रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंगखर्च रु० ३० अतिरिक्त।

वेद-कथाङ्क—(कोड 1044) मूल्य रु० १००, रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंगखर्च रु० ३० अतिरिक्त।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र० ति० २०-९-२०११

रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2011-2013

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2011-2013

वयोवृद्ध पाठकोंकी सुविधाहेतु—बृहदाकार, मोटा टाइपमें गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित ७ ग्रन्थ

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण
कोड 1907, मूल्य रु० ४०० +डाकखर्च रु० ६०
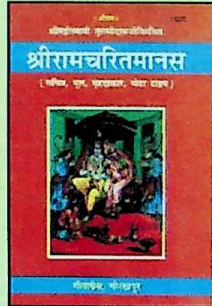
श्रीरामचरितमानस
कोड 1436, मूल्य रु० २०० +डाकखर्च रु० ४५
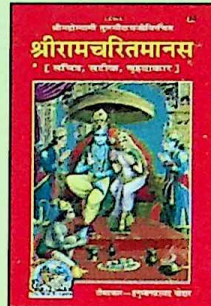
श्रीरामचरितमानस
कोड 80, मूल्य रु० ३५० +डाकखर्च रु० ५५
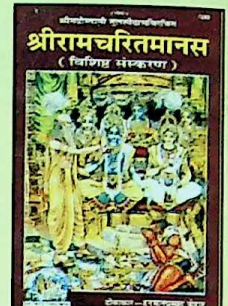
श्रीरामचरितमानस (विशिष्ट संस्करण)
कोड 1389, मूल्य रु० ४५० +डाकखर्च रु० ६५
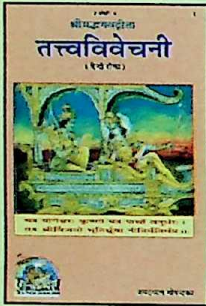
तत्त्वविवेचनी
कोड 1, मूल्य रु० २०० +डाकखर्च रु० ५०
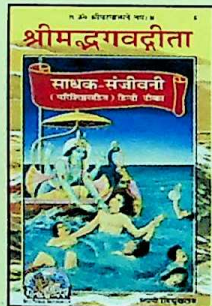
श्रीमद्भगवद्गीता साधक-संजीवनी
कोड 5, मूल्य रु० ३०० +डाकखर्च रु० ६५

श्रीशुक-सुधा-सागर
कोड 25, मूल्य रु० ४०० +डाकखर्च रु० ६०

इन ग्रन्थोंकी साइज १४½ इंच × ११ इंच है।

गीता-दैनन्दिनी (सन् २०१२) अक्टूबर मासतक पर्याप्त उपलब्धि सम्भावित

गीता-दैनन्दिनी गीताके दैनिक अध्ययन एवं मननकी प्रेरणा देती है। इसे व्यापारिक प्रतिष्ठान वार्षिक उपहारके रूपमें वितरित करके गीता-प्रसारमें सहयोगी बन सकते हैं।

१- **पुस्तकाकार-विशिष्ट संस्करण**—गीताके मूल श्लोक एवं हिन्दी अनुवादके साथ (**कोड** 1431), बँगला अनुवादके साथ (**कोड 1489**), ओड़िआ अनुवादके साथ (**कोड 1644**), तेलुगु अनुवादके साथ (**कोड 1714**)—प्रत्येकका मूल्य रु० ५५ (रजिस्टर्ड डाकखर्च रु० २५ अतिरिक्त)।

२- **पुस्तकाकार-प्लास्टिक आवरण (कोड 503)**—गीताके मूल श्लोक एवं सूक्तियाँ, मूल्य रु० ४० (रजिस्टर्ड डाकखर्च रु० २५ अतिरिक्त)।

३- **पॉकेट साइज—(कोड 506)** मूल्य रु० २५ (रजिस्टर्ड डाकखर्च रु० २२ अतिरिक्त)।

४- **लघु आकार (कोड 1769) पतले कागजपर पॉकेटमें रखनेयोग्य**—मूल्य रु० १५ (रजिस्टर्ड डाकखर्च रु० २० अतिरिक्त)।

पूर्वकी भाँति सभी संस्करणोंमें सम्पूर्ण गीता, बहुरंगे उपासनायोग्य चित्र, प्रार्थना, कल्याणकारी लेख, वर्षभरके व्रत-त्योहार, विवाह-मुहूर्त्त, तिथि, वार, संक्षिप्त पञ्चाङ्ग, अनेक जीवनोपयोगी बातें, रूलदार पृष्ठ आदि।

गीताप्रेसकी निजी थोक पुस्तक-दूकानोंसे थोक खरीदनेपर नियमानुसार डिस्काउन्ट भी उपलब्ध है।

मार्च २०११ तक गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित पुस्तकोंकी संख्या

१. श्रीमद्भगवद्गीता	९४२ लाख	४. महिलाओं एवं बालकोपयोगी साहित्य	१०१२ लाख
२. श्रीरामचरितमानस एवं तुलसी-साहित्य	८१९ लाख	५. भक्तचरित्र एवं भजनमाला	१०२८ लाख
३. पुराण, उपनिषद् आदि ग्रन्थ	२१० लाख	६. अन्य प्रकाशन	१०२९ लाख
			कुल—५० करोड़ ४० लाख

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कन्हैया गाय चरावन जात'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
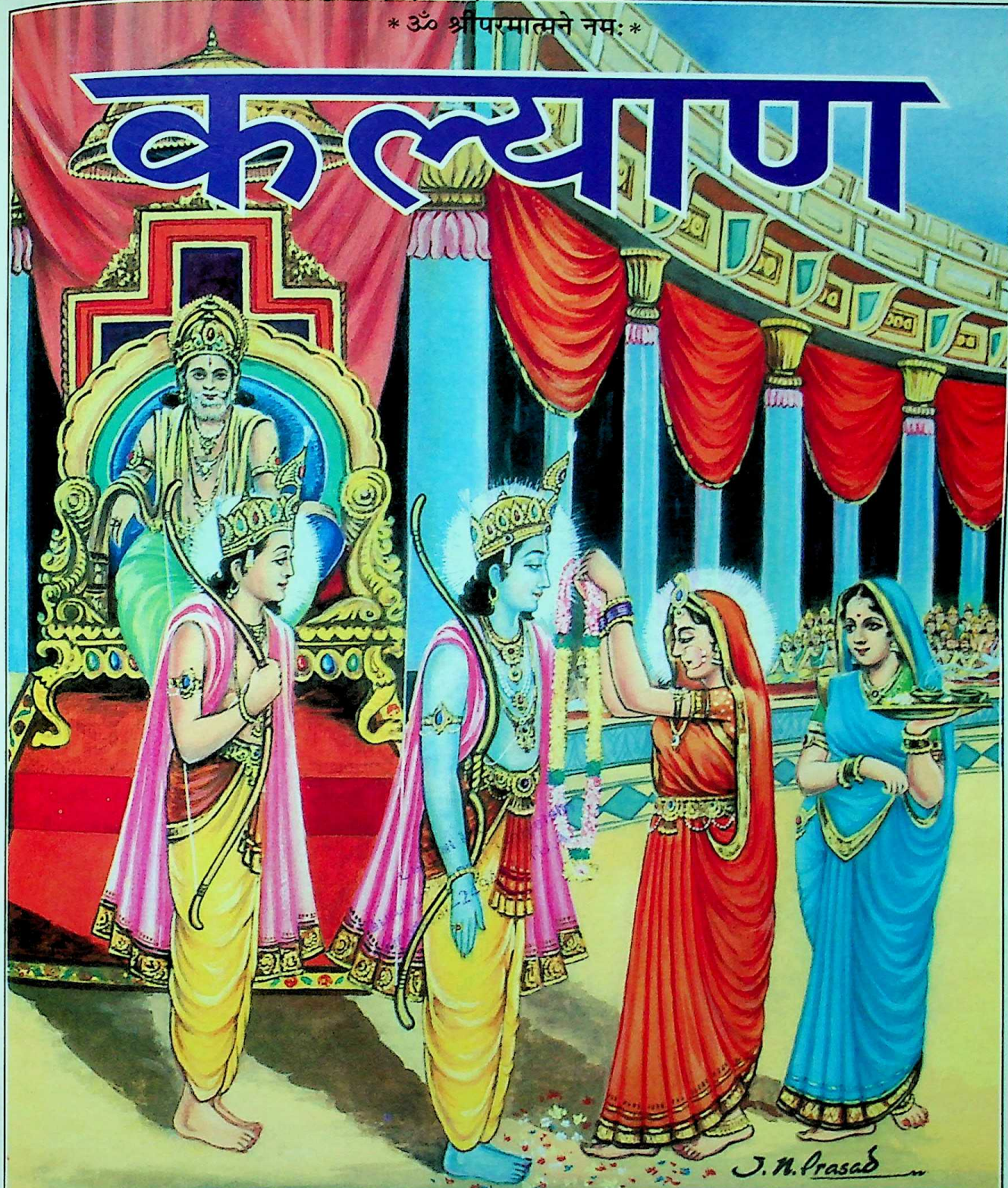
कल्याण

भजनमें श्रद्धा करो। यह विश्वास करो कि भजनसे ही सब कुछ होगा। भजनके बिना न संसारके क्लेश मिटेंगे, न विषयोंसे वैराग्य होगा, न भगवान्‌का प्रभाव और महत्त्व समझमें आयेगा और न परम श्रद्धा ही होगी। भगवान्‌की प्राप्ति भजनके बिना सर्वथा असम्भव है। सच्ची बात तो यह है कि जबतक भगवान्‌की प्राप्ति नहीं होती, तबतक क्लेशोंका पूर्णरूपसे नाश भी नहीं हो सकता।

भगवान्‌की प्राप्तिके इस कार्यमें जरा भी देर न करो। ऐसा मत सोचो कि 'अमुक काम हो जायगा, इस प्रकारकी स्थिति हो जायगी तब भगवान्‌का भजन करूँगा' यह तो मनका धोखा है। सम्भव है, तुम्हारी वैसी स्थिति हो ही नहीं, तुम पहले ही मर जाओ अथवा यदि स्थिति हो जाय तो फिर दूसरी स्थितिकी कल्पना कर लो। इससे अभी जिस स्थितिमें हो, इसी स्थितिमें भगवान्‌की प्राप्तिके लिये भजनमें लग जाओ। मनुष्य-जीवनका सर्वोच्च लक्ष्य तथा प्राप्तव्य वस्तु यही है।

याद रखो—एक बात और है, जबतक तुम भजनके लिये किसी संसारी स्थितिकी प्रतीक्षा करते हो, तबतक तुम वास्तवमें भजन करना चाहते ही नहीं। यदि भजन करना चाहते तो भजनसे बढ़कर ऐसी कौन-सी स्थिति है, जिसके लिये तुम भजनको रोककर पहले उसे पाना चाहते हो। संसारके धन-जन, मान-सम्मान, पद-गौरव सभी विनाशी हैं, ये सदा किसीके नहीं रहते और जिन्हें ये सब प्राप्त हैं, वे क्या सुखी हैं? उन्हें क्या शान्ति मिल गयी है? उनके जीवनका उद्देश्य क्या सफल हो रहा है? वे क्या इन्हें प्राप्त करके भजनमें लग गये हैं? बल्कि इसके विपरीत अनुभव तो यह कहता है कि ज्यों-ज्यों सांसारिक संग्रह बढ़ता है, त्यों-त्यों क्लेश, कामना, द्वेष, अशान्ति, अज्ञान, असावधानी और विषयासक्ति बढ़ती है। विषयासक्त पुरुष कभी सुख-शान्तिके भण्डार परमात्माके मार्गपर नहीं चलना चाहता।

याद रखो—विषय-सुखमें फँसे हुए मनुष्यको तो एक प्रकारसे पागल या मूढ़ समझना चाहिये, जो काल्पनिक और विनाशी सुखके मोहमें सच्चे सुखसे वंचित रह जाता है। सच्चा सुख तो भगवान्‌में है, जो भगवान्‌का स्वरूप ही है। उसको छोड़कर क्षणस्थायी, परिवर्तनशील दुःखभरे भोगोंमें सुख चाहना तो भ्रम ही है। बुद्धिमेंसे इस भीषण भ्रमको निकालना पड़ेगा। विषय-सुखके भ्रमसे ही विषयोंमें आसक्ति हो रही है। इस विषयासक्तिके कारण ही मनुष्य दूसरोंमें दोषारोपण करता है, जान-बूझकर झूठ बोलता है, पर-पीड़ा और हिंसा करता है, परस्त्रियोंमें पापबुद्धि करता है, दम्भ और पाखण्ड रचता है एवं नाना प्रकारके नये-नये तरीके निकालकर अपनी पाप-वासनाको सार्थक करना चाहता है।

याद रखो—इस विषयासक्तिका सर्वथा नाश तो तब होगा, जब तुम अखिल ऐश्वर्य, सौन्दर्य और माधुर्यके समुद्र भगवान्‌को जानकर उनमें आसक्त हो जाओगे। तबतक शास्त्र और सन्तोंकी वाणीपर श्रद्धा करके, विषयोंकी नश्वरता और क्षणभंगुरता प्रत्यक्ष देखकर, विषयी और विषयप्राप्त पुरुषोंकी मानसिक दुर्दशापर विचार करके चित्तको विषयोंसे हटाते रहो और सर्वसुखस्वरूप श्रीभगवान्‌में लगाते रहो। भगवान्‌के रहस्य और प्रभावकी बातोंको, उनकी लीलाओंको, उनके गुणोंको श्रद्धापूर्वक सत्पुरुषोंसे सुनो। उनके नामका जप करो और यह चेष्टा सच्चे मनसे करते रहो कि जिससे एक क्षणभरके लिये भी मनसे उनका विस्मरण न हो। प्रत्येक क्षण उनकी मधुर स्मृति बनी ही रहे। जब भूलो, तब पश्चात्ताप करो। याद आनेपर फिर न भूलनेकी प्रतिज्ञा करो। भगवान्‌के स्मरणको ही परम धन और परम लाभ समझो। सच्ची बात भी यही है—भगवान्‌का स्मरण ही जीवनका एकमात्र परम धन है—**'सम्पन्नारायणस्मृतिः।'** शिव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवद्दर्शनकी उत्कण्ठा

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

बहुत-से लोग कहा करते हैं कि यथाशक्ति चेष्टा करनेपर भी भगवान् हमें दर्शन नहीं देते। ये लोग भगवान्को 'निष्ठुर', 'कठोर' आदि शब्दोंसे सम्बोधित किया करते हैं तथा ऐसा मान बैठे हैं कि उनका हृदय वज्रका-सा है और वे कभी पिघलते ही नहीं। उन्हें क्या पड़ी है कि वे हमारी सुध लें, हमें दर्शन दें और हमें अपनायें—ऐसी ही शिकायत बहुत-से लोगोंकी रहती है।

परंतु बात है बिलकुल उलटी। हमारे ऊपर प्रभुकी अपार कृपा है। वे देखते रहते हैं कि जरा भी गुंजाइश हो तो मैं प्रकट होऊँ, थोड़ा भी मौका मिले तो भक्तको दर्शन दूँ। साधनाके पथमें वे पद-पदपर हमारी सहायता करते रहते हैं। लोकमें भी यह देखा जाता है कि जहाँ विशेष टान (खिंचाव) होती है, जिस पुरुषका हमारे प्रति विशेष आकर्षण होता है, उसके पास और सब काम छोड़कर भी हमें जाना पड़ता है। जहाँ नहीं जाना होता, वहाँ प्रायः यही मानना चाहिये कि प्रेमकी कमी है। जब हम साधारण मनुष्योंकी भी यह हालत है, तब भगवान् जो प्रेम और दयाके अथाह सागर हैं, यदि थोड़ा प्रेम होनेपर भी हमें दर्शन देनेके लिये तैयार रहें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

भगवान्के प्रकट होनेमें जो विलम्ब हो रहा है, उसमें मुख्य कारण हमारी टानकी कमी ही है। प्रभु तो प्रेम और दयाकी मूर्ति ही हैं। फिर वे आनेमें विलम्ब क्यों करते हैं? कारण स्पष्ट है। हम उनके दर्शनके योग्य नहीं हैं। हममें अभी श्रद्धा और प्रेमकी बहुत कमी है। यदि हम उनके योग्य होते तो भगवान् स्वयं आकर हमें दर्शन देते; क्योंकि भगवान् परम दयालु, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान् और सर्वान्तर्यामी हैं; किंतु हमारे भीतर उनके प्रति श्रद्धा और प्रेमकी बहुत ही कमी है। अतएव श्रद्धा और प्रेमकी वृद्धिके लिये हमें उनके तत्त्व, रहस्य, गुण और प्रभावको जाननेकी प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये। भगवान्में श्रद्धा और प्रेम हो जानेपर वे न मिलें, ऐसा कभी हो नहीं सकता। बाध्य होकर भगवान् अपने श्रद्धालु भक्तकी श्रद्धाको फलीभूत करते ही हैं। जबतक उनकी कृपापर पूरा विश्वास नहीं होता, तबतक प्रभुका प्रसाद हमें कैसे प्राप्त हो सकता है? यदि हमारा यह विश्वास हो जाय कि भगवान्के दर्शन होते हैं और अमुक व्यक्तिने भगवान्के दर्शन किये हैं तो उसके साथ हमारा व्यवहार कैसा होगा— इसका भी हमलोग अनुमान नहीं कर सकते। फिर स्वयं भगवान्के मिलनेसे जो दशा होती है, उसकी तो अटकल लगानी ही असम्भव है।

रासलीलाके समय भगवान्के अन्तर्धान हो जानेपर गोपियोंकी कैसी दशा हुई! एक क्षणके लिये भी उन्हें भगवान्का वियोग असह्य हो गया, अतएव बाध्य होकर भगवान्को प्रकट होना पड़ा। दुर्वासाके दस हजार शिष्योंसहित भोजनके लिये असमयमें उपस्थित होनेपर उन्हें भोजन करानेका कोई उपाय न दीखनेपर द्रौपदी व्याकुल होकर भगवान्का स्मरण करने लगी और उसके पुकारते ही भगवान् इस प्रकार प्रकट हो गये, जैसे मानो वहीं खड़े हों। विश्वास होनेसे प्रायः यही अवस्था सभी भक्तोंकी होती है। भक्त नरसी मेहताको दृढ़ विश्वास था कि उसकी लड़कीका भात भरनेके लिये हरि आयेंगे ही और वे मगन होकर गाने लगे—

'बाई आसी आसी आसी, हरि भणै भूरोसे आसी।'

हरिके आनेमें उन्हें तनिक भी शंका नहीं थी, अतएव भगवान्को समयपर आना ही पड़ा।

भगवान्के दर्शनमें जो विलम्ब हो रहा है, उसका एकमात्र कारण दृढ़ श्रद्धा-विश्वासका अभाव ही है। चाहे जिस प्रकार निश्चय हो जाय, निश्चय हो जानेपर भगवान् न आयें, ऐसा हो नहीं सकता। वे अपने भक्तको निराश नहीं करते, यही उनका बाना है। यह दूसरी बात है कि बीच-बीचमें हमारे मार्गमें ऐसे विघ्न आ खड़े हों, जिनके कारण हमारा मन विचलित-सा हो जाय। परंतु यदि साधक उस समय सँभलकर प्रभुको दृढ़तापूर्वक पकड़े रहे और विघ्नोंसे प्रह्लादकी भाँति न घबराये तो उसका काम अवश्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही बन जाता है। प्रभु तो हमारी श्रद्धाको पक्की करनेके लिये ही कभी निष्ठुर और कभी कोमल व्यवहार और व्यवस्था किया करते हैं।

वास्तविक श्रद्धा इतनी बलवती होती है कि भगवान्‌को बाध्य होकर उस श्रद्धाको फलीभूत करनेके लिये प्रकट होना पड़ता है। पारस यदि पारस है और लोहा यदि लोहा है तो स्पर्श होनेपर सोना होगा ही। इसी प्रकार श्रद्धावान्‌को भगवान्‌की प्राप्ति होती ही है। श्रद्धालु भक्तकी कमीकी पूर्तिकर भगवान् उसके कार्यको सिद्ध कर देते हैं। श्रद्धा होनेपर सारी कमीकी पूर्ति भगवान्‌की कृपासे अपने-आप हो जाती है। हमलोगोंमें श्रद्धा-प्रेमकी कमी मालूम होती है, इसीलिये भगवान् प्रकट नहीं होते; अन्यथा उनके दयालु और प्रेमपूर्ण स्वभावको देखते हुए तो वे दर्शन दिये बिना रह सकें—ऐसा हो नहीं सकता। रावणके द्वारा सीताके हरे जानेपर उनके लिये श्रीराम ऐसे व्याकुल होते हैं, जैसे कोई कामी पुरुष अपनी प्रेयसीके लिये होता है। इसका कारण क्या था? कारण यही था कि सीता एक क्षणके लिये भी रामके बिना नहीं रह सकती थीं। भगवान् कहते हैं—'जो मुझको जैसे भजते हैं, उनको मैं भी वैसे ही भजता हूँ।

'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।'

(गीता ४। ११)

भगवान् तो प्रकट होनेके लिये तैयार हैं। वे मानो चाहते हैं कि लोग मुझसे प्रेम करें और मैं प्रकट होऊँ। सीताका जैसा उत्कट प्रेम भगवान् रामचन्द्रमें था, वैसा ही प्रेम यदि हमलोगोंका प्रभुमें हो जाय तो प्रभु हमारे लिये भी तैयार हैं। जो हरिके लिये लालायित है, उसके लिये हरि भी वैसे ही लालायित रहते हैं।

प्रभुमें श्रद्धा-प्रेम बढ़े, उनका चिन्तन बना रहे—एक पलके लिये भी उनका विस्मरण न हो, ऐसा ही लक्ष्य हमारा सदा बना रहना चाहिये। हमें वे चाहे जैसे रखें और चाहे जहाँ रखें, उनकी स्मृति अटल बनी रहनी चाहिये। उनकी राजीमें ही अपनी राजी, उनके सुखमें ही अपना सुख मानना चाहिये। प्रभु यदि हमें नरकमें रखना चाहें तो हमें वैकुण्ठकी ओर ताकना भी नहीं चाहिये और नरकमें वास करनेमें ही परम आनन्द मानना चाहिये। सब प्रकारसे प्रभुकी शरण हो जानेपर फिर उनसे इच्छा या याचना करना नहीं बन सकता। जब प्रभु हमारे और हम प्रभुके हो गये तो फिर बाकी ही क्या रहा? हम तो प्रभुके बालक हैं। माँ बालकके दोषोंपर ध्यान नहीं देती। उसके हृदयमें बालकके लिये अपार प्यार रहता है। प्रभु यदि हमारे दोषोंका ख्याल करें तो हमारा कहीं पता ही न लगे। प्रभु तो इस बातके लिये सदा उत्सुक रहते हैं कि कोई रास्ता मिले तो मैं प्रकट होऊँ; किंतु हमीं लोग उनके प्रकट होनेमें बाधक हो रहे हैं। देखनेमें तो ऐसी बात नहीं मालूम होती, ऊपरसे हम उनके दर्शनके लिये लालायित-से दीखते हैं, परंतु भीतरसे उन्हें पानेकी लालसा कहाँ है?

मुँहसे हम भले ही न कहें कि अभी ठहरो, परंतु हमारी क्रियासे यही सिद्ध होता है। प्रभुके प्रकट होनेमें विलम्ब सहन करना ही उन्हें ठहराना है। प्रभुसे हमारा बिछोह इसीलिये हो रहा है कि उनके वियोगमें (बिछोहमें) हमें व्याकुलता नहीं होती। जब हम ही उनका वियोग सहनेके लिये तैयार हैं और कभी उनके वियोगमें हमारे मनमें व्याकुलता या दुःख नहीं होता, तब प्रभुको ही क्यों परवा होने लगी? यदि हमारे भीतर तड़पन होती और इसपर भी वे न आते तो हमें कहनेके लिये गुंजाइश थी। खुशीसे हम उनके बिना जी रहे हैं। इस हालतमें वे यदि न आयें तो इसमें उनका क्या दोष है? प्रकट होनेके लिये तो वे तैयार हैं, पर जबतक हमारे भीतर उत्सुकता नहीं होती, तबतक वे आयें भी कैसे? उनका दर्शन प्राप्त करनेके लिये आवश्यकता है प्रबल चाहकी। वह चाह कैसी होनी चाहिये, इस बातको प्रभु ही पहचानते हैं। जिस चाहसे वे प्रकट हो जाते हैं, वही चाह असली चाह समझनी चाहिये। अतः जबतक वे न आयें, चाह बढ़ाता ही रहे। घड़ा भर जानेपर पानी अपने-आप ऊपरसे बह चलेगा।

भगवत्प्रेमकी अवस्था ही अनोखी होती है। भगवान्‌का प्रसंग चल रहा है, उनकी मधुर चर्चा चल रही है, उस समय यदि स्वयं भगवान् भी आ जायँ तो प्रसंग चलाता रहे, भंग न होने दे। प्रियतमकी चर्चामें एक अद्भुत मिठास होती है, जिसकी चाह लग जानेपर और कुछ सुहाता ही नहीं। प्रीतिकी रीति अनोखी है। प्रभुकी प्रीतिका रस जिसने पा लिया, उसे और पाना ही क्या रहा? प्रभु तो केवल प्रेम देखते हैं। स्वयं प्रभुसे बढ़कर प्रभुका प्रेम है। श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रभुके गुण, प्रभाव, तत्त्व तथा रहस्यसहित ध्यानमें तन्मय होकर प्रभुके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमामृतका पान करना ही प्रभुकी प्रीतिका आस्वादन करना है या हरिके रसमें डूबना है।

दो प्रेमियोंमें यदि न बोलनेकी शर्त लग जाय तो अधिक प्रेमवाला ही हारेगा। पति-पत्नीमें यदि न बोलनेका हठ हो जाय तो वही हारेगा, जिसमें अधिक स्नेह होगा। इसी प्रकार जब भक्त और भगवान्‌में होड़ होती है तो भगवान्‌को ही हारना पड़ता है; क्योंकि प्रभुसे बढ़कर प्रेमी कोई नहीं है। उन्हें इतना व्याकुल कर देना चाहिये कि हमारे बिना वे एक क्षण भी न रह सकें। फिर उन्हें हार माननी ही पड़ेगी—आनेके लिये बाध्य होना ही पड़ेगा। हमें व्यवस्था ही ऐसी कर देनी चाहिये, प्रेमसे उन्हें मोहित कर देना चाहिये। फिर तो धक्का देनेपर भी वे नहीं हटेंगे।

प्रभुके साथ हमारा व्यवहार वैसा ही होना चाहिये, जैसा स्त्रीका अपने पतिके साथ। जैसे स्त्री अपने प्रेम और हाव-भावसे पतिको मोहित कर लेती है, वैसे ही हमें भगवान्‌को अपने प्रेम और आचरणसे मोहित कर लेना चाहिये। उन्हें अपनेमें आसक्त भी कर ले और खुशामद भी न करे। फिर तो वे एक पलके लिये भी हमारे द्वारपरसे हटनेके नहीं। वे प्रेमके भिखारी प्रेमके बन्दी बने बैठे हैं, जायँगे कहाँ? पति पत्नीके प्यारको ठुकरा ही कैसे सकता है? इसी प्रकार प्रभु भी अपने भक्तके प्यारका तिरस्कार कैसे कर सकते हैं? ऐसा हो जानेपर हमारे बिना उनसे रहा ही कैसे जायगा? वे तो सदा प्रेमके अधीन रहते हैं। एक बार प्रभुको अपने प्रेमपाशमें बाँध ले, फिर तो वे सदाके लिये बँध जाते हैं।

प्रभुको वशीभूत करनेका ढंग स्त्रीसे सीखना चाहिये। इसी प्रकारका सम्बन्ध उनसे जोड़ना चाहिये। यही माधुर्यभाव है। बाहरका वेष न बदले, भीतर प्रेमकी प्रगाढ़तामें उसीका बन जाय, यही उन्हें प्राप्त करनेका सर्वोत्तम उपाय है।

प्रभु बड़े दयालु और उदारचित्त हैं। इसीलिये थोड़े प्रेमसे भी वे प्राप्त हो सकते हैं, किंतु हमलोगोंको उपर्युक्त प्रेमको लक्ष्य बनाकर ही चलना चाहिये; क्योंकि उच्च लक्ष्य बनाकर चलनेसे ही प्रेमकी प्राप्ति होती है। यदि लक्ष्यके अनुसार पूर्ण प्रेम हो जाय तब तो अत्यन्त सौभाग्यकी बात है। ऐसे पुरुष तो आदर्श एवं दर्शनीय समझे जाते हैं, उनके कृपाकटाक्षसे दूसरे भी कृतकृत्य हो जाते हैं, फिर उनकी तो बात ही क्या?

कुछ उपदेश करो

एक सेठ एक महात्माके पास जाते थे। वे रोज कहते थे—'महाराज! कुछ उपदेश करो।' महाराज चुप रहते थे। कुछ बोलते नहीं थे। उनतीस दिनोंतक सेठ आये और महात्मा कुछ भी बोले नहीं। जब तीसवें दिन सेठ आये, तब महात्मा बड़े खुश थे। वे स्वयमेव बोले—'आज तो हम तुम्हारे घर भिक्षा करनेके लिये चलेंगे।' सेठ बड़े प्रसन्न हुए।

भोजनके समय महात्मा अपना खप्पर लिये आये। बोले—'हमारे खप्परमें भोजन डाल दो।' खप्परमें तो पहलेसे ही गोबर था। सेठने कहा—'हमने आपके लिये घरमें इतना बढ़िया भोजन बनवाया है, उसे हम गोबरमें कैसे डालें?' महात्मा—'अब क्या करें?' सेठ—'गोबर निकाल दो।' महात्माने गोबर निकाल दिया और खप्परमें भोजन डालनेको कहा। सेठने कहा—'नहीं महाराज! अभी ठीक नहीं हुआ है। अभी गोबर लगा हुआ है।' महात्मा बोले—'अब क्या करें?' सेठ—'पानीसे खप्पर धो लो।' महात्मा—'लो, धो लिया।' सेठ—'महाराज! अभी गन्ध आती है।' महात्मा—'अब क्या करें?' सेठ—'रगड़कर पोंछ दो।' महात्मा—' लो, खूब अच्छी तरहसे रगड़कर पोंछ देते हैं। अब?' सेठने कहा—'महाराज! अब बिलकुल ठीक है। आप भिक्षा स्वीकार कीजिये।' महात्माने भिक्षा ली। जब खा-पीकर महात्मा चलने लगे, तब सेठ बोला—'महाराज! आज आप खूब प्रसन्न हैं। आज कुछ उपदेश कर जाओ।'

महात्मा बोले—'तुम मूर्ख हो। तुमको उपदेश तो कर दिया। तुम समझते नहीं हो।' सेठने विनम्रतासे पूछा—'महाराज! क्या उपदेश किया?' महात्मा हँसकर बोले—'सेठ! तम्हारे मस्तिष्कमें तो गोबर भरा है। उसमें हम अपना बढ़िया उपदेश कैसे डालें?' पहले गोबर निकालो। फिर उसको धोओ। और फिर, उसको खूब अच्छी तरहसे रगड़कर पोंछो। पहले मल दूर करो। फिर वासना दूर करो। और फिर, विक्षेप दूर करो। जब तुम्हारा मस्तिष्क बिलकुल साफ होगा तब उसमें हम अपना बढ़िया भोजनरूपी उपदेश परोसेंगे, तब तुम उसे खाकर तुरंत तृप्त हो जाओगे। जबतक तुमने गोबर भरकर रखा है; तबतक उसमें हमारा उपदेश कहाँ रहेगा?' [आनन्द-मंजूषा]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतकी अद्भुत महत्ताको जानो

[श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराजके सदुपदेश]

(गोलोकवासी भक्त श्रीरामशरणदासजी)

धर्मप्राण भारत सारे विश्वमें एक अद्भुत दिव्य देश है। इसकी बराबरीका और कोई भी देश नहीं है। यह बात हम मनमानी नहीं कह रहे हैं। इसे गीता बता रही है। जरा ध्यानसे सुनो, क्या बताती है!

गीता बताती है कि भारतीय मनुष्यो! तुम्हारा कितना सौभाग्य है कि जो तुम्हारा भारतमें जन्म हुआ है और हमपर, तुमपर भगवान्‌की कितनी बड़ी कृपा है, जो हमें नदी भी मिली तो साधारण नदी नहीं मिली, हमें साक्षात् श्रीगंगाजी-जैसी नदी मिली, जिन्हें भगवान् श्रीकृष्ण अपने श्रीमुखसे गीताजीमें बताते हैं—**'स्रोतसामस्मि जाह्नवी'** अर्थात् मैं नदियोंमें श्रीभागीरथी गंगाजी हूँ। हैं क्या और भी किसी देशमें श्रीगंगाजी? नहीं हैं, केवल मात्र भारतमें ही श्रीगंगाजी हैं। तुम्हें ही यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

हमारा कितना सौभाग्य है कि जो हमें पहाड़ मिला तो वह भी साधारण नहीं, हिमालय-जैसा दिव्य पर्वत मिला, जिसके लिये स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण अपने श्रीमुखसे गीताजीमें बताते हैं—**'स्थावराणां हिमालयः'**। अर्थात् मैं स्थिर रहनेवालोंमें हिमालय हूँ। और किसी देशमें ऐसा पहाड़ है, जैसा कि हमें हिमालय-जैसा दिव्य पर्वत मिला है? नहीं मिलेगा।

हमारा कैसा सौभाग्य है कि और देशोंमें तो किसीमें खुदाका पैगम्बर आया और किसीमें खुदाका दूत आया और किसीमें खुदाका बेटा ईसामसीह आया, परंतु खुदा किसी भी देशमें खुद नहीं आया, पर गीता बताती है और भगवान्‌के श्रीमुखसे कहलाती है कि हमारे भारतवर्षमें भगवान् स्वयं आये और एक बार नहीं, अनेक बार आये। यह भारतवर्षकी कितनी बड़ी विशेषता है! सुनिये, गीता और भगवान् श्रीकृष्ण क्या कहते हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब मैं ही अवतार लेता हूँ और साधु पुरुषोंका उद्धार करता हूँ एवं दुष्टोंको मारता हूँ तथा धर्मकी स्थापना करता हूँ। ऐसा परम सौभाग्य भारतको छोड़कर और किसी भी देशको क्या प्राप्त हुआ है? इतना ही नहीं, भारतकी धूलिमें ब्रह्म श्रीकृष्ण लोट-पोट हुआ करता है और भारतके सनातनधर्मी भक्त अपने भगवान्‌के साथ खेला करते हैं, भगवान्‌पर चिड्डी तक करते हैं। एक बार भगवान् श्रीकृष्ण श्रीदामाजीके साथ खेल रहे थे तो उस खेलमें यह तय था कि जो भी खेलमें हार जाय, वह चिड्डी दे। जब श्रीदामाजी हार गये तो भगवान्‌ने उनसे चिड्डी ली और वे श्रीदामाजीकी पीठपर चढ़ गये। पुनः खेलते-खेलते जब भगवान् श्रीकृष्ण खेलमें हार गये तो श्रीदामाजीने भगवान् श्रीकृष्णसे चिड्डी माँगी। भगवान् श्रीकृष्ण चिड्डी न देकर जानेका बहाना करने लगे तो इसपर भगवान्‌से श्रीदामाका झगड़ा हो गया। श्रीदामाने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा कि खेलमें कौन छोटा-कौन बड़ा, सब एक-से होते हैं। तुम्हारे पास लाखों गौएँ हैं तो मेरे पास थोड़ी-सी गौएँ हैं, पर हैं तो हम-तुम दोनों ही ग्वाले। चिड्डी देनी पड़ेगी, चिड्डी दिये बिना नहीं जाने दूँगा। ***'खेलन में को काको गुसैयाँ।'***

अन्तमें भगवान्‌को हार माननी पड़ी और चिड्डी देनी पड़ी। तुम्हारा कैसा सौभाग्य है कि जो तुम्हें ऐसे भारतमें जन्म मिला, जिसमें भगवान् भी आ करके तुम्हारे साथ खेलता है! इसलिये धर्मप्राण भारतमें जन्म लेकर धर्मात्मा-पुण्यात्मा बनना ही शोभा देता है। इस देवभूमि भारतमें, जिस भूमिमें खड़े होकर स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने गीताका सन्देश दिया, हमारा परम कर्तव्य है कि हम शास्त्रानुसार चलें और भूलकर भी कोई ऐसा काम न करें, जो भारतकी शानमें धब्बा लगाये। [प्रेषक—श्रीशिवकुमारजी गोयल]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवनमें सेवाका महत्त्व

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

[गताङ्क संख्या १०, पृ०-सं० ९३७ से आगे]

सेवकका धर्म है स्वामीकी रुचिके अनुसार अपने जीवनका निर्माण कर लेना। स्वामीकी रुचि ही सेवकका जीवन है, उसे कहना नहीं पड़ता। उसके बदलेमें वह क्या चाहता है? बड़ी-से-बड़ी सेवा मिलती रहे और कुछ नहीं। और उसको सेवा मिलती ही है। एक कथा बड़ी रुचिकर है। हनुमान्‌जी सेवकोंमें प्रधान माने जाते हैं। दास्य-रतिमें हनुमान्‌जीका नाम सबसे पहले लिया जाता है। जो अन्तरंग दास होता है, उसपर मालिक विशेष कृपा किया करते हैं। जो अपना बहुत महत्त्वका कार्य होता है अथवा जो निजका कार्य होता है—छिपा हुआ, वह उसीको कहते हैं कि इसे तुम करना। जब इस प्रकारकी सेवाका कार्य आया, उस समय भगवान्‌ने हनुमान्‌जीके ही कानमें कहा कि तुम जाकर सीतासे यह सन्देश कहना और अपनी अँगूठी भी उन्हींको दी, औरोंको नहीं दी। महत्त्वका काम, गुप्त काम, अन्तरंगताका काम सौंपा जाता है उस सेवकको, जो अत्यन्त अन्तरंग होता है, जिसपर पूरा विश्वास होता है तथा जो अपना होता है। हनुमान्‌जी रामके दरबारमें और रामके महलमें सर्वोच्च सेवक हैं। यद्यपि वे अपनेको सबसे नीचे मानते थे, परंतु रामदरबारमें और राम-महलमें तो उन्हींकी तूती बोलती थी। रामका जब कोई कार्य पड़ता तो वे कहते—हनुमान्‌को बुलाओ। वहाँ ईर्ष्याकी कोई बात नहीं थी, क्योंकि वहाँ तो परम सात्त्विक भाव था, परंतु एक विनोदकी लीला हुई। तीनों भाइयों और अंगदादिने सोचा कि कोई ऐसी तरकीब करें कि रामकी सेवा हमीं लोगोंको प्राप्त हो। सबके मनमें सेवाकी बड़ी लालसा थी। हनुमान्‌जी सेवा बहुत करते थे और उनकी सेवासे सब प्रसन्न रहते। ईर्ष्या-डाह नहीं, परंतु उन सबके मनमें आयी कि सेवा हमें भी मिले। रामकी सेवाका सौभाग्य हम सबको भी मिले। उन्होंने सोचा कि हनुमान्‌को अलग रखो और भगवान्‌की सेवाके जितने कार्य हैं, उनकी एक सूची बनाओ। सभी कार्य याद करके एक सूची बना ली गयी और उस कार्यके सामने सेवा करनेवालेका नाम तथा समय लिख दिया गया। जितने कार्य थे सभी सम्मिलित किये गये। हनुमान्‌के लिये कोई सेवा बची ही नहीं। वह सूची ले जाकर श्रीरामजीके सामने पेश कर दी गयी। भगवान्‌ने पूछा—आपलोगोंने सोच-समझकर बनायी है। बोले—हाँ। भगवान्‌ने कहा—सभी नाम लिख गये हैं। उन्होंने कहा—हाँ। तब वे भगवान्‌से बोले—महाराज! आप इसपर अपने हस्ताक्षर कर दें। भगवान्‌ने सूची पढ़ ली तो देखा कि हनुमान्‌का कहीं नाम ही नहीं है। भगवान् मुसकराये और अपने हस्ताक्षर कर दिये। इसके बाद सबका कार्य घोषित कर दिया गया। हनुमान् अपना अलग बैठे हैं। उनके जिम्मे कोई कार्य नहीं है। सब अपने-अपने कार्यमें लग गये। तब हनुमान्‌जी भगवान्‌के पास गये और कहा—महाराज! इस सूचीमें एक सेवाका कार्य छूट गया है और वह सेवा मुझे सौंपी जाय। तब भगवान्‌ने सबको बुलाया और कहा—हनुमान् क्या कह रहे हैं, यह सब लोग सुनें। जब सब इकट्ठे हो गये तब भगवान्‌ने पूछा—हनुमान्! क्या कहना चाह रहे हो? हनुमान्‌जीने कहा—महाराज! एक सेवाका कार्य छूट गया है और वह सेवा मुझे मिले। भगवान्‌ने कहा—जरूर मिलेगी। हनुमान्‌जीने कहा—सरकार! जब आप जँभाई लें या आपको झपकी आये तब आपके सामने खड़ा कोई सेवक चुटकी बजा दिया करे। भगवान्‌ने कहा—हाँ हनुमान्! यह कार्य तुम्हारे जिम्मे है। इस सेवाको सूचीमें लिख दिया गया और उसके सामने हनुमान्‌जीका नाम लिख दिया गया। लोगोंने पूछा—हनुमान्‌जी! यह कार्य तो आपके नाम आ गया। अब समय बताइये? वे बोले—समय तो सरकारसे पूछें कि वे कब उबासी लेंगे? हम समय कैसे बतायें? भगवान्‌ने कहा—भई! उबासीका कोई समय होता है क्या? दिनमें आ जाय, रातमें आ जाय, घरमें आ जाय, जंगलमें आ जाय, महलमें आ जाय, बिछौनेपर आ जाय, राजदरबारमें आ जाय या भोजन करते हुए आ जाय। तब उन्होंने पूछा कि समय क्या लिखें? हनुमान्‌जीने कह दिया—जब उबासी आये तब। यह लिख दिया गया। अब रामके सामने हनुमान् रहेंगे और उनके मुँहकी तरफ देखते रहेंगे, निरन्तर। जब कभी उबासी आयेगी तो चुटकी बजा देंगे। राम सोते हैं तो हनुमान् उनके सामने होकर उन्हें देखते हैं। भोजन करते हैं तो हनुमान् देखते हैं। बस, उन लोगोंने देखा कि यह तो बड़ा अजब हुआ। हमलोगोंको तो जो सेवाकार्य मिला किसीको दो मिनट, किसीको पाँच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिनट और हनुमान्‌के लिये तो ऐसा हो गया कि रात-दिन संग रहना हो गया। इसलिये—

'राम सदा सेवक रुचि राखी'

(रा०च०मा० २।२१९।७)

भगवान् रामने भरतजीसे कह दिया कि भरत! तुम कह दो, वह सब हम करनेको तैयार हैं। अब जो सेवक अपने मालिकको संकोचमें डाल दे, वह सेवक कैसा! यह कठोर सेवक-धर्म भरतजीके सामने आ गया। भरतजीके लिये तो रामकी रुचि ही उनकी रुचि है। रामकी रुचि उनका स्वभाव और रामकी रुचि ही उनका जीवन है।

सेवकमें तीन बात होती है—एक सेवक सेवाका मूल्य क्या चाहता है कि उसे अधिक-से -अधिक सेवाका मौका मिले। यह उसका मूल्य है। दूसरी बात, वह सेवक क्या करता है? वह स्वामीकी रुचिके अनुकूल जीवन बना लेता है। स्वामीसे यह आशा नहीं करता कि वे कहें। न ही वह प्रतीक्षा करता है कि उसे कहा जाय, तब कार्य करें। तीसरी बात, वह स्वामीको कभी अपने लिये संकोचमें तो डालता ही नहीं। ***'सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत'*** इस आदर्शको ले करके जगत्‌में प्राणियोंके साथ यदि प्राणियोंका व्यवहार हो जाय तब क्या होगा? सबको सेवा मिले और सब सुखी हो जायँ।

दास्य भक्तिका बड़ा सुन्दर भाव है। इसमें दास अपनेको समर्पण करके मालिकका अपना बन जाता है। तुलसीदासजीने तो यहाँतक कहा है कि ***'मालिक को गोत गोत होत है गुलाम को'***। सेवकका गोत्र क्या? जो मालिकका गोत्र है। सेवक तो मालिकके नामपर सेवक है। 'रामदूत' अगर कहा जाय तो किसके लिये? हनुमान्‌जीके लिये। रामपायक कौन? रामसेवक कौन? हनुमान्‌जी। सेवक तो रामके हजारों हैं, लाखों हैं, परंतु रामसेवक जो हैं, वह हनुमान् ही हैं। क्यों हनुमान् ही सेवक हैं? इसलिये कि वे रामके अन्तरंग हैं। ऐसे सेवकके सामने राम क्या कहते हैं? राम कहते हैं—

सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥

(रा०च०मा० ५।३२।७, ६)

सेवकके सामने स्वामी सिर ऊँचा नहीं कर सकते। यह विलक्षण बात है न रामके स्वभावकी। नौकरके साथ तो आदमी ऐसा बोलता है, मानो खा जायगा, परंतु यहाँ रामजी सिर नहीं उठा पाते हैं। भगवान् कहते हैं—

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्।
मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि॥

(श्रीमद्भा० ९।४।६८)

भगवान् कहते हैं कि भक्त मेरे हृदय हैं और मैं उनका हृदय हूँ। वे मेरे सिवाय किसीको नहीं जानते और मैं उनके सिवाय किसीको नहीं जानता हूँ। भगवान्‌ने दुर्वासाजीसे कहा कि अम्बरीषके अलावा किसी अन्यका प्रश्न होता तो मैं तुम्हारी रक्षा करता, परंतु अम्बरीषका विष्णु तो अम्बरीषका है। ब्राह्मण! तुम्हें यदि बचना है तो तुम अम्बरीषके पास जाओ। वही तुम्हें बचायेगा। मेरी सामर्थ्य नहीं है। यह भगवान्‌का स्वभाव है— ***'सेवक रुचि राखी'***। भगवान् सेवकके परतन्त्र हो जाते हैं और सेवक ऐसे होते हैं, जैसे अम्बरीषजी! जब ऋषि दुर्वासा चले गये तब वे चिन्तामें पड़ गये। उन्होंने सोचा कि भगवन्! मैं कितना नीच कि मेरे कारण इतने विद्वान् तपस्वी ब्राह्मण भयग्रस्त हो रहे हैं। मैं खाऊँ कैसे? जबतक दुर्वासा लौटकर नहीं आये, तबतक अम्बरीषने कुछ खाया-पीया नहीं। अम्बरीष ज्यों-के-त्यों खड़े रहे और जब दुर्वासा लौटकर आये तो उन्हें देखते ही दण्डवत् प्रणाम किया। बचाओ-बचाओ, अम्बरीष, तुम मुझे बचाओ। चक्र मुझे मार डालना चाहता है। तब अम्बरीषने चक्रकी स्तुति की। भगवन्! चक्रदेवता!! क्षमा करो। यदि आपकी मुझपर कृपा है तो ब्राह्मणदेवताको छोड़ दो। चक्रने छोड़ दिया। दुर्वासाने कहा कि आज मैंने भक्तका प्रभाव देखा। ये मरनेवालेको जिला देते हैं। मैंने इनको मारनेके लिये कृत्या पैदा कर दी थी। चक्र यदि उसे नहीं मारता तो वह इन्हें मार देती, परंतु इन्होंने बदलेमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे चक्रसे बचा दिया। कितना बड़ा भक्तका महत्त्व है। यही रामके सेवकका महत्त्व है। सेवक कैसे? अम्बरीष-सरीखे और स्वामी कैसे? भगवान् विष्णु-जैसे, नृसिंहभगवान्-जैसे।

यहाँ भक्तका स्वरूप बताते हैं कि भक्त वह है, जो इस प्रकार सारे जगत्में अपने स्वामीका रूप देखे और स्वयं अपनेको सेवक माने और कोई बदला न चाहे। उसका मूल्य न चाहकर, विनिमय न चाहकर, अपने तन, मन, धनके द्वारा अथवा जो भी उसके पास है, उसके द्वारा वह विश्वरूप भगवान्की सेवामें अपनेको समर्पण कर दे। यह अनन्य सेवकका स्वरूप बताया है। श्रीमद्भगवद्गीतामें जहाँ अनन्य भक्तिका वर्णन किया गया है, वहाँ भी कहा है—**'निर्वैरः सर्वभूतेषु'** (११।५५)।

किसी प्राणीमें जिसका वैर रहता है, वह भगवान्का भक्त नहीं बन सकता है। जगत्में आसक्ति और प्राणियोंमें वैर-राग और द्वेषका परित्याग हो, भगवत्-परायणता हो, भगवद्भक्ति हो और जीवनमें केवल भगवान्का कर्म रह जाय—सेवा रह जाय, वह भगवान्का भक्त है।

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥

(गीता ११।५५)

अर्थात् मेरा ही कर्म करे, मेरे कार्यके अलावा उसका कोई कार्य है ही नहीं। तमाम इन्द्रियोंके द्वारा, बुद्धिके द्वारा, मनके द्वारा, चित्तके द्वारा, शरीरके द्वारा केवल मेरा कार्य हो। अपना कोई कार्य ही नहीं। केवल मेरी सेवा हो। यह तो उसके जीवनका कार्य है और मेरा भक्त हो, मेरे परायण हो, जगत्में कहीं राग रहे नहीं और जगत्के किसी प्राणीसे द्वेष, वैर रहे नहीं। वह मेरा अनन्य भक्त है। वह मुझे प्राप्त करता है। [**क्रमशः**]

संत-उद्बोधन

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

मेरे निजस्वरूप उपस्थित महानुभाव! साधकको कर्तव्य-पालनके लिये सामग्री मिली है। साधकका अपने प्रति, जगत्के प्रति तथा प्रभुके प्रति क्या कर्तव्य है? अपने प्रति हमारा कर्तव्य है कि हम अपनेको बुरा न बनायें, जगत्के प्रति कर्तव्य है कि हम जगत्को बुरा न समझें और प्रभुके प्रति कर्तव्य है कि हम उनको अपना मानें।

हम तीनोंमेंसे एक भी नहीं करते, फिर चाहते हैं साधक होना। तो यह नहीं हो सकता। प्रभुकी चीजको अपना मानते हैं, इस बेईमानीसे चित्त शुद्ध नहीं होगा।

इसलिये किसी भी वस्तुको अपना न मानें। त्यागद्वारा जीवन अपने लिये सेवाद्वारा जीवन जगत्के लिये और प्रेमद्वारा जीवन भगवान्के लिये उपयोगी हो जाता है। त्याग, सेवा, प्रेमके अपनाते ही चित्त शुद्ध हो जायगा।

कर्तव्यसे भिन्न मानव-जीवनका कोई अर्थ नहीं है। साधनसे भिन्न साधकका जीवन नहीं है। त्यागके द्वारा हम चित्त शुद्ध कर सकते हैं। त्याग नहीं करेंगे तो राग रहेगा। उसके परिणामस्वरूप अभाव, पराधीनता, जड़ता, सुख और दुःख—ये पाँच फल भोगने पड़ेंगे और जीवन अपने लिये उपयोगी सिद्ध नहीं होगा।

आप स्वीकार करिये कि 'प्रभु मेरे हैं' इससे जीवन प्रभुके लिये उपयोगी सिद्ध हो जायगा। सेवाका व्रत ले लीजिये, तो जीवन जगत्के लिये उपयोगी हो जायगा। अकिंचन और अचाह होनेसे जीवन अपने लिये उपयोगी हो जायगा।

यदि आप इन तीनोंमेंसे किसीको भी स्वीकार नहीं करते, तो अनन्त जन्मोंतक आपसे कोई साधन नहीं करा सकता। इसलिये सत्संगके द्वारा जीवनकी समस्याका हल वर्तमानमें ही हो सकता है।

त्याग, सेवा, प्रेम अपनाइये, साधनपवरायणता आयेगी। निज-ज्ञानके आदरसे जीवनमें त्याग आता है। प्रभुमें विश्वास करनेसे उनमें आत्मीयता हो जाती है। उनको अपना माननेसे उनकी प्रियता उदित होती है।

किसीको बुरा न माननेसे जगत्के प्रति सद्भाव और सेवा होती है। सेवाका अर्थ है—किसीको बुरा मत समझो, किसीका बुरा मत चाहो, किसीकी बुराई मत करो एवं किसीसे सुखकी आशा मत करो।

प्रेमका अर्थ है कि प्रभुको अपना मानो, उनमें आत्मीयता रखो। प्रभु चाहे जहाँ हों, जैसे हों, चाहे जो करें, मिलें न मिलें, पर उनको अपना मानो।

त्यागका अर्थ है कि किसी वस्तुको अपना मत मानो। स्थूल, सूक्ष्म और कारणशरीरसे सम्बन्ध मत रखो। कर्म, चिन्तन एवं स्थिति किसी भी अवस्थामें जीवन-बुद्धि मत रखो।

किसीका आश्रय मत लो। किसीसे सुखकी आशा मत करो। फिर जीवन जगत्के लिये, अपने लिये और प्रभुके लिये उपयोगी हो जायगा, साधनमें सिद्धि हो जायगी। इसी सद्भावनाके साथ, सभीको बहुत-बहुत प्यार। ॐ आनन्द।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मज्जन फल पेखिअ ततकाला'

(श्रीदेवेन्द्रजी शर्मा)

प्रात:स्मरणीय परम पूज्य गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने श्रीरामचरितमानसमें सत्संगकी महामहिमाका बड़े ही सार्थक रूपमें सादर गायन किया है, जिसमें वे कहते हैं—

मज्जन फल पेखिअ ततकाला। काक होहिं पिक बकउ मराला॥
सुनि आचरज करै जनि कोई। सतसंगति महिमा नहिं गोई॥
मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई॥
सो जानब सतसंग प्रभाऊ। लोकहुँ बेद न आन उपाऊ॥

(रा०च०मा० १।३।१-२, ५-६)

भाव यह है कि सत्संगरूपी सरोवरमें मज्जन (स्नान) कर लेनेका तत्काल फल तो इस प्रकार देखा जाता है कि कौए (अप्रिय-कर्कश वाणी बोलनेवाले जन) भी कोयलकी-सी मधुर वाणी बोलने लगते हैं तथा बगुलों अर्थात् दुष्टजनोंके आचरणमें भी परिवर्तन हो जाता है और वे हंसों अर्थात् विवेकीजनों-जैसा व्यवहार करने लगते हैं।

श्रीगोस्वामीजी आगे कहते हैं कि सत्संगकी महिमा किसीसे भी छिपी नहीं है, अपितु वह तो जगत्प्रसिद्ध है। सत्संगकी महिमाको सुनकर उसपर आश्चर्य अथवा सन्देह नहीं करना चाहिये वरन् अपने कल्याणार्थ उसपर तो विश्वास ही करना चाहिये। सत्संगकी महिमा ऐसी है कि जिस किसीने भी यदि मति (सुबुद्धि), कीर्ति (यश), गति (मुक्ति), भूति (ऐश्वर्य) और भलाई—इन पाँचों पदार्थोंमेंसे किसी एक अथवा अनेक पदार्थोंकी प्राप्ति की है, तो उसके पीछे सत्संगका ही प्रभाव जानना चाहिये; क्योंकि वेदों और लौकिक संसारमें—इन सब पदार्थोंकी प्राप्ति करनेका सत्संगके माध्यमको छोड़ और कोई अन्य उपाय (साधन) है ही नहीं। सज्जनोंका तो सत्संगसे अटूट सम्बन्ध होता ही है, परंतु गोस्वामीजी तो यहाँतक लिखते हैं—

सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परस कुधात सुहाई॥

(रा०च०मा० १।३।९)

अर्थात् दुष्टजन भी सत्संगति पाकर उसी प्रकार सुधर जाते हैं, जैसे कि 'पारसमणि' का स्पर्श पाकर कुधातु (लोहा) भी स्वर्ण बन जाता है।

जीवके लिये परम कल्याणप्रद सत्संगका महत्त्व और इसकी महिमा इसी बातसे प्रकट हो जाती है कि श्रीगोस्वामीजी श्रीरामचरितमानसमें सत्संगकी महिमाका बखान भगवान् श्रीशंकरजीके द्वारा करवाते हुए कहते हैं—

गिरिजा संत समागम सम न लाभ कछु आन।
बिनु हरि कृपा न होइ सो गावहिं बेद पुरान॥

(रा०च०मा० ७।१२५ ख)

अर्थात् भगवान् श्रीमहादेवजी कहते हैं कि हे देवि पार्वतीजी! इस संसारमें संत-समागम (संतोंके सांनिध्य)-का लाभ मिलनेके समान दूसरा कोई और लाभ नहीं है और वेद-पुराण आदि सभी ग्रन्थ ऐसा कहते हैं कि यह परम कल्याणकारी संत-समागम भगवान् श्रीहरिकी कृपाके बिना नहीं मिलता है।

इतना ही नहीं, भगवान् श्रीरामजी भी श्रीसनकादि मुनीश्वरोंका सत्संग-लाभ मिलनेपर, स्वयंको धन्य मानते हुए और उनके प्रति सत्संगकी महिमा निवेदन करते हुए कहते हैं—

आजु धन्य मैं सुनहु मुनीसा। तुम्हरें दरस जाहिं अघ खीसा॥
बड़े भाग पाइब सतसंगा। बिनहिं प्रयास होहिं भवभंगा॥

(रा०च०मा० ७।३३।७-८)

भगवान् श्रीरामजी श्रीसनकादि मुनीश्वरोंके प्रति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहते हैं कि हे मुनीश्वरो! आज मैं धन्य हो गया; क्योंकि आपके दर्शनोंसे तो सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। श्रीभगवान् आगे कहते हैं कि बड़े ही भाग्यवान् व्यक्तिको सत्संगका लाभ मिलता है, जिससे बिना ही किसी विशेष प्रयासके भवबन्धन (जन्म-मृत्युके चक्कर)-से मुक्ति मिल जाती है।

श्रीगोस्वामीजी सत्संगकी उपर्युक्त कल्याणप्रद महिमाके पुष्टिकरणहेतु किसी भी पदार्थके भला अथवा बुरा होनेमें उसकी संगतिको एक प्रमुख कारण मानते हैं—

ग्रह भेषज जल पवन पट पाइ कुजोग सुजोग।
होहिं कुबस्तु सुबस्तु जग लखहिं सुलच्छन लोग॥

(रा०च०मा० १।७ क)

अर्थात् यद्यपि सभी पदार्थ अपने प्राकृतिक गुण-धर्मोंके अधीन ही रहते हैं, फिर भी चतुर एवं विचारशील जन ऐसा मानते हैं कि उनका अच्छा या बुरा लगना तो इस बातपर निर्भर करता है कि कोई भी पदार्थ किस स्थानपर और किस प्रकारकी दूसरी वस्तुओंके साथ अथवा वातावरणमें रहता है अथवा रखा जाता है। जिसके लिये श्रीगोस्वामीजी पाँच पदार्थोंके उदाहरण प्रस्तुत करते हैं—ग्रह, औषधि, जल, पवन और वस्त्र। इनमेंसे एक पवनपर विचार करनेसे पाँचोंकी स्थिति स्वत: स्पष्ट हो जाती है। जैसे—पवन यदि सुगन्धित पुष्पोंके बगीचेसे होकर गुजरता है तो यह सुगन्धित हो जाता है और सभी उस सुगन्धित पवनको पसन्द करते हैं और यही पवन यदि किसी मल-मूत्रभरे नाले आदिसे होकर गुजरता है तो स्थिति पूर्व उदाहरणके विपरीत हो जाती है।

श्रीगोस्वामीजी श्रीरामचरितमानसमें जीवके पापमुक्त होने, मोक्ष अथवा भगवत्प्राप्तिके लिये अनेक साधन बताते हैं, जिनमेंसे एक प्रमुख साधन है—संतोंका दर्शन—

सरदातप निसि ससि अपहरई। संत दरस जिमि पातक टरई॥

(रा०च०मा० ४।१७।६)

अर्थात् शरद्-ऋतुमें दिनके तापको रात्रिके समयमें चन्द्रमा ऐसे हर लेता है, जैसे संतोंके दर्शनसे पाप दूर हो जाते हैं। संतोंकी पावन महिमाका गायन श्रीरामचरितमानसके अनेक प्रसंगोंमें उपलब्ध है। विस्तारभयसे यहाँपर केवल दो सूत्रात्मक उदाहरण प्रस्तुत हैं—

सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक कर लेखा॥

(रा०च०मा० ३।३६।३)

भगवान् श्रीराम भक्तिमती शबरीजीके प्रति नवधा भक्तिका उपदेश करते हुए कहते हैं कि भक्तिके सातवें साधनके अन्तर्गत सारे संसारको सम भावसे मेरे ही स्वरूपमें देखे, लेकिन संतको तो मुझसे भी ऊपर जाने; क्योंकि ***'संत संग अपबर्ग कर'*** (रा०च०मा० ७।३३) अर्थात् मोक्ष-प्राप्तिका एकमात्र साधन तो सत्संग ही है।

इस सन्दर्भमें एक अन्य उदाहरण काकभुशुण्डिजीका है। भगवान् श्रीमहादेवजी भक्तप्रवर श्रीकाकभुशुण्डिजीके प्रति उपदेश करते हुए कहते हैं कि अबसे आगे कभी भी संतका अपमान नहीं करना और संतको सदैव ही अनन्त अर्थात् ईश्वरके समान ही जानना—

अब जनि करहि बिप्र अपमाना। जानेसु संत अनंत समाना॥

(रा०च०मा० ७।१०९।१२)

श्रीगोस्वामीजी श्रीरामचरितमानमसें जीवके पापहरण (पापमुक्त होने)-के लिये और मोक्ष अथवा भगवत्प्राप्तिके लिये साधारण तौरपर सत्संगके चार साधन बताते हैं—

दरस परस मज्जन अरु पाना। हरइ पाप कह बेद पुराना॥

(रा०च०मा० १।३४।१)

उपर्युक्त शब्दावलीका प्रयोग भगवान् श्रीरामको प्रिय लगनेवाली पावन सरयू नदीके लिये किया गया है, परंतु सत्संगके सन्दर्भमें भी यह चौपाई सटीक बैठती है। संतका दर्शन,संतका स्पर्श, सत्संगसरितामें मज्जन (अवगाहन) और सत्संगरूपी अमृतका पान अर्थात् उसे आत्मसात करना समस्त पापोंका विनाशक है। श्रीरामचरित-मानसमें सुन्दरकाण्डका लंकिनी-प्रसंग इसका एक सुन्दर उदाहरण है।

लंकिनी और श्रीहनुमान्जी महाराजकी क्षणिक भेंटका पूर्वार्ध सत्संगकी अवस्थाओंके प्रतिकूल था। किंतु इसे देश, काल और पात्रके साथ जोड़कर देखनेसे शंकाओंका समाधान स्वत: ही हो जाता है। लंकिनी एक राक्षसी थी और वह लंकाकी सुरक्षासेवामें नियुक्त थी। श्रीहनुमान्जी महाराज प्रभु श्रीरामके कार्यसे लंकामें प्रवेश करना चाहते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे और वह भी रातके समयमें। किसी अनजान व्यक्तिको लंकामें प्रवेशसे रोकना लंकिनीका पहला कर्तव्य था। इधर, प्रभुकार्यमें बाधा पहुँचानेवालेको जैसे-तैसे भी मार्गसे हटाना श्रीहनुमान्‌जी महाराजकी कर्तव्यनिष्ठाका प्रश्न था।

लेकिन यदि इस भेंटके सम्पूर्ण घटनाक्रमपर विचार करें तो इसमें पापहरणके उपर्युक्त चारों साधनों ***'दरस परस मज्जन अरु पाना'*** का प्रयोग होता स्पष्ट दिखायी देता है। सर्वप्रथम लंकिनी श्रीहनुमान्‌जी महाराजरूपी संतके दरस (दर्शन) पाती है। उसके द्वारा मार्ग अवरुद्ध करनेपर श्रीहनुमान्‌जी महाराजद्वारा मुष्टिकाप्रहारको संतके द्वारा परस (स्पर्श)-के रूपमें देखना उपयुक्त होगा।

लेकिन श्रीहनुमान्‌जी महाराजरूपी संतके परस (स्पर्श)-के उपरान्त यहाँपर जो स्थिति बनती है, वह इस प्रकार है—

मुठिका एक महाकपि हनी। रुधिर बमत धरनी ढनमनी॥

(रा०च०मा० ५।४।४)

अर्थात् मुष्टिकाप्रहारके परिणामस्वरूप लंकिनी रुधिरका वमन (उल्टी) करती हुई पृथ्वीपर लुढ़क (गिर) जाती है। इस लुढ़क जानेके परिणामसे एक शंका जन्म लेती है कि संतके दरस-परसके प्रभावसे तो जीवका उत्थान होना चाहिये, लेकिन यहाँपर तो लंकिनीका पृथ्वीपर गिरना अर्थात् पतन होना स्पष्ट दिखायी दे रहा है। परंतु गहराईसे विचार करके देखें तो यह शंका निर्मूल है। यहाँपर श्रीहनुमान्‌जी महाराजरूपी सन्तके द्वारा मुष्टिकाप्रहारसे लंकिनीके केवल मोहाभिमानका ही पतन हुआ है और मोहाभिमानरूपी रक्तका वमन हुआ है, जिसका अन्तिम परिणाम लंकिनीके विरक्त (आसक्तिसे रहित) होनेकी अवस्थाको दर्शाता है—

पुनि संभारि उठी सो लंका। जोरि पानि करि बिनय ससंका॥

मोहाभिमानसे विरक्त (मुक्त) होकर वह फिर सँभलकर अर्थात् भक्ति, ज्ञान और विवेकसे युक्त होकर एक परिवर्तित उच्च अवस्थाको प्राप्त हो गयी, जिसका परिणाम है, लंकिनीका आगेका पूर्णतया बदला हुआ विनय और भक्तियुक्त आचरण। यहाँपर ***'ससंका'*** शब्दका यही भाव लेना उपयुक्त होगा कि मेरे अन्दर अभी भी कोई विकार तो नहीं रह गया है, जिसके वशीभूत होकर मैं भगवान् श्रीरामजीके दूतके प्रति पूर्ववत् कोई और अपराध पुनः न कर बैठूँ।

तत्पश्चात् चतुर्थ अवस्था आती है सत्संगरूपी अमृतके पान अर्थात् आत्मसात् करनेकी। श्रीहनुमान्‌जी महाराजरूपी संतके दरस-परस (दर्शन और स्पर्श)-के प्रसादसे वह **'नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा'** की अवस्थाको प्राप्त हुई। उसके प्रभावसे लंकिनीको भगवान् श्रीब्रह्माजीके वे वचन याद आ गये, जो उन्होंने उससे कहे थे—

जब रावनहिं ब्रह्म बर दीन्हा। चलत बिरंचि कहा मोहि चीन्हा॥
बिकल होसि तैं कपि कें मारे। तब जानेसु निसिचर संघारे॥

(रा०च०मा० ५।४।६-७)

और वह अविलम्ब ***'साधु समाना'*** की अवस्थाको भी प्राप्त हो जाती है। अपने भाग्यकी सराहना और सत्संगकी महामहिमाका बखान करते हुए वह कहती है—

तात मोर अति पुन्य बहूता। देखेउँ नयन राम कर दूता॥

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

(रा०च०मा० ५।४।८, ५।४)

इस प्रकार क्षणिक सत्संगके प्रभावसे जब लंकिनी-जैसी निशाचरीका हृदयपरिवर्तन और कल्याण हो गया, तो अन्य भक्तजनोंके लिये तो कहना ही क्या!

इसीलिये श्रीगोस्वामीजी सत्संगलाभ प्राप्त करनेपर ही जीवके बड़भागी होने और सत्संगहेतु प्रयोगमें लाये गये समयको ही धन्य बताते हुए कहते हैं—

बड़े भाग पाइब सतसंगा।

(रा०च०मा० ७।३३।८)

धन्य घरी सोइ जब सतसंगा।

(७।१२७।८)

अर्थात् जीव वही भाग्यशाली है, जिसे सत्संगका लाभ मिलता है और समयका भी केवल वही अन्तराल धन्य है, जो सत्संगके लिये प्रयोग होता है। सो ऐसी है, परम कल्याणप्रद सत्संगकी महामहिमा, जिसपर विश्वास करके इसका अधिकाधिक लाभ प्राप्त करनेमें ही हम सबका कल्याण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधकोंके प्रति—

[परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति कठिन नहीं]

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

प्रायः सामान्य साधकोंकी ऐसी धारणा रहती है कि परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति अत्यन्त कठिन कार्य है; पर वस्तुतः वह कठिन नहीं है, हमने अपनी भ्रान्त धारणाके कारण ही उसे कठिन और अगम मान रखा है। यहाँ यह शंका की जा सकती है कि स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने भी इस कठिनताकी ओर संकेत किया है—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥

(गीता ७।३)

'हजारों मनुष्योंमें कोई एक मेरी प्राप्तिके लिये यत्न करता है और उन यत्न करनेवाले योगियोंमें भी कोई ही मेरे परायण होकर मुझको तत्त्वसे अर्थात् यथार्थरूपसे जानता है।'

पर विचारपूर्वक देखें तो इस श्लोकका तात्पर्य परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिमें कठिनाई बतानेमें न होकर इस मार्गमें चलनेवालों (प्रवृत्त होनेवालों)-की दुर्लभता बतानेमें है। मनुष्य-देह मिलनेपर भी अधिकांश लोग इस मार्गपर पाँव नहीं रखते, अपने उद्धारका ऐसा स्वर्ण-अवसर मिलनेपर भी वे भोगोंमें आसक्त रहते हैं। यह नहीं सोचते कि हम जो कुछ कर रहे हैं, उसका परिणाम क्या होगा? वे अन्धाधुन्ध एक-दूसरेका अनुकरण करते हुए दुर्गतिको प्राप्त होते हैं। उपर्युक्त श्लोकद्वारा भगवान्ने परमात्मतत्त्व-प्राप्तिके लिये सच्ची लगनसे प्रयास करनेवाले मनुष्योंकी कमी बतलायी है, न कि उस तत्त्वकी प्राप्तिमें कठिनता। हमें मनुष्य-देह प्रदान करनेका उद्देश्य ही यही है कि हम अच्छा संग प्राप्तकर सद्विचारोंका संग्रह करें, जिनसे जन्म-जन्मान्तरके कुसंस्कार नष्ट होकर हमें सुगमतापूर्वक परमात्म-तत्त्वकी प्राप्ति हो जाय।

भगवान् तो परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिमें सुगमता बतलाते हुए कहते हैं—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८।१४)

'हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर नित्य-निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमका स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।'

ऐसी सुलभता होते हुए भी परमात्मतत्त्वको जाननेवाले बहुत कम हैं, इसका कारण क्या है?

इसका मुख्य कारण है कि अधिकांश मनुष्य तात्कालिक (प्रत्यक्ष दीखनेवाले) सुख-भोग और पदार्थ-संग्रहमें लगे रहते हैं, वे प्रत्यक्ष दिखायी न देनेवाले एवं इन्द्रियातीत ईश्वरके सम्मुख नहीं होते। यदि साधकको प्रवृत्ति परमात्मतत्त्वकी ओर होगी तो चाहे वह दुराचारीसे भी दुराचारी क्यों न हो, उसे निश्चय ही अपने लक्ष्यकी प्राप्ति शीघ्र हो जायगी। भगवान्के वचन हैं—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

(गीता ९।३०)

'यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही माननेयोग्य है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है।'

इसी प्रकार श्रीरामचरितमानसमें भी कहा गया है—

जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही॥
तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना॥

(५।४७।१-२)

तात्पर्य यह कि साधक दृढ़ निश्चय करके अपनी प्रवृत्तिको परमात्मतत्त्वकी ओर मोड़ ले तो उसके लिये परमात्माकी प्राप्ति कठिन नहीं, अत्यन्त सुलभ है। परमात्म-तत्त्वकी ओर प्रवृत्ति होते ही—

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।

(गीता ९।३१)

'वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली परम शान्तिको प्राप्त होता है।'

इसी प्रकार ज्ञान-मार्गमें प्रवृत्त होनेवाला पापी-से-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पापी साधक भी उसी परम शान्तिको प्राप्त करता है—

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि॥

(गीता ४।३६)

यहाँ यह शंका हो सकती है कि पापी तो ज्ञानका अधिकारी भी नहीं हो सकता, फिर उसे ज्ञानरूपी नौकाका मिलना तो अत्यन्त कठिन ही होगा? परंतु भगवान्‌का अभिप्राय यह है कि पापी-से-पापी जब परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिके लिये अत्यन्त व्याकुल होता है तो मेरी सहज कृपासे उसका निश्चय ही कल्याण हो जाता है।

अब इस बातपर विचार करें कि परमात्मतत्त्व जब पापियों और धर्मात्माओं—सभीके लिये सुगम है, उसके सभी समानरूपसे अधिकारी हैं, तब फिर उसकी प्राप्तिमें कठिनताका आभास क्यों होता है? विचार किया जाय तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि यह कठिनता हमने ही मान रखी है। वास्तवमें कठिनता है नहीं, उसका आभासमात्र होता है। सांसारिक पदार्थोंकी प्राप्ति और उनमें सुख-बुद्धिका त्याग न कर पाना ही परमात्मतत्त्व-प्राप्तिकी उत्कण्ठामें सबसे बड़ी बाधा है। इस विषयमें एक मार्मिक बात यह समझनी चाहिये कि परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिमें पूर्वजन्मार्जित पाप उतने बाधक नहीं होते, जितनी कि वर्तमान जन्मकी धर्म-विरुद्ध प्रवृत्तियाँ। मनुष्यका ऐसा स्वभाव बन गया है कि वह संसारकी नश्वर वस्तुओं एवं क्रियाओंसे सुख लेना चाहता है। इसी कारण उसकी परमात्मतत्त्वकी ओर प्रवृत्ति ही नहीं होती, फिर उसमें अनन्यता तो होगी ही कैसे?

जो परिस्थिति आजतक थी, वह अब नहीं रही। इच्छित-अनिच्छित वस्तुएँ भी मिलीं, परंतु टिकी नहीं। ऐसा सर्वमान्य अनुभव होते हुए भी मनुष्य मनके अनुकूल सांसारिक परिस्थितियों और पदार्थोंके पानेकी इच्छा नहीं छोड़ता। प्रथमतः तो मनके अनुकूल ऐसे पदार्थ मिलते नहीं, मिलते भी हैं तो ठहरते नहीं। यदि ये सांसारिक सुख और पदार्थ टिकते भी हैं तो मनुष्य स्वयं नहीं रहता। इस अकाट्य सिद्धान्तको कोई बदल नहीं सकता, फिर भी मनुष्य अपने इस अनुभवकी उपेक्षा करनेके कारण सांसारिक अभिलाषाओंको त्यागता नहीं वरन् और अधिक तेजीसे उनकी ओर दौड़ता है।

जो कुछ संसारमें प्राप्त हुआ है, उससे हमें संतोष होता नहीं और ये सांसारिक सामग्रियाँ अधिक-से-अधिक प्राप्त हो जायँ, ऐसी इच्छा बराबर बनी रहती है। इससे यह पता चलता है कि सांसारिक पदार्थोंसे सदाके लिये तृप्ति नहीं हो सकती, आजतक किसीकी तृप्ति हुई भी नहीं। शास्त्रोंमें कहा गया है—

यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
न दुह्यन्ति मनःप्रीतिं पुंसः कामहतस्य ते॥

(श्रीमद्भा० ९।१९।१३)

'लोकमें जितने धन, धान्य, सुवर्ण, पशु और स्त्रियाँ हैं, वे सब मिलकर भी विषयग्रस्त पुरुषके चित्तको सन्तुष्ट नहीं कर सकते।'

जब सांसारिक पदार्थोंसे आजतक किसीको पूर्णता नहीं मिली—न मिल सकती है और न कभी मिल ही सकेगी, तब हमें उनसे पूर्णता कैसे प्राप्त हो सकती है?

यह जीव चेतन (परमात्मा)-का अंश है—

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥

(मानस ७।११६।१)

चेतनकी भूख जड, नाशवान् संसार और उसके पदार्थों या सुख-संग्रहसे कैसे मिटेगी? यदि परमात्माका अंश जड वस्तुओंकी इच्छा करेगा तो इसका अभाव बढ़ता ही चला जायगा और सांसारिक अभावोंकी पूर्तिसे यह अभाव कभी कम न होगा। जहाँ जड़तासे सम्बन्ध होगा, वहाँ दरिद्रता बढ़ती ही चली जायगी। अंश (जीव)-को जबतक अंशी (ईश्वर)-की प्राप्ति नहीं होगी, तबतक समस्त सांसारिक वैभव प्राप्त हो जानेपर भी उसे शान्ति नहीं मिल सकेगी। जड़तासे सम्बन्ध जोड़ना अशान्तिको गले लगाना है, यह निर्विवाद सत्य है। यदि साधककी विवेक-बुद्धिमें यह बात बैठ जाय कि मैं चेतनका अंश अर्थात् चेतन हूँ और सांसारिक पदार्थ जड़ प्रकृतिके कार्य होनेके कारण जड़ हैं, इनसे मेरी तृप्ति कदापि नहीं हो सकती तो उसे परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति अत्यधिक सुगमतासे हो सकती है; क्योंकि वे (परमात्मा) नित्य प्राप्त हैं, कभी किसीसे अलग हुए ही नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्मुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

(मानस ५। ४३। १)

भगवान्‌के सम्मुख होते ही करोड़ों जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं। यह कैसी विलक्षण बात है! परमात्मतत्त्वकी ओर उन्मुख होते ही सारी बाधाएँ अपने-आप दूर हो जाती हैं।

कुछ लोगोंकी यह भ्रान्त धारणा है कि परमात्म-प्राप्तिके साधनमें लगनेसे संसारके सगे-सम्बन्धी, मित्र, बान्धव विपरीत हो जाते हैं। सत्य तो यह है कि जो सच्चे हृदयसे भगवान्‌की सेवा-भक्तिमें लग जाता है, उसे संसारी लोगोंसे ही नहीं, प्रत्युत उदासीन, वैरी, मित्र, कुटुम्बी और यहाँतक कि चोर-डाकुओंसे भी सहायता मिलती है। मार्मिक बात यह है कि भगवान्‌की ओर प्रवृत्ति होनेपर साधक सबमें परमात्माका दर्शन करता है, कहीं भी उसकी आसक्ति नहीं होती, वह निर्वैर हो जाता है—

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥

(मानस ७। ११२)

जो अनुकूलता पहले इच्छा होनेपर भी नहीं मिलती थी, वही इच्छा त्यागते ही पीछे-पीछे दौड़ने लगती है। जिसे कुछ भी लेनेकी इच्छा नहीं होती, उसे लोग देते हैं और जो माँगता है, उसे कोई देता नहीं। लोकमें यह बात तो सबके देखनेमें आती ही है।

जो मायाको नहीं अपनाते, माया उनकी सेवा करती है और जो मायाके पीछे लगे रहते हैं, उनके हाथ वह आती नहीं। उलटा वे अपना ही नाश कर लेते हैं—

जो बिषया संतन तजी ताही नर लिपटाय।
ज्यों नर डाले वमन को स्वान स्वाद सों खाय॥

त्याज्य दुर्गन्धित वमनके लिये जिस प्रकार कुत्ते आपसमें लड़ते और छीना-झपटी करते हैं, उसी प्रकार परमात्मतत्त्वसे विमुख हुए संसारी लोग घृणास्पद एवं दुःखदायी पदार्थोंके लिये परस्पर ईर्ष्या-द्वेष आदिमें फँसकर दुःखी होते रहते हैं। यदि सांसारिक पदार्थोंमें भोग और संग्रह-बुद्धिका त्याग कर दिया जाय तो सब प्रकारकी अनुकूलता होनेपर भी वह परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिमें बाधक नहीं बन सकेगी।

जैसा कि ऊपर कहा गया है—सांसारिक पदार्थोंमें और उनकी कामनामें भी स्थायित्व नहीं है तो फिर उनसे नित्य, शुद्ध, शाश्वत और पूर्ण सुखकी प्राप्ति कैसे सम्भव हो सकती है? परमात्मा तो सर्वत्र हैं, सब समय हैं, सबमें हैं, सब देशमें हैं, फिर उनकी प्राप्तिमें कठिनता क्या—

घट-घट ब्यापक रामजी अति नेड़ा नहीं दूर।
भजे कपट तज चित्तसे सन्मुख होइ जरूर॥

वास्तवमें इस निकटताको दूरीमें, सुगमताको कठिनतामें बदला है सांसारिक इच्छाओंने, भोगोंने, विभिन्न कामनाओंने। इनका त्याग पूरी सचाईसे होना चाहिये, फिर परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिमें कोई कठिनाई नहीं रहती।

आत्माकी अमरता

तत्त्वज्ञानी सुकरातका नाम विश्वविख्यात है। वह सत्यका खोजी था और उसके सत्य-चिन्तनकी शैली नितान्त नवीन, मौलिक और विशिष्ट थी। तीन हजार साल पहलेकी बात है, यूनानमें बड़े-बड़े तत्त्ववेत्ताओंने उस समय सत्यकी बड़ी गहराईतक खोज की। तत्कालीन शासनको यह आशंका थी कि ऐसा न हो कि इन तत्त्वज्ञानियोंकी शिक्षासे यूनानके युवकोंका मस्तिष्क विकृत हो उठे और वे अपने नित्यप्रतिके व्यवहारको भूलकर समाजकी गतिमें बाधा डालें, इसलिये इन तत्त्वज्ञानियोंपर राज्यकी ओरसे प्रतिबन्ध लगना आरम्भ हुआ और इसका दुष्परिणाम इस सीमातक पहुँचा कि महात्मा सुकरातको धीरे-धीरे जहर पिलाकर मार डालनेकी व्यवस्था की गयी।

जिस दिन सुकरातको जहर दिया जानेवाला था, उसकी पहली रात वह अपने शिष्योंको आत्माकी अमरताकी सीख दे रहा था। शरीरमें विषका प्रवेश होनेपर उसे क्या-क्या वेदनाएँ होंगी, इसीका वह बड़ी मस्ती और मौजसे वर्णन कर रहा था। उसे किसी बातकी भी चिन्ता नहीं थी। उपदेश खत्म होनेपर उसके एक शिष्यने पूछा—'मरनेपर आपकी अन्त्येष्टि-क्रिया किस तरह की जाय?' सुकरातने कहा, 'खूब, मारेंगे तो वे और गाड़ोगे तुम! तो क्या मारनेवाले मेरे दुश्मन हैं, तुम मुझे बहुत चाहनेवाले हो? वे बुद्धिमानीसे मुझे मारेंगे और तुम समझदारीसे मुझे गाड़ोगे। तुम कौन हो मुझे गाड़नेवाले? मैं तुम सबसे परे हूँ। तुम किसमें मुझे गाड़ोगे। मिट्टीमें या नाशमें। मुझे कोई नहीं मार सकता, न कोई गाड़ ही सकता है। अबतक मैंने क्या समझाया तुमलोगोंको? आत्मा तो अमर है, उसे कौन मार सकता है और कौन गाड़ सकता है?' सचमुच सुकरात अमर हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवत्कृपा [प्रश्नोत्तर]

(श्रीसुधांशुभूषणदेवजी शर्मा, एम०ए०)

प्रश्न—शास्त्र भगवान्‌को परम दयालु और सर्वभूतोंका सुहृद् कहते हैं; किंतु संसारमें प्रत्यक्ष देखा जाता है कि बहुत-से कष्ट हैं और जीव दुखी हैं। इससे तो भगवान्‌की निष्ठुरता सिद्ध होती है, वे दयालु कैसे?

उत्तर—एक बालक देखता है कि किसी को फोड़ा हुआ है और कोई डॉक्टर उसे चीर रहा है। बीमार आदमी बुरी तरहसे चिल्लाता है, यहाँतक कि डॉक्टरको गालियाँ भी दे रहा है। बालक जाकर दूसरोंसे कहता है कि डॉक्टर साहब बड़े निष्ठुर हैं; तो क्या डॉक्टर साहब सचमुच निष्ठुर हैं? उनका उद्देश्य तो बीमार आदमीको नीरोग करना ही है और फोड़ा अच्छा होनेके बाद बीमार आदमी भी डॉक्टर साहबको दयालु माननेके लिये राजी हो जायगा। अज्ञानवश हमलोग भी असली तत्त्वको न जाननेके कारण इसी बालककी तरह भगवान्‌को निष्ठुर ठहराते हैं।

प्रश्न—किंतु हम तो बालक नहीं हैं?

उत्तर—जब हमलोगोंमें अज्ञता है, तब हम बालक नहीं तो और क्या हुए?

प्रश्न—मान लिया, संसारके दुःख-कष्ट फोड़ेके समान हैं, लेकिन भगवान् फोड़ा पैदा ही क्यों करते हैं? अगर फोड़ा न हो, तो चीरनेकी जरूरत भी न पड़े।

उत्तर—इसी प्रश्नमें तो अज्ञता भरी है। कोई व्यक्ति जो गणितमें बिलकुल अनभिज्ञ है, अगर पूछे Einstein की Theory of Relativity (आइंस्टाइनका सापेक्षवादका सिद्धान्त) क्या है और कैसे आया, तो उसको क्या समझाया जाय? उससे यही कहना पड़ेगा, 'भाई! पहले इसको समझनेके योग्य बनो, फिर ऐसा प्रश्न करना। अभी तुम्हारी समझमें नहीं आयगा।' आपने जो प्रश्न किया है, भगवान् फोड़ा पैदा क्यों करते हैं? उसका उत्तर समझनेके लिये आपमें पहले योग्यता होनी चाहिये।

प्रश्न—मैं खैर अयोग्य ठहरा, लेकिन बड़े-बड़े विद्वान् भी तो ऐसा प्रश्न करते हैं। उनको आप क्या उत्तर देंगे?

उत्तर—अगर किसीको इतिहासमें एम०ए० की पदवी प्राप्त हो तो क्या जरूरी है कि गणितमें भी उसका समान प्रवेश हो? जिनको लोग संसारमें विद्वान् कहते हैं, क्या जरूरी है भगवत्तत्त्वमें भी उनकी गति हो, अगर भगवत्तत्त्वमें उनका प्रवेश नहीं है तो इस विषयमें तो वे बालकके सदृश ही हैं, चाहे उनकी विद्वत्ताकी कितनी ही ख्याति क्यों न फैली हो।

प्रश्न—इससे क्या आपका यह मतलब है कि कोई प्रश्न ही न किया जाय? फिर गीतामें क्यों लिखा है— '**तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया**' (प्रणिपात, परिप्रश्न और सेवाके द्वारा उसको जानो।)

उत्तर—मेरा यह मतलब नहीं है कि प्रश्न न किया जाय। मेरा कहना केवल इतना है कि सब प्रश्नोंके उत्तर सबको बोधगम्य नहीं हो सकते। हम अगर Newton के laws (न्यूटनके नियमों)-को नहीं समझ सकते तो Newton के laws जैसे गलत नहीं हो जाते, वैसे ही अगर हम भगवान्‌की दयाको नहीं समझ सकते, तो भगवान् निर्दय नहीं सिद्ध हो जाते। आपने जो गीताका श्लोकार्ध उद्धृत किया है, उसमें आपने '**परिप्रश्नेन**' पर जोर दिया है, '**प्रणिपातेन**' और '**सेवया**' पर पूरा गौर नहीं किया है। प्रणिपात आप किसको करते हैं? जिसपर श्रद्धा है। अर्थात् प्रश्नसे पहले श्रद्धा होनी चाहिये। यदि आपके दिलमें पहलेहीसे यह भावना हो कि इस मनुष्यसे मैं अधिक जानता हूँ, तो उससे प्रश्न करना निरर्थक है। यदि श्रद्धा है तो भगवान् केवल प्रश्न करनेके लिये ही नहीं, परिप्रश्न अर्थात् चारों तरफसे प्रश्न करनेकी अनुमति देते हैं। फिर '**सेवया**' पर विचार कीजिये। **ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः** (तत्त्ववेत्ता ज्ञानी लोग) हमारी कायिक सेवाके भूखे नहीं हैं। उनकी सेवा यही है कि उनके वचनोंका हम मनन करें और अपने आचरणोंसे उनके उपदेशको सार्थक बनायें। इसी सेवासे हम पूरा लाभ उठा सकते हैं। देखिये, गीताका शब्द-विन्यास। पहले प्रणिपात फिर परिप्रश्न और अन्तमें सेवा। प्रणिपातके बिना परिप्रश्न हानिकारक हो सकता है। इसलिये प्रणिपातको सबसे पहले रखा और बिना श्रवण-मनन-निदिध्यासन-रूप सेवाके परिप्रश्न लाभदायक नहीं हो सकता, इसलिये '**परिप्रश्नेन**' के बाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'**सेवया**' का प्रयोग हुआ है।

प्रश्न—समझा कि मैं अभी भगवान्‌की दयाको समझनेयोग्य नहीं हूँ, तो कैसे योग्य बनूँ?

उत्तर—मैं स्वयं भी तो योग्य नहीं हूँ, परंतु जैसे मैट्रिकमें पढ़नेवाला छात्र निम्न श्रेणीके बच्चोंको मदद दे सकता है, वैसे ही दो-एक बात बतला सकता हूँ। पहली बात तो यह है कि विश्वास कीजिये 'भगवान् दयालु हैं।'

प्रश्न—यह तो बड़ी कठिन बात है। यही विश्वास तो नहीं होता।

उत्तर—आपने अंग्रेजी पढ़ी है न? जब आपको सिखाया गया, 'यह A है', 'यह B है' तो आपको सीखनेमें थोड़ी-सी कठिनता मालूम हुई होगी। परंतु आपको शिक्षकमें विश्वास था। आप सोचते थे, जब मास्टर साहब कह रहे हैं, 'यह A है' तो यह 'A' ही होगा। अगर उस समय आप अकड़ जाते कि यह 'A' नहीं है, यह 'क' है तो क्या सीखते? विश्वास ही शिक्षा या उन्नतिका मूल है। आप विश्वास नहीं करेंगे तो कैसे काम चलेगा।

प्रश्न—इस जडवादके युगमें विश्वासका स्थान बहुत ऊँचा नहीं है। लोक तर्क-शक्तिको अधिक कीमती मानते हैं। इसके सम्बन्धमें आप क्या कहते हैं?

उत्तर—तर्कशक्तिके बिना तो हम जी भी सकते हैं, किंतु विश्वासके बिना जीना असम्भव है। बच्चेको मातापर विश्वास है, छात्रको शिक्षकपर विश्वास है। मनुष्यपर मनुष्यको विश्वास करना पड़ता है, तभी व्यवहार चलता है। मान लीजिये, आप बाजारमें जाते हैं, गेहूँ खरीदनेके लिये। अगर गेहूँवाला आपपर अविश्वास करे और आप गेहूँवालेपर, तो रुपये देनेके पहले वह आपको गेहूँ नहीं तौल सकता और गेहूँ तौलनेके पहले आप रुपये नहीं दे सकते, तो सौदा कैसे होगा? बड़े-बड़े वैज्ञानिक भी, जिनमें बुद्धिका सम्यक् विकास हुआ है, विश्वासके ही बलपर चलते हैं। नहीं तो वे Research (गवेषणा) कैसे करते हैं। उनको विश्वास है कि हमको हमारी गवेषणाका कुछ फल मिलेगा, तभी तो वे विज्ञानागारमें रात-दिन परिश्रम करते हैं। उस फलको वे पहलेसे नहीं देखे रहते, विश्वासके आधारपर ही उनको काम करना पड़ता है। इसी तरहसे हम भगवान्‌को पहलेसे देखे नहीं रहते। विश्वास करके ही उनकी आराधना करनी पड़ती है।

प्रश्न—परंतु असत्यमें विश्वास करनेसे हानि हो सकती है। क्या पता, जिसमें हम विश्वास करें वह सत्य है या असत्य?

उत्तर—विश्वासमें सत्यासत्यका तर्क नहीं होता। यदि सन्देह ही रहा तो विश्वास कैसा? जब आपने अंग्रेजी पढ़ना आरम्भ किया तो क्या जरा भी आप सन्देह करते थे कि यह A होगा कि नहीं? आप यही सोचते थे कि जब मास्टर साहबने बताया तो यह A ही है, चाहे मुझे याद रहे या न रहे।

प्रश्न—कितने कुसंस्कार लोगोंमें हैं। उनमें वे विश्वास करते हैं। क्या आप इस विश्वासको अच्छा समझते हैं?

उत्तर—नहीं। मैं उसको वस्तुतः विश्वास मानता ही नहीं। उसमें दृढ़ता नहीं है। मान लीजिये, किसीको यह विश्वास है कि पशुके बलिदानसे उसके लड़केकी बीमारी अच्छी हो जायगी। यदि उसका विश्वास-भाजन कोई व्यक्ति जोर देकर यह कहे कि ऐसा करनेसे तुम्हारे लड़केका सिर कट जायगा तो वह कदापि पशुको बलि नहीं दे सकेगा। इससे प्रमाणित हुआ—पशुबलिमें उसका सच्चा विश्वास था ही नहीं।

प्रश्न—यदि ऐसा पक्का विश्वास कर ले कि ईश्वर नहीं है तो उसका क्या होगा?

उत्तर—ऐसा पक्का विश्वास हो ही नहीं सकता। जो ईश्वरको नहीं मानते, वे भी अपने दिलपर यदि हाथ रखकर विचारें तो मालूम होगा कि कभी-न-कभी किसी अदृश्य शक्तिका अनुभव उन्होंने भी किया ही होगा। '**ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः**' जीव चेतन भगवान्‌का अंश है। मल, विक्षेप और आवरणसे वह चेतनता छिप सकती है, नष्ट नहीं हो सकती। इसलिये चेतन भगवान्‌को छोड़कर जीवको शान्ति नहीं मिल सकती। रुपयोंमें शान्ति नहीं, स्त्री-पुत्रमें शान्ति नहीं, लौकिक मान-बड़ाईमें शान्ति नहीं। धर्मके ढोंगमें भी शान्ति नहीं। चेतन जीवको जड-पदार्थोंसे शान्तिकी आशा मृगतृष्णाके समान है। हमलोग सोचते हैं, धनमें यह सुख है, विषयमें वह सुख है, लेकिन धन-प्राप्ति या विषय-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोगके बाद पहलेकी ही तरह अशान्त ,रह जाते हैं। भगवान्‌में विश्वास ही शान्तिका प्रथम सोपान है।

प्रश्न—अच्छा, विश्वास कर लिया कि भगवान् दयालु हैं। फिर?

उत्तर—फिर इस विश्वासका पाठ करना होगा।

प्रश्न—वह कैसे?

उत्तर—यह अभ्यास करना होगा—ईश्वरके प्रत्येक विधानमें दया भरी है। इष्ट-प्राप्ति, अनिष्ट-प्राप्ति—सबमें ईश्वरकी दया है।

प्रश्न—अनिष्ट-प्राप्तिमें भी ईश्वरकी दया?

उत्तर—अनिष्ट-प्राप्तिमें ईश्वरकी विशेष दया है। प्रारब्धका क्षय, जड-पदार्थोंमें वैराग्य, मनका निर्मल होना, अहंकारका नाश, पुरुषार्थकी परीक्षा इत्यादि अनेकों लाभ अनिष्ट-प्राप्तिसे ही होते हैं। माता जब बच्चेको नहलाती है और मैल साफ करती है तो बालक रोता है, सोचता है—'माँ मुझे इतना कष्ट क्यों दे रही है?' वैसे ही भगवान् जब हमें दुःखमें डालते हैं, तो हम कहते हैं कि भगवान् क्यों इतना कष्ट हमें दे रहे हैं। परंतु जैसे माताके हृदयमें प्रेम है वैसे भगवान्‌के हृदयमें प्रेम है।

प्रश्न—और फिर?

उत्तर—और फिर, जैसे पाठ करते-करते अर्थ खुल जाते हैं, वैसे ही दयाका व्यवहार करते-करते दयाके रहस्य खुल जाते हैं। भगवान्‌ने कहा—'**ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः**।' सब प्राणियोंपर दयाका बर्ताव करनेसे भगवान्‌की प्राप्ति होती है। हमलोग स्वयं तो हिंसासे भरे हुए हैं और भगवान्‌को निर्दयीका सर्टिफिकेट दे बैठते हैं। पहले स्वयं तो दयालु बनो, फिर भगवान् दयालु हैं या नहीं—आप ही समझमें आ जायगा। और आखिरी बात तो यही है कि भगवान्‌की दयासे ही भगवान्‌की दयाका ज्ञान होता है।

प्रश्न—अच्छा, ऐसी दो-एक बातें बताइये, जिनसे भगवान्‌की दया अनुभवमें आये।

उत्तर—भगवान् अनन्त शक्तिवाले हैं, इसलिये उनकी दया भी अनन्त है। हर एक बातमें इस दयाका अनुभव हो सकता है। पर एक बात याद रखनी है। हमलोगोंकी बुद्धि सीमित है। इस सीमित बुद्धिसे भगवत्कृपाकी असीमता हम तौल नहीं सकते। यदि तौलने जायँगे तो कभी उनकी कृपाका प्रभाव नहीं समझ सकेंगे। हमारी बुद्धि तो एक जन्मकी बातोंपर भी ठीक निश्चय नहीं कर सकती, लेकिन भगवान् तो न जाने कितने जन्मोंका प्रबन्ध करते हैं। एक जन्ममें किसीकी दुर्गति देखकर भगवान्‌को निर्दय सिद्ध करना महान् मूर्खता है। भगवान्‌के सभी नियम कृपासे भरे हुए हैं। '**ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्**' के नियमको जरा देखिये। कोई व्यक्ति इस संसारमें नहीं मिलेगा, जो आपको ठीक उसी तरहसे भजे, जैसे आप उसको भजते हैं। आप यदि किसीकी बुराई करें, तो उससे क्षमा मिलना आपके लिये दुष्कर होगा, लेकिन भगवान् तो महान् दुराचारीको भी अपनाते हैं और उसे साधु बना देते हैं। दुनियामें दाता बहुत हैं, परंतु ऐसा कोई नहीं, जो भिक्षुकको अपने समान बना ले। भगवान् तो उसे अपना पदतक देनेको तैयार हैं। केवल यही नहीं, भक्त यदि भगवान्‌को अपनेसे बड़ा मानते हैं तो भगवान् भी उनको अपनेसे बड़ा मानते हैं। कहाँतक वर्णन किया जाय, हमलोगोंसे यदि साधन नहीं हो सके और पुरुषार्थमें कमी मालूम हो तो भगवान् डंकेकी चोटपर कहते हैं—सब छोड़कर मुझ एककी शरणमें आ जाओ। मैं तुम्हें सब पापोंसे छुड़ा लूँगा, चिन्ता न करो—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

भगवान्‌को न मानो, लेकिन उनकी आज्ञाको मानो तब भी भगवान् प्रसन्न रहते हैं। राग-द्वेषको छोड़ना भगवान्‌की आज्ञा है। यदि कोई राग-द्वेष छोड़ देता है तो भगवान् उसे शान्ति देते ही हैं, 'मुझे नहीं मानता है' यह सोचकर उसको शान्तिसे वंचित नहीं रखते, इसका प्रमाण—

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति॥

और यदि आज्ञा-पालन करनेकी शक्ति नहीं है, किंतु भगवान्‌को मानते हैं एवं उनकी शरण लेते हैं तो भगवान् प्रसन्न रहते हैं। गीतामें अर्जुनको जब स्वजनवधके भयसे मोह हुआ, तब भगवदाज्ञापालन करनेकी सामर्थ्य अर्जुनमें कहाँ थी? परंतु जब अर्जुन भगवान्‌की शरणमें गये, तो भगवान्‌ने सारा काम सँभाल लिया। भला, ऐसे दयालु कौन होंगे? उनकी प्रत्येक चेष्टा दयामयी होती है। वे दयामूर्ति जो ठहरे! *'प्रभु-मूरति कृपामयी है।'*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दु:खोंका अंत कैसे हो?

(श्रीविश्वनाथजी पंसारी)

मनुष्यकी स्वाभाविक इच्छा है, दु:खोंसे छुटकारा और सुखकी प्राप्ति। परंतु वह जिस मार्गसे सुख पाना चाहता है, प्राय: गलत मार्ग होता है, जिससे दु:ख, अशान्ति बढ़ती है। आज मनुष्यके हृदयमें सदाचरण, नियम और संयमका अभाव तथा कलुषित बुराइयोंका भण्डार है। सुखासक्ति इतनी तीव्र है कि कोई कर्म-कुकर्म करनेमें संकोच नहीं। आज मानवने धर्म और और नीतिका चोला पहन रखा है, परंतु व्यवहारमें अधर्म और अनीतिके कार्य करता है। यदि सचमें मनुष्य दु:खोंका अंत और सुखकी प्राप्ति चाहता है तो उसे सही मार्ग अपनाना पड़ेगा। इसका उपाय यह कि वह दूसरोंके दु:खोंको अपना ले, स्वयं दु:ख लेकर दूसरोंको सुख देने लगे तो इसका परिणाम होगा नित्य परमानन्दकी प्राप्ति।

मनुष्य जिस शरीरके सुखके लिये वस्तुओंकी आवश्यकताको समझता है, उस शरीरका अन्तिम परिणाम मृत्यु ही है। संसारके किसी पद और पदार्थमें सुख नहीं है। पद और पदार्थमें सुख चाहना भारी भूल है। प्रथम प्रश्न है दु:खकी निवृत्ति और सुखकी प्राप्ति। कैसे हो? अपने आपसे भिन्न दूसरोंसे आशा करना ही मनुष्यके दु:खका मूल कारण है। परमात्मासे विमुख होना ही दु:खका मूल कारण है। द्वितीय प्रश्न है परमात्माकी सम्मुखता कैसे प्राप्त हो? शरीरकी अभिन्नता संसारसे है। इसलिये शरीर और वस्तुएँ संसारकी सेवामें लगा देना ही इनसे छुटकारा पानेका उपाय है। संसारकी इच्छा—चाहना त्याग देनेसे संसारसे सम्बन्धविच्छेद हो जाता है; क्योंकि संसारसे जीवका सम्बन्ध है ही नहीं, मात्र माना हुआ है। सुखकी चाहनासे सम्बन्ध जुड़ा हुआ है और सुखकी चाहना मिटानेपर यह कृत्रिम सम्बन्ध अपने आप टूट जाता है। शरीर-संसारसे सम्बन्ध टूटते ही परमात्मासे सम्बन्ध अपने आप हो जाता है, जैसे बादलके हटते ही सूर्यका दर्शन हो जाता है। भोगोंके लिये चिन्तन नहीं कर्म करना चाहिये। इसी प्रकार ईश्वर कर्मसे नहीं चिन्तन, विश्वास और प्रेमसे प्राप्त होते हैं, वे प्रेमाधीन हैं। मैं शरीर नहीं हूँ, यह समझ लेनेपर इच्छा और संकल्पशक्ति नष्ट हो जाती है। मन शान्त होते ही अहं लुप्त हो जाता है। मनुष्यकी परमात्मासे सम्मुखता हो जाती है और दु:खोंका अंत होकर सुख, शान्ति एवं आनन्द व्याप्त हो जाता है—यही तो मानवका परम लक्ष्य भी है।

तव सुख सुख मानूँ कृपा करू राधे।
दुख को भी सुख मानूँ कृपा करू राधे॥
तू ही है कृपालू इक कृपा करू राधे।
कृपा करू कृपा करू कृपा करू राधे॥

मनुष्यको अपने मनमें यह भाव बैठा लेने चाहिये कि वे ही मेरे हैं, यह चिन्ता तो करनी ही नहीं चाहिये कि मैं उनका हूँ या नहीं, वे मुझसे प्यार करते हैं या नहीं—यह सन्देह तो संसारके जीवोंसे करना चाहिये; क्योंकि यह संसार झूठे प्रेमके दिखावेसे ठगता रहता है। गीतामें कहा है कि जो जीव जिस भावसे जितनी मात्रामें भगवान्‌से प्यार करता है, भगवान् भी उस जीवसे उसी भावमें उतनी मात्रामें प्यार करते हैं, अत: जितना प्यार हमको भगवान्‌से चाहिये उतना प्यार हम भी भगवान्‌से करें।

भगवान् मनुष्यके इतने पास हैं, जितना आँखमें लगा काजल भी आँखके पास नहीं होता। परंतु अगर हम अपनी आँखमें लगे हुए काजलको देखना चाहें तो आँखोंके अत्यन्त करीब होते हुए भी उसे नहीं देख सकते। उसे देखनेके लिये दर्पण आवश्यक है। ठीक इसी प्रकारसे परमात्मा भी हमारे अति निकट है, लेकिन उसे देखनेके लिये संत-सद्गुरुरूपी दर्पणकी आवश्यकता होगी।

ऐसे महान् प्रभुके हृदयमें स्थित होनेके बावजूद भी आजका मानव घोर दु:खी तथा अशान्त है, क्यों? मात्र न जाननेके कारण। ईश्वरको पानेके लिये हमें मायासे दूर रहना होगा। मायासे अभिप्राय लोग स्त्री-पुत्र-धन एवं मकानको ही समझते हैं। परंतु वस्तुत: ये माया नहीं है, बल्कि इनमें आसक्ति ही माया है।

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनको गीतामें समझाते हुए कहते हैं कि मेरा वह परम पद है जहाँ सूर्य, चन्द्रमा, अग्निकी पहुँच नहीं है, वह स्वत: प्रकाशमान है और वही मेरा परमधाम है। आज भगवान्‌का धाम कोई मन्दिर, कोई मस्जिद, कोई चर्च और कोई गुरुद्वारा समझता है; जहाँ वायु प्रवेश नहीं करती, सूर्य-चन्द्रमाकी किरणें नहीं पहुँच सकतीं, उस परम पदका अभिलाषी जीव है ही नहीं। एक तरफ हमारे धर्मग्रन्थ कहते हैं कि भगवान् जर्रे-जर्रेमें हैं और लोगोंने देखा भी है, पाया भी है। ईश्वरको किसीने अपने अन्दर देखा और किसीने बाहर देखा, पर कैसे? श्रीकृष्ण अर्जुनको समझाते हुए कहते हैं कि हे अर्जुन! तुम मुझे इन आँखोंसे नहीं देख सकते। भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको दिव्य चक्षु दिया था। ईश्वरका नाम और स्वरूप दोनों अकथनीय हैं, जिह्वा उसका कथन करनेमें असमर्थ हो जाती है।

वस्तुत: ईश्वर तर्कके नहीं, बल्कि श्रद्धा और विश्वासके विषय हैं, जबतक ईश्वरके प्रति श्रद्धा-विश्वासका भाव न हो, तबतक सुख-शान्ति भला कैसे मिल सकती है! गोस्वामीजी कहते हैं—

बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिश्रामु॥

(रा०च०मा० ७।९० क)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्ति और शक्तिके प्रतीक—भगवान् परशुराम

(डॉ० श्रीनिर्मलजी कौशिक)

भारतीय संस्कृतिके गौरव, दानवीर और तेजकी प्रतिमूर्ति भगवान् परशुराम भारतीय समाजके प्रेरक महापुरुषोंमें अग्रगण्य हैं। उनका स्वरूप उनके व्यक्तित्वका परिचायक है।

वैशाखमासके शुक्लपक्षकी तृतीयाको एक प्रहर रात्रिके बीत जानेपर पुनर्वसु नक्षत्रमें श्रीविष्णु ही राम नामसे अवतरित हुए—

वैशाखस्य सिते पक्षे तृतीयायां पुनर्वसौ।
निशायाः प्रथमे यामे रामाख्यः समये हरिः॥

श्रीमद्भागवतमें वर्णित एक कथाके अनुसार पुरूरवाके वंशमें उत्पन्न गाधि नामक राजाकी एक सुन्दर कन्या थी, जिसका नाम था सत्यवती। उस सत्यवतीको देखकर भृगुवंशज ऋचीकऋषिने राजा गाधिके समक्ष उनकी गुणवती पुत्री सत्यवतीसे विवाह करनेकी इच्छा प्रकट की। राजा गाधिने एक हजार श्यामकर्ण-घोड़े भेंट करनेकी शर्त रखी। ऋचीकऋषिद्वारा वरुणदेवसे प्राप्त एक हजार श्यामकर्ण* घोड़े प्राप्त किये जानेपर गाधिराजने अपनी कन्या सत्यवतीका विवाह ऋषि ऋचीकसे कर दिया। सत्यवतीने अपने पति महर्षि ऋचीककी बहुत सेवा की।

एक दिन ऋषि ऋचीक अपनी पत्नी सत्यवतीसे कहने लगे—प्रिये! मैं तुम्हारी सेवासे बहुत प्रसन्न हूँ, तुम इच्छित वर माँगो। पतिके इन सुन्दर वचनोंको सुनकर सत्यवती धन्य हुई और मधुर वचनोंसे कहने लगी—प्रभो! इस संसारमें स्त्रीके दो ही कर्तव्य हैं—पतिको प्रसन्न रखना तथा वंशवृद्धि। ऋचीक समझ गये और वरदान दिया कि शीघ्र ही तुम्हें सन्तानकी प्राप्ति होगी। इससे प्रसन्न होकर सत्यवतीने कहा—स्वामी! मेरा कोई भाई नहीं है, अतः मेरी माताको भी एक पुत्र प्राप्त हो जाय तो मेरी यह इच्छा भी पूर्ण हो सकती है। ऋचीकऋषिने सहर्ष 'तथास्तु' कहा और चरु (खीर) बनाकर उसे मन्त्रोंसे अभिमन्त्रितकर दो भागोंमें विभाजित करके कहा—यह तुम्हारे लिये है और यह दूसरा भाग, तुम्हारी माताके लिये है। इनमें तुम्हारा भाग ब्राह्मणोचित गुणसम्पन्न सन्तानहेतु है तथा दूसरा भाग क्षत्रियोचित गुणसम्पन्न सन्तानहेतु तुम्हारी माताके लिये है। ऐसा कहकर वे वहाँसे चले गये।

इच्छित वर पाकर सत्यवती अत्यन्त प्रसन्न हो गयी, किंतु माताके कहनेपर उसने अपने हिस्सेवाला चरु अपनी माताको दे दिया और मातावाला चरु स्वयं ग्रहण कर लिया। ऋचीकऋषि अपने तपोबलसे सब जान गये। उन्होंने अपनी पत्नी सत्यवतीसे कहा—प्रिये! तुमने चरुका विनिमय करके बहुत बड़ा अनर्थ कर दिया, अब तुम्हारे गर्भसे क्षत्रियोचित कर्म करनेवाला और तुम्हारी माताके गर्भसे ब्राह्मणोचित कर्म करनेवाला परम तपस्वी बालक होगा। यह सुनकर दुःखित सत्यवतीने अपने पतिसे प्रार्थना की—स्वामी! मैंने ऐसे पुत्रकी कामना नहीं की थी। महर्षि ऋचीकने कहा—'मन्त्रकी शक्ति कभी विफल नहीं होती, तुम्हारे गर्भसे ब्राह्मणत्व धारण करनेवाला पुत्र होगा, किंतु पौत्र मन्त्रशक्तिके अनुसार ही होगा।'

सत्यवतीके गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका नाम जमदग्नि रखा गया और सत्यवतीकी माताके गर्भसे जो पुत्र

* जिसका पूरा शरीर श्वेत वर्णका हो और एक कान श्यामवर्णका हो, वह घोडा श्यामकर्ण कहलाता है। (श्रीमद्भा० ९। १५। ६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पन्न हुआ उसका नाम विश्वामित्र रखा गया, जिन्होंने अनेक वर्षोंकी कठिन तपस्याके बाद ब्रह्मर्षि-पदको प्राप्त किया। ऋचीकऋषिकी पत्नी सत्यवतीके गर्भसे जन्म लेकर जमदग्नि ब्राह्मणोचित संस्कारोंसे तथा अपने जप-तपके प्रभावसे तपस्वी और यशस्वी पुरुष प्रतिष्ठित हुए। महर्षि जमदग्निने रेणुकासे विवाह किया। उनके कई पुत्र हुए, उनमें परशुरामजी सबसे छोटे थे। परशुरामजीका बचपनका नाम राम था। भगवान् शिवकी निरन्तर आराधना करके इन्होंने बचपनमें ही भगवान् शिवसे वरदानरूपमें परशु (कुठार) प्राप्त कर लिया था। इसीसे उनका नाम परशुराम प्रसिद्ध हुआ।

परशुरामजी भगवान् विष्णुके प्रमुख दशावतारोंमें छठे अवतारके रूपमें परिगणित हैं। आपका अवतरण अत्याचारी क्षत्रियोंके विनाशहेतु हुआ। आपके पिता महर्षि जमदग्नि जो कि महान् तपस्वी थे, का पितृवंश भृगुऋषिसे सम्बन्धित होनेके कारण आपका नाम भार्गव भी प्रसिद्ध हुआ। आपका मातृवंश कुशिकवंशसे सम्बन्धित होनेके कारण आप कुशिकवंशके दौहित्र हुए। आपकी माता रेणुका ऋषि विश्वामित्र (कौशिक)-की बहन थीं।

आपके अवतरणकी कथाएँ वाल्मीकिरामायण, महाभारत और पुराणोंमें विस्तारसे मिलती हैं। श्रीरामचरितमानसमें आपको सीता-स्वयंवरके प्रसंगमें एक तेजस्वी और ओजस्वी क्षत्रियविरोधी ब्राह्मणके रूपमें चित्रित किया गया है। आप परम शिवभक्त थे। आपको अमोघ परशु भगवान् शिवने स्वयं प्रकट होकर प्रदान किया था, तभीसे आप रामसे परशुराम हो गये। दशरथपुत्र श्रीरामद्वारा शिवधनुष भंग किये जानेपर आप क्रोधित हुए और लक्ष्मणके साथ आपका विवाद हुआ। बादमें श्रीरामके विष्णु-अवतार होनेकी पुष्टि होनेके उपरान्त आपका क्रोध शान्त हुआ। श्रीरामचरितमानसमें आपके स्वरूपका चित्रण गोस्वामी तुलसीदासजीने इस प्रकार किया है—

बृषभ कंध उर बाहु बिसाला। चारु जनेउ माल मृगछाला॥
कटि मुनिबसन तून दुइ बाँधें। धनु सर कर कुठारु कल काँधें॥

महाभारतमें वर्णित एक कथाके अनुसार आपने कर्णको शस्त्रविद्या सिखायी थी और परम पराक्रमी भीष्मपितामह भी आपके ही शिष्य थे। आपने अपने पराक्रमसे क्षत्रियोंके रक्तसे पाँच बड़े कुण्ड भर दिये थे, जिनका नाम समन्तपंचक पड़ गया।

इनके जीवनमें अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटीं, जिनसे इनके जीवन और व्यक्तित्वकी झलक मिलती है। एक बार ऋषि जमदग्निके अग्निहोत्रहेतु उनकी पत्नी रेणुका नदीसे जल लाने गयीं। उस समय गन्धर्वराज चित्ररथ अपनी रानीके साथ जलक्रीड़ा कर रहा था। वे जलक्रीड़ा देखने लगीं। अत: रेणुकाको जल लानेमें विलम्ब हुआ। अग्निहोत्रका मुहूर्त निकलता जा रहा था, अत: जमदग्नि क्रोधित हुए। योगदृष्टिसे रेणुकाके मनकी अवस्थाको उन्होंने जान लिया था। बस, फिर क्या था—ऋषिने पातिव्रतधर्मका उल्लंघन करनेके अपराधमें अपने पुत्रोंको रेणुकाका वध करनेकी आज्ञा दी। किंतु परशुरामको छोड़ अन्य सभी पुत्रोंने ऐसा करनेसे इनकार कर दिया। जमदग्निके शापके कारण वे मूढ़ बन गये। परशुरामने पिताकी आज्ञाका पालन करते हुए अपनी माताका शिरोच्छेदन कर दिया। भाइयोंको भी मार डाला। ऋषि जमदग्नि बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने परशुरामसे वर माँगनेको कहा। परशुरामने जो वर माँगे, वे इस प्रकार थे—माताको पुनर्जीवित कर दें और इस घटनाकी स्मृति किसीको भी न रहे। मुझे अमरता प्रदान करें। मेरे भाई पूर्ववत् हो जायँ। ऋषि जमदग्निने उनकी सभी इच्छाएँ पूर्ण कर दीं।

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें आया है कि एक बार परशुराम भगवान् शंकरका दर्शन करने जा रहे थे। रास्तेमें गणेशजीने उन्हें रोककर कहा कि माता-पिताकी आज्ञाके बिना वह अन्दर नहीं जाने देंगे। परशुरामने सोचा कि उन्हें अपने गुरुदेवके पास जानेके लिये किसीकी आज्ञाकी आवश्यकता नहीं है। ये क्रोधित हो गये और परशुके आघातसे गणेशजीका एक दाँत तोड़ दिया। यह देखकर भगवती पार्वती क्रोधित हो गयीं और परशुरामको मारनेके लिये उद्यत हो गयीं। तब परशुरामजी 'जगज्जननी! रक्षा करो, रक्षा करो' कहकर उन्हें प्रणामकर प्रार्थना करने लगे। तब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवती पार्वती प्रसन्न हो गयीं और उन्होंने उन्हें अजर-अमर होनेका वर दिया।

हैहय-वंशमें कार्तवीर्यार्जुन (सहस्त्रबाहु) नामक एक प्रतापी राजा हुआ। यह अत्यन्त पराक्रमी था, इसकी हजार भुजाएँ थीं, इसलिये यह सहस्त्रबाहु कहलाता था। यह राजा कृतवीर्यकी संतान होनेके कारण कार्तवीर्य कहलाया। इसीका अन्य नाम अर्जुन भी प्रसिद्ध हुआ। यह माहिष्मती नगरीका शासक था और दत्तात्रेयजीका शिष्य था। कार्तवीर्यने भगवान् दत्तात्रेयजीकी आराधना करके एक हजार भुजाएँ तथा अनेक वरदान प्राप्त किये। वरदान प्राप्त करके राजा कार्तवीर्य यज्ञ, दानशीलता, भक्ति और संयम आदि गुणोंके कारण लोकप्रिय हुआ। उसने सुख और समृद्धिपूर्वक इस पृथ्वीपर शासन किया। इसने अपनी शक्तिके द्वारा एक बार लंकापति रावणको भी कैद कर लिया था।

एक बार राजा कार्तवीर्य ऋषि जमदग्निके आश्रममें अपने दल-बलसहित आया। ऋषिने आश्रमकी परम्पराके अनुसार राजाका आतिथ्य किया। ऋषिने कामधेनुके दुग्धसे उत्तम पदार्थ तैयार करवाकर राजा और उसके सैनिकोंको भोजन कराया। कामधेनुका वैसा प्रभाव देखकर हैहयाधिपति कार्तवीर्यने ऋषि जमदग्निसे गाय माँगी, लेकिन जमदग्निने गाय देनेसे इनकार कर दिया। ऋषि जमदग्निके विरोध करनेके बावजूद कार्तवीर्य बलपूर्वक कामधेनुका अपहरणकर माहिष्मती ले आया।

परशुरामजी जब आश्रमपर आये तो कार्तवीर्यके इस दुष्कृत्यको देखकर क्रोधित हो गये और पिताकी आज्ञाकी प्रतीक्षा किये बिना ही कार्तवीर्यका पीछा करके गौको छुड़ानेका प्रयास किया, लेकिन कार्तवीर्यकी सेनाने उसकी एक न चलने दी। परशुरामने कार्तवीर्यकी सेनाका बलपूर्वक सामना करके सेनाको नष्ट कर दिया। बादमें राजा कार्तवीर्यसे युद्ध करके अपने अमोघ परशुसे उसकी भुजाओंको काट डाला और उसका वध करके वे गौको छुड़ा लाये। जब यह समाचार पिता ऋषि जमदग्निको मिला तो उन्होंने परशुरामको बुलाकर कहा—पुत्र! तुम नि:सन्देह वीर हो, परंतु राजा कार्तवीर्यका वध करके तुमने अच्छा कृत्य नहीं किया। राजा प्रत्यक्ष ईश्वरका रूप होता है। तुम्हें विदित होना चाहिये कि ब्राह्मणोंमें दया, क्षमा, संयम, सत्य और शान्ति आदि गुणोंका होना बहुत जरूरी है। तुमने इन गुणोंका त्याग करके राजा कार्तवीर्यका वध किया है, अत: तुम्हें प्रायश्चित्तहेतु तीर्थाटन करना होगा।

पिताकी आज्ञाका पालन करनेहेतु परशुराम तीर्थ-यात्राहेतु निकल पड़े और एक वर्षतक तीर्थयात्राकर आश्रममें लौट आये।

इधर जब कार्तवीर्यके पुत्रोंको अपने पिताके वधका समाचार मिला तो वे अपने पिताके वधका बदला लेनेहेतु ऋषि जमदग्निके आश्रममें पहुँचे। परशुरामको वहाँ न पाकर उन्होंने तपस्यामें लीन परशुरामके पिता ऋषि जमदग्निके सिरपर प्रहार करके उनका वध कर दिया। उस समय उनकी पत्नी रेणुकाने करुण-क्रन्दन करते हुए पुत्र परशुरामको पुकारा। इतनेमें दैवयोगसे परशुराम वहाँ उपस्थित हुए और उन्होंने अपने पिताके निर्मम वधका बदला लेनेहेतु पृथ्वीको क्षत्रियविहीन करनेकी दारुण प्रतिज्ञा ले ली। इसी कारण परशुरामने अत्याचारी क्षत्रियोंका वध करके पृथ्वीको क्षत्रियविहीन किया था।

अपने पिता जमदग्निके वधका प्रतिशोध लेनेके लिये परशुरामने पृथ्वीको क्षत्रियविहीन करनेकी जो दारुण प्रतिज्ञा की थी, उसी कारण सबसे पहले कार्तवीर्यके पुत्रोंको मौतके घाट उतारकर अपने पिताकी हत्याका प्रतिशोध लिया। मगर क्षत्रियोंकी हत्याके साथ ही उनकी संख्यामें वृद्धि होती जाती थी। इस प्रकार उन्होंने इक्कीस बार क्षत्रियोंका विनाश किया।

क्षत्रियोंका संहार हो जानेपर और पृथ्वीको क्षत्रियशून्य समझकर उन्होंने अपने पिताके सिरको धड़से जोड़कर उनका विधिवत् दाह-संस्कार किया। महर्षि जमदग्निको स्मृतिरूप संकल्पमय शरीर तथा सप्तर्षियोंमें सातवाँ स्थान मिला। धरतीकी रक्षा करनेवाला कोई भी राजा शेष न रहा। धरती चिन्तित होकर ऋषि कश्यपके पास गयी और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कश्यपऋषिसे निवेदन किया कि ऋषिवर! मेरा भार उतर चुका है। सभी आततायी मर चुके हैं और परशुरामके अवतारका कार्य भी पूर्ण हो चुका है। अब आप उन्हें रोकें, अन्यथा अनर्थ हो जायगा। ऋषि कश्यप जानते थे कि परशुराम अपने पूर्वजोंकी आज्ञाका पालन अवश्य करेंगे। ऋषि कश्यपने अपने तपोबलसे भार्गव ऋचीककी आत्माका आवाहन किया और उनसे परशुरामको क्षत्रियवध रोकनेका आदेश देनेकी प्रार्थना की। ऋचीकऋषिने परशुरामको दर्शन देकर कहा—वत्स! तुम्हारा प्रयोजन पूरा हो चुका है। जिन क्षत्रियोंकी तुमने बिना किसी अपराधके हत्या की है, उससे तुम्हारा तप क्षीण हुआ है, अतः तुम्हें और अधिक तप करनेकी आवश्यकता है। भगवान् परशुरामने उनकी आज्ञाका पालन करते हुए एक महान् यज्ञ किया और अपनी सारी सम्पत्ति ब्राह्मणोंको दान कर दी। जब वे अपना सर्वस्व दान कर चुके तो महर्षि भारद्वाजके पुत्र द्रोण उनके पास आये। परशुरामने उनसे कहा—अब तो मेरा शरीर और अस्त्र-शस्त्र ही शेष रह गये हैं, इनमेंसे जो चाहें आप ले लें। द्रोणने कहा—मैं आपके अस्त्र-शस्त्र और उनके रहस्य प्राप्त करना चाहता हूँ। भगवान् परशुरामने द्रोणकी इच्छाका सम्मान करते हुए अपने अस्त्र-शस्त्र उन्हें प्रदानकर उनके रहस्य भी बता दिये। तत्पश्चात् वे तप करनेके लिये महेन्द्रपर्वतपर चले गये।

कालान्तरमें परशुरामजी महायोगी संवर्तसे प्रेरणा पाकर महर्षि दत्तात्रेयके पास गये और उनसे दीक्षित होकर श्रीविद्याके परम आचार्यत्वको प्राप्त हुए। पराम्बा त्रिपुराके समग्र रहस्यका उपदेश दत्तात्रेयजीने इन्हें प्रदान किया। पराम्बाकी कृपासे परशुराम आज भी अजर-अमर हैं और भक्तोंपर नित कृपा किया करते हैं।

बाह्य और अन्तर्जगत्की समरसता

(श्रीलालजीरामजी शुक्ल, एम०ए०)

एक बार मैं अपने एक मित्रके घरपर उनके परिवारके लोगोंके साथ बैठा हुआ था कि मित्रकी पत्नीने मेरे एक सम्बन्धीकी कुशल पूछी। मैंने उनकी कुशल कही। इसके बाद उन्होंने उनके पारिवारिक जीवनके सम्बन्धमें कुछ प्रश्न किये। इसके उत्तरमें मुझे उस परिवारके कलहकी बात बतलानी पड़ी। मेरे सम्बन्धी सब प्रकारसे सम्पन्न होकर भी मनसे पूरे सुखी नहीं थे। इस वृत्तान्तको सुनकर उस महिलाने कहा कि 'संसारमें कोई मनुष्य सुखी नहीं रहता। मनुष्यका मन ही उसे दुःखी बनाता है। संसारमें वास्तविक भलाई-बुराई कुछ भी नहीं है, अपना मन ही सब भले-बुरेका बनानेवाला है। अपनी कल्पनासे ही मनुष्य सुखी-दुःखी रहता है।'

इस वार्तालापको मेरे मित्र भी सुन रहे थे। उन्होंने कहा कि 'मेरे विचारसे हमें हमारे पाप ही दुःखमय परिस्थितिमें डाल देते हैं और हम अपने पाप-कर्मोंके कारण ही ऐसे लोगोंके साथ पड़ जाते हैं, जिनके संगसे हमें दुःख होता है। अर्थात् सांसारिक दुःख कल्पनामात्र नहीं है। संसारमें भलाई और बुराई वास्तविक है। इन भलाइयों और बुराइयोंको, सुख-दुःखकी परिस्थितियोंको अपने पुराने संस्कारोंके अनुसार हम अपनी ओर खींचते रहते हैं,अथवा हम उनकी ओर आकर्षित होते रहते हैं। यदि किसी मनुष्यका मन पापरहित है तो उसे क्लेशमयी परिस्थितियोंमें पड़ना ही न पड़ेगा।'

उपर्युक्त दोनों प्रकारके विचार दार्शनिक विचार हैं। एक विचारके अनुसार बाह्य संसारका दुःख-सुख कल्पनामात्र ही है, दूसरे विचारके अनुसार ये दुःख-सुख बाह्य परिस्थितियोंपर निर्भर हैं, पर बाह्य परिस्थितियोंकी उपस्थिति हमारे पूर्वसंस्कारोंपर निर्भर करती है। इन दो विचारधाओंमें कौन-सी श्रेष्ठ है—यहाँ इसी विषयपर विचार करना है।

पहले विचारकी सत्यता हमारे कई अनुभवोंसे प्रमाणित होती है। कितनी ही बार हम ऐसी बातोंसे दुःखी होते हैं, जिनका कोई अस्तित्व ही नहीं। हम कल्पना कर लेते हैं कि अमुक व्यक्ति हमारा शत्रु है और हमारे प्रति अनेक प्रकारके षड्यन्त्र रच रहा है। मनमें इस तरहके विचारोंका प्रादुर्भाव होनेपर हम अनेकों प्रकारके भय, ईर्ष्या आदिसे सन्तप्त हो उठते हैं। कितने ही लोग अपने-आपको अभागा मान बैठते हैं; फलतः वे सदा-सर्वदा प्रत्येक घटनाको अपने प्रतिकूल ही देखते हैं। मनुष्यकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विक्षिप्त अवस्थामें इस प्रकारके काल्पनिक रोगोंकी बहुतायत देखी जाती है। लेखक एक ऐसी महिलासे मिला, जो 'पुरुष' मात्रको बुरा समझती थी। इस महिलाकी पूर्वकथा जाननेसे पता लगा कि उसे किसी नवयुवकने विवाहका वचन देकर फिर अपने वचनको भंग कर दिया था। एक पादरी खूबसूरत स्त्रियोंके चरित्रको सदा संदेहकी दृष्टिसे ही देखा करता था। प्रत्येक स्त्रीपर चरित्रकी कमीका संदेह करना उसका मानसिक रोग था। कृपण लोग इसी दुःखसे त्रस्त रहते हैं कि कहीं उनके धनको कोई चुरा न ले जाय। वे भले-से-भले आदमीको भी चोर-डाकू ही समझते हैं।

पर इस प्रकारके काल्पनिक दुःखोंकी सीमा है। विक्षिप्त अवस्था छोड़कर मनुष्य विचारसे काम लेता है। वह विचारके अनुसार ही घातक परिस्थितियोंसे डरता है और अनुकूल परिस्थितियोंको पाकर प्रसन्न होता है। हमारी अनेक मनोवृत्तियाँ बाह्य परिस्थितियोंके ज्ञानपर निर्भर रहती हैं और उसी ज्ञानसे संचालित होती हैं। भारतवर्षके प्रत्येक शास्त्रने तीन प्रकारके दुःख माने हैं—आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक। पहले प्रकारके दुःख मनकी कल्पनाओंपर अवश्य ही निर्भर रहते हैं, पर यह बात दूसरे और तीसरे प्रकारके दुःखोंके विषयमें नहीं कही जा सकती। उनकी उत्पत्ति तो बाह्य परिस्थितियोंपर ही निर्भर करती है। क्या इन दुःखोंका भी कोई सम्बन्ध हमारे मनसे है? क्या हमारा मन इन दुःखोंकी उपस्थितिका कारण किसी प्रकार कहा जा सकता है?

इस प्रश्नका उत्तर मेरे मित्रने यही दिया है कि हमारे पाप इन दुःखोंको हमारे समीप पहुँचा देते हैं। हमारा सिद्धान्त उपर्युक्त विचारके पूर्ण अनुकूल है। वास्तवमें प्रत्येक बाह्य परिस्थितिकी जड़ मनमें ही है। यहाँ मनको हमें उसके बृहत् रूपमें समझना चाहिये। मन ही संसारका सरजनहार है। इसीको योगवासिष्ठमें ब्रह्मा कहा है। मन एक ओर अन्तर्जगत्‌की सृष्टि करता है और दूसरी ओर बाह्य जगत्‌को रचता है। इन दोनों जगतोंमें समरसता है। अपनी कल्पनाओंके अनुसार हम बाह्य संसारको पाते हैं और बाह्य संसारके अनुसार कल्पनाएँ बनती जाती हैं। बाह्य संसार कल्पनाओंका कारण है और कल्पना बाह्य संसारका। वास्तवमें कल्पना और बाह्य संसार एक ही वस्तुके दो पहलू हैं।

इस बातकी सत्यता अपने स्वप्नोंपर विचार करनेसे प्रत्यक्ष होती है। आधुनिक मनोविज्ञान सिद्ध करता है कि हमारे प्रत्येक स्वप्नकी जड़ हमारे मनमें रहती है; प्रत्येक स्वप्न हमारी सुप्त वासनाओंकी आविर्भूतिमात्र है। जिन वासनाओंको किसी कारणवश जाग्रत्-अवस्थामें तृप्त होनेका अवसर नहीं मिलता, वे हमारी अर्धचेतन-अवस्थामें एक नया संसार निर्माण करके अपनी तृप्तिका मार्ग खोज लेती हैं। इस तृप्तिके लिये अनेक प्रकारके स्वाँग रचे जाते हैं। इसलिये हम अपनी वासनाओंको पहचान नहीं पाते। वासनाएँ स्वप्नोंमें छिपेरूपसे ही तृप्त होनेकी चेष्टा करती हैं। जब हम स्वप्नमें देखते हैं कि हमारा कोई मित्र हमसे मिल रहा है अथवा हमारा कोई शत्रु हमारे पेटमें छूरा भोंक रहा है तो समझना चाहिये—इन दोनों प्रकारके अनुभवोंकी जड़ हमारे मनमें ही है। हमारा मन ही सारे स्वप्न-संसारका निर्माण करता है। इस तथ्यको हमारे पुराने ऋषियोंने आजसे हजारों सदियों पहले ही जानकर कह दिया था।

जाग्रत् अवस्था भी स्वप्नावस्थाके ही समान है। जो पदार्थ इस अवस्थामें दृश्यमान् हैं, उन सबका सम्बन्ध हमारे अदृश्य मनसे है। हम अपनी सम्पूर्ण वासनाओंको नहीं जानते अतएव हम बाह्य संसारकी अनेक अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियोंसे अपने आपका सम्बन्ध भी नहीं जान पाते। पर यदि हम अपने-आपको भलीभाँति समझनेकी चेष्टा करें तो अवश्य ही बाह्य और अन्तर्जगत्‌की समरसताको पहचान सकेंगे।

जब मनुष्य किसी प्रकारकी दुर्भावना मनमें लाता है तो वह दुर्भावना उसके मनमें एक प्रकारका संस्कार छोड़ जाती है। यह संस्कार ही मनुष्यको उस ओर खींचता है, जहाँ वह अपना बीजरूप छोड़कर वृक्ष बन सके। बाह्य जगत् संस्कारोंका व्यक्त स्वरूप है। आत्माके प्रतिकूल संस्कार ही पाप हैं। ये पाप हमें दुःखकी ओर अपने-आप ले जाते हैं; अथवा दुःखोंकी सृष्टि कर देते हैं। दुःखोंके द्वारा हमारा मन फिर शुद्ध हो जाता है। दुर्भावनाका मनमें लाना ही पाप है और उनके लिये दुःखोंका भोगना ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हृदयकी शुद्धि है। सद्भावनाओंको मनमें लाना ही पुण्य है और पुण्यका ही परिणाम सुख होता है।

मनुष्य प्रत्येक क्षण अनेक प्रकारकी दुर्भावनाएँ मनमें लाता रहता है। इनके संस्कारोंको यदि तत्क्षण नाश न कर दिया जाय तो वे मनुष्यको निश्चय ही दु:खमें डालेंगे। इन संस्कारोंके नाश करनेके लिये यह आवश्यक है कि वह नियमितरूपसे सद्भावनाओंको मनमें धारण करे तथा अपनी शक्ति-सामर्थ्यके अनुसार कुछ-न-कुछ दूसरोंके लिये उपकार किया करे। जिस मनुष्यकी भावनाएँ भली होती हैं और वह इन वासनाओंसे प्रेरित होकर दूसरोंका उपकार करना चाहता है, वह ऐसे उपकार करनेके अवसरोंसे वंचित नहीं रहता। साथ-ही-साथ उसकी उपकार करनेकी शक्ति और सामर्थ्य भी दिनोंदिन बढ़ती जाती है। यदि आप किसी व्यक्तिकी हृदयसे सेवा करना चाहते हैं, तो आज भले ही आप अपनेमें उक्त सेवाकी योग्यता न पायें, पर आपकी सद्भावना आपको एक दिन वह सामर्थ्य प्रदान करेगी, जिससे आप उसकी सेवा कर सकेंगे। जिस समय किसी मनुष्यमें, किसी प्रकारके कार्यके लिये आन्तरिक परिपक्वता हो जाती है, उस समय बाह्य जगत्‌में भी वह तदनुकूल परिस्थितियोंको पा लेता है। परमात्मा हमारी सच्ची भूखके लिये भोजन अवश्य देते हैं, झूठी भूखके लिये नहीं। जिस मनुष्यकी जिस बातमें सच्ची लगन है, वह उसे अवश्य प्राप्त करता है।

जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहिं मिलइ न कछु संदेहू॥

ईश्वर-प्रार्थना, तर्पण, पूजा-पाठ और पर-सेवासे यह लाभ होता है कि मनुष्य प्रथम तो कष्टकी परिस्थितिमें पड़ता ही नहीं और यदि पड़ता है तो वह उसके प्रति साक्षीभाव धारण करनेमें समर्थ होता है। संसारकी अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियाँ, सिनेमा-फिल्मके खेलोंके समान उसे असत् दिखायी देने लगती हैं। जिस मनुष्यमें मानसिक दृढ़ता नहीं रहती, वही प्रतिकूल परिस्थितिमें उद्विग्न होता है। मानसिक दृढ़ता सद्भावना और सदाचारसे आती है। प्रतिदिनकी सद्भावना और सदाचार एक प्रकारका संचित धन है, जो संकटके समय काम आता है; यह संकट कालके लिये 'प्रीमियम' का चुकना है। मनुष्यको प्रीमियमोंका चुकाना सामान्य अवस्थामें भले ही व्यर्थ जान पड़े, पर जब संकट पड़ता है तो उसका मूल्य वह जान लेता है। हम सद्भावनाओंको मनमें धारण करके तथा दूसरोंकी सेवा करके ऐसे बैंकमें अपना रुपया जमा कर रहे हैं, जो कभी फेल नहीं होती। सदा दूसरोंका शुभ चिन्तन करना अपना ही शुभ चिन्तन करना है और दूसरोंके प्रति दुर्भावना लाना अपने-आपके प्रति ही दुर्भावना लाना है, कारण जगत् आत्माका ही प्रसार-मात्र है।

'सत्य शिव ओंकार हूँ मैं'

(कु० प्रज्ञा भट्ट, शोधछात्रा-भौतिक विज्ञान)

इस गगन की परिधि का नित नया विस्तार हूँ मैं,
ईश के आशीर्वचन का असीमित भण्डार हूँ मैं।
कल्प व अकल्प हर शिखर के पार हूँ मैं,
सतत विश्वरूप शाश्वत सत्य शिव ओंकार हूँ मैं॥

सृष्टि की हर नव विधा का सृजक व संहार हूँ मैं,
जगत्-पालक जगत्-हर्ता ईश का ही सार हूँ मैं।
परमपिता उस जगत्पति का ओजमय अवतार हूँ मैं,
अगम अगोचर निरंकारी सत्य शिव ओंकार हूँ मैं॥

प्रलय के व्यापक भँवर से मनुज का उद्धार हूँ मैं,
मोहरूपी तिमिर कलि में सत्यरूपी ज्ञान हूँ मैं।
आर्तजन की करुण स्वर में ईशमय पुकार हूँ मैं,
सतत विश्वरूप शाश्वत सत्य शिव ओंकार हूँ मैं॥

शलभरूपी विसंगति का रश्मिरूप निर्वाण हूँ मैं,
वृषारूढ़ कैलासवासी शम्भु को नमस्कार हूँ मैं।
पतित को जो करे पावन गंग की वो धार हूँ मैं,
अखिल जग में सर्वव्यापी सत्य शिव ओंकार हूँ मैं॥

जड़ कि चेतन, अगम या गम निराकार-साकार हूँ मैं,
सृष्टि के हर इक चरण का आदि अन्त विराम हूँ मैं।
राम के आराध्य प्रभु को राम का प्रणाम हूँ मैं,
सतत विश्वरूप शाश्वत सत्य शिव ओंकार हूँ मैं॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्यशरीरको प्राप्त करके क्या करें ?

(श्रीबरजोरसिंहजी, एम०ए०)

गीताके आठवें अध्यायके पन्द्रहवें श्लोकमें श्रीभगवान् कहते हैं कि जीव जबतक मुझको प्राप्त नहीं हो जाता, तबतक कर्मवश उसका एक योनिको छोड़कर दूसरी योनिमें जन्म लेना मिट नहीं सकता। यह शरीर चाहे मनुष्यका हो, चाहे पशु-पक्षीका, उसे धारण करनेमें दुःख-ही-दुःख है। इसीलिये इस संसारको दुःखोंका घर अर्थात् दुःखालय कहा गया है। गर्भसे लेकर मृत्युपर्यन्त दुःख-ही-दुःख है।

मनुष्य-देह बहुत ही दुर्लभ है। यह बड़े ही भाग्यसे तथा ईश्वरकी कृपासे मिलती है। हम यहाँ आते हैं केवल श्रीभगवान्‌को पानेके लिये। यहाँ आकर जो भगवत्प्राप्तिके लिये चेष्टा करता है, उसीका मनुष्यजीवन सफल होता है। भूलवश जो इसमें सुख खोजता है, वह असली लाभसे वंचित रह जाता है। इस मनुष्यजीवनको श्रीभगवान्‌ने सुखरहित बताया है। मनुष्य जन्म लेकर जीवनपर्यन्त सुखकी तलाश करता है, पर उसे मिलता नहीं है। सुख मिलता है तो केवल भगवान्‌के बताये मार्गपर चलनेमें। विषयभोगोंमें सुख कभी नहीं मिलता। उलटे उसे दुःख ही भोगना पड़ता है, बार-बार जन्म-मृत्युके चक्करमें फँसना पड़ता है। हम यहाँ जिस उद्देश्यके लिये आये हैं, उस उद्देश्यके प्राप्तिकी चेष्टा करनी चाहिये। इस जीवनको श्रीभगवान्‌ने क्षणभंगुर कहा है। पता नहीं इसका किस क्षण नाश हो जाय, इसलिये सदैव सावधान रहकर भगवत्प्राप्तिकी चेष्टा करनी चाहिये। असावधानीमें यदि यह जीवन व्यर्थ ही नष्ट हो गया तो पछतानेके अलावा शेष कुछ भी नहीं बचता है। गीताजीके छठे अध्यायके पाँचवें श्लोकमें श्रीभगवान् कहते हैं—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

अपने द्वारा अपना (संसारसमुद्रसे) उद्धार करे और अपनेको अधोगतिमें न डाले, क्योंकि (यह मनुष्य) आप ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है।

प्रत्येक मानवको चाहिये कि अपने द्वारा अपना उद्धार करे। इस मानव-जीवनको पाकर इस शुभ अवसरको हाथसे न जाने दे। हमें अपना उद्धार स्वयं करना पड़ेगा, इसमें दूसरा कोई हमारी मदद नहीं कर सकता। यदि नहीं करेंगे तो पुनर्जन्मके चक्करमें फँस जायँगे और नाना प्रकारके कष्ट भोगेंगे। ईशोपनिषद्में कहा गया है—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥

उपनिषदोंने जो अपने उद्धारका प्रयत्न नहीं करते, ऐसे मनुष्योंको आत्महत्यारा कहा है और उनकी दुर्गतिका वर्णन किया है। अपनी आत्माका हनन करनेवाले असुरलोकोंको प्राप्त होते हैं। इसलिये इस प्राप्त अवसरका सदुपयोग करना चाहिये। मनुष्य अपने स्वभाव एवं कर्मोंमें जितना सुधार कर लेता है, वह उतना ही उन्नत होता है तथा इसके विपरीत स्वभाव एवं कर्मोंमें दोषोंका बढ़ना अवनति या पतन है। मनुष्य अपना शत्रु भी स्वयं ही है और जो अपने उद्धारके लिये चेष्टा करता है, वह आप ही अपना मित्र है।

मनको परमात्मामें स्थिर करके परमात्माके सिवा अन्य कुछ भी चिन्तन न करनेकी बात कही गयी है, पर किसी साधकका चित्त विषयोंकी तरफ चला जाय तो क्या करना चाहिये? इसके लिये श्रीभगवान् गीताके छठे अध्यायके छब्बीसवें श्लोकमें बड़ा सुन्दर उपाय बता रहे हैं—

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥

अर्थात् यह स्थिर न रहनेवाला और चंचल मन जिस-जिस शब्दादि विषयोंके निमित्तसे संसारमें विचरता है, उस-उस विषयसे रोककर यानी हटाकर इसे बार-बार परमात्मामें ही निरुद्ध करें।

श्रीभगवान् कहते हैं कि ध्यान के समय साधकको ज्यों ही पता चले कि मन अन्यत्र विषयोंमें जा रहा है, त्यों ही बड़ी सावधानीके साथ, बिना संकोचके तुरन्त उसे पकड़कर लाये और परमात्मामें लगाये। इस तरह मनको, चित्तकी वृत्तियोंको बार-बार विषयोंसे हटाकर परमात्मामें लगानेका अभ्यास करे; क्योंकि श्रीभगवान्‌ने कहा भी है कि अभ्यास और वैराग्यसे मनको वशमें किया जा सकता है। श्रीभगवान् अर्जुनसे कहते हैं कि यह मन बड़ा ही चंचल है, पर जब परमात्मामें स्थिर हो जायगा तो ऐसे साधकको उत्तम आनन्दकी प्राप्ति हो जाती है। इसलिये मनको शान्त करना है और परमात्मामें लगाना है—यही जीवनका सबसे बड़ा लाभ है। ऐसे भक्तके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये श्रीभगवान् कहते हैं कि मैं उसका योगक्षेम स्वयं वहन करता हूँ—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(गीता ९। २२)

जो अनन्य प्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वरको निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्कामभावसे भजते हैं, उन नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करनेवाले पुरुषोंका योग-क्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ।

श्रीभगवान् कहते हैं कि ऐसा भक्त मेरी शरणमें आकर किसी प्रकारका कष्ट प्राप्त नहीं करता। यदि उसे किसी चीजकी आवश्यकता है तो मैं किसी माध्यमसे उसे उस वस्तुकी प्राप्ति करवा देता हूँ। मेरा भक्त कभी दुखित नहीं हो सकता और उसके पास जो कुछ है, मैं उसकी रखवाली करता हूँ। ऐसे दृढ़ निश्चयवाले भक्तजन निरन्तर श्रीभगवान्के नाम और गुणोंका कीर्तन करते हुए, श्रीभगवान्की प्राप्तिके लिये यत्न करते हुए और श्रीभगवान्को प्रणाम करते हुए सदा श्रीभगवान्का ध्यान करते हैं एवं अनन्य प्रेमसे श्रीभगवान्की उपासना करते हैं

श्रीभगवान् सचेत करते हुए कहते हैं कि रास्तेसे भटके हुए हे मानवो! मुझमें मन लगानेवाले हो जाओ, मेरे भक्त बन जाओ और मेरी पूजा करो और मुझको ही प्रणाम करो। इस प्रकार आत्माको (मुझमें) नियुक्त करके मेरे परायण होकर तुम मुझको ही प्राप्त हो जाओगे, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है।

इसीलिये भगवान्की आज्ञा है—'**मच्चित्तः सततं भव**' अर्थात् नित्य-निरन्तर मुझमें अनन्य भावसे अपने चित्तको लगाये रखो। इससे मेरी कृपासे तुम सभी प्रकारकी बाधा पार कर जाओगे—'**मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि**।'

ब्रह्माजीने जब अनेक प्रकारके जीवोंकी सृष्टि कर ली तो उनका मन प्रसन्न नहीं हुआ, किंतु जब मनुष्यशरीरकी सृष्टि की तो वे उसे देखकर बहुत प्रसन्न इसीलिये हुए कि इस मनुष्यशरीरद्वारा व्यक्ति परमात्माको प्राप्त कर सकता है—'**तैस्तैरतुष्टहृदयः पुरुषं विधाय ब्रह्मावलोकधिषणं मुदमाप देवः॥**' (श्रीमद्भा० ११। ९। २८)

अतः इस सुदुर्लभ मनुष्यजन्मको पाकर प्राणपणसे भगवान्को प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। ध्यान रहे एक क्षण भी बिना भगवान्के स्मरणके व्यर्थ न व्यतीत हो जाय। मृत्युका कोई ठिकाना नहीं कब चली आये, अतः इसी क्षणको अन्तिम क्षण समझकर विषयोंसे मुख मोड़कर शीघ्र ही भगवान्की ओर उन्मुख हो जाना चाहिये, विषय-सुख तो अन्य योनियोंमें भी प्राप्त ही है—'**तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु यावन्निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात्॥**' (श्रीमद्भा० ११। ९। २९)

'स्वारथ साँच'

[कहानी]

(श्री 'चक्र')

'मैं ठहरा स्वार्थी मनुष्य और उसमें भी व्यापारी। मुझे कोई मूर्ख बनाकर ठग ले, इसे मैं सहन नहीं कर सकता।' भगवान् ही जानें कि वे स्वार्थी हैं तो परमार्थी कौन होगा। उनके-जैसा निःस्पृह, सेवापरायण मुझे तो देखनेमें ही नहीं आया।

गोरा वर्ण, लम्बा-दुबला शरीर। लम्बा ही मुख और सरल भोले नेत्र। शरीरपर एक बगलबन्दी, लगभग घुटनोंतककी धोती। जेबमें लौंग-इलायची भरे रहते हैं। स्वयं उनके लिये न लौंगका उपयोग है, न इलायचीका। जो भी परिचित मिलेगा, बड़ी नम्रतासे प्रणाम करेंगे और तब उनका हाथ अपनी जेबमें जायगा। आपका छुटकारा नहीं है, उनकी लौंग-इलायची लिये बिना।

सिरके अगले भागमें केश नहीं रहे हैं। जो हैं, श्वेत हो चुके हैं। शरीरपर झुर्रियाँ पड़ चुकी हैं। गलेमें तुलसीकी कण्ठी और हाथमें जपकी झोली लिये यह वृद्ध जहाँ भी मिलेगा, जब भी मिलेगा, नम्रताकी मूर्ति। उन्हें देखकर मुझे स्मरण आ जाता है—

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

वार्धक्य है ही रोगोंके प्राबल्यकी अवस्था। उनका शरीर भी अनेक व्याधियोंसे ग्रस्त रहता है; किंतु कभी तो अपने रोगकी, अपनी पीड़ाकी चर्चा उन्होंने की हो! तनसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और धनसे भी वे अभावग्रस्त, रोग-पीड़ित जनोंकी सेवामें ही जुटे मिले मुझे। आज इसके यहाँ और कल उसके यहाँ—उनके कहीं भी जानेका एक ही प्रयोजन है—उसकी कोई सेवा करनी होगी।

'कभी इस भले आदमीको क्रोध भी आता है? मैंने एक परिचितसे पूछ लिया था हँसीमें।'

'वे तो परम सन्त हैं। उनको क्रोध भला कैसे आ सकता है?' बड़ी श्रद्धाके साथ ये शब्द कहे गये। किंतु वे साधु-वेशधारी होंगे, इस सन्देहमें आप न पड़ें। वे गृहस्थ हैं और गृहस्थवेशमें ही रहते हैं। वैसे अब रहते हैं एकाकी। पत्नीका परलोकवास बहुत पहले हो चुका और पुत्र कहीं दूरके नगरमें कोई काम करता है।

भजन, सेवा और तीर्थवास—उनके अब इतने ही काम हैं और उनसे कुछ कहिये उनकी प्रशंसामें तो कहेंगे—'मैं स्वार्थी हूँ। बनिया ठहरा। मुझे मूर्ख बनाकर कोई ठग ले, यह मैं सहन नहीं कर सकता।'

'रघुनाथजीकी लीला! बड़े लीलामय हैं वे।' यह एक दूसरा वाक्य है, जो उनके मुखसे मैंने कई बार सुना है। जब भी किसीके किसी दोषकी चर्चा आप उनके सम्मुख करेंगे, वे इस वाक्यको दुहरा देंगे और उनके होंठ तथा झोलीके भीतर अँगुलियाँ अधिक शीघ्रतासे चलने लगेंगी।

उन्हें कष्ट होता है, उद्वेग होता है जब उनकी प्रशंसा की जाती है अथवा उनका सम्मान करनेका कोई प्रयत्न करता है। उस समय ऐसा लगता है कि उनके नेत्र भर आये हैं। लेकिन आप उनका तिरस्कार करें तो उनके कानपर जूँ नहीं रेंगती। उन्हें सेवाका कोई काम बता दें तो उनका मुख खिल उठता है।

'बच्चा क्या करता है आजकल?' मैंने एक बार पूछा था उनसे। मुझपर उनका इतना स्नेह है कि मैं उनके शरीर तथा पुत्रका समाचार यदा-कदा पूछ लेता हूँ।

'मूर्खता करता है! बनियेका बेटा होकर मूर्ख निकला।' उनके मुखसे पहली बार झुँझलाहटके-से शब्द सुने थे मैंने। उन्होंने मेरे सम्मुख किसीकी निन्दा की हो, यह पहला अवसर था। अतः मुझे कुतूहल हुआ। उनकी कुटियापर गया था मिलने। जमकर बैठ गया। बात क्या है, यह जान लेना मुझे महत्त्वकी बात लगी।

'क्या रखा है। रामजीकी लीला है। वे जिसे जैसा नाच नचायें।' वे सँभल गये थे और पूछनेपर टाल देना चाहते थे मुझे; किंतु उनमें यह खेद क्यों जागा, मुझे यह जानना ही था।

'वह आजकल करता क्या है?' प्रश्नपर मैंने बल दिया। 'रहता कहाँ है?'

'व्यापार करता है। रुपये इकट्ठे करनेके चक्करमें पड़ा है।' उन्होंने मुझे संकोचपूर्वक थोड़ेमें बता दिया कि लड़का कहाँ रहता है, क्या करता है।

'कोई बुराई तो करता नहीं!' मैंने कहा—'युवक है, उपार्जन करता है और उपार्जन ईमानदारीसे करता है।'

'रघुनाथजी जिससे जो करायें, ठीक ही है!' वे अब अपने चित्तमें सावधान थे। सम्भवतः लड़केकी निन्दा मुखसे निकल गयी, इसका भी खेद था उन्हें।

'आप उसे मूर्ख क्यों कहते हैं?' मैंने हठपूर्वक पूछा।

'जो अपना स्वार्थ भी न समझे, वह मूर्ख ही तो है।' उन्होंने आग्रह करनेपर बताया—'क्या बनेगा रुपयोंसे? बैंकमें बहुत धन एकत्र हो गया तो उससे क्या लाभ? इतना धन उसके पास अब है कि वह सादा जीवन व्यतीत करते हुए निश्चिन्त भजन करता रहे।'

लड़केकी पत्नीका भी देहान्त हो चुका है। वह फिर विवाह करेगा या नहीं, मुझे पता नहीं है; किंतु पिताकी इसमें सम्मति नहीं है। उन्होंने उसे साल-दो-साल साथ रखा था। वह भी प्रतिदिन सवा लाख नाम-जप करता था, उन दिनों। उसे भी बगलबन्दी और घुटनोंतक धोती पहिने, हाथमें जप-झोली लिये, घुटे सिर मैंने देखा है।

त्याग और तपका यह जीवन सबके वशका नहीं हुआ करता। उस युवकसे साधक-जीवन निभा नहीं, तो उसे दोष नहीं दिया जा सकता। वह अब व्यवसाय करने लगा है। तनिक सुख-सुविधा, थोड़े अच्छे वस्त्र-भोजनकी उसकी आकांक्षा अस्वाभाविक तो नहीं है।

पिता कहते हैं कि वह मूर्ख हो गया है। वह मूर्ख है तो बुद्धिमान् समाजमें कितने हैं आज? लेकिन अब इनसे कुछ पूछना व्यर्थ है। इन्होंने इतना भी बता दिया, यही कम नहीं है। उनसे विदा लेकर मैं उस दिन चला आया।

× × × ×

'आप यह पद-संग्रह कितनेमें ले आये?' मैं उनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुटियापर यह सुनकर गया था कि आजकल वे रुग्ण हैं। किंतु वे उलटे मेरे सत्कारमें व्यस्त हो गये थे। एक पुस्तक पड़ी थी, आसनके समीप और नयी लगी वह मुझे। मैंने भी उसकी एक प्रति अभी चार-छ: दिन पहले खरीदी है।

'आप इस बार ठगे गये।' उन्होंने छपा मूल्य दिया था। यहाँ बहुतसे दूकानदारोंने स्वयं पद-संग्रह छपवाये हैं। पुस्तकपर मूल्य अधिक छपवा रखा है। प्राय: ठीक मूल्य पूछनेपर छपे मूल्यसे कममें वे पुस्तक देते हैं।

'मैं कहाँ ठगा गया?' मेरे ठीक मूल्य बतलानेपर वे बोले—'ठगा गया वह बेचारा! रघुनाथजीकी लीला!'

मैं चौंका। सचमुच ठगा कौन गया? जिसे पुस्तकके चार आने मूल्य अधिक देने पड़े वह या जिसने चार आनेमें अपनी ईमानदारी, सत्य, विश्वसनीयता बेच दी वह?

'चार आनेके लिये मैं झिकझिक करता तो ठगा जाता।' उन्होंने दूसरा सूत्र सुनाया—'मेरी शान्ति और समय जाता उस चार आनेमें, जिस समयमें दो-चार भगवन्नाम तो लिया ही जा सकता है।'

'सचमुच आप पक्के व्यापारी हैं!' मैंने उन्हें मस्तक झुकाया तो वे मेरे पैर पकड़ने लगे।

'प्रशंसासे क्या मिल जाता है मनुष्यको? निन्दासे उसका क्या बिगड़ जाता है?' उस दिन वे तनिक खुलकर बोल रहे थे—'वह प्रशंसाके पीछे जब पागल होता है, निन्दासे व्यथित होता है तो अहंकार उसे ठग लेता है। वह केवल अपनेको मूर्ख बनाता है।'

'ओह! सचमुच अहंकार मूर्ख ही तो बनाता है, ऐसे सब अवसरोंपर हमें।' मैं सोच रहा था कि जीवनका कितना श्रम और समय इस मूर्खताके पीछे मेरा नष्ट हुआ तथा हो रहा है।

'जीवनकी आवश्यकताएँ अधिक नहीं हैं।' वे कहते जा रहे थे—'पेटकी क्षुधा थोड़ेमें निवृत्त हो जाती है। थोड़ेमें शरीरकी रक्षा हो जाती है। मनुष्यको उसकी जीभ ठगती है और मूर्खता ठगती है। वस्त्रादिके साज-शृंगारपर—फैशनपर होनेवाला व्यय मूर्खता ही है। आपने कुर्ता पहिना या कोट-कमीज, यह पूरे नगरमें कोई ध्यान नहीं देता। आपका सजना केवल अपने मनके मिथ्याभिमानका सन्तोष है। मन ठगता है आपको कि लोग क्या कहेंगे!'

मैंने उनसे आज पूछा था कि 'आप अपनेको स्वार्थी क्यों कहते हैं?'

'मैं अपने स्वार्थपर दृष्टि रखता हूँ।' उन्होंने बताया था—'बनियाँ हूँ मैं। कोई मुझे ठग ले, यह मुझे सहन नहीं होता। मेरा मन, मेरा अहंकार ही मुझे ठग सकता है। यह न ठगे तो दूसरा कौन ठगेगा? आप सब तो श्रीरघुनाथजीके स्वरूप हैं। आप तो सदा इस दीनपर अनुग्रह ही करते हैं।'

उनके शब्दोंमें कहीं भी कृत्रिमता नहीं थी। उनका स्वर, उनके भरे-भरे-से नेत्र कह रहे थे कि ये शब्द उनके हृदयसे निकल रहे हैं।

'पूरा संसार ही तब मूर्ख है!' मैंने उन्हें उलाहना नहीं दिया था। उलाहना देनेकी धृष्टता भी नहीं कर सकता था उस समय। वैसे मैं उनसे परिहास कर लेता हूँ; किंतु उस दिन वातावरण इतना गम्भीर बन गया था, मैं इतना अभिभूत था कि परिहास या व्यंगकी कल्पना भी मनका स्पर्श नहीं करती। मैं सोचने लगा था और उस चिन्तनमें ये शब्द अपने-आप ही मुखसे निकल गये थे।

'आश्चर्यकी क्या बात है।' बिना संकुचित हुए वे स्थिर स्वरमें बोले—'यह संसार ही अज्ञानचालित है। ज्ञान संसारका निवर्तक है, प्रवर्तक तो है नहीं। रघुनाथजीकी लीला ही ऐसी है।'

'यह दौड़-धूप, यह व्यग्रता-व्यस्तता, यह अशान्तिपूर्ण संघर्ष—सब मूर्खता है!' मैं अपने चित्तमें सोचने लगा था—'सचमुच यदि हम सोचने लगें कि इसका क्या उपयोग? इससे क्या लाभ या क्या हानि? हमारे उद्योगोंमें, हमारे क्षोभोंमें भी कितने सार्थक निकलेंगे?'

'जीवका स्वार्थ बिना सोचे-समझे श्रम करते रहनेमें तो नहीं है?' वे कहने लगे—'पदार्थोंकी राशि वह एकत्र भी कर ले, सबका कोई वास्तविक उपयोग है उसके लिये? उसे सोचना तो चाहिये ही कि उसका सचमुच स्वार्थ किसमें है।'

'तो आप इस अर्थमें स्वार्थी हैं!' मैं हँस पड़ा और वे संकुचित हो गये; किंतु बात तो उनकी ही सच्ची है। जीवका सच्चा स्वार्थ तो परमात्मामें ठीक-ठीक लग जानेमें ही है और यह स्वार्थ उन्होंने साधा है। अपने पुत्रको वे मूर्ख कहें, यह अधिकार है उन्हें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वकामफलप्रद श्रीहनुमान्-अष्टोत्तरशतनामावली

[एक सज्जनने 'सर्वकामफलप्रद हनुमान्-अष्टोत्तरशतनामावली' 'कल्याण' में प्रकाशनार्थ प्रेषित की है। यह नामावली सालासर हनुमान्जी-मन्दिरमें रजतपत्रपर अंकित है। पूर्वमें गीताप्रेसद्वारा शतनामस्तोत्रसंग्रह प्रकाशित हुआ है, उसमें भी हनुमत्-शतनामस्तोत्र नामावलीसहित प्रकाशित है, पर यह शतनामावली उससे भिन्न होनेके कारण सालासर हनुमान्जीके भक्तों एवं श्रद्धालुजनोंके लिये यहाँ प्रकाशित की जा रही है—सम्पादक]

१ ॐ अञ्जनीगर्भसम्भूताय नमः।
२ ॐ वायुपुत्राय नमः।
३ ॐ चिरञ्जीवने नमः।
४ ॐ महाबलाय नमः।
५ ॐ कर्णकुण्डलाय नमः।
६ ॐ ब्रह्मचारिणे नमः।
७ ॐ ग्रामवासिने नमः।
८ ॐ पिङ्गकेशाय नमः।
९ ॐ रामदूताय नमः।
१० ॐ सुग्रीवकार्यकर्त्रे नमः।
११ ॐ बालिनिग्रहकारकाय नमः।
१२ ॐ रुद्रावताराय नमः।
१३ ॐ हनुमते नमः।
१४ ॐ सुग्रीवप्रियसेवकाय नमः।
१५ ॐ सागरक्रमणाय नमः।
१६ ॐ सीताशोकनिवारणाय नमः।
१७ ॐ छायाग्रहीनिहन्त्रे नमः।
१८ ॐ पर्वताधिश्रिताय नमः।
१९ ॐ प्रमाथाय नमः।
२० ॐ वनभङ्गाय नमः।
२१ ॐ महाबलपराक्रमाय नमः।
२२ ॐ महायुद्धाय नमः।
२३ ॐ धीराय नमः।
२४ ॐ सर्वासुरमहोद्यताय नमः।
२५ ॐ अग्निसूक्तोक्तचारिणे नमः।
२६ ॐ भीमगर्वविनाशकाय नमः।
२७ ॐ शिवलिङ्गप्रतिष्ठात्रे नमः।
२८ ॐ अनघाय नमः।
२९ ॐ कार्यसाधकाय नमः।
३० ॐ वज्राङ्गाय नमः।
३१ ॐ भास्करग्रसाय नमः।
३२ ॐ ब्रह्मादिसुरवन्दिताय नमः।
३३ ॐ कार्यकर्त्रे नमः।
३४ ॐ कार्यार्थिने नमः।
३५ ॐ दानवान्तकाय नमः।
३६ ॐ नाग्रविद्यानां पण्डिताय नमः।
३७ ॐ वनमाल्यसुरान्तकाय नमः।
३८ ॐ वज्रकायाय नमः।
३९ ॐ महावीराय नमः।
४० ॐ रणाङ्गणचराय नमः।
४१ ॐ अक्षासुरनिहन्त्रे नमः।
४२ ॐ जम्बूमालीविदारणे नमः।
४३ ॐ इन्द्रजीतगर्वसंहन्त्रे नमः।
४४ ॐ मन्त्रीनन्दनघातकाय नमः।
४५ ॐ सौमित्रप्राणदाय नमः।
४६ ॐ सर्ववानररक्षकाय नमः।
४७ ॐ सञ्जीवनवनगोद्वाहिने नमः।
४८ ॐ कपिराजाय नमः।
४९ ॐ कालनिधये नमः।
५० ॐ दधिमुखादिगर्वसंहन्त्रे नमः।
५१ ॐ धूम्रविदारणाय नमः।
५२ ॐ अहिरावणहन्त्रे नमः।
५३ ॐ दोर्दण्डशोभिताय नमः।
५४ ॐ गरलागर्वहरणाय नमः।
५५ ॐ लङ्काप्रासादभञ्जकाय नमः।
५६ ॐ मारुताय नमः।
५७ ॐ अञ्जनीवाक्यसाधकाय नमः।
५८ ॐ लोकधारिणे नमः।
५९ ॐ लोककर्त्रे नमः।
६० ॐ लोकदाय नमः।
६१ ॐ लोकवन्दिताय नमः।
६२ ॐ दशास्यगर्वहन्त्रे नमः।
६३ ॐ फाल्गुनभञ्जकाय नमः।
६४ ॐ किरीटीकार्यकर्त्रे नमः।
६५ ॐ दुष्टदुर्जयखण्डनाय नमः।
६६ ॐ वीर्यकर्त्रे नमः।
६७ ॐ वीर्यवर्याय नमः।
६८ ॐ बालपराक्रमाय नमः।
६९ ॐ रामेष्ठाय नमः।
७० ॐ भीमकर्मणे नमः।
७१ ॐ भीमकार्यप्रसाधकाय नमः।
७२ ॐ विरोधिवीराय नमः।
७३ ॐ मोहानासिने नमः।
७४ ॐ ब्रह्ममन्त्रये नमः।
७५ ॐ सर्वकार्याणां सहायकाय नमः।
७६ ॐ रुद्ररूपीमहेश्वराय नमः।
७७ ॐ मृतवानरसञ्जीवने नमः।
७८ ॐ मकरीशापखण्डनाय नमः।
७९ ॐ अर्जुनध्वजवासिने नमः।
८० ॐ रामप्रीतिकराय नमः।
८१ ॐ रामसेविने नमः।
८२ ॐ कालमेघान्तकाय नमः।
८३ ॐ लङ्कानिग्रहकारिणे नमः।
८४ ॐ सीतान्वेषणतत्पराय नमः।
८५ ॐ सुग्रीवसारथये नमः।
८६ ॐ शूराय नमः।
८७ ॐ कुम्भकर्णकृतान्तकाय नमः।
८८ ॐ कामरूपिणे नमः।
८९ ॐ कपीन्द्राय नमः।
९० ॐ पिङ्गाक्षाय नमः।
९१ ॐ कपिनायकाय नमः।
९२ ॐ पुत्रस्थापनकर्त्रे नमः।
९३ ॐ बलवते नमः।
९४ ॐ मारुतात्मजाय नमः।
९५ ॐ रामभक्ताय नमः।
९६ ॐ सदाचारिणे नमः।
९७ ॐ युवानविक्रमोर्जिताय नमः।
९८ ॐ मतिमते नमः।
९९ ॐ तुलाधारपावनाय नमः।
१०० ॐ प्रवीणाय नमः।
१०१ ॐ पापसंहारकाय नमः।
१०२ ॐ गुणाढ्याय नमः।
१०३ ॐ नरवन्दिताय नमः।
१०४ ॐ दुष्टदानवसंहारिणे नमः।
१०५ ॐ महायोगिने नमः।
१०६ ॐ महोदराय नमः।
१०७ ॐ रामसन्मुखाय नमः।
१०८ ॐ रामपूजकाय नमः।

[प्रेषक—स्वामी श्रीमन्त्रेश्वरानन्दजी]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आरोग्यदायिनी तुलसी

(वैद्य श्रीबालकृष्णजी गोस्वामी, एम०डी०, आयुर्वेद)

भारतीय जीवन-शैलीमें सुख-समृद्धिके लिये आवश्यक बहुत-से कार्यों तथा वस्तुओंको धर्मके साथ जोड़ दिया गया है। सनातन धर्मका मुख्य प्रयोजन दैहिक, दैविक तथा भौतिक शान्ति एवं उन्नयनको माना गया है। जो धार्मिक परम्पराएँ हमारे आरोग्य तथा दीर्घ जीवनसे सीधा एवं गहरा सम्बन्ध रखती हैं, उनमें तुलसीका सेवन प्रमुख है। तुलसी लिये बिना किसी भी खाद्य पदार्थका सेवन न करनेका शास्त्रीय निर्देश इसकी नियमितताको बनाये रखनेके लिये है। विष्णुपुराण, स्कन्दपुराण, ब्रह्मपुराण, श्रीमद्भागवत आदि प्राचीन धार्मिक ग्रन्थोंमें तुलसीकी महत्ताका विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है।

भारतीय सनातन परम्परामें तुलसीको देवीका रूप प्राप्त है। वे भगवान् विष्णुकी नित्य सहचरी हैं, इसीलिये वे विष्णुप्रिया, विष्णुकान्ता तथा केशवप्रिया आदि नामोंसे अभिहित होती हैं। नारायणस्वरूप भगवान् शालग्रामका पूजन बिना तुलसीके अपूर्ण ही माना जाता है। तुलसीदल अर्पण करनेसे नैवेद्य भगवान्का प्रसादरूप हो जाता है। जहाँ तुलसीके पौधे होते हैं या तुलसीवन होता है, वह स्थान वृन्दावनके समान पवित्र हो जाता है। तुलसीवृक्षके मूलसे लेकर उसकी छायातकमें सभी देवता तथा सभी तीर्थ निवास करते हैं। जलमें तुलसी डालनेसे वह जल तीर्थरूप हो जाता है। तुलसीके स्थानकी मृत्तिका अत्यन्त पुण्यदायी होती है। तुलसीवृक्षके समीप किया गया जप-तप महान् फलदायी होता है। आसन्नमृत्यु तथा मृत्युप्राप्त व्यक्ति तुलसीके सन्निधानसे परम गति प्राप्त करता है। पद्मपुराणमें बताया गया है कि तुलसीके पत्ते, फूल, फल, मूल, शाखा, छाल, तना और मिट्टी आदि सभी पावन हैं—

पत्रं पुष्पं फलं मूलं शाखात्वक्स्कन्धसंज्ञितम्।
तुलसीसम्भवं सर्वं पावनं मृत्तिकादिकम्॥

(पद्मपु० उत्तर० २४। २)

तुलसीदेवीकी स्तुतिमें कहा गया है कि मैं प्रकाशमान् विग्रहवाली भगवती तुलसीको मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ, जिनका कि दर्शन करके पातकी मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। तुलसीके द्वारा यह सम्पूर्ण चराचर जगत् रक्षित है। ये पापियोंके पापोंका भी नाश कर देती हैं। इस पृथ्वीतलपर तुलसीसे बढ़कर अन्य कोई देवता नहीं है, जिनके द्वारा यह जगत् उसी भाँति पवित्र कर दिया गया है, जैसे भगवान् विष्णुके प्रति अनुरागभावसे कोई वैष्णव पवित्र हो जाता है—

नमामि शिरसा देवीं तुलसीं विलसत्तनुम्।
यां दृष्ट्वा पापिनो मर्त्या मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषात्॥
तुलस्या रक्षितं सर्वं जगदेतच्चराचरम्।
या विनिहन्ति पापानि दृष्ट्वा वा पापिभिर्नरैः॥
तुलस्या नापरं किञ्चिद् दैवतं जगतीतले।
यथा पवित्रितो लोको विष्णुसङ्गेन वैष्णवः॥

(श्रीपुण्डरीककृत तुलसीस्तोत्र)

इस प्रकार आध्यात्मिक तथा धार्मिक क्षेत्रमें तुलसीकी महत्ता तो सर्वत्र प्रख्यात है ही, आरोग्यदानकी दृष्टिसे भी इसका विलक्षण माहात्म्य है। यह न केवल शारीरिक व्याधियोंको दूर करती है, अपितु मानसिक रोगोंके अपाकरण तथा अन्तःकरणके नैर्मल्यमें भी इसका अपूर्व योगदान है।

तुलसी प्रायः सभी स्थानोंपर पाया जानेवाला क्षुप जातिका एक पौधा है। इसकी ऊँचाई लगभग १ से ४ फुटतक होती है, शाखाएँ सीधी तथा फैली हुई रहती हैं। इसके पत्ते एकसे ढाई इंच लम्बे, नेत्राकार तथा सुगन्धित होते हैं। तुलसीकी डालियोंके अन्तमें मंजरी लगती है। पृथ्वीपर तुलसीकी कुल २२ जातियाँ पायी जाती हैं, जिनमें रामतुलसी, श्यामतुलसी, गंधातुलसी, बनतुलसी, कपूरीतुलसी, सफेदतुलसी आदि उल्लेखनीय हैं। जिसके पत्ते हरे तथा कुछ सफेदी लिये हुए होते हैं, उसे रामतुलसी कहा जाता है तथा जिसकी डण्डियाँ तथा पत्ते कालिमायुक्त हरे रंगके होते हैं, उसे श्यामतुलसी कहते हैं। गुणोंकी दृष्टिसे कृष्ण या श्यामतुलसीको श्रेष्ठ माना गया है। तुलसीके पत्तोंमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेसिल कैम्फर नामक सुगन्धित तैल पाया जाता है। पीली आभायुक्त हरे रंगका यह तैल उड़नशील होता है। इसीके कारण तुलसीमें विशेष गुण पाये जाते हैं। इसके पत्तोंमें एक विशिष्ट तरहका प्रोटीन होता है, जो शरीरकी चयापचय क्रियाओंको व्यवस्थित रखते हुए उसे पुष्टि प्रदान करता है।

आयुर्वेदके मतानुसार तुलसी कटु-तिक्तरसयुक्त, हृदयके लिये हितकारी, उष्ण, पित्तकारी, अग्निदीपक तथा चर्मरोग, रक्तविकार, मूत्ररोग, कुष्ठ, पसलीके दर्द, कफ तथा वायुको दूर करनेवाली है। भावमिश्रने अपने ग्रन्थमें कहा है—

तुलसी कटुका तिक्ता हृद्योष्णा दाहपित्तकृत्।
दीपनी कुष्ठकृच्छ्रास्त्रपार्श्वरुक्कफवातजित्॥

शास्त्रोंमें तुलसीको भूतघ्नी संज्ञा प्रदान की गयी है। कीटाणुओं (भूत-कृमि)-की नाशक होनेसे यह एण्टीबॉयटिक भी है।

तुलसीकी गुणवत्ताको देखते हुए देश-विदेशमें इसपर व्यापक अनुसन्धान कार्य किये गये हैं। शरीरमें रोग-प्रतिरोधक क्षमता पैदाकर उसे रोगोंसे बचानेमें तुलसीको बहुत कारगर पाया गया है। मानसिक शान्ति प्राप्त करने एवं आत्मबल बढ़ानेहेतु तुलसीकी उपयोगिता प्रतिपादित की जा चुकी है। यौवनको स्थिर रखकर बुढ़ापेको जल्दी आनेसे रोकनेके लिये तुलसी प्रकृतिकी अनुपम देन है। यह शरीरमें उत्पन्न तथा बाहरसे आये विषाक्त पदार्थोंको नष्ट करनेकी क्षमता रखती है। भोजनके पूर्व तुलसी ग्रहण करने या भगवान्‌के प्रसादमें तुलसी रखनेकी परम्पराके पीछे भोजनको निरापद बनाना तथा फूड पॉयजनकी सम्भावनाको समाप्त करना भी एक उद्देश्य है। संक्रामक व्याधियाँ फैलनेपर तुलसीका सेवन जीवनकी रक्षा करता है। कई विकसित देशोंमें भी इसका सफल परीक्षण किया जा चुका है।

स्वस्थ व्यक्तिकी स्वास्थ्य-रक्षाके अतिरिक्त तुलसी रोगीको निरोग बनानेमें भी पूर्ण सक्षम है। यहाँ तुलसीके आरोग्य-सम्बन्धी कुछ प्रयोग दिये जा रहे हैं—

(१) साँस तथा साँसनलीकी सूजनमें तुलसीके पत्तोंको शहदके साथ मिलाकर खानेसे बहुत लाभ होता है। यह खाँसी, टान्सिल तथा गलेकी सूजनको दूर करती है।

(२) बार-बार जुकाम लगनेकी स्थितिमें सोंठके १ ग्राम चूर्णको ७ तुलसीके पत्तोंके साथ खाना चाहिये। इसका लगातार सेवन कुछ दिनोंमें ही लाभ करता है।

(३) फ्लू एवं मलेरिया बुखारमें तुलसी रामबाण दवा है। तुलसीके पत्तों तथा काली मिर्चका क्वाथ बनाकर पीनेसे बुखार उतर जाता है।

(४) दालचीनीके साथ तुलसी खाने तथा मुनक्का मिला काढ़ा पीनेसे प्यास तथा जलनका शमन होता है।

(५) नजला दूर करनेके लिये तुलसीके पत्ते १० ग्राम, काली मिर्च ५ ग्राम तथा जायफल १० ग्राम साथ पीसकर मटरके समान गोलियाँ बना लें। २ गोली सुबह एवं २ गोली शामकी मात्रामें दो सप्ताह लेनेसे बहुत फायदा होता है। तुलसीके रसको नाकमें डालना भी पुराने जुकाम हेतु उत्तम है।

(६) किसी विषाक्त पदार्थके खाये जानेकी आशंका हो तो तुलसीके पत्तोंका दो चम्मच रस पिलाना चाहिये।

(७) तुलसीके बीज पेटके कीड़ोंको नष्ट करनेमें बहुत उपयोगी हैं। चौथाई चम्मच बीज एक चम्मच अजवायनके साथ मिलाकर रातको लेनेसे तीन दिनों में कीड़े नष्ट हो जाते हैं। तुलसीके पत्ते लीवरका शोधन करते हैं तथा उसकी निर्विषीकरणकी शक्तिको बढ़ाते हैं।

(८) बच्चोंका पेट फूलनेपर ५ तुलसीके पत्तोंकी चटनी बनाकर चाटनेसे फायदा होता है। तुलसीके पत्तोंका रस मिश्रीके साथ लेनेसे लूका दुष्प्रभाव नष्ट हो जाता है।

(९) अजीर्ण तथा मन्दाग्नि होनेकी अवस्थामें इसके पत्तोंका रस १ चम्मच, अदरकका रस १ चम्मच तथा ५ ग्राम गुड़को संयुक्तकर पीनेसे चामत्कारिक लाभ होता है।

(१०) तुलसीके पत्तोंको पानीमें उबालकर सेंधानमक मिला लें। यह पानी पेटके अफारे तथा दर्द को तत्काल दूर करता है।

(११) स्वप्नदोष तथा धातुक्षीणतामें तुलसीकी मंजरीका प्रयोग लाभप्रद है। दो-तीन मंजरी मिश्रीके साथ खानेसे इन विकारोंमें फायदा होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१२) स्त्रियोंको श्वेतप्रदरकी शिकायत होनेपर तुलसीके पत्तोंके दो चम्मच रसको चावलके माँड़के साथ १५ दिनोंतक देनेसे लाभ होता है। यह पौधा मूत्राशयकी सूजन तथा पेशाबकी जलनको भी दूर करता है। स्नायुतन्त्रके लिये तुलसी टॉनिकका कार्य करती है। नित्य खाली पेट इसका सेवन करनेसे नाड़ी-मण्डल मजबूत होता है तथा स्मरणशक्ति बढ़ती है।

(१३) सिरदर्द तथा माईग्रेन दूर करनेहेतु तुलसीका प्रयोग गुड़के साथ करना लाभप्रद है।

तुलसीका बाह्य-प्रयोग—तुलसीके पत्रोंके रसका बाह्य-प्रयोग भी रोगशमनहेतु कार्यकारी है। कुछ प्रयोग द्रष्टव्य हैं—

कानके दर्द, सूजन तथा फुंसीमें इसके रसको गर्म करके डालनेपर लाभ होता है।

घावमें तथा फटी एड़ियोंमें शहदके साथ मिलाकर इसके रसको लगानेसे रोगमुक्ति होती है। मुँहासोंपर इसके रसको बेसनमें मिलाकर लेपन करनेसे लाभ होता है।

तुलसीका रस दाद, सफेद दाग, खुजली तथा पित्ती उछलनेकी जगह लगानेपर फायदा होता है। इस दिव्य पौधेके पत्तोंका रस लगाकर मलनेसे मुखकी कान्ति बढ़ती है तथा झुर्रियाँ ठीक होती हैं।

इस प्रकार तुलसीका अनेक प्रकारसे उपयोग करनेसे अनेक रोगोंमें लाभ होता है। तुलसी हर दृष्टिसे उपयोगी है। अतः सभीको अपने घरमें तुलसीका पौधा लगाना चाहिये। इसकी हवा आस-पासके वायुमण्डलको पवित्र कर देती है और इसका दर्शन महान् पुण्यकी प्राप्ति करानेवाला है। ऐसी अमित महिमामयी तुलसीको बार-बार प्रणाम है। पद्मपुराणमें भगवती तुलसीकी महिमासे सम्बन्धित एक बड़े ही महत्त्वका श्लोक आया है, जो इस प्रकार है—

या दृष्टा निखिलाघसङ्घशमनी स्पृष्टा वपुष्पावनी
रोगाणामभिवन्दिता निरसनी सिक्तान्तकत्रासनी।
प्रत्यासत्तिविधायिनी भगवतः कृष्णस्य संरोपिता
न्यस्ता तच्चरणे विमुक्तिफलदा तस्यै तुलस्यै नमः॥

अर्थात् जो दर्शन-पथपर आनेपर सारे पापसमुदायका नाश कर देती हैं, स्पर्श किये जानेपर शरीरको पवित्र बनाती हैं, प्रणाम किये जानेपर रोगोंका निवारण करती हैं, जलसे सींचे जानेपर यमराजको भी भय पहुँचाती हैं, आरोपित किये जानेपर भगवान् श्रीकृष्णके समीप ले जाती हैं और भगवान्‌के चरणोंमें चढ़ाये जानेपर मोक्षरूपी फल प्रदान करती हैं, उन तुलसीदेवीको नमस्कार है।

विदेशोंमें गायका महत्त्व—कुछ संस्मरण

(श्रीलल्लनप्रसादजी व्यास)

गोदुग्ध-पान और गोमांस-भक्षणके बारेमें भारत और विदेशोंके चिन्तन तथा व्यवहारमें विचित्र विडम्बना या विरोधाभास दिखायी पड़ता है। भारत आदिकालसे गोपूजक देश रहा है। जहाँ ***'बिप्र धेनु सुर संत हित'*** भगवान्‌का अवतार हुआ तथा जहाँ दूधके उत्पादनमें अधिकता होनेसे ऐसा माना जाता रहा कि कभी यहाँ दूधकी नदियाँ बहती थीं, वहीं इस देशकी आज स्थिति यह हो गयी है कि धड़ल्लेसे गायें कटती हैं और गोवध बन्द करानेके लिये गोभक्तोंद्वारा आन्दोलन तथा आमरण अनशन होते हैं, किंतु उनका कोई प्रभाव नहीं दिखायी देता। जहाँतक गोदुग्धका प्रश्न है, कुछ क्षेत्रोंको छोड़कर अधिकांशमें गोदुग्ध एक दुर्लभ वस्तु हो गयी है। गौके दूधका स्थान भैंसके दूधने ले लिया है। फलस्वरूप गोपालक भारतदेशमें गोवंशका दिन-प्रतिदिन ह्रास हो रहा है। दूसरी ओर विदेशोंमें, चाहे वे पश्चिमके देश हों या पूर्वके, दूधकी बहुतायत है और कुछ देशोंमें गौके दूधका उत्पादन वहाँके प्रमुख उत्पादोंमेंसे एक है और वे देश गौके दूधकी बनी वस्तुएँ संसारभरको निर्यात करते हैं, जबकि इन सभी देशोंमें गोमांस-भक्षणकी एक आम आदत है। इन देशोंमें दूधका मतलब गोदूध ही माना जाता है, भैंसका दूध नहीं। कुछ देशोंमें तो भैंस अजायबघरमें रहनेवाले पशुके समान है।

भैंसका दूध कोई नहीं पीता—कई वर्ष पूर्वकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात है, ताइवानकी यात्राके दौरान रास्तेमें पड़नेवाले गाँवमें कहीं-कहीं भैंस दिखायी पड़ी तो एक अधिकारीसे पूछा गया कि इसके दूधका आपके देशमें क्या उपयोग है? तो उन्होंने सहज भावसे उत्तर दिया कि 'इसका बच्चा पीता है।' इसके आगे कोई प्रश्न करनेकी आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई, किंतु मनमें यह प्रश्न कौंधता रहा कि क्या यहाँ भैंसके दूधका उसके बच्चेके पीनेके अलावा और कोई उपयोग नहीं है? कुछ समय बाद जब पुन: उस देशकी यात्राका संयोग उपस्थित हुआ और उसी प्रकार फिर ग्रामीण क्षेत्रोंसे गुजरते हुए भैंसें दीख पड़ीं तो पूछनेपर पता चला कि भैंसके दूधका उपयोग केवल इसके बच्चेके पीनेके लिये होता है। दोनों बार ऐसा उत्तर सुनकर इसी निष्कर्षपर पहुँचना पड़ा कि यहाँ कोई मनुष्य भैंसका दूध पीता ही नहीं है। कोई भैंसके दूधको पिये, इसकी कल्पना ही नहीं उठती।

कुछ वर्ष पूर्वतक थाईलैण्डमें भी यही स्थिति थी, किंतु यहाँ पूर्वी भारतीय लोगोंने पहुँचकर गायके बजाय भैंस पालना शुरू किया और भैंसके दूधका प्रचार किया।

इस प्रकार गायके दूधका मानव-जीवनमें अनिवार्य उपयोग होनेके बावजूद भी गाय अधिकांश देशोंमें पूजनीय नहीं है और यहाँ गोमांस-भक्षणका व्यापक प्रचार है। विदेशोंमें कोई गोवध-निषेधका प्रश्न भी नहीं उठाता। उन्हें अभी यह ज्ञान प्राप्त होना है कि गाय और अन्य पशुओंमें बड़ा अन्तर है तथा गायका दूध ही मनुष्यका स्वास्थ्य बढ़ाता है, उसका मांस मानव-स्वास्थ्यका सबसे बड़ा शत्रु है और अनेक रोगोंको जन्म देता है। पश्चिमी देशोंकी अनेक बीमारियोंके मूलकी यदि खोजकी जाय तो अत्यधिक मात्रामें गोमांस-भक्षण ही कारण दिखायी पड़ेगा। इधर कुछ वर्षोंमें विभिन्न कारणोंसे विदेशियोंमें शाकाहारी होनेकी प्रवृत्तिको देखते हुए नये अनुसन्धान किये जा रहे हैं और यह निष्कर्ष निकाले जा रहे हैं कि शाकाहार मनुष्यके स्वास्थ्य और दीर्घजीवनके लिये बहुत जरूरी है।

बालीमें पूजनीय—कुछ अन्य तथ्योंकी जानकारी मिली है, जिसके मुख्य विवरण इस प्रकार हैं—

१-बालीमें एकमात्र क्षेत्र 'तरो' है, जहाँ सफेद गायें मिलती हैं। इस गायको 'लम्बू' कहते हैं और लोग इसकी पूजा करते हैं।

२-भारतकी तरह बालीके श्रद्धालु भी गायका गोबर और गोमूत्र पूजनमें शुद्धिके रूपमें इस्तेमाल करते हैं।

३-बालीकी राजधानी देनपसारमें एक छोटा-सा द्वीप है, जिसका नाम 'नूसापनिदा' है। प्राचीन कालमें यह वैष्णव क्षेत्र था, यहाँके लोग गोमांस नहीं खाते थे।

४-बालीमें जो लोग अज्ञानवश गोमांस खाते थे या गाय मारनेवाले कसाईखानेसे होकर गुजरते थे तो उन्हें नदीमें स्नान करके गाँवमें प्रवेश मिलता था। इसके बाद माता या वृद्ध लोग गंगा-जलका आवाहन करके उसके मुँहपर छींटे मारते थे।

५-बालीके वृद्ध लोग कहते हैं कि प्राचीन कालमें जो लोग गोमांस खाते थे, उन्हें कुत्तेसे ज्यादा नीच समझा जाता था।

६-बालीके प्राचीन ग्रन्थोंमें कुछ श्लोक और दूसरे ऐसे उल्लेख मिलते हैं, जिनमें पंचगव्यके महत्त्वके बारेमें बताया गया है। इसका उपयोग वे पूजामें और प्रायश्चित्तके समय भी करते थे।

७-इण्डोनेशियाकी प्रसिद्ध रामायण 'काकाविन' के रचयिता महाकवि योगीश्वरने गायका महत्त्व दिग्दर्शित करनेवाले कई श्लोकोंका उल्लेख किया है। इन श्लोकोंके माध्यमसे महाकविने बताया है कि संसारमें पशुकी स्थिति बहुत दयनीय है और उसमें भी गायकी और भी अधिक। महाकविने अच्छे और बुरे व्यक्तियोंकी यह पहचान भी बतायी है कि बुरे व्यक्ति गायपर अधिक सामान लाद देते हैं और ऊपरसे मारते भी हैं तथा उसके शरीरको केवल भक्षण करनेवाले मांसके रूपमें देखते हैं, किंतु अच्छे लोग गायके प्रति करुणाका भाव रखते हैं और गायको कोई कष्ट नहीं देते।

८-बालीमें मनुष्योंकी तरह गायका भी दाह-संस्कार होता है। वह भी श्मशानपर नहीं, बल्कि बाग-बगीचे-जैसे पवित्र स्थानपर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गायकी मूर्तियाँ—थाईलैण्डमें तो गायके महत्त्वको देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। यहाँके अनेक बौद्ध-मन्दिरोंमें गायकी मूर्तियाँ मिलती हैं। बैंकाकके संसार-प्रसिद्ध बुद्ध-मन्दिरमें, जिसमें नीलमकी बुद्धमूर्ति रखी है, गायकी प्रतिमा भी स्थापित है और यह अत्यन्त प्रमुख स्थानपर है, जहाँ सभीकी दृष्टि जाती है। इसी मन्दिरके बगलमें एक और बुद्ध-मन्दिर है, जिसके अन्दर शिवलिंग और नन्दी दोनों बने हैं।

कम्बोडियाके अंकोरवाट मन्दिरकी अनेक भग्न प्रतिमाओंमें भी गौकी प्रतिमा विद्यमान है। दो मन्दिर क्रमशः भगवान् विष्णु और शिवजीको समर्पित हैं तथा इनकी दीवारोंपर रामायण और महाभारतके अनेक प्रसंग उत्कीर्ण हैं। न केवल वियतनाम, थाईलैण्ड और कम्बोडिया, अपितु अन्य अनेक देशोंने भी गायको पर्याप्त महत्त्व दिया है। ईसा पशुवधके विरोधी थे। बाइबिलमें वृषभको देवता माना गया है। फिलिस्तीनमें खुदाईके उपरान्त गायकी कुछ मिट्टीकी मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं। यहूदी लोगोंमें गायका बड़ा आदर था। उनकी कुछ कथाओंको पढ़नेसे ज्ञात होता है कि वे बहुत ही निपुण गोपालक थे। यहूदियोंके धर्मशास्त्रकी आज्ञा थी कि दँवरी करते समय बैलके मुँहमें जाली मत लगाओ। यहूदी भक्तोंकी धारणा थी कि याकूबने एक बछड़ेको मारकर उसकी माता गौको दुःख पहुँचाया था, इसलिये उसका बेटा यूसुफ मर गया।

मेसोपोटामियामें सुमेरियन नामके लोग रहते थे। गौके लिये सुमेरियन भाषाका शब्द 'गु' है। उनके प्राचीन सिक्कोंपर भी गौके चिह्न अंकित रहते थे। कुछ वर्ष पूर्व सुमेरियामें खोजका कार्य हुआ था। तेलेलओबीद मन्दिरकी दीवारपर गाय-बैल और ग्वालोंके कई चित्र मिलते हैं, जिनमें कहीं गोदोहन हो रहा है तो कहीं दूध बह रहा है आदि। एक चित्रमें बैलोंका जुलूस है। इन चित्रोंसे यह अनुमान किया जा सकता है कि सुमेरियन लोग गौका कितना आदर करते थे। सुमेरी और बेबीलोन प्रदेशोंमें कुछ वर्षपूर्व गोवध-विरोधी कानून बना दिया गया था।

पिरामिडोंके शिलालेख—मिस्रमें भी गाय-बैलोंकी पूजा होती थी। उनकी हथोर नामक देवी गौ ही है। हथोरके समान आपिस वृषभकी भी उपासना की जाती है। पिरामिड और खुदाईसे प्राप्त मन्दिरों और शिलालेखोंसे यह ज्ञात होता है कि प्राचीन मिस्रकी संस्कृतिमें गाय और बैलकी उपासना होती थी, मिस्रमें गोहत्या नहीं होती थी। गोहत्या करनेवालेको प्राणदण्ड मिलता था। जिस प्रकार हिन्दू वैतरणी पार करनेके लिये गायकी पूँछ पकड़ते हैं, उसी प्रकार मिस्रवासी गायकी पूँछ पकड़कर नील नदी पार करते हैं।

यूनानियोंके गोप्रेमके बारमें कहा जाता है कि जब सिकन्दर भारतसे लौटकर यूनान जाने लगा था तो वह अपने साथ एक लाख उत्तम जातिकी गौएँ यहाँसे ले गया था।

पूर्वी देशों, विशेषरूपसे जापानमें मानव-स्वास्थ्यको लेकर जो नयी-नयी जागरूकता पैदा हो रही है, उसमें गौके दूधका सेवन व्यापकरूपसे बढ़ रहा है। जिस प्रकारसे अनेक देशोंमें जगह-जगह मशीनोंके माध्यमसे सिक्के डालकर शीतल पेय प्राप्त किये जा सकते हैं, वैसे ही वहाँ मशीनोंके माध्यमसे जगह-जगह दूधकी व्यवस्था उपलब्ध है।

हालैण्ड, जर्मनी, बेल्जियम, डेनमार्क, आस्ट्रेलिया आदि देश गौके दूधके उत्पादनमें इतने आगे बढ़ गये हैं कि इनमेंसे कुछ देशोंमें यदि यह कहा जाय कि यहाँ दूधकी नहरें बहती हैं तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। वर्तमान युगमें यह कैसी विडम्बना उभरकर सामने आयी है कि गोभक्षक देश गायके दूधके उत्पादन और उपयोगको महत्त्व दे रहे हैं और गोपूजक देश गौके दूध और उसकी बनी हुई वस्तुओंकी अनिवार्यता समाप्त करके गोवंशके ह्रासको जान-बूझकर प्रश्रय दे रहे हैं। भारतके लिये तो यह बहुत लज्जाजनक बात है। यदि गौके दूधकी माँग और खपत नहीं होगी और कृषिके लिये बैलोंकी जरूरत महसूस नहीं होगी तो गोवंशकी वृद्धि किस सम्भावनाके आधारपर होगी?

अतः आज सभीको गोरक्षण और गोसंवर्धनकी ओर विशेष सचेष्ट रहते हुए गोहत्या बन्द करानेके लिये प्राणपणसे जुट जाना चाहिये। [**प्रेषक—मेजर श्रीमनोहरलाल**]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०६८, शक १९३३, सन् २०११, सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त-ऋतु, पौष कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ८।४१ बजेतक	रवि	मृगशिरा रात्रिमें ८।१६ बजेतक	११दिसम्बर	मिथुनराशि प्रातः ७। २९ बजे।
द्वितीया ,, ९।१५ बजेतक	सोम	आर्द्रा ,, ९।२१ बजेतक	१२ ,,	× × × ×
तृतीया ,, ९।१८ बजेतक	मंगल	पुनर्वसु ,, ९।५७ बजेतक	१३ ,,	भद्रा दिनमें ९। १७ बजेसे रात्रिमें ९। १८ बजेतक, **कर्कराशि** दिनमें ३। ४९ बजे।
चतुर्थी ,,८।४९ बजेतक	बुध	पुष्य ,, १०।३ बजेतक	१४ ,,	मूल रात्रिमें १०। ३ बजेसे, **श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ८। ४३ बजे।
पंचमी ,, ७।५२ बजेतक	गुरु	आश्लेषा ,, ९।४० बजेतक	१५ ,,	**सिंहराशि** रात्रिमें ९। ४० बजे।
षष्ठी ,, ६।३० बजेतक	शुक्र	मघा ,, ८।५५ बजेतक	१६ ,,	मूल रात्रिमें ८। ५५ बजेतक, भद्रा रात्रिमें ६। ३० बजेसे रात्रिशेष ५। ३९ बजेतक, **मूल नक्षत्र** तथा **धनूराशिमें सूर्य** रात्रिमें १०। ५५ बजे, खरमासारम्भ।
सप्तमी सायं ४।४८ बजेतक	शनि	पू०फा० ,, ७।५० बजेतक	१७ ,,	**कन्याराशि** रात्रिमें १। २९ बजे, **सौर पौष मासारम्भ**।
अष्टमी दिनमें २।४९ बजेतक	रवि	उ०फा० ,, ६।२९ बजेतक	१८ ,,	**अष्टकाश्राद्ध।**
नवमी ,, १२।३७ बजेतक	सोम	हस्त सायं ४।५७ बजेतक	१९ ,,	भद्रा रात्रिमें ११। २७ बजेसे, **तुलाराशि** रात्रिमें ४। ७ बजे, **अन्वष्टकाश्राद्ध।**
दशमी ,, १०।१७ बजेतक	मंगल	चित्रा दिनमें ३।१९ बजेतक	२० ,,	भद्रा दिनमें १०। १७ बजेतक, **सफला एकादशीव्रत (स्मार्त्त)।**
एकादशी प्रातः ७।५६बजेतक द्वादशी रात्रिशेष ५।३७ बजेतक	बुध	स्वाती ,, १।३७ बजेतक	२१ ,,	**वृश्चिकराशि** रात्रिशेष ६। २४ बजे, **सफला एकादशीव्रत (वैष्णव)।**
त्रयोदशी रात्रिमें ३।२४ बजेतक	गुरु	विशाखा ,, १२।१ बजेतक	२२ ,,	भद्रा रात्रिमें ३। २४ बजेसे, **राष्ट्रिय पौषमासारम्भ, प्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी ,, १।२३ बजेतक	शुक्र	अनुराधा ,,१०।३२ बजेतक	२३ ,,	भद्रा दिनमें २। २३ बजेतक, **मास शिवरात्रिव्रत,** मूल दिनमें १०। ३२ बजेसे।
अमावस्या ,,११।३८ बजेतक	शनि	ज्येष्ठा ,, ९।१६ बजेतक	२४ ,,	**धनूराशि** दिनमें ९। १६ बजे, **स्नान-दान-श्राद्धादिकी अमावस्या।**

सं० २०६८, शक १९३३, सन् २०११-१२, सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त-ऋतु, पौष शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें १०।१४ बजेतक	रवि	मूल दिनमें ८। २१ बजेतक	२५दिसम्बर	मूल दिनमें ८। २१ बजेतक।
द्वितीया ,, ९।१३ बजेतक	सोम	पू० षा० प्रातः ७।४३ बजेतक	२६ ,,	**मकरराशि** दिनमें १।४१ बजे, **चन्द्रदर्शन।**
तृतीया ,, ८।४२ बजेतक	मंगल	उ० षा० ,,७।३२ बजेतक	२७ ,,	× × × ×
चतुर्थी ,, ८।४० बजेतक	बुध	श्रवण ,,७।४९ बजेतक	२८ ,,	भद्रा दिनमें ८।४१ बजेसे रात्रिमें ८।४० बजेतक, **कुम्भराशि** रात्रिमें ८।१३ बजे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें ८।१३ बजे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
पंचमी ,, ९।१०बजेतक	गुरु	धनिष्ठा ,,८।३७ बजेतक	२९ ,,	**पूर्वाषाढ़** नक्षत्रमें **सूर्य** रात्रिमें ११।५३ बजे।
षष्ठी ,, १०।१० बजेतक	शुक्र	शतभिषा दिनमें ९।५५ बजेतक	३० ,,	**मीनराशि** रात्रिशेष ५।१३ बजे, **अन्नरूपाषष्ठी** (बँगाल)।
सप्तमी ,, ११।३७ बजेतक	शनि	पू० भा० ,, ११।४० बजेतक	३१ ,,	भद्रा रात्रिमें ११।३७ बजेसे।
अष्टमी ,,१।२६ बजेतक	रवि	उ० भा०,,१।४९ बजेतक	१ जनवरी २०१२	भद्रा दिनमें १२। ३१ बजेतक, **जनवरी १ सन् २०१२ प्रारम्भ,** मूल दिनमें १।४९ बजेसे।
नवमी ,, ३।३१ बजेतक	सोम	रेवती सायं ४।१६ बजेतक	२ ,,	**मेषराशि** सायं ४।१६ बजे, **पंचक** समाप्त सायं ४।१६ बजे।
दशमी रात्रिशेष ५। ४२ बजेतक	मंगल	अश्विनी रात्रिमें ६।५२ बजेतक	३ ,,	**सांब** दशमी (उड़ीसा), मूल रात्रिमें ६।५२ बजेतक।
एकादशी अहोरात्र	बुध	भरणी ,,९।२८ बजेतक	४ ,,	भद्रा रात्रिमें ६।४५ बजेसे, **वृषराशि** रात्रिशेष ४।३ बजे।
एकादशी प्रातः ७। ४८ बजेतक	गुरु	कृत्तिका ,,११।५१ बजेतक	५ ,,	भद्रा प्रातः ७।४८ बजेतक, **पुत्रदा एकादशीव्रत** (सबका)।
द्वादशी दिनमें ९।३७बजेतक	शुक्र	रोहिणी ,, १।५८ बजेतक	६ ,,	**प्रदोषव्रत।**
त्रयोदशी ,,११।६ बजेतक	शनि	मृगशिरा ,, ३।३८ बजेतक	७ ,,	**मिथुनराशि** दिनमें २।४८ बजे।
चतुर्दशी ,,१२।८ बजेतक	रवि	आर्द्रा रात्रिशेष ४।५२ बजेतक	८ ,,	भद्रा दिनमें १२।८ बजेसे रात्रिमें १२।२३ बजेतक, **व्रतपूर्णिमा।**
पूर्णिमा ,,१२।३८ बजेतक	सोम	पुनर्वसु ,,५।३४ बजेतक	९ ,,	**कर्कराशि** रात्रिमें ११।२३ बजे, **स्नान-दानकी पूर्णिमा, माघस्नानारम्भ।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०६८, शक १९३३, सन् २०१२, सूर्य दक्षिणायन-उत्तरायण, हेमन्त-शिशिर-ऋतु, माघ कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें १२। ३७ बजेतक	मंगल	पुष्य रात्रिशेष ५।४७ बजेतक	१० जनवरी	मूल रात्रिशेष ५। ४७ बजेसे।
द्वितीया ११ १२।६ बजेतक	बुध	आश्लेषा ५।३१ बजेतक	११ ,,	भद्रा रात्रिमें ११। ३७ बजेसे, **सिंहराशि** रात्रिशेष ५। ३१ बजे, **उत्तराषाढ़ नक्षत्रमें सूर्य** रात्रिमें १२। ३० बजे।
तृतीया ,, ११।६ बजेतक	गुरु	मघा ,, ४।५० बजेतक	१२ ,,	भद्रा दिनमें ११।६ बजेतक, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत**, चन्द्रोदय रात्रिमें ८। ३४ बजे, मूल रात्रिशेष ४। ५० बजेतक।
चतुर्थी ,, ९।४३ बजेतक	शुक्र	पू० फा० रात्रिमें ३।५० बजेतक	१३ ,,	× × × ×
पंचमी प्रातः ८ बजेतक षष्ठी रात्रिशेष ६ बजेतक	शनि	उ०फा० ,, २।३३ बजेतक	१४ ,,	भद्रा रात्रिशेष ६। ० बजेसे, **कन्याराशि** दिनमें ९। ३१ बजे, **मकर-संक्रान्ति** रात्रिशेष ६। ४२ बजे, **उत्तरायण प्रारम्भ, खरमास समाप्त, शिशिर ऋतु प्रारम्भ।**
सप्तमी रात्रिमें ३।४७ बजेतक	रवि	हस्त ,, १।२ बजेतक	१५ ,,	**मकर-संक्रान्तिजन्य पुण्यकाल** खिचड़ी, पोंगल, **सौरमाघमासारम्भ, स्वामी श्रीरामानन्दाचार्य-जयन्ती,** भद्रा सायं ४। ५३ बजेतक।
अष्टमी ,, १।२८ बजेतक	सोम	चित्रा ,, ११।२४ बजेतक	१६ ,,	तुलाराशि दिनमें १२। १३ बजे, **अष्टकाश्राद्ध।**
नवमी ,, ११।६ बजेतक	मंगल	स्वाती ,, ९।४४ बजेतक	१७ ,,	**अन्वष्टकाश्राद्ध।**
दशमी ,, ८।४७ बजेतक	बुध	विशाखा ,, ८।५ बजेतक	१८ ,,	भद्रा दिन ९।५६ से रात्रि ८।४७ बजेतक, **वृश्चिकराशि** दिन २। २९ बजे।
एकादशी ,, ६। ३५बजेतक	गुरु	अनुराधा ,, ६।३५ बजेतक	१९ ,,	मूल रात्रिमें ६। ३५ बजेसे, **षट्तिला एकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी सायं ४। ३५ बजेतक	शुक्र	ज्येष्ठा सायं ५।१५ बजेतक	२० ,,	**धनूराशि** सायं ५। १५ बजेसे, **प्रदोषव्रत।**
त्रयोदशी दिनमें २।५२ बजेतक	शनि	मूल ,,४।१४ बजेतक	२१ ,,	मूल सायं ४। १४ बजेतक, भद्रा दिनमें २। ५२ बजेसे रात्रिमें २। ११ बजेतक, **मास शिवरात्रिव्रत।**
चतुर्दशी ,, १।२९ बजेतक	रवि	पू०षा० दिनमें ३। ३१ बजेतक	२२ ,,	**मकरराशि** रात्रिमें ९। २७ बजे, **श्राद्ध-अमावस्या।**
अमावस्या ,,१२।३२ बजेतक	सोम	उ०षा० ,,३।१४ बजेतक	२३ ,,	**मौनीअमावस्या, सोमवती अमावस्या, स्नान-दानकी अमावस्या।**

सं० २०६८, शक १९३३, सन् २०१२, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-ऋतु, माघ शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें १२। २ बजेतक	मंगल	श्रवण दिनमें ३। २५ बजेतक	२४ जनवरी	**कुम्भराशि** रात्रिमें ३। ४५ बजे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें ३। ४५ बजेसे, **श्रवणनक्षत्रका सूर्य** रात्रिमें १। ३८ बजे, चन्द्रदर्शन।
द्वितीया ,, १२।४ बजेतक	बुध	धनिष्ठा सायं ४।६ बजेतक	२५ ,,	× × × ×
तृतीया ,, १२।३६ बजेतक	गुरु	शतभिषा ,,५।१६ बजेतक	२६ ,,	**गणतन्त्र दिवस,** भद्रा रात्रिमें १।७ बजेसे।
चतुर्थी ,, १। ३९ बजेतक	शुक्र	पू० भा० रात्रिमें ६।५५ बजेतक	२७ ,,	भद्रा दिनमें १।३९ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, मीनराशि** दिनमें १२। ३० बजे।
पंचमी ,, ३।८ बजेतक	शनि	उ० भा० ,, ८।५९ बजेतक	२८ ,,	**श्रीवसन्तपंचमी, तक्षकपूजा, सरस्वतीपूजन,** मूल रात्रिमें ८।५९ बजेसे।
षष्ठी सायं ५।० बजेतक	रवि	रेवती ,, ११।२३ बजेतक	२९ ,,	**मेषराशि** रात्रिमें ११। २३ बजे, **पंचक समाप्त** रात्रिमें ११। २३ बजे, **श्रीशीतलाषष्ठी (बंगाल)।**
सप्तमी रात्रिमें ७।५ बजेतक	सोम	अश्विनी ,, १।५७ बजेतक	३० ,,	मूल रात्रिमें १। ५७ बजेतक, **रथसप्तमी, अचला सप्तमी,** भद्रा रात्रिमें ७।५ बजेसे।
अष्टमी ,,९।१६ बजेतक	मंगल	भरणी रात्रिशेष ४।३४ बजेतक	३१ ,,	भद्रा दिनमें ८। १० बजेतक, **भीष्माष्टमी।**
नवमी ,,११।२० बजेतक	बुध	कृत्तिका अहोरात्र	१ फरवरी	**वृषराशि** दिनमें ११।१० बजे।
दशमी ,,१। ८ बजेतक	गुरु	कृत्तिका प्रातः ७।१ बजेतक	२ ,,	× × × ×
एकादशी ,,२। ३३ बजेतक	शुक्र	रोहिणी दिनमें ९।१२ बजेतक	३ ,,	भद्रा दिनमें १।५१ बजेसे रात्रिमें २।३३ बजेतक, **मिथुनराशि** रात्रिमें १०।६ बजे, **जया एकादशीव्रत** (सबका)।
द्वादशी ,, ३। ३१ बजेतक	शनि	मृगशिरा ,,१०।५९ बजेतक	४ ,,	**भीष्मद्वादशी।**
त्रयोदशी ,,३।५७ बजेतक	रवि	आर्द्रा ,,१२।१८ बजेतक	५ ,,	**प्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी ,,३।५३ बजेतक	सोम	पुनर्वसु ,,१।८ बजेतक	६ ,,	भद्रा रात्रिमें ३।५३ बजेसे, **कर्कराशि** प्रातः ६।५५ बजे, **धनिष्ठा नक्षत्रका सूर्य** रात्रिमें ३।५१ बजे।
पूर्णिमा ,,३।१८ बजेतक	मंगल	पुष्य ,,१।२६ बजेतक	७ ,,	भद्रा दिनमें ३। ३५ बजेतक, **माघी पूर्णिमा, स्नान-दान-व्रतादिकी पूर्णिमा, माघस्नान समाप्त,** मूल दिनमें १। २६ बजेसे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधनोपयोगी पत्र

(१)

काम-क्रोधादि शत्रुओंका सदुपयोग

प्रिय महोदय, सप्रेम हरिस्मरण! आपका कृपापत्र मिला। आपने लिखा कि मेरा मन श्रीकृष्णके भजनके लिये छटपटाता रहता है, परंतु भजन होता नहीं तथा काम-क्रोधादि छः शत्रुओंका चेष्टा करनेपर भी नाश नहीं होता, सो ठीक है। श्रीकृष्ण-भजनके लिये मनका छटपटाना श्रीकृष्णका भजन ही है। वह मनुष्य वास्तवमें भाग्यवान् है, जिसका मन भजनके लिये व्याकुल है। संसारमें सभी लोग छटपटाते हैं—कोई धनके लिये, कोई पुत्रके लिये, कोई मान-यशके लिये, तो कोई शरीरके आरामके लिये। आप यदि श्रीकृष्ण-भजनके लिये छटपटाते रहते हैं तो निश्चय मानिये, आपपर श्रीकृष्णकी बड़ी कृपा है। आपकी यह छटपटाहट श्रीकृष्णकी प्राप्ति करानेवाली है।

रही काम-क्रोधादि छः शत्रुओंकी बात, सो असलमें ये बड़े शत्रु हैं। मनुष्य बाहरके शत्रुओंका तो नाश करना चाहता है, परंतु इन भीतरी शत्रुओंको अन्दर बसाये रखता है। वरं बाहरी शत्रुओंका नाश करने जाकर वह इन भीतरी शत्रुओंके बलको और भी बढ़ा देता है। भगवत्कृपासे ही इनका नाश होता है। परंतु भक्तलोग इनके नाशकी बात नहीं सोचते। वे तो इन्हें भक्तिसुधासे सींचकर मधुर, हितकर और अनुकूल अनुचर बना लेते हैं। आप भी भक्तोंके पवित्र भावोंका अनुसरण करके इन काम-क्रोधादिको भगवत्सेवामें लगानेकी चेष्टा कीजिये।

काम—आत्मतृप्तिमूलक कामनाका नाम ही 'काम' है। मनुष्य किसी भी वस्तुकी कामना करे, उसका लक्ष्य होता है सुख ही। विभिन्न जीवोंके कामनाके पदार्थ चाहे भिन्न-भिन्न हों, परंतु सभी चाहते हैं आनन्द—और आनन्द भी ऐसा कि जो सदा एक-सा बना रहे। परंतु अज्ञानवश उसे खोजते हैं विनाशी असत् वस्तुओंमें। इसीसे उन्हें सुख—आनन्दके बदले बार-बार दुःख मिलता है। परमानन्दस्वरूप तो श्रीभगवान् ही हैं। उन्हींकी प्राप्तिसे नित्य अविनाशी परमानन्दकी प्राप्ति है। अतएव कामको परमानन्दस्वरूप श्रीकृष्णकी प्राप्तिमें लगाना चाहिये। श्रीकृष्ण-प्राप्ति ही आत्मतृप्तिकी अवधि है। स्थूलरूपसे कामका प्रधान आधार है नारीके प्रति पुरुषका और पुरुषके प्रति नारीका विकारयुक्त आकर्षण। यह आकर्षण होता है स्मरण, चिन्तन, दर्शन, भाषण और संग आदिसे। काम-रिपुपर जय पानेकी इच्छा करनेवाले नर-नारियोंको परस्त्री और परपुरुषके चिन्तन-दर्शनादिसे यथासाध्य बचकर रहना चाहिये और दर्शनादिके समय परस्पर मातृभाव तथा पितृभावकी भावना दृढ़ करनी चाहिये। कामजयी कृष्णानुरागी सन्तोंके द्वारा श्रीकृष्णके रूप, गुण, माहात्म्यकी रहस्यमयी चर्चा सुननेपर श्रीकृष्णके प्रति आकर्षण होता है और श्रीकृष्ण ही कामके लक्ष्य बन जाते हैं। इससे कामका शत्रुपन सहज ही नष्ट हो जाता है।

क्रोध—किसीके मनमें किसी वस्तुकी कामना है। वह कामना पूरी नहीं हो पाती, इससे वह दुखी रहता है। इसी बीचमें जब किसीसे कोई बात सुनकर या जानकर उसे यह पता लगता है कि अमुक व्यक्तिके कारण मेरा मनोरथ सिद्ध नहीं हो रहा है, अथवा कोई उसे जब गाली देता है अथवा मनके प्रतिकूल कुछ करता-कहता है, तब एक प्रकारका कम्पन पैदा होता है, वह कम्पन चित्तपर आघात करता है, चित्तके द्वारा तत्काल वह बुद्धिके सामने जाता है, बुद्धि निर्णय करती है कि यह हमारे अनुकूल नहीं है। बस, उसी क्षण उसके विपरीत दूसरा कम्पन उत्पन्न होता है। इन दोनों कम्पनोंमें परस्पर संघर्ष होनेसे ताप पैदा होता है। यही ताप जब बढ़ जाता है, तब स्नायुसमुदाय उत्तेजित हो उठते हैं और चित्तमें एक ज्वालामयी वृत्ति उत्पन्न होती है। इसी वृत्तिका नाम क्रोध है। क्रोधके समय मनुष्य अत्यन्त मूढ़ हो जाता है। उसके चित्तकी स्वाभाविक पवित्रता, स्थिरता, सुखानुभूति, शान्ति और विचारशीलता नष्ट हो जाती है। पित्त कुपित हो जाता है, जिससे सारा शरीर जलने लगता है। नसें तन जाती हैं, आँखें लाल हो जाती हैं, वायुका वेग बढ़ जानेसे चेहरा विकृत हो जाता है, लम्बी साँसें चलने लगती हैं, हाथ और पैर अस्वाभाविकरूपसे उछलने लगते हैं। इस प्रकार जब शरीरकी अग्नि विकृत होकर बढ़ जाती है तब वाणीपर उसका विशेष प्रभाव पड़ता है, क्योंकि वाक्-इन्द्रियका कार्य अग्निसे ही होता है। अतएव मुखसे अस्वाभाविक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और बेमेल वाक्योंके साथ ही निर्लज्जभावसे गाली-गलौजकी वर्षा होने लगती है। उस समय मनुष्य परिणाम-ज्ञानसे शून्य हो जाता है, उसकी हिताहित सोचनेवाली विवेकशक्ति नष्ट हो जाती है। शरीर और मन दोनों ही अपनी स्वाभाविकताको खोकर अपने ही हाथों वर्षोंके कमाये हुए साधन-धनको नष्ट कर डालते हैं। प्यारे मित्रोंमें द्वेष, बन्धुओंमें वैर और स्वजनोंमें शत्रुता हो जाती है। पिता-पुत्र और पति-पत्नीके दिल फट जाते हैं। कहीं-कहीं तो आत्महत्यातककी नौबत आ जाती है। इस प्रकार क्रोधरूपी शत्रु मनुष्यका सर्वनाश कर डालता है। क्रोधी आदमी असलमें भगवान्का भक्त नहीं हो सकता। ज्ञानके लिये तो उसके अन्तःकरणमें जगह ही नहीं होती। इस भीषण शत्रु क्रोधका दमन किये बिना मनुष्यका कल्याण नहीं है। इसका दमन होता है इन चार उपायोंसे—१. प्रत्येक प्रतिकूल घटनाको भगवान्का मंगल-विधान समझकर उसे परिणाममें कल्याणकारी मानना और उसमें अनुकूल बुद्धि करना, २. भोगोंमें वैराग्यकी भावना करना, ३. सहनशीलताको बढ़ाना और ४. क्रोधके समय चुप रहना।

क्रोधको अनुकूल और हितकर बनानेके लिये उसको भगवान्की सेवामें लगानेका अभ्यास करना चाहिये। क्रोधका प्रयोग जब केवल भगवद्द्वेषी भावोंपर किया जाता है, तब उसके द्वारा भगवान्की सेवा ही होती है। भगवान्के प्रति द्वेषके भाव जहाँ मिलें, वहीं क्रोध हो। उन्हें हम सह न सकें। यदि वे हमारे अपने ही मनके अन्दर हों तो हम वैसे ही अपने मनका नाश करनेको भी तैयार हो जायँ, जैसे जहरीला घाव होनेपर मनुष्य अपने प्यारे अंगोंको भी कटवा डालनेके लिये तैयार हो जाता है। गोसाईंजी महाराजने कहा है—

जरउ सो संपति सदन सुखु सुहृद मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो राम पद करै न सहस सहाइ॥

× × × ×

जाके प्रिय न राम-बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही॥

× × × ×

जरि जाउ सो जीवन जानकिनाथ जिऐ जग में तुम्हरो बिनु ह्वै।

× × × ×

हिय फाटहुँ फूटहुँ नयन जरउ सो तन केहि काम।
द्रवहिं स्त्रवहिं पुलकइ नहीं तुलसी सुमिरत राम॥

भगवान्की सेवामें भगवत्-प्रतिकूलताको स्थान नहीं है। यह समझकर जहाँ-जहाँपर भगवत्-प्रतिकूलता हो, फिर चाहे वह अपने ही मनमें क्यों न हो, वहीं क्रोधका प्रयोग करके उसे तुरन्त हटाना और उसका नाश करना चाहिये। यही क्रोधका सदुपयोग है।

लोभ—लोभ भी बहुत बड़ा शत्रु है। सन्तोंने लोभको 'पापका बाप' बतलाया है। अर्थात् लोभसे ही पाप पैदा होते हैं। कामनामें बाधा आनेपर जैसे क्रोध पैदा होता है, वैसे ही कामनाकी पूर्ति होनेपर लोभ उत्पन्न होता है। ज्यों-ज्यों मनचाही वस्तु मिलती है, त्यों-ही-त्यों और भी अधिक पानेकी जो अबाध—अमर्याद लालसा होती है, उसे 'लोभ' कहते हैं। लोभसे मनुष्यकी बुद्धि मारी जाती है, उससे विवेककी आँखें मुँद जाती हैं और वह विषयलोलुपताके वश होकर न्याय-अन्याय तथा धर्माधर्मका विवेक भूलकर मनमाना आचरण करने लगता है। इस लोभको मधुर, हितकर और अनुकूल बनानेका उपाय यह है कि इसका प्रयोग भजन, ध्यान, नाम-जप, सत्संग, भगवत्कथा आदिमें ही किया जाय। अर्थात् धन, मान, कीर्ति, भोग, आराम आदिसे लोलुपता हटाकर भगवान्के ध्यान, उनकी सेवा, उनके नामका जप, उनके तत्त्वज्ञ भक्तोंके संग, उनकी लीला-कथा आदिके सुनने-पढ़ने आदिका लोभ हो। ऐसा करनेसे लोभ शत्रु न होकर मित्र बन जाता है।

मोह—किसी भी विषयका जब अत्यधिक लोभ जाग्रत् हो जाता है तब बुद्धि उसमें इतनी फँस जाती है कि दूसरे किसी भी विषयका मनुष्यको ध्यान नहीं रहता, चाहे वह कितना ही आवश्यक और उपयोगी क्यों न हो। जैसे किसी व्यभिचारी मनुष्यका मन किसी स्त्रीमें तथा किसी स्त्रीका किसी पुरुषमें लग जाता है तो फिर उसे नींद, भूखतकका पता नहीं लगता। धन-दौलत, विलास-वैभव, भोग-आराम सबसे वह बेसुध हो जाता है। वह निरन्तर अपने उस मनोरथके चिन्तनमें ही डूबा रहता है, यही मोह है। यह मोह जब सांसारिक पदार्थोंमें न रहकर भगवान्की रूप-माधुरीमें हो जाता है, भगवान्की रूप-माधुरीपर मुग्ध होकर जब वह पागलकी तरह सब कुछ भूलकर उसीमें फँसा रहता है, तब मोहका सदुपयोग होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मद—मद कहते हैं नशेको। धन, मान, पद, बड़प्पन, विद्या, बल, रूप और चातुरी आदिके कारण मनुष्यके मनमें एक ऐसी उल्लासमयी अन्धवृत्ति उत्पन्न होती है, जो विवेकका हरण करके उसे उन्मत्त-सा बना देती है। इसीका नाम 'मद' है। मदोन्मत्त मनुष्य किसीकी परवा नहीं करता। यही मद जब भगवच्चरणके प्रेम, भगवन्नाम-गुण-कीर्तन और भगवान्‌के ध्यानमें प्रयुक्त हो जाता है, तब मनुष्य दिन-रात उसी पवित्र नशेमें चूर रहता है। जहाँ सांसारिक पदार्थोंका नशा नरकोंमें ले जाता है, वहाँ भगवत्प्रेम तथा भगवद्ध्यानका नशा साधकको नित्य परमानन्दमय भगवत्स्वरूपकी प्राप्ति करा देता है। श्रीमद्भागवतमें ऐसे उन्मत्त भक्तको तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाला बतलाया है **'मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति।'** अतएव सब कुछ भूलकर भगवान् श्रीकृष्णके रूप, गुण, नाम आदिके चिन्तन और कीर्तनके आवेशमें डूबे रहना ही मदको अनुकूल और हितकारी बनाना है।

मत्सर—दूसरोंकी उन्नतिको न सह सकना मत्सर कहलाता है; इसीको डाह कहते हैं। संसारमें लोगोंकी उन्नति होती ही है और मत्सरताकी वृत्ति रखनेवाला मनुष्य उन्हें देख-सुनकर नित्य जलता रहता है तथा अपनी नीच भावनासे निरन्तर उनका पतन चाहता है। परिणामस्वरूप वह नाना प्रकारके अनर्थ करके अन्तमें नरकगामी हो जाता है। इस मत्सरताका सदुपयोग होता है इसे सात्त्विक बनाकर भजनमें ईर्ष्या करनेसे। किसी साधककी साधनाको देखकर मनमें यह दृढ़ निश्चय करना कि 'मैं इनसे भी ऊँची साधना करके शीघ्र-से-शीघ्र भगवान्‌को प्राप्त करूँगा' और तदनुसार तत्पर होकर दृढ़ताके साथ साधनामें लग जाना—यह सात्त्विक मत्सरताका स्वरूप है। इसमें किसीके पतनकी कामना नहीं होती। इससे केवल भजन-साधनमें उत्साह होता है। इससे मत्सरता भी हितकारिणी बन जाती है।

आप अपने इन काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर शत्रुओंको भगवान्‌में लगाकर इन्हें अपने अनुकूल बनानेकी चेष्टा कीजिये। भगवान्‌में और उनकी कृपाशक्तिमें विश्वास करके प्रयोग शुरू कीजिये। आपका विश्वास सच्चा होगा तो भगवत्कृपासे शीघ्र ही आप उत्तम फल प्रत्यक्ष देखेंगे। शेष प्रभुकृपा।

(२)

प्रेम और विकार

प्रिय महोदय! आप लिखते हैं कि 'मैं प्रेम-धनसे शून्य हूँ। बिना प्रेमके जीवन कैसा, वह तो बोझरूप है।' यह आपका लिखना सिद्धान्ततः ठीक ही है। प्रेमशून्य जीवन शून्य ही है। परंतु वास्तवमें यह बात है नहीं। प्रेम सभीके हृदयमें है, भगवान्‌ने जीवको प्रेम देकर ही जगत्‌में भेजा है। हमने उस प्रेमको नाना प्रकारसे इन्द्रियचरितार्थतामें लगाकर विकृत कर डाला है, इसीलिये उसके दर्शन नहीं होते और कहीं होते हैं तो बहुत ही विकृतरूपमें होते हैं। विकृत स्वरूपका नाश होते ही मोहका पर्दा फट जाता है; फिर प्रेमका असली ज्योतिर्मय स्वरूप प्रकट होता है, जिसके प्राकट्यमात्रसे ही आनन्दाम्बुधि उमड़ पड़ता है। प्रेम और आनन्दका नित्ययोग अनिवार्य है। भगवान्‌के आनन्दसे ही सृष्टि हुई और इस प्रेमसे ही आनन्दका विकास और पोषण होता है। प्रेमकी कोई भी दशा ऐसी नहीं है, जहाँ आनन्दका अभाव हो और आनन्द भी कोई ऐसा नहीं, जिसमें कारणरूपसे प्रेम वर्तमान न हो। परंतु जहाँ प्रेमके नामपर कामकी क्रीड़ा होने लगती है, वहाँ प्रेम अपनेको छिपा लेता है। चिरकालसे मलिनामायाके मोहवश हम कामकी क्रीडामें लगे हैं। कामको ही प्रेम समझ बैठे हैं। इसीलिये प्रेम हमसे छिप गया है और इसीलिये प्रेमके अभावमें हम आनन्दरहित केवल **'चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः'** और **'कामोपभोगपरमाः'** होकर शोक-विग्रह बन गये हैं। इस कामकी कालिमाको धोनेके लिये आवश्यकता है किसी ऐसे क्षारकी, जो इसकी जड़ताका नाश कर दे और वह क्षार वैराग्य है। बार-बार उस परम प्रेमार्णव—अनन्त प्रेमार्णव सुधा-सार श्यामसुन्दरका स्मरण करना और उसकी दिव्य पद-नख-ज्योतिके प्रकाशसे समस्त संचित मोहान्धकारका नाश करनेके निश्चयसे प्रत्येक क्षणके प्रत्येक चिन्तनमें अपार अलौकिक आनन्दका अनुभव करना (अनुभव न हो तो भावना करना) कर्तव्य है। उसके इस मधुर चिन्तनके प्रभावसे जगत्‌के समस्त रस नीरस, कटु और त्याज्य हो जायँगे। तब उस रसविग्रहकी रश्मियाँ हमारे ऊपर पड़ेंगी और हमारे सुप्त प्रेमको जगाकर हमें उसके दिव्य दर्शन करायेंगी। शेष प्रभुकृपा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृपानुभूति

श्रीहनुमानचालीसाके पाठसे भीषण संकटका निवारण

संकट कटै मिटै सब पीरा। जो सुमिरै हनुमत बलबीरा॥

मेरा यह अनुभव है कि यदि उपर्युक्त सम्पुट लगाकर श्रीहनुमानचालीसाका पाठ किया जाय तो बड़े-से-बड़े संकट टल जाते हैं।

बात २९ नवम्बर सन् २०१० ई० सोमवारकी है। अपने बड़े लड़केका विवाह कराकर मैं रिश्तेदारों तथा बारातियोंके साथ लखनऊसे परभणी (महाराष्ट्र) आ रहा था। हमारा २२ सीटोंका रिजर्वेशन था। लखनऊसे हमारा रिजर्वेशन बरौनी-ग्वालियर गाड़ीमें था, जो कि साढ़े ग्यारह बजे दोपहरमें लखनऊसे चलकर शामको ६ बजे झाँसी पहुँचती है। झाँसीसे ८ बजे रातमें अमृतसर-नान्देड़ सचखण्ड एक्सप्रेस मिलती है, जो कि दूसरे दिन दोपहर ढाई बजे परभणी (महाराष्ट्र) पहुँचती है। हम सभी लोग लखनऊसे झाँसीके लिये बरौनी-ग्वालियर गाड़ीमें बैठे थे, जो कि अपने नियत समयसे १ घंटा लेट थी। तब भी हमलोगोंका अनुमान था कि हमलोग ७ बजे सायंकालतक झाँसी पहुँच जायँगे, पर दुर्भाग्यवश रास्तेमें क्रासिंग वगैरहके कारण हमारी गाड़ी ३ घंटा लेट हो गयी। अब हम सबकी हिम्मत छूट गयी। गाड़ी ३ घंटा लेट होनेकी वजहसे हमलोग बहुत घबरा गये। इस संकटकी घड़ीमें सभी लोग श्रीहनुमान्जी महाराजको याद करने लगे कि सचखण्ड लेट हो जाय तो हमको मिल जाय। हमने सचखण्ड एक्सप्रेस गाड़ीकी पोजीशन जाननेके लिये भोपाल फोन किया, वहाँ रेलवेमें हमारे एक मित्र तिवारीजी, जो कि सुपरवाइजर हैं, उन्होंने हमको भोपालकी पोजीशन राइट टाइम बतायी। जिसका मतलब था गाड़ीको झाँसीसे ८ बजे निकल जाना चाहिये। हमारी बरौनी-एक्सप्रेस सवा ८ बजे उरई भी नहीं पहुँच पायी। अब तो हम सभी बहुत चिन्तित हो गये। हमारे साथ स्त्रियाँ एवं बच्चे भी थे, सामान भी बहुत था। ऐसी स्थितिमें भगवान्का ही सहारा था। सब एक-दूसरेको देखने लगे कि क्या किया जाय, ऐसेमें अचानक याद आया कि हनुमान्जी ही इस कष्टसे हमें उबार सकते हैं। फिर यह राय बनी कि ***'संकट कटै मिटै सब पीरा, जो सुमिरै हनुमत बलबीरा॥'*** का सम्पुट लगाकर हनुमानचालीसाका पाठ किया जाय और हनुमानचालीसाके हर चौपाईके आगे यह सम्पुट लगाया जाय। सभी को यह बात अच्छी लगी, फिर क्या था! हम सभी लोगोंने सामूहिक रूपसे हनुमानचालीसाका पाठ शुरू कर दिया। पूरी बोगीमें हनुमानचालीसा और सम्पुट ***'संकट कटै मिटै सब पीरा'*** की आवाज जोर-जोरसे गूँजने लगी। थोड़ी देरमें उरई स्टेशन आ गया। बोगीमें बैठे कुछ दूसरे यात्री उरई स्टेशनपर उतरने लगे, वे लोग कहने लगे—आप सबकी हनुमान्जीपर इतनी श्रद्धा देखकर हमारा दिल बोल रहा कि आप लोगोंको आगेकी गाड़ी जरूर मिल जायगी। इतना कहकर वे लोग उरई उतर गये। घड़ीमें साढ़े आठ बज चुके थे, हम लोगोंकी घबराहट और भी बढ़ चुकी थी और जितनी घबराहट बढ़ती उतनी ही जोरसे श्रीहनुमानचालीसाका पाठ होने लगा। ९ बजकर १० मिनटपर हमारी गाड़ी झाँसी स्टेशन पहुँची। पहुँचते ही हम सभी लोगोंने जल्दी-जल्दी अपना सामान उतारना शुरू किया। दो ट्राली सामान था और छोटे बच्चे तथा पाँच-छः स्त्रियोंको मिलाकर हमलोग कुल बाईसकी संख्यामें थे। दो प्लेटफार्म छोड़कर एक गाड़ी खड़ी थी। हममेंसे एकने उस पार जाकर देखा तो वही गाड़ी थी, जिससे हमको जाना था। हम सभी लोग उधर दौड़ पड़े और गिरते-पड़ते प्लेटफार्मपर पहुँच गये। हममेंसे किसीको भी समझमें नहीं आया कि इतनी जल्दी सामान तथा बच्चोंके साथ हम सभी उस प्लेटफार्मपर कैसे पहुँचे। उस गाड़ीके पास पहुँचते ही गाड़ी चल पड़ी और हम अवाक् खड़े ही रह गये, फिर देखा कि थोड़ी दूर जाकर अचानक गाड़ी रुक गयी। पता चला कि किसीने जंजीर खींचकर गाड़ी रोक दी। जल्दी-जल्दी हम सभी गाड़ीमें अन्दर प्रवेश कर गये। प्रवेश करनेपर पता चला कि वही हमारे रिजर्वेशनकी बोगी नं० ५११ थी। हमलोगोंपर श्रीहनुमान्जी महाराजकी इतनी कृपा हो गयी कि हमको बोगी भी नहीं बदलनी पड़ी और बच्चों तथा सामानके साथ दो प्लेटफॉर्म पार करके कैसे उस गाड़ीके पास पहुँचे, यह बात केवल हनुमान्जी ही जानें। हमलोग कुछ भी समझ नहीं पाये। हम सभीके अपनी-अपनी सीटपर बैठनेपर एक सज्जन जो करीब सात फीट ऊँचाईके थे, वे सामनेसे चलकर आये और कहने लगे कि आपलोगोंके उस गाड़ीसे उतरनेके साथ ही मैं समझ गया कि आपलोगोंको इसी गाड़ीसे चलना है, अतः गाड़ी छूटते ही मैंने जंजीर खींचकर गाड़ी रोक दी। हम सभीने उन सज्जनको बहुत-बहुत धन्यवाद दिया और वे सज्जन अगले कम्पार्टमेण्टकी ओर चले गये। बादमें हमारी उन सज्जनसे सुबह भी भेंट नहीं हो पायी। हम लोग पता लगाते रहे कि वे सज्जन कौन थे, पर हमारी उनसे मुलाकात नहीं हो पायी। न जाने किस रूपमें नारायण मिल जायँ। पूरे सफरमें हमलोग श्रीहनुमान्जीकी कृपाका गुणगान करते हुए सकुशल अपने घर आ गये। आज भी जब मैं उस क्षणको याद करता हूँ तो पुलकित हो जाता हूँ। कैसी है, श्रीहनुमान्जी महाराजकी कृपा और कैसा है, श्रीहनुमानचालीसाका सम्पुट लगाकर पाठ करनेका चमत्कार!—**श्रीरामतिवारी**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

गोसेवाका एक अनूठा दृष्टान्त

मेरा नाम रेवाबेन है और इस समय मेरी उम्र लगभग ७५ सालकी है। मेरे जन्मके पश्चात् बारह दिनोंमें मेरी माताश्रीका देहावसान हो गया था। मेरा लालन-पालन बड़ी कठिनाईसे हुआ था। मेरे पतिदेव प्राथमिक विद्यालयमें अध्यापक थे। थोड़ी खेती-बारी होनेसे मैं पशुपालन भी करती थी, परंतु मेरे यहाँ गाय नहीं थी।

जब मेरी उम्र ४५ सालकी हुई, तब कभी-कभी मेरे मनमें होता कि मेरे यहाँ एक ऐसी बछिया होती, जिसकी माँ मर चुकी होती और मैं उसका लालन-पालन करती और उसे बड़ी करके गौ बनाती।

मेरे गाँवसे थोड़ी दूरीपर भरवाड़ लोगोंकी बस्ती थी। वहाँ आठ-दस भरवाड़ोंका कुटुम्ब रहता था। सब लोग गौ पालते थे। एक दिन कुछ कामसे मेरे पास एक भरवाड़का लड़का आया। मैंने पूछा कि क्या तुम्हारे यहाँ कोई बछिया है, जिसकी माँ मर गयी हो? तो उसने बताया कि आठ-दस दिन पहले एक गाय ब्यायी थी, गायकी तो तत्काल मृत्यु हो गयी, परंतु उसकी बछिया जीवित है। मैंने उससे पूछा कि क्या वह बछिया मुझे मिल सकती है? उसने कहा आप कहें तो कल ही मैं आपको वह बछिया ला दूँ। मैंने हाँ कहा तो वह भरवाड़ खुश हो गया।

अगले दिन भरवाड़ एक सुन्दर छोटी-सी बछियाको उठाकर मेरे पास लाया। बछिया इतनी कमजोर थी कि चल पानेमें और खड़े होनेमें असमर्थ थी। उसने कहा कि हमारे यहाँ इसे प्रतिदिन सेरभर दूध पिलाया जाता है, लेकिन हमारे पास बहुत सारी गौएँ हैं, इसलिये हमलोग इसकी देखभाल ठीक ढंगसे नहीं कर पाते। मैंने कहा कि मैं मुफ्तमें बछियाको नहीं ले सकती, लो ग्यारह रुपये ले जाओ।

मैंने घरका सारा काम छोड़ दिया और बछियाको नहलाया और खूब अच्छी तरहसे साफ-सुथरा किया। इसके बाद एक सेर दूध पिलाया और उसके साथ कृमिवाली दवा पिलायी; क्योंकि गायके बच्चोंकी आँतोंमें कीड़े पड़ जाते हैं। हर रोज दो समय सेरभर दूध पिलाना और तीसरे दिन कृमिवाली दवा पिलाना मेरा क्रम हो गया।

दस-बारह दिनमें मैं क्या देखती हूँ कि बछिया छलाँग मारकर खेलने लगी है। वह खूब स्वस्थ भी दिखने लगी। यह देखकर मुझे इतनी खुशी हुई कि मेरे हृदयमें आनन्दका सागर उमड़ पड़ा। मेरे दिलमें जो उल्लास हुआ, उसको बता पाना असम्भव है।

मैंने बहुत अच्छी तरहसे उसकी सेवा की। हरी-हरी घास और अन्य चीजें खिलायी। बछिया इतनी पुष्ट हो गयी कि मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। साढ़े तीन सालके बीतनेपर उसे एक बच्चा हुआ और बच्चेको पिलानेके बाद पाँच-छः लीटर दूध मिलता था। गोमाताने मेरी सेवाका बदला चुका दिया; क्योंकि गोमाता किसीका ऋण नहीं रखतीं—ऐसा मुझे प्रतीत हुआ। पुनः तीन सालके बाद गोमाता फिरसे ब्यायीं। उस समय भी गोमाताने बहुत दूध दिया। अब मैं पचपन वर्षकी हो चली थी। अब मुझे गोपालनमें बड़ी परेशानी होने लगी थी, सो मैंने उस भरवाड़को बुलाया और वह गाय उसे मुफ्तमें दे दी।

यह बताते हुए मैं पुलकित हो जाती हूँ कि जब भी मैं अपने खेत देखने जाती हूँ तो गायोंका झुण्ड मिल जाता है और मेरी वह गाय मुझे पहचान लेती है तथा रँभाने लगती है। उसका मुझसे कितना प्रेम था—यह सोच-सोचकर मैं प्रसन्न हो उठती हूँ। मेरे जीवनकी यह सत्य घटना है।—**श्रीमती रेवाबेन किशोरभाई पटेल**

(२)

अपना और पराया

घटना पुरानी है, गाँवके चबूतरेपर चार-पाँच व्यक्ति बैठे हुए थे, अचानक वहाँ पहुँचकर एक कपड़े बेचनेवाला यह बात कहने लगा—'मेरी गठरीमेंसे एक साड़ी खो गयी है, साड़ी सवा सौ रुपयेकी थी।'

साड़ी खोनेसे कपड़े बेचनेवालेको बहुत दुःख है, ऐसा उसके चेहरेपर पड़ी हुई चिन्ता-रेखाओंसे सुस्पष्ट प्रतीत हो रहा था। उसने वही वाक्य पुनः दुहराकर अपना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दु:ख (असन्तोष) व्यक्त किया तो वहाँ बैठे एक वृद्धसे रहा नहीं गया। उन्होंने उस कपड़ेवालेकी ओर घूमकर कहा—'भाई! तुमने कोई बुरा काम किया होगा, जिससे आज तुम्हारी बड़ी हानि हुई।' वृद्धके शब्द कानमें पड़ते ही कपड़ेवाला स्थिर हो गया। क्षणभर विचार करके उसने उत्तर दिया—'हाँ बाबा! यहीं, कुछ दिनों पहले मैंने एक वृद्धाको बीस रुपयेका माल दिया था, तब वृद्धाने भूलसे मुझे तीस रुपये दे दिये थे। अनायास दस रुपये अधिक मिल गये, इससे मैं प्रसन्न हुआ था। उस समय बढ़े हुए दस रुपयोंको मुझे उस वृद्धाको लौटा देने चाहिये थे, किंतु मैं रुपये लौटाये बिना ही कपड़ेकी गठरी बाँधकर यहाँसे चला गया था। मेरा इसपर ध्यान ही न था कि उस समय उक्त वृद्धाको कितना दु:ख हुआ होगा, परंतु आज मेरी सवा सौकी साड़ी खो जानेसे उसका प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा था।'

'भले आदमी! फिर तो तुम्हें उस समय चोरी करते समय दूसरेके दु:खका विचार स्वयं ही करना चाहिये था। तुम्हें तुम्हारे कियेका दण्ड मिला है। अब आगे कभी ऐसा मत करना।' कपड़ेवालेको आत्मीयतापूर्वक अच्छी तरह समझानेका प्रयत्न करते हुए उक्त वृद्धने कहा। 'आपकी बातें मनमें पैठ गयी हैं। अब मैं कभी ऐसा नहीं करूँगा। अपने दु:खके कारण आज मुझे दूसरेके दु:खका अनुभव हुआ है।' कपड़ेवालेने कहा।

'तब तो ठीक है। इससे तुम्हारी आत्मशुद्धि हो सकती है' जैसे अन्तिम आश्वासन देते हों, इस भावसे वृद्धने कहा।

तत्पश्चात् अपने कियेपर अनुताप तथा भविष्यमें ऐसा फिर कभी न करनेका मन-ही-मन संकल्प लेता हुआ एवं वृद्धसे प्राप्त हुई नवीन दृष्टिसे सन्तोष अनुभव करता हुआ वह कपड़े बेचनेवाला दूसरे गाँव चला गया।—**रमणीकलाल धी० ठाकर (अखण्ड आनन्द)**

(३)

गरीबकी ईमानदारी

चोरी-डकैतीकी बात आज सामान्य हो गयी है, किंतु दुनियामें अभी भी कुछ सज्जन तथा ईमानदार व्यक्ति हैं, जो कभी संयोगसे ही मिल जाते हैं। इस बातकी पुष्टि अपने एक परिचितसे सुनी हुई इस घटनासे होती है। उनके अनुसार अक्टूबर १९७८ में एक दिन उक्त सज्जनके एक मित्र कलकत्ताके न्यू-मार्केटमें सामान खरीदने गये, पर गाड़ी रखनेकी जगह न मिलनेपर पासमें मिर्जा गालिब स्ट्रीटपर, जहाँ बाजारका कूड़ा डालनेका स्थान है और जहाँ कूड़ा चुननेवाले भिखारी प्राय: हर समय बैठे रहते हैं, एक ओर गाड़ी खड़ी करके बाजारमें सामान खरीदने चले गये। सामान खरीदनेके समय जब उन्होंने देखा कि उनकी जेबमें रुपयोंका पर्स नहीं है तो वे कुछ विचलित-से हुए। उन्होंने सोचा कि रास्तेमें कोई ऐसी भीड़ भी नहीं थी, न कोई व्यक्ति इतने पाससे ही निकला था कि पॉकेटमारी हो गयी हो। वे लौटकर अपनी गाड़ीके पास आये और अपना मनीबैग खोजने लगे।

वे मनीबैग खोज ही रहे थे कि कूड़ेके ढेरपरसे उठकर एक व्यक्ति उनके पास आया और बोला—'बाबूजी! आप जो मनीबैग खोज रहे हैं, वह शायद यही है। इसमें ५००-५०० रुपयेके नोट हैं। आप गाड़ीसे उतरकर जब खिड़कीके शीशे बन्द कर रहे थे, तभी यह नीचे गिरा जान पड़ता है। बिना मेहनतकी कमाईके मुझे मिला तो इन रुपयोंको खर्च करनेकी मेरे लिये समस्या हो गयी। आप आ गये, इसे आपको सौंपकर मैं अब एक प्रकारसे भारसे मुक्त हो गया हूँ।'

उन्होंने बताया कि इस प्रकार सुरक्षित पर्स प्राप्त करके मेरे उन मित्रकी खुशीका ठिकाना न रहा। भौतिक साधनोंसे दरिद्र, किंतु नैतिक मूल्योंसे धनी तथा ईमानदार उस व्यक्तिका वे मुँह देखते ही रह गये। इनामके तौरपर उन्होंने उसे दस-बीस रुपये देने चाहे, पर उसने नहीं लिये। उसने कहा—'आप मिल गये, मैंने पर्स आपको सौंप दिया और चिन्तासे मुक्त हो गया। इससे मुझे जो सन्तोष मिला बस, यही मेरा सबसे बड़ा इनाम है।' उसने आगे कहा—'मैं तो बरसोंसे दिनभर मेहनत करके इन कूड़ेके ढेरोंसे ही इतनी चीजें निकाल लेता हूँ कि जिन्हें बेचनेसे मेरा सारा खर्च आरामसे चल जाता है। आपके रुपये लेकर मैं क्या करूँगा? इसके लिये मुझे क्षमा करें।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सब सुनकर मन अभिभूत हो उठा और विचार आया कि आजके युगमें गुदड़ीमें छिपे हुए नैतिक मूल्यके ऐसे लाल इस प्रकार संयोगसे ही कहीं मिल जाते हैं। नैतिकताका कैसा ज्वलन्त उदाहरण है यह!

—**धर्मचन्द सरावगी**

(४)

'संकट तें हनुमान छुड़ावै'

घटना २१ जुलाई १९७८ शुक्रवारकी है। इस वर्ष राजस्थानके झुँझनू जिलेके शेखावाटी क्षेत्रमें जो अर्ध रेगिस्तानी भाग समझा जाता है, अतिवृष्टिसे भयंकर जन-धनकी हानि हुई। मैं कार्यवश कोटासे जयपुर गया हुआ था और वहाँ राजस्थान-वित्तनिगममें कार्य समाप्त होनेपर मनमें श्रद्धा हुई कि कल पूर्णिमा है, सालासरजी चलकर संकटमोचन हनुमान्‌जीके मंगलमय दर्शनोंका आनन्द प्राप्त किया जाय। इस निश्चयके अनुसार मैं शामको सालासरजी जानेवाली बसमें बैठ गया और रात्रिमें ९ बजे वहाँ पहुँच गया। रात्रिमें भगवान् संकटमोचनके शयनकी आरतीके दर्शनकर अति आनन्द प्राप्त किया। रात्रिभर जागरण और कीर्तनमें भाग लिया।

प्रातः स्नान करके प्रातःकालकी मंगल-आरतीके दर्शन किये और वापस जयपुर जानेको बसमें बैठा। रातभर मूसलाधार वृष्टि होती रही और सुबह भी हो रही थी। मार्गमें सर्वत्र पानी-ही-पानी भरा था। सीकर पहुँचनेपर ज्ञात हुआ कि जयपुरकी ओर जानेवाली तमाम रेलगाड़ियाँ स्थगित हो गयी हैं। कारण, रेलमार्ग कई जगह क्षतिग्रस्त हो गया है। सड़कोंके जगह-जगह टूट जानेके कारण जयपुरकी ओर बसें भी न जायँगी। अब मैं दोपहरमें दो बजे सीकरसे चूरू जानेवाली गाड़ीमें सवार हो गया, क्योंकि मार्गमें मेरा निवासस्थान बिसाऊ था। वह गाड़ी सन्ध्याके ५ बजे बिसाऊ पहुँचनी चाहिये थी, परंतु उस दिन वह रातको साढ़े ग्यारह बजे पहुँची। बरसात चालू थी। बिसाऊ स्टेशनपर अकेले केवल मैं ही एक यात्री उतरा था। कोई सवारी (वाहन आदि) भी स्टेशनपर नहीं आयी थी, क्योंकि मार्गमें जगह-जगह पानी बह रहा था। स्टेशनमास्टर जो सज्जनताकी प्रतिमूर्ति थे, विनम्रतापूर्वक बोले—'आप रात यहीं बितायें, प्रातः कोई सवारी आ जायगी।' उन्होंने अपने विशेष कक्षमें मेरे लिये एक आरामकुर्सी और एक छोटी कुर्सी पाँव फैलानेको लगा दी। स्टेशनके भवनका बाकी समस्त भाग पानीके कारण चू रहा था। मैंने संकटमोचनका स्मरण किया और लेट गया, परंतु रातभर नींद न आयी, कभी-कभी थोड़ी ऊँघाई आ जाती थी। बीच-बीचमें जब कभी जागता, तभी हनुमान्‌जीका ध्यान-स्मरण करता हुआ समय काटने लगता था। रात्रिभर एकाधिक बार सालासरजीके (संकटमोचन) हनुमान्‌जीकी मूर्ति साक्षात् रूपमें दिखायी देती रही, जैसे वे यहाँ स्वयं पहरेपर खड़े हों। मैंने मनमें विचार किया कि चूँकि मैं कष्टमें हूँ और आज ही निष्ठापूर्वक दर्शन करके आया हूँ, अतः मस्तिष्कमें वही व्याप्त हो रहा है। प्रातः ६ बजे स्टेशनमास्टर आये तो उन्होंने मुझे नींदकी मामूली झपकीसे उठाया और बोले—'छः बज गये। एक सवारी भी नगरसे आयी है। वर्षा तो हो ही रही है—ऐसे दुर्दिनमें आप यात्रा न करें और घर चले जायँ तो ठीक है।'

उस दिन समस्त गाड़ियाँ बंद हो गयी थीं। परिस्थितिपर विचार करता हुआ मैं जैसे ही आरामकुर्सीसे उठकर दो कदम ही आगे आया कि ऊपरसे छतका अधिकांश भागका मलबा, जो कुर्सीके ठीक ऊपर था, अचानक धड़ामकी आवाजसे उसी कुर्सीके ऊपर गिरा, जिसपर मैं रातभर लेटा हुआ था। स्टेशनमास्टर स्तम्भित रह गये। मुझे तो रोमांच हो आया, परंतु मेरे मुखसे अनायास ही निकल गया कि 'जब संकटमोचन रातभर मेरी रक्षा करते रहे हैं, तो फिर मुझे चोट कैसे लगती।'

इस घटनाने मेरे जीवनको एक नयी दिशा प्रदान की है। आज जब भी मैं किसी भी तरहके संकटका अनुभव करता हूँ तो तुरंत ही निष्ठापूर्वक संकटमोचन सालासरजीके हनुमान्‌जीका स्मरण अवश्य कर लिया करता हूँ। फलस्वरूप मेरी विघ्न-बाधाएँ तो दूर होती ही हैं, साथ ही मैं बड़े अनिर्वचनीय आनन्दका अनुभव भी करता हूँ। सारांश, ईश्वरीय शक्ति हमेशा हमारी रक्षाके लिये तत्पर है। बस, हमारे हृदयमें केवल सच्ची निष्ठा होनी चाहिये।

—**दुर्गाप्रसाद दाधीच**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनन करने योग्य

दयालु देवीमाई

नासिकमें 'देवीमाई' नामका अस्पताल है। इस नामके पीछे कुछ इतिहास है। देवीके पतिकी मृत्यु हो गयी। उसके भाग्यमें युवावस्थामें वैधव्यका आघात लगना लिखा था। उसकी ससुरालमें उसके ननदोई थे, वे भी जाते रहे। ननद बहुत बीमार पड़ गयी। सब कहने लगे—'यह देवी ही सबको खाये जा रही है।' वह पीहर गयी तो उसकी छोटी बहन बहुत बीमार हो गयी! देवीके प्रति शंका बढ़ने लगी। सभी उसे सर्वभक्षी राक्षसी—बलकी प्रतिनिधिरूप मानने लगे।

ऐसे वातावरणमें कभी तो देवीको अपना जीवन भाररूप लगता, कभी जीवनका अन्त कर डालनेकी उसके मनमें आती। कोई भी उसके प्रति क्षणभरके लिये भी सहानुभूति नहीं दिखाता। हाँ, उसका एक भाई अवश्य उसका ध्यान रखता।

आखिर इस भाईने उसे नर्सके ट्रेनिंग स्कूलमें भर्ती करा दिया। देवी नर्सकी शिक्षा प्राप्त करके एक छोटे-से प्रसूतिगृहमें नियुक्त हो गयी। इस प्रसूतिगृहकी मुख्य संचालिका एक अंग्रेज-महिला थी।

एक बार एक उपेक्षित जातिकी बहन प्रसूतिगृहमें भर्ती हुई। रातको उसके पेटमें दर्द शुरू हुआ। उसे पाखानेमें ले जानेकी स्थिति नहीं थी, और अस्पतालमें पाखानेका टब (कमोड) केवल अंग्रेजों और यूरोपियनके लिये ही था, परंतु देवीने इस नियमको भंग किया और कमोडको वह उस बहनके पास ले गयी।

दूसरे दिन इस बातका पता लगनेपर उस अंग्रेज-महिलाका पारा चढ़ गया। उसने देवीके साथ बहुत कड़ाईसे बातें कीं। इतनेपर भी देवीने सहज स्वरमें इतना ही कहा—'ऊँच-नीचका भेद तो हमलोगोंने बना लिया है, हम सभी एक ईश्वरकी सन्तान हैं।'

अंग्रेज-महिलाने देवीको प्रसूतिगृहसे निकाल दिया। पर अब देवीका जीवनकार्य सँभल चुका था। अब उसे जीवनमें कहीं निराशा या असहायपन नहीं भासता था। देवीने अंग्रेज-महिलाका अस्पताल छोड़नेके बाद बचाये हुए वेतनके पैसोंसे तथा भाईकी मददसे पाँच-छः खाटवाले कमरेका अस्पताल शुरू किया। इस कमरेकी व्यवस्था उसके भाईने कर दी थी।

अब देवी केवल रोगियोंकी चारपाईके पास रात-दिन रहकर खड़े पैरों सेवा करने लगी। अठारह-अठारह, बीस-बीस घंटे लगातार वह मातृहृदयकी सजीव ऊर्मियोंके साथ रोगियोंका दुःख हलका किया करती और निःस्वार्थ देख-भाल करती। अन्तमें उसके जीवन-कार्यका यश अपने-आप ही सब ओर फैलने लगा। अखबारोंमें विज्ञापन और फोटो छापनेकी उसे जरूरत नहीं पड़ी। अपनी इस उत्कृष्ट सेवा-भावनाके कारण अब वह केवल 'देवी' न रहकर लोगोंकी 'देवीमाई' बन गयी।

देवीमाईके एक कोठरीके नन्हे-से अस्पतालको चारों ओरसे सहायता मिलने लगी। धीरे-धीरे वह एक भव्य बृहद् अस्पतालके रूपमें परिणत हो गया। इस अस्पतालकी इतनी ख्याति हुई कि उपर्युक्त अंग्रेज-महिला, जो एक समय देवीमाईकी स्वामिनी थी, उसके इस अस्पतालको देखने आयी।

बाहर मिलनेवालोंकी कतार लगी थी, उसीमें वह अंग्रेज-महिला भी खड़ी थी। इस नये अस्पतालका कार्य देखकर उसे बड़ी प्रसन्नता हो रही थी, इसलिये वह इस अस्पतालकी संचालिकाको धन्यवाद देने आयी थी। उसे यह पता नहीं था कि एक समय जिस बहनका उसने अपमान करके अपने अस्पतालसे निकाल दिया था, वही इस अस्पतालकी मुख्य संचालिका देवीमाई है।

इतनेमें देवीमाई बाहरसे आयी और ज्यों ही वह अन्दर जानेको पैर उठा रही थी कि उसकी नजर उस अंग्रेज-महिलापर पड़ी। देवीमाईको याद आया कि इसी बहनके पास मैंने पहले नर्सका काम किया था। देवीमाई अंग्रेज-महिलाको अन्दर केबिनमें ले गयी। अंग्रेज-महिला बोलनेमें रुक-सी रही थी, आखिर वह बोली—'देवी! तुझे धन्य है। तेरे कामको आज मैंने अस्पतालके हर हिस्सेमें घूम-घूमकर देखा है। तूने एक महान् सफलता प्राप्त की है। मानवजातिके दुःखोंको दूर करनेकी तेरी यह रात-दिनकी सतत चिन्ता तेरे सामने सबके मस्तक झुका देती है। तू मुझे अपनी भूलका प्रायश्चित्त करने देगी?'

तदनन्तर अंग्रेज-महिलाने अपने पर्समें-से डायरी निकालकर कुछ लिखकर दिया और कहा—'इसको स्वीकार करके मेरी भूलको सुधारनेका अवसर मुझे दें, यही मेरी प्रार्थना है।'

देवीमाईने कागज खोलकर देखा—उसमें उस अंग्रेज-महिलाने लिखा था—'अपनी सारी सम्पत्ति मैं इस अस्पतालको भेंट कर रही हूँ देवीमाईके भव्य जीवनकार्यके प्रति एक तुच्छ नम्र अंजलिके रूपमें।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

आज सारे संसारमें जीवनकी जटिलताएँ बढ़ती जा रही हैं। अधिकतर लोग अपनी असीमित भौतिक आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेमें संलग्न हैं। वे अपने क्षुद्र स्वार्थकी सिद्धिके लिये दूसरोंका अहित करनेमें भी कोई संकोच नहीं करते। परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, कलह और हिंसाके वातावरणमें अशान्त स्थिति है। देशके कुछ भागोंमें तो हिंसाका नग्न ताण्डव दिखायी दे रहा है। अधिकतर लोग मानसिक तनावके शिकार बनते जा रहे हैं। कलिका प्रकोप सर्वत्र व्याप्त है। प्रश्न यह होता है कि इस स्थितिका समाधान क्या है? ऋषि-महर्षि, मुनि और शास्त्रोंने इस स्थितिको अपनी अन्तर्दृष्टिसे देखकर बहुत पहलेसे यह घोषित कर दिया है कि 'कलिकालमें मानव-कल्याण और विश्वशान्तिके लिये श्रीहरि-नामके अतिरिक्त कोई दूसरा सुलभ साधन नहीं है।' इसीलिये यह बात जोर देकर शास्त्रोंमें कही गयी है कि 'भगवान् श्रीहरिका नाम ही एकमात्र जीवन है। कलियुगमें इसके अतिरिक्त कोई दूसरा सहारा—चारा नहीं है'—

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

(ना०पूर्व० ४१।११५)

Central Library Gurukul Kangri University Haridwar

हमारे शास्त्रोंके अतिरिक्त अनुभवी संत-महात्माओंने भी भगवन्नाम-स्मरण-जपको कलियुगका मुख्य धर्म (ऐहिक-पारलौकिक कल्याणकारी कर्तव्य) माना है। इतना ही नहीं, जगत्के समस्त धर्म-सम्प्रदाय भी किसी-न-किसी रूपमें भगवान्के नाम-स्मरण-जपके महत्त्वको प्रतिपादित करते हैं। नामके जप-स्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई भी नियम नहीं है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुने भी कहा है—

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।

'हे भगवन्! आपने लोगोंकी विभिन्न रुचि देखकर नित्य-सिद्ध अपने बहुत-से नाम कृपा करके प्रकट कर दिये। प्रत्येक नाममें अपनी सारी शक्ति भर दी और नाम-स्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई नियम भी नहीं रखा।'

विपत्तिसे त्राण पानेके लिये आज श्रीभगवन्नामका स्मरण ही एकमात्र उपाय है। ऐसा कौन-सा विघ्न है, जो भगवन्नाम-स्मरणसे नहीं टल सकता और ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो नहीं मिल सकती? इस कलिकालमें मंगलमय भगवान्के आश्रयके लिये भगवन्नामका सहारा ही एकमात्र अवलम्बन है। अतएव भारतवर्ष एवं समस्त विश्वके कल्याणके लिये, लौकिक अभ्युदय और पारलौकिक सुख-शान्तिके लिये तथा साधकोंके परम लक्ष्य एवं मानव-जीवनके परम ध्येय—भगवान्की प्राप्तिके लिये सबको भगवन्नामका स्मरण-जप-कीर्तन करना चाहिये।

अतः 'कल्याण' के भाग्यवान् ग्राहक-अनुग्राहक, पाठक-पाठिकाएँ स्वयं तथा अपने इष्ट-मित्रोंसे प्रतिवर्ष भगवन्नाम-जप करते-कराते आये हैं।

गत वर्ष पंचानबे करोड़ नाम-जपकी प्रार्थना की गयी थी। इस वर्ष विभिन्न स्थानोंसे जो सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं; उनके अनुसार तिरानवे करोड़, अट्ठानबे लाख, चार हजार मन्त्रके नाम-जप हुए हैं, प्रसन्नता है कि इस वर्ष भगवन्नाम-प्रेमी महानुभावोंने पिछले वर्षकी अपेक्षा जपमें विशेष उत्साह दिखलाया है, जिससे भगवन्नाम-जपमें वृद्धि हुई है। आशा है, आगे और भी अधिक उत्साहसे नाम-जप होता रहेगा।

जपकर्ताओंकी सूचना अभीतक लगातार आ रही है, किंतु विलम्बसे सूचना आनेपर उसे प्रकाशित करना सम्भव नहीं है। अतः जपकर्ताओंको जप पूरा होने (चैत्र शुक्ल पूर्णिमा)-के अनन्तर तत्काल सूचना प्रेषित करनी चाहिये, जिससे उनके जपकी संख्या प्रकाशित की जा सके।

आप महानुभावोंसे पुनः इस वर्ष पंचानबे करोड़ भगवन्नाम-मन्त्र-जपकी प्रार्थना की जा रही है। यह नाम-जप अधिक उत्साहसे करना तथा करवाना चाहिये, जिससे भगवन्नाम-जपकी संख्यामें उत्तरोत्तर वृद्धि हो।

निवेदन है कि पूर्ववत् कार्तिक शुक्ल पूर्णिमासे जप आरम्भ किया जाय और चैत्र शुक्ल पूर्णिमा (वि० सं० २०६९)-तक पूरा किया जाय। पूरे पाँच महीनेका समय है।

भगवान्के प्रभावशाली नामका जप स्त्री-पुरुष, ब्राह्मण-शूद्र सभी कर सकते हैं। इसलिये 'कल्याण' के भगवद्विश्वासी पाठक-पाठिकाओंसे हाथ जोड़कर विनयपूर्वक प्रार्थना की जाती है कि वे कृपापूर्वक सबके परम कल्याणकी भावनासे स्वयं अधिक-से-अधिक जप करें और प्रेमके साथ विशेष चेष्टा करके दूसरोंसे भी जप करवायें। नियमादि सदाकी भाँति ही हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) जप प्रारम्भ करनेकी तिथि कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा (दिनांक १०।११।२०११ ई०) गुरुवार रखी गयी है। इसके बाद किसी भी तिथिसे जप आरम्भ कर सकते हैं, परंतु उसकी पूर्ति चैत्र शुक्ल पूर्णिमा, वि० सं० २०६९ दिन शुक्रवार (दिनांक ६।४।२०१२)-को कर देनी चाहिये। इसके आगे भी अधिक जप किया जाय तो और उत्तम है।

(२) सभी वर्णों, सभी जातियों और सभी आश्रमोंके नर-नारी, बालक-वृद्ध, युवा इस मन्त्रका जप कर सकते हैं।

(३) एक व्यक्तिको प्रतिदिन उपरिनिर्दिष्ट मन्त्रका कम-से-कम १०८ बार (एक माला) जप अवश्य ही करना चाहिये, अधिक तो कितना भी किया जा सकता है।

(४) संख्याकी गिनती किसी भी प्रकारकी मालासे अथवा अंगुलियोंपर या किसी अन्य प्रकारसे भी रखी जा सकती है। तुलसीजीकी माला उत्तम होगी।

(५) यह आवश्यक नहीं है कि अमुक समय आसनपर बैठकर ही जप किया जाय। प्रात:काल उठनेके समयसे लेकर चलते-फिरते, उठते-बैठते और काम करते हुए सब समय—सोनेके समयतक इस मन्त्रका जप किया जा सकता है।

(६) बीमारी या अन्य किसी कारणवश जप न हो सके और क्रम टूटने लगे तो किसी दूसरे सज्जनसे जप करवा लेना चाहिये। पर यदि ऐसा न हो सके तो बादमें अधिक जप करके उस कमीको पूरा कर लेना चाहिये।

(७) संख्या मन्त्रकी होनी चाहिये, नामकी नहीं; उदाहरणके रूपमें—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—सोलह नामके इस मन्त्रकी एक माला प्रतिदिन जपें तो उसके प्रति मन्त्र-जपकी संख्या १०८ होती है, जिसमें भूल-चूकके लिये ८ मन्त्र बाद कर देनेपर गिनतीके लिये एक सौ मन्त्र रह जाते हैं। अतएव जिस दिन जो भाई-बहन मन्त्र-जप आरम्भ करें, उस दिनसे चैत्र शुक्ल पूर्णिमातकके मन्त्रोंका हिसाब इसी क्रमसे जोड़कर हमें अन्तमें सूचित करें। सूचना भेजनेवाले सज्जनोंको जपकी संख्याके साथ अपना नाम-पता स्पष्ट अक्षरोंमें लिखना चाहिये।

(८) प्रथम सूचना तो मन्त्र-जप प्रारम्भ करनेपर भेजी जाय, जिसमें चैत्र पूर्णिमातक जितनी जप-संख्याका संकल्प किया हो, उसका उल्लेख रहे और दूसरी बार जप आरम्भ करनेकी तिथिसे लेकर चैत्र पूर्णिमातक हुए कुल जपकी संख्या उल्लिखित हो।

(९) प्रथम सूचना प्राप्त होनेपर जपकर्ताको सदस्यता दी जाती है। द्वितीय सूचना भेजते समय सदस्य-संख्या अवश्य लिखनी चाहिये।

(१०) जप करनेवाले सज्जनको सूचना भेजने-भिजवानेमें इस बातका संकोच नहीं करना चाहिये कि जपकी संख्या प्रकट करनेसे उसका प्रभाव नष्ट हो जायगा। स्मरण रहे, ऐसे सामूहिक अनुष्ठान परस्पर उत्साहवृद्धिमें सहायक होकर प्रभावक बनते हैं।

(११) सूचना संस्कृत, हिन्दी, मराठी, मारवाड़ी, गुजराती, बँगला, अंग्रेजी, उर्दूमें भेजी जा सकती है।

सूचना भेजनेका पता—

नामजप-कार्यालय, द्वारा—'कल्याण' सम्पादकीय विभाग, गीताप्रेस, पो०—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर)

प्रार्थी—

राधेश्याम खेमका

सम्पादक—'कल्याण'

राम राम जपु जिय सदा सानुराग रे। कलि न बिराग, जोग, जाग, तप, त्याग रे॥
राम सुमिरत सब बिधि ही को राज रे। रामको बिसारिबो निषेध-सिरताज रे॥
राम-नाम महामनि, फनि जगजाल रे। मनि लिये फनि जियै, ब्याकुल बिहाल रे॥
राम-नाम कामतरु देत फल चारि रे। कहत पुरान, बेद, पंडित, पुरारि रे॥
राम-नाम प्रेम-परमारथको सार रे। राम-नाम तुलसीको जीवन-अधार रे॥

[विनय-पत्रिका]

श्रीभगवन्नाम-जपके जापक महानुभावोंको अपनी स्थायी सदस्य-संख्या एवं नाम-पता साफ-साफ अक्षरोंमें लिखना चाहिये जिससे उनके ग्राम/नगरका शुद्ध नाम दिया जा सके। [सं०]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभी उपलब्ध—मँगवानेमें शीघ्रता करें

महाभारत—सटीक [नया संस्करण—अधिक स्पष्ट अक्षरोंमें] (कोड 728) छः खण्डोंमें—यह भारतीय संस्कृति और आर्य सनातन धर्म-दर्शनका विश्वकोष, उपनिषदोंके सार, इतिहास, पुराणोंके उन्मेष-निमेष, आश्रम, वर्ण-धर्म, पुराणोंका आशय, भक्ति-तत्त्वज्ञानका प्रकाशक तथा भगवान् श्रीकृष्णके चरित्रका विश्लेषण करनेवाला अद्भुत ग्रन्थरत्न है। यह ग्रन्थरत्न भारतीय धर्म-दर्शनके जिज्ञासुओं तथा शोध-छात्रोंके लिये अत्यन्त उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण है। सम्पूर्ण सेटका मूल्य रु० १५६०, रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंगखर्च रु० २२५ अतिरिक्त। अलग-अलग खण्डका मूल्य रु० २६०, रजिस्टर्ड डाकखर्च एवं पैकिंगखर्च रु० ४५ अतिरिक्त।

संक्षिप्त महाभारत—केवल हिन्दी [दो खण्डोंमें] (कोड 39, 511), ग्रन्थाकार—मूल्य रु० ३२०, डाकखर्च रु० ६५

मानस-पीयूष (कोड 86) सात खण्डोंमें—महात्मा श्रीअञ्जनीनन्दनशरणजीके द्वारा सम्पादित श्रीरामचरितमानसकी सबसे बृहत् टीका, ख्यातिलब्ध रामायणियों, उत्कृष्ट विचारकों, तपनिष्ठ महात्माओं तथा आधुनिक मानसविज्ञोंकी एक साथ व्याख्याओंका अनुपम संग्रह, समस्त जिज्ञासुओं तथा शोध-छात्रोंके लिये संग्रह और नित्य स्वाध्यायका अनुपम ग्रन्थरत्न। सम्पूर्ण सेटका मूल्य रु० १४००, रजिस्टर्ड डाकखर्च एवं पैकिंगखर्च रु० २०० अतिरिक्त। अलग-अलग खण्डका मूल्य रु० २००, रजिस्टर्ड डाकखर्च एवं पैकिंगखर्च रु० ४० अतिरिक्त।

'कल्याण' के पुनर्मुद्रित उपलब्ध विशेषाङ्क

कोड	विशेषाङ्क	मू०रु०	कोड	विशेषाङ्क	मू०रु०	कोड	विशेषाङ्क	मू०रु०
41	शक्ति-अङ्क	१५०	789	सं० शिवपुराण	१५०	586	शिवोपासनाङ्क	१००
616	योगाङ्क	१३०	631	सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण	१७५	1131	कूर्मपुराण—सानुवाद	१००
44	संक्षिप्त पद्मपुराण	२००	572	परलोक-पुनर्जन्माङ्क	१५०	448	भगवल्लीला-अङ्क	६५
539	संक्षिप्त मार्कण्डेयपुराण	७५	1113	नरसिंहपुराणम्-सानुवाद	७०	1044	वेद-कथाङ्क	१००
1111	संक्षिप्त ब्रह्मपुराण	१००	1362	अग्निपुराण		1542	भगवत्प्रेम-अङ्क-अजि०	६५
659	उपनिषद्-अङ्क	१५०		(मूल संस्कृतका हिन्दी-अनुवाद)	१५०	1592	आरोग्य-अङ्क	
279	सं० स्कन्दपुराण	२३०	1432	वामनपुराण-सानुवाद	९०		(परिवर्धित संस्करण)	१५०
40	भक्त-चरिताङ्क	१६०	557	मत्स्यमहापुराण (सानुवाद)	२००	1610	देवीपुराण (महाभागवत)	
1183	सं० नारदपुराण	१५०	657	श्रीगणेश-अङ्क	१००		शक्तिपीठाङ्क—सानुवाद	९०
636	तीर्थाङ्क	१५०	42	हनुमान-अङ्क	१००	1793	श्रीमद्देवीभागवताङ्क (पूर्वार्द्ध)	१००
574	संक्षिप्त योगवासिष्ठ	१२०	1361	सं० श्रीवाराहपुराण	७५	1842	श्रीमद्देवीभागवताङ्क (उत्तरार्ध)	१००
1133	सं० श्रीमद्देवीभागवत	१७०	584	सं० भविष्यपुराण	१२०	प्रत्येकका डाकखर्च एवं पैकिंगखर्च अतिरिक्त।		

गीता-दैनन्दिनी (सन् २०१२)-के सभी संस्करण उपलब्ध—(कोड 1431) मूल्य रु० ५५ (रजिस्टर्ड डाकखर्च रु० २५ अतिरिक्त)। **(कोड 503)**—मूल्य रु० ४० (रजिस्टर्ड डाकखर्च रु० २५ अतिरिक्त)। **(कोड 506)** मूल्य रु० २५ (रजिस्टर्ड डाकखर्च रु० २२ अतिरिक्त)। **(कोड 1769)** मूल्य रु० १५ (रजिस्टर्ड डाकखर्च रु० २० अतिरिक्त)।

खुल गया है—हुबली (कर्नाटक) रेलवे स्टेशन प्लेटफार्म नं० १-२ पर गीताप्रेस गोरखपुरका नया पुस्तक-स्टॉल। गीताप्रेस पुस्तक-स्टॉल दिल्ली जंक्शन—प्लेटफार्म नं० १२ पर था नया प्लेटफार्म नं० ५-६ हो गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2011-2013

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT	LICENCE No. WPP/GR-03/2011-2013

'कल्याण' का आगामी ८६ वें वर्ष (सन् २०१२ ई०)-का विशेषाङ्क

'श्रीलिङ्गमहापुराणाङ्क'

अठारह महापुराणोंमें लिङ्गमहापुराणका ग्यारहवाँ स्थान है। वैसे भी पुराण भगवान् विष्णुके साक्षात् विग्रह हैं। इस प्रकार लिङ्गमहापुराणको भगवान्‌का 'गुल्फ' कहा गया है—'लैङ्गं तु गुल्फकम्' (पद्मपुराण, स्वर्गखण्ड)। इस पुराणमें ज्ञानयोग, भक्तियोग और उपासना शास्त्रका अद्भुत समन्वय है। यह साधकोंके लिये परमात्मप्राप्तिका सुगम साधन प्रस्तुत करता है। मुख्यरूपसे लिङ्गमहापुराण शैव-दर्शनका विलक्षण प्रतिपादन करता है। भगवान् शिवकी आराधना तथा महिमाका मण्डन करनेमें ही इसका पर्यावसान होता है। इसकी कथाएँ अत्यन्त ही मनोरम तथा तत्त्वज्ञान एवं सदाचरणकी शिक्षा प्रदान करनेवाली हैं। इसमें अनेक स्तुतियाँ और सुभाषित समाहित हैं, जो नित्यपाठ एवं याद करनेयोग्य हैं।

अठारह महापुराणोंमें यह पुराण अपना विशेष स्थान रखता है। इसमें लगभग ११ हजार श्लोक हैं। यह पुराण पूर्व एवं उत्तर—दो भागोंमें विभक्त है। इसके पूर्वभागमें १०८ और उत्तरभागमें ५५ अध्याय हैं। इसके पूर्वभागमें प्रधानरूपमें शैव-दर्शन, पाशुपत-दीक्षा, शिव-माहात्म्य, लिङ्गका स्वरूप, लिङ्गोद्भवकी कथा, शिव-आराधना, योगाचार्योंकी अवतार-कथा, लिङ्गार्चन-विधान, शिव-सम्बन्धी व्रतोंका निरूपण, नृसिंहादि अवतारोंकी कथाएँ तथा सूर्य-चन्द्रादिके वंशोंका विस्तृत वर्णन है। इसके उत्तरभागमें कौशिक द्विजकी कथा, भगवद्गुणगानकी महिमा, रुद्रभक्तोंका माहात्म्य, शिवमन्त्र-जपकी महिमा, शिवतत्त्व-निरूपण, सोलह महादानोंका वर्णन, मृत्युञ्जय-मन्त्रकी महिमा, शिवज्ञान-योग आदि अनेक विषयोंका विस्तृत निरूपण किया गया है। इसका श्रवण तथा स्वाध्याय महान् कल्याणकारी तथा सदाशिवकी शाश्वती भक्ति प्रदान करनेवाला है। विभिन्न दृष्टियोंसे यह पुराण घरमें रखने तथा नित्य स्वाध्याय करनेयोग्य है।

वार्षिक ग्राहकोंसे नम्र निवेदन

इस वर्षका अङ्क-संख्या ११ (नवम्बर माह) आपके हाथमें है। दिसम्बर माहका अङ्क प्रेषणके पश्चात् इस वर्षका प्रेषण कार्य पूर्ण हो जायेगा। आगामी विशेषाङ्क भी प्रकाशनकी प्रकियामें है। आशा है विशेषाङ्कका प्रेषण समयपर (जनवरी प्रथम सप्ताहमें) प्रारम्भ हो जायेगा। सदस्यता-शुल्क अग्रिम प्राप्त सदस्योंको विशेषाङ्क रजिस्ट्रीद्वारा पहले भेजकर शेष सभी सदस्योंको क्रमशः वी०पी०पी० द्वारा प्रेषित किया जायेगा।

एक साथ अधिक संख्यामें मनीआर्डर डाकघरमें पहुँचनेसे उनका भुगतान लेनेमें काफी समय लग जाता है तथा प्राप्त मनीआर्डरकी व्यवस्थामें (खातेमें चढ़ाना) भी अत्यधिक समयकी आवश्यकता होती है। इस बीच प्रेषण-प्रक्रिया नियमित जारी रखनेमें काफी प्रयासके बावजूद आपका विशेषाङ्क वी०पी०पी०से प्रेषित हो सकता है।

अतः निवेदन है कि सदस्यता-शुल्क १५ दिसम्बरतक **व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो०—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर) (उ०प्र०)**-के पतेपर अवश्य प्रेषित कर देना चाहिये।

सदस्यता-शुल्क गीताप्रेस, गोरखपुरकी निजी दूकान/स्टॉल (अक्टूबर अङ्कमें प्रकाशित)-पर भी छपी रसीद लेकर जमा किया जा सकता है। शुल्क-संग्रहहेतु अन्य कोई प्रतिनिधि नियुक्त नहीं है। किसी कारणवश ग्राहक बने रहनेमें विवशता हो तो अवश्य सूचित कर दें, जिससे वी०पी०पी० का प्रेषण रोका जा सके।

सदस्यता-शुल्क—वार्षिक रु० १७० अजिल्द (सजिल्द रु० १९०)/पञ्चवर्षीय रु० ८५० अजिल्द (सजिल्द रु० ९५०)।

व्यवस्थापक—**'कल्याण-कार्यालय', पो०-गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर) (उ०प्र०)**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोवर्धनपूजन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

याद रखो—जो लोग भीतरसे गन्दे रहकर बाहरी सजावटके द्वारा उस गन्दगीको ढकना चाहते हैं, उनकी गन्दगी घटती नहीं, अपितु बढ़ती ही है और वे भीतरकी गन्दगीके बुरे फलसे नहीं बच पाते। सच्चा लाभ तो भीतरकी गन्दगीको मिटानेपर ही मिलता है।

तुम्हारे मनमें यदि काम, क्रोध, लोभ, असूया, द्वेष, हिंसा आदि दोष भरे हैं, तुम उनको दूर करनेका कोई प्रयत्न नहीं करते, वरं उनका रहना तुम्हें बुरा भी नहीं मालूम होता और तुम ऊपरसे निष्कामता, क्षमा, त्याग, गुण-दर्शन, प्रेम और सेवाका उपदेश करनेमें बड़ी ऊँची उड़ान भरते हो तो इससे तुम्हें क्या लाभ है? इससे तो दम्भ ही बढ़ता है।

ऊपरसे यदि लोग तुममें कोई अच्छाई न भी देखें और तुम्हारा हृदय दोषरहित एवं पवित्र है तो तुम वस्तुतः अच्छे हो। अच्छा असलमें वही है, जो अपने अन्तर्यामी भगवान्के सामने अच्छा है—उनकी दृष्टिमें निर्दोष है; भीतर और बाहरसे पवित्र है।

याद रखो—तुम जो भक्ति, प्रेम और ज्ञानकी बातें करते हो, इनका भी कोई मूल्य नहीं है—यदि तुम्हारे हृदयमें भक्तिकी पवित्र प्रभुपरायणता, प्रेमकी मधुर और निष्काम सरसता एवं ज्ञानकी दिव्यज्योति नहीं है। मनसे भक्त बनो, प्रेमका मनमें ही अनुभव करो और ज्ञानके प्रकाशको अन्दर ही प्रदीप्त करो, तभी इनका असली लाभ मिलेगा। बाहरके बहुत बड़े आडम्बरकी सच्चे क्षुद्रतम भावके साथ भी तुलना नहीं हो सकती। सचाई पैदा करो—सचाई थोड़ी है तब भी वह महान् उपकार करनेवाली है; क्योंकि वही सत्य है। उपदेशकका उपदेश पहले उसके अपने लिये ही होना चाहिये। जो कुछ अच्छी बात तुम कहना चाहते हो, कहते हो, उसे पहले अपने प्रति कहो और वस्तुतः तुम उसे अच्छी मानते हो तो उसे अपने जीवनमें धारण कर लो। दूसरेके हितके लिये अपने हितका परित्याग करना तो पुण्य है, परंतु जो हितको अपने लिये हित ही नहीं समझता, केवल दूसरोंके लिये ही उसे हित बतलानेका नाटक करता है, वह अपने हितका त्याग क्या करेगा? उसके पास तो अपना हित है ही नहीं, वह तो केवल लोगोंको ठगनेके लिये उनके सामने अपनेको सदाचारी महात्मा सिद्ध करनेके लिये कपट करता है। उसे इतना भी विश्वास नहीं है कि अन्तर्यामी भगवान् मेरे कपटको जानते हैं और वे इससे रुष्ट होंगे। ऐसा पुरुष न तो अपना हित करता है और न दूसरोंका ही।

मनुष्य-जीवन सचमुच बड़ा मूल्यवान् है, यह व्यर्थ खाने या पाप कमानेके लिये नहीं मिला है। इसका यथार्थ सदुपयोग करो। इसके एक-एक क्षणको भगवान्के चिन्तनमें लगा दो। मत भूलो यहाँके धन-जन, विद्या-बुद्धि, सम्मान-सत्कार, प्रभुत्व-अधिकार और मेरे-तेरेके मोहमें जीवन बीता जा रहा है। जबतक मृत्यु नहीं घेरती, इन्द्रिय और मन काम देते हैं, तभीतक कुछ कर सकते हो। बड़ी लगनसे लगा दो मनकी प्रत्येक वृत्तिको, शरीरकी प्रत्येक क्रियाको, इन्द्रियकी प्रत्येक चेष्टाको श्रीभगवान्के भजनमें। यह बड़ी भली बात है।

याद रखो—यहाँकी मान-बड़ाई, धन-वैभव, यश-कीर्ति और प्रभुत्व-अधिकारको तुमने प्रचुररूपमें प्राप्त भी कर लिया तो क्या होगा उससे? तुम्हारे साथ जायगा केवल तुम्हारा कर्म-संस्कार ही। इनमेंसे कोई भी न तो तुम्हारा साथ देगा, न तो तुम्हारा सहायक होगा। तुम्हारा जीवन व्यर्थ चला जायगा। व्यर्थ ही नहीं, जागतिक लाभकी कामनासे जो पाप-कर्म तुमने किये हैं, उनका बोझ तुम्हारे साथ जायगा, जो असंख्य जन्मोंतक तुम्हें कष्ट देता रहेगा। अतएव जल्दी सावधान हो जाओ। मानव-जीवनके वास्तविक लक्ष्यको समझो और जीवनके प्रत्येक क्षणको उसीकी सिद्धिमें लगा दो। **'शिव'**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान्‌की शरणसे परमपदकी प्राप्ति

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात् परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥

भगवान् कहते हैं—हे भारत! तू सब प्रकारसे उस परमेश्वरकी ही अनन्य शरण*को प्राप्त हो। उस परमात्माकी कृपासे ही तू परमशान्तिको और सनातन परमधामको प्राप्त होगा। (गीता १८।६२)

सब प्रकारसे भगवान्‌के शरण होनेके लिये बुद्धि, मन, इन्द्रियाँ और शरीर—इन सबको सम्पूर्णरूपसे भगवान्‌के अर्पण कर देनेकी आवश्यकता है। परंतु यह अर्पण केवल मुखसे कह देनेमात्रसे नहीं हो जाता। इसीलिये इसके अर्पणका क्या स्वरूप है, इसको समझानेकी कुछ चेष्टा की जाती है।

बुद्धिका अर्पण—'भगवान् हैं' इस बातका बुद्धिमें प्रत्यक्षकी भाँति नित्य-निरन्तर निश्चय रहना, संशय, भ्रम और अभिमानसे सम्पूर्णतया रहित होकर भगवान्‌में परम श्रद्धा करना, बड़ी-से-बड़ी विपत्ति पड़नेपर भी भगवान्‌की आज्ञासे तनिक भी न हटना, यानी प्रतिकूल भाव न होना तथा पवित्र हुई बुद्धिके द्वारा गुण और प्रभावसहित भगवान्‌के स्वरूप और तत्त्वको जानकर उस तत्त्व और स्वरूपमें बुद्धिका अविचलभावसे नित्य-निरन्तर स्थित रहना। यह बुद्धिका भगवान्‌में अर्पण करना है।

मनका अर्पण—प्रभुकी अनुकूलतामें अनुकूलता, उनके इच्छानुसार ही इच्छा और उनकी प्रसन्नतामें ही प्रसन्न होना, प्रभुके मिलनेकी मनमें उत्कट इच्छा होना, केवल प्रभुके नाम, रूप, गुण, प्रभाव, रहस्य और लीला आदिका ही मनसे नित्य-निरन्तर चिन्तन करना, मन प्रभुमें रहे और प्रभु मनमें वास करें—मन प्रभुमें रहे और प्रभु मनमें रमण करें। यह रमण अत्यन्त प्रेमपूर्ण हो और वह प्रेम भी ऐसा हो कि जिसमें एक क्षणका भी प्रभुका विस्मरण जलके वियोगमें मछलीकी व्याकुलतासे भी बढ़कर मनमें व्याकुलता उत्पन्न कर दे। यह भगवान्‌में मनका अर्पण करना है।

इन्द्रियोंका अर्पण—कठपुतली जैसे सूत्रधारके इशारेपर नाचती है—उसकी सारी क्रिया स्वाभाविक ही सूत्रधारकी इच्छाके अनुकूल ही होती है, इसी प्रकार अपनी सारी इन्द्रियोंको भगवान्‌के हाथोंमें सौंपकर उनकी इच्छा, आज्ञा, प्रेरणा और संकेतके अनुसार कार्य होना और इन्द्रियों-द्वारा जो कुछ भी क्रिया हो, उसे मानो प्रभु ही करवा रहे हैं, ऐसे समझते रहना—अपनी इन्द्रियोंको प्रभुके अर्पण करना है।

इस प्रकार जब सारी इन्द्रियाँ प्रभुके अर्पण हो जायँगी, तब वाणीके द्वारा जो कुछ भी उच्चारण होगा, वह सब भगवान्‌के सर्वथा अनुकूल ही होगा अर्थात् उसकी वाणी भगवान्‌के नाम-गुणोंके कीर्तन, भगवान्‌के रहस्य, प्रेम, प्रभाव और तत्त्वादिके कथन, सत्य, विनम्र, मधुर और सबके लिये कल्याणकारी भाषणके अतिरिक्त किसीको जरा भी हानि पहुँचानेवाले, दोषयुक्त या व्यर्थ वचन बोलेगी ही नहीं। उसके हाथोंके द्वारा भगवान्‌की सेवा, पूजा और इस लोक और परलोकमें सबका यथार्थ हित हो, ऐसी ही क्रिया होगी। इसी प्रकार उसके नेत्र, कर्ण, चरण आदि इन्द्रियोंके द्वारा भी लोकोपकार आदि कियाएँ भगवान्‌के अनुकूल ही होंगी और उन क्रियाओंके होनेके समय अत्यन्त प्रसन्नता, शान्ति, उत्साह और प्रेम-विह्वलता रहेगी। भगवत्प्रेम और आनन्दकी अधिकतासे कभी-कभी रोमांच और अश्रुपात भी होंगे।

शरीरका अर्पण—प्रभुके चरणोंमें प्रणाम करना, यह शरीर प्रभुकी सेवा और उनके कार्यके लिये ही है—ऐसा समझकर प्रभुकी सेवामें और उनके कार्यमें शरीरको लगा

* लज्जा, भय, मान, बड़ाई और आसक्तिको त्यागकर शरीर और संसारमें अहंता-ममतासे रहित होकर केवल एक परमात्माको ही परम आश्रय, परमगति और सर्वस्व समझना तथा अनन्यभावसे अतिशय श्रद्धा, भक्ति और प्रेमपूर्वक निरन्तर भगवान्‌के नाम, गुण, प्रभाव और स्वरूपका चिन्तन करते रहना एवं भगवान्‌का भजन, स्मरण रखते हुए ही उनके आज्ञानुसार कर्तव्यकर्मोंका निःस्वार्थभावसे केवल परमेश्वरके लिये ही आचरण करना—यह 'सब प्रकारसे परमात्माके अनन्य शरण' होना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देना, खाना-पीना, उठना-बैठना, सोना-जागना—सब कुछ प्रभुके कार्यके लिये ही होना—यह शरीरका अर्पण है। जैसे शेषनागजी अपने शरीरकी शय्या बनाकर निरन्तर उसे भगवान्‌की सेवामें लगाये रहते हैं, जैसे राजा शिबिने अपना शरीर कबूतरकी रक्षाके लिये लगा दिया, जैसे राजा मयूरध्वजके पुत्रने अपने शरीरको प्रभुके कार्यमें अर्पण कर दिया, वैसे ही प्रभुकी इच्छा, आज्ञा, प्रेरणा और संकेतके अनुसार लोकसेवाके रूपमें या अन्य किसी रूपमें शरीरको प्रभुके कार्यमें लगा देना ही शरीरका प्रभुके अर्पण करना है।

बुद्धि, मन, इन्द्रियाँ और शरीरको प्रभुके अर्पण करनेके बाद कैसी स्थिति होती है, इसको समझनेके लिये एक पतिव्रता स्त्रीके उदाहरणपर विचार कीजिये।

समझ लीजिये एक पतिव्रता देवी थी, उसकी सारी क्रियाएँ इसी भावसे होती थीं कि मेरे पति मुझपर प्रसन्न रहें। यही उसका मुख्य ध्येय था। पातिव्रत-धर्म भी यही है। उसके पतिको भी इस बातका अनुभव था कि मेरी स्त्री पतिव्रता है। एक बार पतिने अपनी स्त्रीके मनके अत्यन्त विरुद्ध क्रिया करके उसकी परीक्षा लेनी चाही। परीक्षा सन्देहवश ही होती हो सो बात नहीं है, ऊपर उठाने और उत्साह बढ़ानेके लिये भी परीक्षाएँ हुआ करती हैं।

एक समय पतिदेवके भोजन कर चुकनेपर वह पतिव्रता देवी भोजन करने बैठी। उसने अभी दो-चार कौर ही खाये थे कि इतनेमें पतिने आकर उसकी थालीमें एक अंजलि बालू डाल दी और हँसने लगा। स्त्री भी हँसने लगी। पतिने पूछा—'तू क्यों हँसती है?' स्त्रीने कहा—'आप हँसते हैं, इसलिये मैं भी हँसती हूँ। मेरी प्रसन्नताका कारण आपकी प्रसन्नता ही है।' पतिने कहा—'मैं तो तेरे मनमें विकार उत्पन्न करनेके लिये हँसता था, किंतु विकार तो उत्पन्न नहीं हुआ।' स्त्री बोली—'मुझे इस बातका पता नहीं था कि आप मुझमें विकार देखना चाहते हैं। विकारका होना तो स्वाभाविक ही है, किंतु आप मुझमें विकार नहीं देखते, यह आपकी ही दया है।' इस कथनपर पतिको यह निश्चय हो गया कि उसकी स्त्री पतिव्रता है।

जो पुरुष सब प्रकारसे अपने-आपको भगवान्‌के अर्पण कर देता है, उसकी भी सारी क्रियाएँ पतिव्रता स्त्रीकी भाँति स्वामीके अनुकूल होने लगती हैं। वह अपने इच्छानुसार कोई कार्य कर रहा है, परंतु ज्यों ही उसे पता लगता है कि स्वामीकी इच्छा इससे पृथक् है, उसी क्षण उसकी इच्छा बदल जाती है और वह स्वामीके इच्छानुकूल कार्य करने लगता है। चाहे वह कार्य उसके बलिदानका ही क्यों न हो! वह बड़े हर्षके साथ उसे करता है। स्वामीके पूर्णतया शरण होनेपर तो स्वामीके इशारेमात्रसे ही उनके हृदयका भाव समझमें आने लगता है। फिर तो वह प्रेमपूर्वक आनन्दके साथ उसीके अनुसार कार्य करने लगता है।

दैवयोगसे अपने मनके अत्यन्त विपरीत भारी संकट आ पड़नेपर भी वह उस संकटको—अपने दयामय स्वामीके दयापूर्ण विधानको पुरस्कार समझकर अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करता है।

यह सारा संसार उस नटवरका क्रीड़ास्थल है। प्रभु स्वयं इसमें बड़ी ही निपुणताके साथ नाट्य कर रहे हैं, उनके समान चतुर खिलाड़ी दूसरा कोई भी नहीं है। जो कुछ हो रहा है, सब उन्हींका खेल है। उनके सिवा कोई भी ऐसा अद्भुत खेल नहीं कर सकता। इस प्रकार इस संसारकी सम्पूर्ण क्रियाओंको भगवान्‌की लीला समझकर वह शरणागत भक्त क्षण-क्षणमें प्रसन्न होता रहता है और पग-पगपर प्रभुकी दयाका दर्शन करता रहता है।

यही भगवान्‌की अनन्य शरण है और यही अनन्य भक्ति है। इस प्रकार भगवान्‌के शरण होनेसे मनुष्य भगवान्‌के यथार्थ तत्त्व, रहस्य, गुण, महिमा और प्रभावको जानकर अनायास ही परमपदको प्राप्त हो जाता है।

निवृत्तिः कर्मणः पापात्सततं पुण्यशीलता। सद्वृत्तिः समुदाचारः श्रेय एतदनुत्तमम्॥
मानुष्यमसुखं प्राप्य यः सज्जति स मुह्यति। नालं स दुःखमोक्षाय सङ्गो वै दुःखलक्षणः॥

पाप-कर्मसे दूर रहना, सदा पुण्यका संचय करते रहना, साधु पुरुषोंके बर्तावको अपनाना और उत्तम सदाचारका पालन करना—यह सर्वोत्तम श्रेयका साधन है। जहाँ सुखका नाम भी नहीं है, ऐसे मानवशरीरको पाकर जो विषयोंमें आसक्त होता है, वह मोहमें डूब जाता है। विषयोंका संयोग दुःखरूप है, वह कभी दुःखसे छुटकारा नहीं दिला सकता। [ना०, पूर्व ६०।४४-४५]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरणागति—एक अचूक उपाय

(डॉ० श्रीजयशंकरजी शुक्ल 'किरण')

ईश्वरकी शरणागति जीवके लिये सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। मानवमात्र अपने करणीय-अकरणीय कर्मोंसे आबद्ध उनके फलरूपी सांसारिकतामें स्वयमेव समाहित होता अपनेको पा रहा है। मानव-जीवनका प्रत्येक कार्य जो उसकी स्वयंकी इच्छा तथा संकल्पसे सम्पादित हो रहा है, अपने साथ संस्कारोंके एक अटूट बन्धनको लेकर चलता है। जब मानव अपने संकल्पोंको प्रबल करता चलता है तो जन्म-जन्मान्तरमें स्वयं उसीके द्वारा कृत शुभाशुभ कर्मोंमेंसे अपेक्षित फल प्रदान करनेमें समर्थ कर्मरूपी संस्कारका उदय होता है और यह उसे उसके प्रेयकी ओर लेकर जाता है। गोस्वामी तुलसीदासजी इसी बातको कुछ इस तरहसे कहते हैं—

जनम मरन सब दुख सुख भोगा। हानि लाभु प्रिय मिलन बियोगा॥
काल करम बस होहिं गोसाईं। बरबस राति दिवस की नाईं॥

(रा०च०मा० २।१५०।५-६)

अर्थात् इनके सम्पादनमें मानवका कोई अपना वश नहीं है। वह परमपिता परमात्माद्वारा किये गये विधानके अनुसार अपनी संकल्प एवं विकल्पकी मनोवृत्तिसे उपजे प्रारब्ध, संचित, क्रियमाणमें आबद्ध व्यवहार करता चला चलता है। अब यह उसपर निर्भर है कि वह उनसे किस तरहकी आकांक्षा, अपेक्षा, कामनाकी पूर्तिकी आशा करता है। मनुष्य सहज रूपसे पुरुषार्थ-चतुष्टयकी प्राप्तिको अपना अभीष्ट मानता है। संसारकी सभी कामनाओंकी जो इहलौकिक तथा पारलौकिक हैं, इसी धर्म, अर्थ, काम और मोक्षमें स्थिति मानी जाती है। मनुष्य अपने कर्म अपनी इच्छाके आधारपर संचालित पाता है। यह मनकी शक्तिका प्रबल उदाहरण माना जा सकता है। मनका सार्थक संकल्प हमें ईश्वरदर्शन भी करा सकता है, लेकिन इसके लिये प्रबल इच्छाशक्तिका सबल संकल्प आवश्यक है। मन ही बन्धनप्रदाता है तथा मन ही मोक्ष प्रदान कर सकता है। गीताके अनुसार—'**मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।**' मनुष्य अपने मनकी शक्तिके द्वारा ही अपने आचरणको पावनकर सुदुर्लभ वस्तुओंको भी हस्तगत कर सकता है।

मनको सही तथा सरल राहपर लानेके लिये प्रेरणा एवं संकल्पकी आवश्यकता होती है, जो सम्भवतः मानवके लिये अत्यन्त कठिन है। यहाँपर भगवान् शरणागतिको इसका अचूक उपाय बताते हैं, जिसके माध्यमसे मानव जब अपने श्रेयकी ओर बढ़ता है तो प्रेयकारी वस्तु सहज ही प्राप्त हो जाती है और मनुष्य ईश्वरप्राप्तिरूपी अभीष्टको भी प्राप्त कर लेता है। शरणागतिमें मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकारका तिरोभाव होकर एक सहज सन्मार्ग प्राप्त होता है, जो मानवको उसके मानवीय धर्ममें आरूढ़कर मानवताकी सच्ची सेवा करते हुए आत्मकल्याणमें प्रवृत्त करता है। गीतामें भी कहा गया है—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८।६६)

धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्रमें अपने स्वभावज कर्मसे च्युत हुए विषादग्रस्त अर्जुनको उनके शास्त्रविहित कर्ममें तत्पर होनेके लिये मार्ग प्रशस्त करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें बहुशाखामें जानेसे सावधान करते हैं। श्रीकृष्ण अपने मित्र, स्वजन, शिष्य, अनुपालक अर्जुनको केन्द्रमें रखकर चराचर जगत्को उनके श्रेष्ठकी प्राप्तिहेतु कर्तव्य कर्ममें सन्नद्ध होनेके लिये उनका आह्वान करते हैं। जनसामान्यको अपने ध्यानमें रखते हुए गीताके उपदेशका प्रणयन समाजके बदलते रूपको लक्ष्य करके दी गयी सर्वोत्तम शिक्षा मानी जा सकती है। अर्जुन यहाँपर जीवको प्रतिबिम्बित करता है, जबकि भगवान् श्रीकृष्ण सदा कल्याणकारी अखिल ब्रह्माण्डनायक शिवकी भूमिकाका निष्पादन करते हुए मिलते हैं। उनकी दृष्टिमें अपने सखा, सहचर, स्नेहीको उसके श्रेष्ठतक पहुँचानेकी क्रिया प्रमुख है। इसके लिये वे हर तरहके उद्यमको करनेके प्रति दृढ़ संकल्पित हैं।

भगवान् कृष्ण योगेश्वर हैं। वे योगके माध्यमसे भी विषादग्रस्त अर्जुनको नियत कर्मपर आरूढ़ होनेके लिये प्रेरित करते हैं। यह बात गीताजीके अध्ययनसे सामने आती है। जनसामान्यमें श्रीमद्भगवद्गीताजीको वैराग्यग्रन्थ अथवा वैराग्यमार्गके प्रणयनमें सहकारीके रूपमें माना जाता है, जबकि है इसके विपरीत; क्योंकि जिस गीताके श्रवण, मनन, चिन्तन एवं अवगाहनसे विषादग्रस्त अपनी विचारधारासे विरत, ध्येयसे च्युत, कर्मपथसे विलग अर्जुन वैराग्य छोड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्ममें प्रवृत्त होता है, उसके विषयमें यह धारणा संकुचित, निरर्थक तथा संकीर्ण मानसिकताके व्यक्तियोंकी सतही उपज कही जा सकती है।

भगवान् कृष्णने अर्जुनको अधिकारी पाकर ही गीताका व्याख्यान उनके समक्ष दिया था। तात्पर्य यदि हमें गीताका अध्यवसाय करना है तो सबसे पहले अर्जुन बनना होगा। अर्जुनका समर्पण, अर्जुनकी विरक्ति, अर्जुनकी कर्तव्यनिष्ठा, अर्जुनकी उत्सुकता, अर्जुनकी जिज्ञासा, अर्जुनकी अनुकरणीयता—ये सभी समग्ररूपसे हमें गीताके श्रवण, पठन तथा मननके योग्य बनायेंगे।

यदि हम गीताके अवगाहनका सुफल नहीं प्राप्त कर पा रहे हैं तो हमें स्वयंकी ओर ही देखना होगा। छिद्रोंवाले पात्रमें जल नहीं ठहर सकता। इसी तरहसे भरे हुए पात्रमें हम कुछ भी नहीं डाल सकते। यहाँपर अर्जुनकी शंकाओंका समाधान करते हुए श्रीकृष्ण उन्हें प्रतीक बनाकर उनके माध्यमसे सारे संसारके लिये मार्गका अनुदेशन करते दिखायी पड़ते हैं। इस बातको कुछ इस तरहसे स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण अपनी वाणीसे कहते हैं—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

(गीता १८। ६१)

तात्पर्य यह है कि शरीररूपी यन्त्रपर सवार सभी प्राणियोंको मायाके द्वारा इधर-से-उधर उनके स्वकृत कर्मोंके अनुसार घुमानेमें प्रवृत्त ईश्वर प्रत्येक प्राणीके हृदयमें स्थित है। प्रत्येक प्राणीके हृदयमें स्थित ईश्वर सबके लिये पृथक् रूपसे प्राप्य, पृथक् साधनद्वारा प्राप्य तथा पृथक् परिणामवाला कहा जा सकता है। हमारे हृदयमें स्थित वह परमात्मा मात्र आत्माद्वारा सेवनमें शक्य है और हमारी आत्मा करणीय-अकरणीय कर्मोंके संस्कारसे आबद्ध है। हम विभिन्न तरीकों, क्रियाओंसे उन कर्मफलोंका छेदन करके आत्मसाक्षात्कार-जैसे सुफलको प्राप्त करनेमें समर्थ होते हैं और इसीके साथ हमारे द्वारा जन्म-मृत्युरूपी चिज्जड़ ग्रन्थिकी विभक्ति तथा ईश्वरीय अनुभूतियोंके सुखद दौरका प्रारम्भ होता है। यहाँपर भगवान् श्रीकृष्ण सभी धर्मोंको छोड़नेकी बात कहते हैं। सबसे पहले इसी धर्मकी विवेचना प्रासंगिक एवं समीचीन है।

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई । पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥

गोस्वामी तुलसीदासजीने धर्मका अर्थ परोपकार माना है और पूरक रूपमें दूसरोंको पीड़ित करना अधर्मकी श्रेणीमें भी रखा गया है। अब प्रश्न उठता है कि 'पर' कौन है? क्या यह हमारे शरीरमें ही है? उत्तर बड़ा ही सटीक है। हमारे आत्मासे इतर सभी कुछ पर है। अर्थात् आत्मा-अहं (मैं) है तथा बाकी सारी चीजें (ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ, विषय, पंचमहाभूतके साथ-साथ अन्तःचतुष्टय—मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) इदं (यह) है। जब हम इनके लिये सकारात्मक, निश्चयात्मक कार्य-व्यवहार करते हैं तो यह धर्मकी श्रेणीमें आता है। जबकि धर्म शब्द अधर्मके साथ चलता है। आत्मा अजर, अमर, अविनाशी है, जिसतक पहुँचनेके लिये धर्म-अधर्म दोनोंको छोड़ना होगा। चाहे वह भक्तिसे भाव-समाधि-द्वारा हो या ज्ञानसे क्रिया-समाधिद्वारा। बादमें वही सविकल्पसे निर्विकल्प बनकर जीवको शिवस्वरूपमें अधिष्ठित कराती है।

'सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः' गीता सभी उपनिषदोंका सार है, जो उन उपनिषदोंके मन्थनद्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी वाणीसे प्रादुर्भूत हुआ है। जिसे धारण किया जाय, वह धर्म है। दूसरे शब्दोंमें जो धारण करता है, वह धर्म है। लोकमें अपने कार्योंसे सकारात्मक सन्देश जानेकी अपेक्षामें ये चीजें आवश्यक हैं, परंतु ये हैं बन्धनकारी। इसीलिये भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि सभी धर्मोंको छोड़कर मेरे शरणमें आ जाओ। इसी बातको मानसकार कुछ इस तरह कहते हैं—

सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि डोरी॥
समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष सोक भय नहिं मन माहीं॥

गोस्वामीजी मनको आधृत करके भगवान्‌को सभी कुछ समर्पित करनेको कहते हैं। यही बात अर्जुनके समक्ष भगवान् श्रीकृष्ण भी कहते हैं। शरणमें आनेका परिणाम श्लोककी दूसरी पंक्तिमें कहा गया है। भगवान्‌का कथन है कि मैं तुम्हें सभी पापोंसे मुक्त करके मोक्ष प्रदान करूँगा। इसमें कोई संशय नहीं है। अर्थात् बिना पापोंका शमन हुए मोक्षकी कामना नहीं की जा सकती। यह भगवान्‌के द्वारा मानवमात्रको एक आश्वासन है कि वे शरणागतकी हर तरहसे रक्षा करते हैं। इस बातको मानसमें भी कहा गया है—

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू॥
सनमुख होइ जीव मोहिं जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

अस्तु, भगवान्‌के इस आश्वासनपर पूर्ण विश्वास हमें हमारे श्रेयतक प्रेयकी प्राप्तिके साथ अवश्य पहुँचायेगा। यह मानव-कल्याणहेतु सबसे सीधा, सरल तथा सच्चा उपाय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवनमें सेवाका महत्त्व

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

[गतांक सं० ११, पृ०-सं० ९८६ से आगे]

सारे चराचर जगत्‌में मेरे भगवान् भरे हैं और मैं सबका सेवक हूँ—यह बड़ी मधुरता है। सबका मैं सेवक और सब मेरे भगवान्‌के रूप। जिसको देखें, जहाँ जायँ वहाँ भगवान् दीखें। दिन-रात वह भगवान्‌को देखे। कहते हैं कि भगवान्‌के दर्शन नहीं होते। भगवान् कहते हैं दर्शन करो न, दिनभर करो। जितने तुम्हारे सामने चराचर जीव आते हैं, ये सारे-के-सारे मैं ही तो बनकर आया हूँ। दूसरा कौन है? मेरे सिवाय अन्य कोई है ही नहीं। सबमें मुझको देखो और सबकी सेवा करो। मेरे अनन्य सेवक बन जाओ। भगवान्‌का यह आदेश है। भगवान्‌ने गीतामें कहा है। गीताके ये दो श्लोक उसके प्राण हैं—

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥
यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(गीता ६। २९-३०)

इसमें एक ज्ञानके साधकोंके लिये है और दूसरा भक्तिके साधकोंके लिये है। ज्ञानके साधकोंके लिये है—**'सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि'** अर्थात् समस्त प्राणियोंको आत्मामें देखे और आत्मामें समस्त प्राणियोंको देखे। सारे प्राणी आत्मामें और आत्मा सारे प्राणियोंमें। और भक्तके लिये है—यहाँ भगवान्‌ने **'माम्'** का प्रयोग किया है, परंतु वहाँ आत्माकी बात है, इसलिये वहाँ **'माम्'** का प्रयोग नहीं किया। यहाँ भगवान्‌ने अपने लिये कहा है। **'यो मां पश्यति सर्वत्र'**—जो सब जगह मुझको देखता है और **'सर्वं च मयि पश्यति'**—सबको मुझमें देखता है, उसकी आँखोंसे मैं कभी ओझल नहीं होता और वह मेरी आँखोंसे ओझल नहीं होता है। वह मेरे सामने और मैं उसके सामने रहता हूँ।

'मैं तुझे देखा करूँ और तुम मुझे देखा करो'—इस प्रकारकी वृत्ति भगवान् भक्तकी बना देते हैं। यह सेवाका भाव जो है, इसका जितना विकास होता है, जितना सेवामें निष्काम भाव होता है, उतनी ही सेवककी वृत्ति शुद्ध होती है और वह सेवा भगवत्पूजा बन जाती है।

प्रह्लादने जब कहा कि महाराज! आप तो व्यापारियों-जैसी बात करते हैं, तब फिर भगवान् बोले—अच्छा, कुछ तो माँगो। तब प्रह्लादने फिर अपनी तरफ देखा और सोचा कि ये बार-बार जो कह रहे हैं कि माँगो तो जरूर मेरे मनमें कोई छिपी वासना है। वासना फिर नहीं दिखी, लेकिन तब प्रह्लादने माँगा कि भगवन्! यदि आप मुझे देना ही चाहते हैं तो यह दीजिये कि मेरे मनमें कभी माँगनेकी वृत्ति ही न पैदा हो। प्रह्लादने यह वरदान माँगा। तब भगवान् मुसकराये और बोले—तथास्तु! वृत्ति नहीं होगी, परंतु जो पहलेकी वासना होगी, वह कहाँ जायगी। आजके मनोवैज्ञानिक लोग दो मन मानते हैं। एक प्रत्यक्ष मन और दूसरा अप्रत्यक्ष मन—अप्रत्यक्ष मनमें छिपे हुए संस्कारकी बातें रहती हैं। प्रह्लादके मनमें छिपी बात थी—यह भगवान् जानते थे, परंतु प्रह्लादके ध्यानमें नहीं थी। अब प्रह्लादको याद आ गयी। उन्होंने कहा—भगवन्! एक बात माँगता हूँ। एक वृत्ति रह गयी है। भगवान्‌ने पूछा—क्या? माँगनेके पहले ही भगवान् उसे वह दे चुके थे। भगवान् ऐसे हैं कि भक्तकी बात भक्तको मालूम नहीं पड़ती। ***'राम सदा सेवक रुचि राखी'***—भगवान् उसकी रुचिका ख्याल रखते हैं। प्रह्लादने माँगा क्या? उसने कहा—भगवन्! जिस मेरे पिताका शरीर आपके सामने पड़ा है, इन मेरे पिताने आपका बड़ा अपमान किया है। इन्होंने जीवनभर आपको गालियाँ दी हैं। आप इनको क्षमा कर दें और इनकी सद्‌गति हो जाय। भगवान् प्रसन्न हो गये। यद्यपि भगवान् सब जानते थे, लेकिन प्रह्लादके मुखसे कहलाना चाहते थे। भक्तकी महिमा बढ़ाना चाहते थे। जिस हिरण्यकशिपुने जीवनभर प्रह्लादको दुःख दिया। कोई चीज छोड़ी नहीं प्रह्लादको दुःख देनेकी। उसे साँपोंसे डसवाया, आगमें फेंक दिया, जहर दे दिया, समुद्रमें फेंककर ऊपरसे पहाड़ डाल दिया, महलसे नीचे फेंक दिया, हाथियोंसे कुचलवा दिया। उस हिरण्यकशिपुके लिये उसके मरनेके बाद भी प्रह्लाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी सद्‌गतिके लिये वरदान माँगता है। जो इतना बड़ा निष्काम है कि मनमें माँगनेकी वृत्ति न आये—इस प्रकारका वरदान माँगता है। इतना निष्काम भक्त प्रह्लाद है, वह दुःखी होकर कहता है—महाराज! मेरे पिताकी दुर्गति न हो जाय। भगवान्‌ने कहा—प्रह्लाद! जिस कुलमें तुम पैदा हो गये, उसकी इक्कीस पीढ़ियाँ तर जायँगी। सात अपने आगेकी, सात पीछेकी और सात नानाकी पीढ़ियाँ तर जायँगी। तुम्हारे अपने पिताकी क्या बात है? यह रामके सेवकका स्वरूप है। भगवान्‌का सेवक किसीका बुरा नहीं चाहता। किसीका बुरा होता हुआ देखता है तो वह सहन नहीं कर पाता है। हमलोगोंमें जो यह वृत्ति है कि कोई दूसरा हमारा बुरा कर देगा, इसलिये हम भी बुरा कर दें—यह ठीक नहीं है। हमारा बुरा हमारे प्रारब्धके बिना कोई कर सकता ही नहीं है। यह सिद्धान्त मान लेना चाहिये, फिर निर्भय होनेमें बड़ी सहायता मिलेगी। दूसरी बात, हम किसीका बुरा करना चाहेंगे तो उसके प्रारब्धके बिना उसका बुरा होगा ही नहीं, परंतु बुरा करनेकी वासना और क्रियाका पाप हमारे पल्ले बँध जायगा। इसलिये निर्वैरता स्वाभाविक हो जानी चाहिये। जब बुरा हमारा कोई कर नहीं सकता, हम किसीका बुरा नहीं कर सकते, सबका अपने कर्मसे बुरा होता है। तब यह समझदारीकी बात होगी कि हमलोग बुराईको छोड़ दें। सत्यका व्यवहार सबके साथ करें और जहाँ भगवद्‌बुद्धि हो जाय, भगवत्वृत्ति हो जाय, वहाँ तो सद्व्यवहार अपने-आप होगा। भगवान् सबमें हैं।

आमेरकी रानी रत्नावती भगवान्‌की बड़ी उपासिका थीं और सदा सन्त-सेवामें लगी रहती थीं। यह बात राजा साहबको ठीक नहीं लगती थी। तब उन्होंने सोचा कि इन्हें मरवा दें। उन्होंने पिंजड़ेमें सिंहको बन्द करके रत्नावतीके महलके दरवाजेपर छोड़वा दिया। वहाँ पिंजड़ेका दरवाजा खोल दिया गया। रत्नावती बैठी भगवान्‌की पूजा कर रही थीं। सिंह देवता वहाँ पहुँचे। रत्नावती उस समय भावमयी थीं। उन्होंने सोचा कि यह तो नृसिंहभगवान् आ गये। उन्होंने बुलाया कि महाराज! आओ। फिर सिंह जाकर मूर्तिके सामने बैठ गया। नृसिंहभगवान् ही बैठे, सिंह कहाँ बैठता।

इन्होंने सम्मुख नैवेद्य रखा, तिलक लगाया, माला पहनायी, पूजा की, आरती की और उन्होंने आनन्दसे सब ग्रहण किया। सब ग्रहण करके उठे और धीरे-धीरे बाहर आये। पीछे-पीछे रत्नावती भी आयीं। सेवकोंने देखा कि यह क्या हो गया? इन्होंने पिंजड़ेको पीछे धकेला और जो रत्नावतीजीको मारनेके लिये सिंह लाये थे, उनके लिये सिंह सिंह बन गया, सब समाप्त हो गये।

इसलिये यदि हमारी बुद्धिमें भगवान् आ जायँ तो सबमें भगवान् हैं। यह तो सिद्धान्त है कि सबमें भगवान् हैं ही। सद्व्यवहार करनेसे हिंसक जानवर भी हिंसा छोड़कर प्रेम करने लगते हैं। यह तो हमलोग संसारमें देखते हैं। बुरे-से-बुरे प्राणीमें भी आत्मरूपसे भगवान् विराजमान हैं। उसमें बीचमें शैतान तब आ जाता है, जब आसुरी सम्पत्ति आ जाती है। हमारा शैतान हमारी आसुरी बुद्धि है। आसुरी बुद्धि जब आ जाती है, तब भगवान्‌का जो दिव्य प्रभाव है, उसपर पर्दा आ जाता है। मानवको करना क्या है? सेवाके द्वारा, सद्‌बर्तावके द्वारा, सद्भावनाके द्वारा सबके अन्दर रहनेवाले भगवान्‌को जगा दे—यह सबसे बड़ी सेवा है और अपनी दुर्भावनाके द्वारा, दुर्व्यवहारके द्वारा, अत्याचार-अनाचारके द्वारा मनुष्यकी बुद्धिमें भगवान्‌को ढककर आसुरी सम्पत्ति पैदा कर दे, तब यह जगत्‌की सबसे बुरी सेवा है। आज जगत्‌में क्या हो रहा है? प्रायः सभी लोग जगत्‌में आसुरी सम्पत्ति जगाने और बढ़ानेमें लगे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समालोचना करते हैं, ईर्ष्या करते हैं, द्वेष करते हैं, गाली देते हैं, बुरा बताते हैं। इससे होता क्या है? वह आसुरी सम्पत्तिका शैतान जग जाता है और भगवान् जरा पीछे हट जाते हैं। एक-दूसरेने एक-दूसरेके शैतानको जगाया, इससे जगत्में आसुरी सम्पत्तिकी वृद्धि होती है। आधुनिक युगका जो युद्ध है, यह सुरासुर-युद्ध नहीं है, यह असुरासुर-युद्ध है। देवता-दानव युद्ध नहीं है, यह दानव-दानव युद्ध है। सुन्द और उपसुन्द दोनों भाई दानव थे। एक विषयके पीछे दोनों लड़ मरे। यह युद्ध आजका है। क्यों है? इसलिये कि आसुरी सम्पत्ति दोनों ओर है। आसुरी सम्पत्तिको जगाना—यह जगत्की सबसे बुरी सेवा है और आसुरी सम्पत्तिको नष्ट करके दैवी सम्पत्तिको, भगवान्को जगा देना—यह सबसे बड़ी सेवा है। यह सेवा कैसे होती है? सेवक भाव करके हम सद्भावना करें, सद्बर्ताव करें, सद्व्यवहार करें, बिना बदला चाहे सेवा करें, निष्काम भावसे हितकी चेष्टा करें, कल्याणकी चेष्टा करें, सम्मान करें—यह चीज यदि हममें आ जाय तो सबके अन्दरके भगवान् जाग जायँगे। अपने कर्मोंके द्वारा जो हम दुर्व्यवहार, दुराचार करते हैं, यह केवल अपना बुरा ही नहीं करते हैं—अपितु दूसरेके अन्दर अंकुरित बुरे वृक्षको फैला देते हैं और जहाँ बुरा अंकुरित नहीं है, वहाँ अंकुरित कर देते हैं। रॉल्फ वाल्डो ट्राइमकी एक पुस्तक है 'इन ट्यून विथ इनफाइनाइट'—'ईश्वरके सम्पर्कमें'। उसमें लिखा है कि हमने यदि किसी दूसरेके सम्बन्धमें बुरी भावना की तो उसके अन्दरकी बुराईको जगानेमें हमने एक हिस्सा कर लिया और हमने यदि सद्भावना की तो उसके अन्दरके सत्यको जगानेके लिये हमने एक हिस्सा दे दिया। तब दूसरेका यदि हमने बुरा सोचा भी तो उसके अन्दर बुरेको एक स्थान दे दिया। इसलिये दूसरेके अन्दर गुण देखो, भगवान् देखो, सत् देखो तो उसका सत् जगेगा। उसके अन्दर सद्भावना पैदा होगी। उसके अन्दर भगवान्का प्राकट्य होगा, जो तुम्हारे लिये और उसके लिये दोनोंके लिये ही मंगलकारी होगा और यह न करके दुर्भावना किया, दुर्व्यवहार किया, दुराचार, अनाचार किया तो उसका फल यह होगा कि हमारे अन्दर जो चीज है, वही उसके अन्दर भी पैदा हो जायगी। इसलिये इस भावसे बचना चाहिये। उत्तम-से-उत्तम बात तो यह है कि सबमें भगवान् समझ करके हम अपनेको सेवक समझें और सबकी सेवा करनेकी भावना करें। जहाँतक जितना बन पड़े उतना करें। सेवाका अर्थ यह नहीं है कि हम कहते रहें कि हम सेवा करते हैं। सेवाकी कभी दूकान नहीं खुलती है। सेवाका बाजार नहीं लगता, सेवाका विज्ञापन नहीं होता और सेवाकी कोई सूची नहीं बनती है। सेवा तो मनकी स्वाभाविक चीज है। राह चलता व्यक्ति सेवा कर सकता है और सेवाके स्थानपर बैठकर सेवा नहीं कर सकता है। रास्ते चलते हुए ही सेवा हो सकती है। जैसे कोई व्यक्ति मार्ग भूल रहा है तो उससे कह सकते हैं कि भैया! तुम अमुक मार्गसे जाओ। यह सेवा बन गयी। सेवाके लिये पैसोंकी आवश्यकता नहीं है। सेवाके लिये सेवकपनके मनकी आवश्यकता है। जिस मनमें सेवा-भाव भरा हुआ है, वह सेवक बन सकता है, चाहे वह सम्राट् ही क्यों न हो और यदि आदमी छोटा हो, पर उसमें सेवा-भाव नहीं है तो वह सेवा नहीं कर सकता है।

भगवान् श्रीकृष्णने राजसूय यज्ञमें सेवा-भावना दिखायी। उन्होंने पाण्डवोंसे कहा कि इस यज्ञमें मैं एक काम करूँगा और वह है, आगन्तुकोंका पद-प्रक्षालन। उसी यज्ञमें जिन भगवान्की अग्रपूजा होती है, जिनके लिये भीष्म लड़ पड़ते हैं और शिशुपालको धमका देते हैं। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि उस यज्ञमें हैं, फिर भी उनकी अग्रपूजा होती है, वह श्रीकृष्ण अपने जिम्मे काम क्या लेते हैं—सबके चरणोंको धोना। सेवा करनेमें जो अपना छोटापन मानते हैं, वे अभागे हैं। सेवा करनेका सौभाग्य मिलता रहे, यह बड़ी सुन्दर चीज है। सेवा करनेमें जिनको लाज आये, शर्म आये, सेवा करनेमें अपनी मानहानि समझें उनका तो महान् सौभाग्य मारा गया। वे अभागे हैं—दुर्भाग्यशाली हैं।

इसलिये सेवामें अपना सौभाग्य समझ करके जिसके द्वारा जितनी सेवा हो सके, रोज यह मनमें विचार करे कि आज मेरी कुछ सेवा बनी कि नहीं। यदि सेवा नहीं हुई तो समझना चाहिये कि आजका दिन फालतू गया। सेवा हो भगवद्भावसे तो वह सेवा भगवान्की भक्ति बन जायगी, पूजा बन जायगी। उससे यहाँ सुख होगा और भगवान्की प्राप्ति हो जायगी। [समाप्त]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विपत्तियोंसे डरें नहीं, सामना करें

(श्रीरमेशचन्द्रजी बादल, एम०ए०, बी०एड०, विशारद)

संसारका एक नाम दुःखालय भी है। दुःखालयका अर्थ स्पष्ट है—दुःखोंका घर। यहाँपर जिसने भी जन्म लिया है, उसे सुख और दुःख दोनोंका अपने जीवनमें अनुभव करना पड़ता है। मनुष्यको अपने जीवनमें सुख-दुःख, लाभ-हानि, यश-अपयश, उन्नति-अवनति और सम्पत्ति-विपत्तिका मिला-जुला जीवन जीना पड़ता है। प्रकृतिकी तरह मनुष्यजीवन भी परिवर्तनशील होता है। प्रकृतिमें सर्दी, गर्मी और वर्षाका मौसम बदलता रहता है। इसी प्रकार मनुष्यजीवनमें भी अनुकूलताओं और प्रतिकूलताओंका आना-जाना क्रमशः होता रहता है। कोई भी परिस्थिति हमेशा स्थायी नहीं रहती।

सुखके पश्चात् दुःख और दुःखके पश्चात् सुख होता है। सुख-दुःख मनुष्यके साथ पहिये (चक्र)-की तरह घूमते रहते हैं।

स्वयं मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम, श्रीकृष्ण, महात्मा बुद्ध, प्रभु ईसा आदि अवतारी पुरुषोंने भी इस संसारमें जन्म लेकर अनेक प्रकारके कष्टों और कठिन-से-कठिन परिस्थितियोंका सामना किया था। वे प्रत्येक परिस्थितिमें सम रहे। वे कष्टों—दुःखोंमें लेशमात्र भी विचलित नहीं हुए।

वाल्मीकिरामायणमें कहा गया है—**'दुर्लभं हि सदा सुखम्'** अर्थात् मनुष्यको सदा सुख तो नहीं मिलता। सुख और दुःख दोनोंका जीवन जीनेके लिये मनुष्य बाध्य है। मनुष्यको कष्टों और विपत्तियोंमें हमेशा धीरज रखना चाहिये। बुरे दिनोंमें आशावादी दृष्टिकोण रखकर अच्छे दिनोंकी प्रतीक्षा करना ही बुद्धिमानी है। महापुरुष सुख-दुःख और सम्पत्ति-विपत्तिमें सदैव समान रहते हैं। इस सन्दर्भमें भगवान् सूर्यका उदाहरण द्रष्टव्य है—

उदये सविता रक्तो रक्तश्चास्तमये तथा।
सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता॥

अर्थात् सूर्य उदयकालमें भी रक्तवर्णके तथा अस्तकालमें भी रक्तवर्णके ही रहते हैं।

हितोपदेशकी सूक्ति है—**'विपदि धैर्यम्'** अर्थात् विपत्तियोंके आनेपर मनुष्यको धैर्य (धीरज) धारण करना चाहिये। कठिन-दुःखद परिस्थितियोंमें धैर्यका सहारा ही मनुष्यको शक्ति प्रदान करता है।

श्रीरामचरितमानसमें महाकवि गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने कहा है—

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखिअहिं चारी॥

(रा०च०मा० ३।५।७)

अर्थात् विपत्तिके समयमें ही धैर्य, धर्म, मित्र और पत्नीकी परीक्षा होती है। विपत्तियोंमें उक्त चारोंका सहारा लेना चाहिये। सबसे पहले तो धैर्य ही धारण करना आवश्यक है।

धीरजका फल हमेशा मीठा होता है। महाकवि रहीमने इस दोहेमें शिक्षा दी है—

रहिमन बिपदा हू भली जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगत में जानि परत सब कोय॥

अर्थात् विपत्तियोंमें ही हमें अपने हितैषी—भला चाहनेवाले मित्रों तथा सम्बन्धियोंका पता चलता है। जो हितैषी होते हैं, वे मदद करनेमें आगे आते हैं।

महापुरुषोंकी शिक्षा है कि जीवनमें कठिनाइयाँ तो आती ही हैं, परंतु उनका सामना करना ही बुद्धिमानी है। कठिनाइयोंके साथ जीना भी प्रत्येक मनुष्यको सीखना चाहिये; क्योंकि पानीमें डूबने, चाकपर घूमने और आँवेमें पकनेके बाद ही मिट्टी मूल्यवान् बनती है। इसी प्रकार मनुष्य भी जीवनकी विषम परिस्थितियों, विपत्तियों और ठोकरें सहनेके बाद ही परिपक्व होता है। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम भी राजसिंहासनके मोहमें चौदह वर्षके वनवास जानेकी आज्ञा शिरोधार्य नहीं करते और अयोध्यामें ही बने रहते तो उनके पराक्रम और शक्तियोंका पता कैसे चलता? पृथ्वीसे राक्षसोंका नाश कैसे होता और क्या आज उनको कोई जान पाता? सर्वथा नहीं। श्रीरामने महाशक्तिशाली लंकाधिपति रावणकी राक्षसी सत्ताको समाप्त किया। इसीलिये आज वे घर-घरमें मर्यादापुरुषोतमके रूपमें पूजे जाते हैं। कहा जाता है कि समुद्रमें अनेकों नदियोंके समा जानेपर भी वह विचलित नहीं होता, हमेशा अचल शान्त बना रहता है। ठीक इसी प्रकार बुद्धिमान् मनुष्य भी जीवनकी प्रत्येक परिस्थिति (अनुकूल और प्रतिकूल)-में विचलित नहीं होते।

अनुकूल और सुखद परिस्थितियोंमें तो प्रत्येक व्यक्ति आनन्दित और उत्साहित रहता है, परंतु प्रतिकूल परिस्थितियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(विपत्तियों)-में जो शान्त और उत्साहित रहे, अपना मानसिक सन्तुलन ठीक रखे, सूझ-बूझसे काम करता रहे, वही सफलता प्राप्त करता है और संसारमें उसीकी प्रशंसा होती है। महाभारतके अनुसार पाण्डवोंको बारह वर्षका वनवास और एक वर्षका अज्ञातवास भोगना था। पाण्डवोंने वनवासमें अनेक प्रकारकी विपत्तियोंका धैर्यपूर्वक सामना किया। अज्ञातवासमें उन्होंने विराट-नरेशके यहाँ शरण ली। युधिष्ठिर राजाके यहाँ कंक नामसे ब्राह्मण बने और सेवकके रूपमें कार्य किया, सर्वश्रेष्ठ गदाधर बलशाली भीमको रसोइयेके रूपमें कार्य करना पड़ा, सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर अर्जुनने एक वर्ष बृहन्नला बनकर राजकुमारी उत्तराको नृत्यगान सिखाया, नकुलने ग्रन्थिकके रूपमें घोड़ोंकी जिम्मेदारी ली, सहदेव अरिष्टनेमिके रूपमें मवेशियोंकी देखभालके लिये नियुक्त हुए और द्रौपदी सैरन्ध्री बन रानीकी सेविकाके रूपमें नियुक्त हुई। इस प्रकार पाण्डवोंने विपत्तियोंमें परिस्थितियोंके अनुसार स्वयंको ढाला और पूरी तरह वैसा ही जीवन जिया, जैसा कि उस परिस्थितिमें आवश्यक था। इस प्रकार पाण्डवोंके जीवनचरित्रसे शिक्षा मिलती है कि हमें विपरीत परिस्थितियोंका धैर्यपूर्वक सामना करते हुए संकटका समय गुजारना चाहिये।

वास्तवमें जिस प्रकार आगमें तपाये जानेके बाद ही सोनेमें चमक आती है, उसी प्रकार मनुष्यके चरित्रमें अनेक सद्गुणोंका विकास विपत्तियोंमें ही होता है। उदाहरणार्थ—पराक्रमी अर्जुनने वनवासमें ही कठिन तपस्याद्वारा देवताओंको प्रसन्नकर उनसे दिव्यास्त्र प्राप्त किये और महाभारतके युद्धमें विजय प्राप्त की।

श्रीमद्भागवत (१।८।२५) के अनुसार—'पाण्डवोंकी माता देवी कुन्तीने भगवान् श्रीकृष्णसे वरदान माँगा था कि आप हमलोगोंको बार-बार विपत्ति दिया करें। बार-बार विपत्तिसे स्मृतिरूपसे आप हमें मिलते हैं और आपका मिलना मोक्षदायक होता है—

विपदः सन्तु नः शश्वत् तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥

बुआकी याचना सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण स्तब्ध रह गये और बोले—तुम दुःखोंको माँग रही हो बुआ। क्यों ? कुन्तीने कहा—कृष्ण! तुम्हारा एक नाम दीनबन्धु है, लोग तुम्हें आरतिहरण और दुःखहारी भी कहते हैं। विपत्तियों—बुरे दिनोंमें तुम्हारा निरन्तर स्मरण होता रहता है, किंतु सुखमें मनुष्य भूल जाता है, इसी बहाने यदि मनुष्य ईश्वरको स्मरण करता है तो भी ठीक है।

इसी तथ्यको श्रीरामचरितमानसमें स्पष्ट करते हुए श्रीहनुमान्जी महाराज कहते हैं—हे प्रभु! आपका स्मरण और भजन न होना ही विपत्ति है—

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई॥
(रा०च०मा० ५।३२।३)

परमेश्वरकी शरणमें जाना और उनका आश्रय लेना ही दुःखोंसे सर्वथा दूर रहनेका सर्वश्रेष्ठ उपाय है। गीतामें कथित भगवान्के इस महामन्त्रको सदा स्मरण रखें और उसका पालन करें—'**मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि**' (गीता १८।५८)।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा है कि 'मुझमें चित्त लगा लो, फिर मेरी कृपासे तुम सारी कठिनाइयोंको पार कर जाओगे।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधकोंके प्रति—

[अवस्थातीत तत्त्व]

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥

(गीता २।१६)

('हे अर्जुन!) असत् वस्तुका तो अस्तित्व नहीं है और सत्का अभाव नहीं है। इस प्रकार दोनोंका ही तत्त्व ज्ञानी पुरुषोंद्वारा देखा गया है।

समस्त सांसारिक पदार्थ—वस्तु, शरीर, इन्द्रियाँ, अन्त:करण, क्रिया, भाव और परिस्थिति आदि-अन्तवाले एवं परिवर्तनशील हैं, किंतु इनका ज्ञाता एक ऐसा तत्त्व है, जो अनादि, अनन्त एवं परिवर्तनरहित है।

शरीरका निर्माण प्रकृतिसे हुआ है। इसके तीन भेद माने गये हैं—स्थूल, सूक्ष्म और कारण। चमड़ा, चर्बी, मांस, हड्डी, रुधिर एवं मल-मूत्रका संघातरूप पिण्ड—स्थूल-शरीर और पाँच प्राण, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि—इनका समुदाय सूक्ष्म-शरीर कहलाता है तथा अविद्या (स्वभाव) कारण-शरीरका स्वरूप है। स्थूल-शरीरकी अवस्था है जाग्रत्, सूक्ष्म-शरीरकी स्वप्न तथा कारण-शरीरकी निद्रा, मूर्च्छा एवं समाधि।

ये सभी अवस्थाएँ तो जानी जा सकती हैं, परंतु इन सबका ज्ञाता बुद्धिसे परे है। वह स्वयं ही अपनेको जानता है, अर्थात् 'चेतन' तत्त्व है। वह जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, मूर्च्छा एवं समाधि—सभी अवस्थाओंमें अनुस्यूत होते हुए भी उनसे निर्लिप्त होनेके कारण किसीसे भी सम्पृक्त नहीं रहता अर्थात् अपने-आपमें ही स्थित है। वास्तवमें ये सभी अवस्थाएँ उसीके आश्रित, उसीके अन्तर्गत रहती हैं, अर्थात् इनकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। ये प्रतिक्षण बदलती रहती हैं, परंतु वह (तत्त्व) उसी प्रकार ज्यों-का-त्यों बना रहता है, जैसे आकाशसे उत्पन्न होनेवाले बादल उसीमें स्थित रहते हैं और गरज-बरसकर अन्तमें उसीमें विलीन हो जाते हैं, किंतु आकाश ज्यों-का-त्यों निर्लिप्त बना रहता है।

इन पाँचों अवस्थाओंको प्रकाशित करनेवाला वह तत्त्व एक 'सामान्य-प्रकाश' (ज्ञान) है, किंतु वह बुद्धिका ज्ञान नहीं है। उदाहरणार्थ—गाढ़ सुषुप्ति एवं मूर्च्छासे जागनेपर मनुष्य कहता है—'इतनी गहरी नींद आयी कि मुझे कुछ भी सुध नहीं थी', इसमें 'मुझे कुछ भी सुध नहीं थी'—यह वाक्यांश संसारके अभाव एवं सर्वप्रकाशक समष्टि तत्त्वके भावकी ओर संकेत करता है; क्योंकि सुषुप्ति एवं मूर्च्छामें बुद्धि अपने कारण अविद्यामें लीन हो जाती है। वह सर्वप्रकाशक तत्त्व स्वयंप्रकाश एवं चिद्घन है। वास्तवमें उसी चेतनसे बुद्धि भी प्रकाशित होती है। समाधि-अवस्थामें बुद्धि जाग्रत् तो रहती है, परंतु स्वरूपमें तदाकार हो जानेके कारण अक्रिय बनी रहती है, अर्थात् इसकी अवगमनरूप क्रियाका लोप हो जाता है।

जैसे नेत्रोंद्वारा अन्धकार और प्रकाश—दोनोंका भान होता है, उसी प्रकार बुद्धिके अभाव और भाव—दोनोंको वह सामान्य-प्रकाश (ज्ञानस्वरूप) प्रकाशित करता है। इसी सामान्य-प्रकाश (आत्मतत्त्व)-के साथ समस्त जीवोंकी स्वरूपसे स्वत:सिद्ध एकता है—**'ममैवांशो जीवलोके'** (गीता १५।७), परंतु इसे भूलकर वे उन स्थूल, सूक्ष्म और कारण-शरीरों एवं जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति आदि अवस्थाओंके साथ अपनी एकता मान लेते हैं, जिनका परिवर्तनशील होनेके कारण सदा एकरस रहना सम्भव नहीं। इसी कारण इन्हें स्थिर रखनेके असफल प्रयासमें लगा हुआ विनाशी एवं परिवर्तनरहित जीवात्मा महान् क्लेश भोगता रहता है। ये अवस्थाएँ बदलती रहती हैं, परंतु इनका प्रकाशक (आत्मतत्त्व) ज्यों-का-त्यों ही रहता है। शरीर, अन्त:करण, अवस्था, क्रिया एवं पदार्थोंको प्रकाशित करनेके कारण वह आत्मतत्त्व 'प्रकाशक' कहलाता है। वस्तुतः उसका कोई नाम नहीं है; क्योंकि प्राकृतिक पदार्थोंकी ओरसे दृष्टि हटते ही केवल शुद्ध सच्चिदानन्दघन तत्त्व ही रह जाता है। फिर तो वहाँ न प्रकाशक है और न प्रकाश्य ही।

वह (आत्मतत्त्व) तो अवस्थातीत है। उसमें जो अपनी अटल स्थिति है, उसका अनुभवकर जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति आदि अवस्थाओंमें अपनी मानी हुई स्थितिका परित्याग कर देना चाहिये अर्थात् न इन्हें अपना स्वरूप मानना है और न इनमें ममता ही करनी है; क्योंकि जबतक जीव इन अवस्थाओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं इनके द्वारा प्रकाशित पदार्थोंमें महत्त्वबुद्धि रखता है, तबतक वह (स्वरूपत:) इनसे अलग होते हुए भी पृथक्‌ताका अनुभव नहीं कर पाता। (अपना महत्त्व जान लेनेपर ही वह इनसे विमुक्त हो सकता है।)

इन अवस्थाओंको महत्त्व देना क्या है?—इनसे सुख प्राप्त करनेकी इच्छा रखना। यथा—जाग्रदवस्थामें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि विषयोंसे तथा स्वप्नावस्थामें मानसिक रूपसे इन्हीं पाँचों विषयोंकी प्राप्तिसे सुखी और अप्राप्तिसे दु:खी होना, सुषुप्तिमें (यद्यपि अन्त:करणकी वृत्तियोंके विलीन हो जानेके कारण जीवमें इन सब विषयोंको भोगनेकी क्षमता नहीं रह जाती, तथापि) विश्रामजनित सुखका अनुभव करना, समाधि-अवस्थामें भी स्वरूपमें तल्लीन हुई जाग्रत्-बुद्धिके माध्यमसे स्वरूपमें स्थितिजनित सुख प्राप्तकर प्रसन्न होना। इस प्रकार इन अवस्थाओंसे उद्भूत सुखका उपभोग करना एवं वह अधिकाधिक उपलब्ध होता रहे—ऐसी आशा रखना ही जीवके बन्धनका मुख्य कारण है। यदि वह इन अवस्थाओं एवं पदार्थोंकी सुखासक्तिका सर्वथा त्याग कर दे तो उसे तत्काल शान्तिका अनुभव हो सकता है—'**त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्**' (गीता १२।१२)।

जाग्रदवस्थामें सांसारिक पदार्थोंकी अपेक्षा न रखनेसे स्वप्नावस्थाका प्रत्येक चिन्तन स्वत: ही भगवत्सम्बन्धी होने लगता है; क्योंकि सांसारिक पदार्थोंमें राग ही विषय-चिन्तनका मुख्य कारण है। इस भगवच्चिन्तनजनित सुखका उपभोग न करके उससे भी उपराम ही रहना चाहिये। गाढ़ सुषुप्तिद्वारा थकावट मिटनेके फलस्वरूप विश्राम-सुखसे एवं समाधि-अवस्थामें स्वरूपमें तदाकार हुई बुद्धिके माध्यमसे प्राप्त हुए सात्त्विक सुखसे भी उपराम होनेपर ही उपर्युक्त अवस्थाओंसे सम्बन्ध-विच्छेद होकर तत्त्वमें स्थिति हो सकती है।

हम सबकी उस तत्त्वकी स्वत: स्थिति होते हुए भी उसका अनुभव न होनेका कारण है—क्रिया, चिन्तन एवं स्थिरतासे उत्पन्न होनेवाले सुखकी इच्छा। यह सुखासक्ति ही बन्धन है—मोह है। अनादिकालसे हमारी जो उस तत्त्वमें स्वत: स्वाभाविक स्थिति है, उसका अनुभव होना 'ज्ञान' है। ज्ञानसे मोहका नाश हो जाता है—

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव।

(गीता ४।३५)

पदार्थाभावकी अपेक्षा पदार्थ-स्थिति, चंचलताकी अपेक्षा स्थिरता एवं परिश्रमकी अपेक्षा विश्रामका अस्तित्व है। समाधिजनित शान्ति भी अशान्तिकी अपेक्षासे ही कही जाती है, परंतु (परमात्म-) तत्त्व किसी प्रकारकी अपेक्षा नहीं रखता, प्रत्युत वह सर्वदा निरपेक्ष है। उस तत्त्वतक इन अवस्थाओंकी पहुँच ही नहीं है। यद्यपि उसे कुछ लोग तुरीयावस्था भी कह देते हैं, तथापि वास्तवमें वह अवस्था नहीं है। अवस्थामें स्थिति की जाती है, किंतु इस तत्त्वमें स्थिति करनी नहीं पड़ती; क्योंकि इसमें सबकी स्वाभाविक स्थिति सदासे ही है। वह (परमात्म-) तत्त्व सबको स्वत: प्राप्त है, केवल प्रकृतिजन्य शरीर, अवस्था, परिस्थिति आदिमें अपनी मानी हुई स्थितिको अस्वीकारमात्र कर देना है।

स्वजनोंके साथ आपका व्यवहार

(डॉ० श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति)

स्वजन—स्वजनोंका सामान्य आशय है—आपके पति, पत्नी, पुत्र, पुत्रियाँ, माता, पिता, सास, बहू, देवरानी, जेठानी, ननद, भाभी, भाई, बहन आदि निकट परिवारजन; आपके रिश्तेदार, मित्र, पड़ोसी, आपके उच्चाधिकारी, सहयोगी तथा आपके साथ कार्य करनेवाले भाई, बहन आदि।

व्यवहार—आपके स्वजन आपके साथ दो प्रकारका व्यवहार करेंगे—अच्छा तथा बुरा। अच्छे व्यवहारका अर्थ है—आपको सुख, सुविधा, सम्मान, प्रेम, प्रसन्नता देना, आपकी सेवा करना, आपको क्रियात्मक सहयोग देना। खराब व्यवहारका अर्थ है—आपकी निन्दा, आलोचना, अपमान, तिरस्कार, चुगली, बदनामी करना; आपको आर्थिक, शारीरिक तथा मानसिक नुकसान पहुँचाना। मानसिक नुकसानका अर्थ है—मनमें होनेवाली चिन्ता, अशान्ति, निराशा तथा दु:ख आदि।

राग-द्वेष नहीं—सावधान! जब आपके स्वजन आपके साथ अच्छा व्यवहार करें तो आप उनके रागमें नहीं फँसें और जब वे आपके साथ खराब व्यवहार करें तो आप उनके द्वेषमें नहीं फँसें। रागमें फँसनेका अर्थ है—आपके सुखके लिये उनकी जरूरत महसूस करना, उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वियोगका भय लगना, उनका वियोग हो जानेपर दुःख, चिन्ता, अशान्ति हो जाना। द्वेषमें फँसनेका अर्थ है—मनमें उनके प्रति क्रोध पैदा हो जाना, मनमें उनको बुरा समझना, उनका बुरा सोचना, उनसे बदला लेनेकी भावना रखना, मनमें उनसे नाराज रहना, व्यवहारमें उनपर क्रोध तथा उनके साथ लड़ाई-झगड़ा करना। राग तथा द्वेष दोनों ही खतरनाक शत्रु हैं, जिनसे आपको जबरदस्त नुकसान होगा। श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्‌की वाणी है—

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ॥

(३। ३४)

इसका अर्थ है—इन्द्रियके अर्थमें अर्थात् प्रत्येक इन्द्रियके विषयमें राग और द्वेष छिपे हुए हैं। मनुष्यको उन दोनोंके वशमें नहीं होना चाहिये; क्योंकि वे दोनों ही इसके कल्याणमार्गमें विघ्न करनेवाले महान् शत्रु हैं।

नुकसान—द्वेषसे आपको निम्नलिखित नुकसान होंगे—आपके शरीरमें ब्लडप्रेशर, सूगर, हार्टअटैक, लकवा, कैंसर-जैसे असाध्य रोग पैदा हो सकते हैं। आपके मन एवं मस्तिष्कमें भयंकर अशान्तिसे तनाव हो जायगा। आप चिन्ता एवं डिप्रेशनसे ग्रस्त हो जायँगे। आपके परिवारमें कलह पैदा हो जायगा। आपके बालक तथा परिवारजन क्रोधी स्वभावके हो जायँगे। आपके रक्तमें द्वेषरूपी जहर पैदा होने लगेगा। साधन-पथसे आपका पतन हो जायगा। मरनेके बाद आपकी सद्‌गति भी नहीं होगी।

राग—सामान्य भाई-बहन रागके नुकसानों से परिचित नहीं हैं। राग आपको जीवनभर भय तथा चिन्तामें आबद्ध रखेगा और उस दिन बहुत रुलायेगा, जिस दिन जिसमें आपका राग है, वह भगवान्‌के घर चला जायगा। यदि आपका शरीर पहले शान्त हो गया तो अन्तिम समयमें आपको उनकी याद आयेगी, जिनमें आपका राग है और उन्हें छोड़नेका आपको भीषण दुःख होगा।

मुक्त रहना, होना—भगवान्‌ने आपको ऐसी शक्ति दी है कि आप अभी-अभी इसी क्षण राग-द्वेषसे सर्वांशमें मुक्त हो सकते हैं और सदैवके लिये राग-द्वेषसे मुक्त रह सकते हैं। विचार कीजिये, आप राग-द्वेषमें कैसे फँसते हैं? इसका उत्तर है—केवल गलत बात सोचनेसे, कौन-सी गलत बात? जब आप इस गलत बातको सोचते हैं कि अमुक स्वजनने मेरी बहुत सेवा की, मुझे बहुत सुख दिया, तब आप उसके रागमें फँस जाते हैं। जब आप इस गलत बातको सोचते हैं कि अमुक स्वजनने मुझे बहुत दुःख दिया, बड़ा भारी नुकसान पहुँचाया, तब आप उसके द्वेषमें फँस जाते हैं। यदि आप सही बातको सोच लें, अपने मन-मस्तिष्कमें जमा लें, उसको मान लें तो आप इसी पल राग-द्वेषसे मुक्त हो जायँ। सही बात क्या है? यदि आप इस सही तथा सच्ची बातको सोच लें कि मुझे किसी भी स्वजनने किसी भी प्रकारका कभी भी न तो सुख दिया और न दुःख दिया तो आप इसी पल राग-द्वेषसे मुक्त हो जायँगे।

सुख-दुःख कौन देता है—आपके शरीरको दो प्रकारके सुख मिलते हैं—सुख-सामग्री और सुख-सुविधाएँ। भोजन, खाने-पीनेकी जो चीजें पेटमें जाती हैं, उनका नाम है सुख-सामग्री। अच्छे वस्त्र, अच्छा मकान, जेवर, उच्च श्रेणीकी यात्राएँ, कार आदिके रूपमें शरीरको आराम और विलासिताकी वस्तुएँ मिलती हैं, उनका नाम है—सुख-सुविधाएँ। आपके शरीरको मिलनेवाली सुख-सामग्री एवं सुख-सुविधाएँ पूर्णतया आपके प्रारब्धसे मिलती हैं। आपके स्वजन एक पोस्टमैनकी तरह उनको आपतक पहुँचानेमें माध्यम बनते हैं। पत्र भेजता है आपका बेटा, उसको लाकर देता है पोस्टमैन। इसी प्रकार सुख-सामग्री और सुख-सुविधाएँ मिलती हैं आपके प्रारब्धसे और देते हुए दिखते हैं आपके स्वजन। प्रारब्ध पहले बनता है और शरीर बादमें। आपके स्वजनोंके माध्यमसे आपको स्पर्श, बातचीत, घूमने-फिरनेका जो सुख मिलता है, वह आपके स्वजन नहीं देते हैं। वह तो आपकी कामनापूर्तिका परिणाम है। दुःखके तीन रूप हैं—आर्थिक नुकसान, शारीरिक नुकसान, मानसिक नुकसान। मानसिक नुकसानका अर्थ है—मनमें होनेवाली अशान्ति, चिन्ता, तनाव, डिप्रेशन। आपको होनेवाले शारीरिक और आर्थिक नुकसानके प्रधान कारण इस प्रकार हैं—आपके कर्म, आपका भाग्य, आपका प्रारब्ध, आपकी ग्रहदशा, आपकी असावधानी, होनहार, देवदोष, पितृदोष और विधिका विधान। कभी-कभी आपके स्वजन नुकसानमें केवल माध्यम बनते हैं, वे नुकसान करते हुए दिखते हैं। आपको होनेवाले मानसिक नुकसानका वास्तविक और मूल कारण आपकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही पाँच भूलें हैं—पराधीनता, शरीर, निकट परिवारजन, सामान-सम्पत्तिमें आपका मोह, 'शरीर' को 'मैं' मान लेना; अपने स्वरूप (मैं भगवान्‌का अंश हूँ)-को भूल जाना; भगवान्‌में आपका कमजोर-कच्चा विश्वास। यही बात श्रीरामचरितमानसमें आयी है—

करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा॥
काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता॥
कौसल्या कह दोसु न काहू। करम बिबस दुख सुख छति लाहू॥
सुखस्वरूप रघुबंसमनि मंगल मोद निधान।
ते सोवत कुस डासि महि बिधि गति अति बलवान॥
सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ॥

(रा०च०मा० २।२१९।४, २।९२।४, २।२८२।३, २।२००, २।१७१)

माध्यम बननेवाले स्वजनोंके साथ क्या करें— आपके सुख-दुःखमें माध्यम बननेवाले स्वजनोंको भगवान्‌का स्वरूप मानकर उन्हें प्रेम दीजिये। प्रेम देनेसे उनमें आपको अपने भगवान्‌के दर्शन हो जायँगे। श्रीरामचरितमानसमें भगवान् शंकरकी वाणी है—

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

(रा०च०मा० १।१८५।५)

सुख देनेवाले स्वजनोंको प्रेम देनेका तरीका इस प्रकार है—उनको भगवान्‌का स्वरूप मानें, एकान्तमें बैठकर उनको इस प्रकार प्रणाम करें—हे भगवान्! आप स्वयं मेरे स्वजन बनकर पधारे हैं, आपके इस रूपको मेरा प्रणाम। व्यवहारमें उनका आदर करें, उनके प्रति आभार प्रदर्शित करें। उन्होंने आपको जितना सुख दिया है, उससे ज्यादा सुख उनको देनेकी भावना रखें, यथाशक्ति सुख दें, बदलेमें यह आशा नहीं रखें कि वे आपको वापस सुख दें। उनके सुखके लिये अपना बड़े-से-बड़ा सुख प्रसन्नतापूर्वक छोड़ दें और बड़े-से-बड़ा दुःख प्रसन्नतापूर्वक झेल लें।

दुःख देनेवाले स्वजनोंको प्रेम देनेका तरीका इस प्रकार है—अपने मनमें उनको बुरा नहीं समझें, उनका बुरा न सोचें, उनके प्रति नाराजगी, ईर्ष्या तथा बदला लेनेकी भावना नहीं रखें। व्यवहारमें उनकी निन्दा, अपमान, तिरस्कार, नुकसान नहीं करें, अपनी तरफसे उनके साथ बोलचाल तथा आना-जाना बन्द नहीं करें। यदि आप ऐसा कुछ भी करते हैं तो यह माना जायगा कि उनके प्रति आपके मन तथा व्यवहारमें क्रोध है। आपको क्रोधसे होनेवाले सभी खतरनाक नुकसान होंगे। आपमें क्रोध न करनेकी शक्ति तब आयेगी, जब आप इस सच्ची बातको मान लेंगे कि उन्होंने मेरा कोई नुकसान नहीं किया, किसी भी प्रकारका दुःख नहीं दिया। उनको भगवान्‌का स्वरूप मानें, एकान्तमें बैठकर प्रणाम करें। अपने मनमें हित तथा करुणाकी भावना रखें, हृदयसे उनके हितके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करें। व्यवहारमें उनको समुचित सुख, सुविधा, सम्मान, प्रसन्नता दें। उनके हितके लिये बाह्य स्तरपर उनके साथ कठोर व्यवहार करना पड़े तो कठोर व्यवहार भी करें, लेकिन भीतरमें करुणा रहे। रावणको भगवान् श्रीरामने अनेक तरीकोंसे समझाया। रावण नहीं माना। फिर भी भगवान्‌को क्रोध नहीं आया, करुणा आयी, उनके हृदयमें हित-भावना रही। उन्होंने अंगदसे कहा—

काजु हमार तासु हित होई। रिपु सन करेहु बतकही सोई॥

(रा०च०मा० ६।१६।८)

इसका अर्थ है—शत्रुसे वही बातचीत करना, जिससे हमारा काम हो और उसका कल्याण हो।

भगवान्‌ने रावणको मारकर उसको अपना धाम दिया, उसका कल्याण किया। उसको मारा नहीं, तारा। उसकी पत्नी मन्दोदरीको भगवान्‌की करुणाका अनुभव हुआ। उसने कहा—

आजन्म ते परद्रोह रत पापौघमय तव तनु अयं।
तुम्हहू दियो निज धाम राम नमामि ब्रह्म निरामयं॥
अहह नाथ रघुनाथ सम कृपासिंधु नहि आन।
जोगि बृंद दुर्लभ गति तोहि दीन्हि भगवान॥

(रा०च०मा० ६।१०४ छं०, ६।१०४)

इसका अर्थ है—तुम्हारा यह शरीर जन्मसे ही दूसरोंसे द्रोह करनेमें तत्पर तथा पापसमूहमय रहा। इतनेपर भी जिन निर्विकार ब्रह्म श्रीरामजीने तुमको अपना धाम दिया, उनको मैं नमस्कार करती हूँ।

अहह! नाथ! श्रीरघुनाथजीके समान कृपाका समुद्र कोई नहीं है, जिन भगवान्‌ने तुमको वह गति दी जो योगिसमाजको भी दुर्लभ हो।

उनके हितके लिये आप अपने सुखको प्रसन्नतापूर्वक छोड़ दीजिये, दुःखको प्रसन्नतापूर्वक झेल लीजिये। इस प्रेम-साधनासे उनमें आपको प्रभुके दर्शन हो जायँगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नामकी साधना कैसे करें ?

(समर्थ सद्‌गुरु श्रीब्रह्मचैतन्यजी महाराज गोंदवलेकर)

नामकी साधना कैसे करें ? पत्थरपर बहुत पानी एकदमसे डाल दिया तो पत्थर केवल भीगेगा, फिर पानी बह जायगा और पत्थर सूख जायगा। किंतु वह पानी यदि बूँद-बूँद पत्थरके एक ही जगहपर लगातार गिरता रहेगा तो पत्थरमें छेद होगा। कुछ दिनोंके बाद पत्थर टूट भी जायगा। उसी तरह किसी निश्चित स्थानपर नामस्मरणकी साधना की जायगी तो उसका परिणाम अधिक होता है। चक्कीमें दो पाटे होते हैं, उनमेंसे एक स्थिर रहकर यदि दूसरा घूमता रहे तो अनाज पिस जाता है और आटा बाहर आता है, लेकिन यदि दोनों पाटे घूमते रहेंगे तो अनाज नहीं पिस पायगा और परिश्रम व्यर्थ होगा। आदमीके दो पाटे हैं—मन और शरीर। उनमेंसे मन स्थायी है और शरीर घूमनेवाला पाटा है। मनको भगवान्‌के प्रति स्थिर किया जाय और शरीरसे गृहस्थीके काम किये जायँ। प्रारब्धकी सीमा या सम्बन्ध शरीरतक होता है। प्रारब्धरूपी खूँटा शरीररूपी पाटेमें बैठकर उसे घुमाता है। मनरूपी पाटा स्थिर रहता है। देहको प्रारब्धपर छोड़ दिया जाय और मनको नामस्मरणमें विलीन किया जाय। यही नामसाधना है। यह साधना कोई विशेष व्यक्ति ही कर पायेगा ऐसा नहीं, साधना तो कोई भी कर पायेगा। गरीबको गरीबीका दुःख होता है, इसलिये साधना नहीं कर पाता, धनवान्‌को अपने धनका अहंकार और लोभ होता है, इसलिये साधना करनेको समय नहीं, विद्वान्‌को विद्वत्ताका घमण्ड होता है इसलिये और अनाड़ीको; साधना कैसे की जाय—इसे वह समझता नहीं, इसलिये साधना नहीं हो पाती। शंकित मनसे कितनी भी साधना की, कितना भी नामस्मरण किया तो भी सन्तोष नहीं होगा।

नीतिधर्मका आचरण, शास्त्रशुद्ध व्यवहार, शुद्ध अन्तःकरण और भगवान्‌का स्मरण किया गया तो साधक अंततक पहुँच जायगा और अंततक पहुँचेगा तो लाभ होगा, अन्यथा नहीं। गृहस्थी चलाते समय बुरे विचार मनमें आते ही हैं, उसी तरह परमार्थ-साधना करते समय यदि बुरे विचार मनमें आते हों तो नामस्मरण करो, ऐसा करनेपर बुरे विचार बढ़ेंगे नहीं। दृढ़तासे नामस्मरण करते रहो। जहाँ कर्तव्य-जागृति है और भगवान्‌की स्मृति है, वहाँ समाधानकी प्राप्ति होगी ही। 'भगवन्! मैं तो तुम्हारा ही हूँ'—ऐसा निरन्तर कहनेसे भगवान् प्रकट होते रहेंगे और हमपर जो अहंताका बोझ होता है, वह भी कम होता रहेगा।

नामके प्रति दृढ़ भाव कैसे उत्पन्न होगा ?

नामके प्रति प्रेम नामसे ही उत्पन्न होगा। ऐसा प्रेम प्राप्त होनेके लिये हमें विषयोंके प्रति अपना प्रेम कम करना चाहिये। ऐसा दृढ़ भाव चाहिये कि नाम ही तारेगा, नाम ही सब कुछ करेगा। ऐसा भाव रखकर व्यवहार करते रहें। लेकिन सफलता तो भगवान्‌की ही कृपासे होगी, यह भाव भी बनाये रखें। वैद्यके यहाँसे दवा हम नौकरसे मँगवाते हैं, लेकिन ऐसा नहीं मानते कि दवाका लाभ नौकरके कारण हुआ और थोड़ा अधिक सोचें तो ऐसा क्यों न मानें कि दवासे परमात्माकी कृपाके कारण लाभ हुआ। परमात्माकी शरण जानेका मतलब है, परमात्मा अपना है—ऐसा मानना। हम कुछ नहीं करते, वही हमारे लिये सब कुछ करता है, ऐसा दृढ़ विश्वास रखना। हम अपने पत्नी-बच्चोंसे प्रेम करते हैं इसलिये कि उन्हें हमने अपना माना है। यानी प्रेम अपनत्वमें होता है। तो फिर यदि हम परमात्माको अपना मानें तो क्या उससे सहजहीमें प्रेम उत्पन्न नहीं होगा? और दूसरी बात यह है कि जब यह हमारा प्राण-प्यारा सखा हमारे लिये सब कुछ कर ही रहा है तो फिर हमें चिन्ताके लिये स्थान भी कहाँ रहा? हमारा हित हमारी देहबुद्धि नष्ट हो जानेमें ही है। परमात्माके प्रति अपनत्व उत्पन्न होनेके लिये नामका खूब सहवास चाहिये अर्थात् अखण्ड नामस्मरण करना चाहिये। सिद्धियों, चमत्कारोंके पीछे न पड़ें। वे हमारे मार्गके विघ्न हैं। वस्तुतः उन्हें हमारे पीछे लगना चाहिये। कहते हैं कि किसी-किसीको साँप नहीं काटता, तो इसमें कौन-सी बड़ी बात है? साँपको ही नहीं, सबको भगवद्भावसे देखेंगे तो कोई हमारा शत्रु नहीं होगा। माँ मेरे पास है, इस भावनासे बच्चा जैसे निर्भय रहता है, वैसे ही भगवान् हमारे पास हैं, इस भावनासे हम निर्भय रहें।

हमें जिस गाँवको जाना है, उस गाँवको जानेवाली गाड़ी आयी या नहीं,बस इतना देखें, गाड़ीमें बैठनेपर कौन मिलता है, इसका कोई बड़ा महत्त्व नहीं है। मान लो हमें गाड़ीमें कोई नहीं मिला, तो हम आरामसे सोकर या लेटकर अपने गाँव जा सकते हैं। उसी प्रकार हमें अपनी साधना करनी चाहिये। सृष्टिके कितने तत्त्व हैं, इन सब बातोंके झमेलेमें पड़नेकी जरूरत ही नहीं। उन तत्त्वोंका निर्णय कभी होनेवाला नहीं है। यह ध्यानमें रखना चाहिये कि निःशंक होनेके सिवाय नामस्मरणमें स्थिरता नहीं आती। जबतक देहबुद्धि है, तबतक नामस्मरणका महत्त्व समझमें नहीं आयेगा। यदि अपना उद्धार हो—ऐसा हम चाहते हैं, तो नामस्मरण छोड़ना नहीं चाहिये।

[संग्राहक—श्रीगो०सी० गोखले]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीकृष्णकी आराधिका—श्रीराधिका

(पं० श्रीकपिलदेवजी तैलंग)

पद्मपुराणमें भगवान् श्रीकृष्णकी वन्दना करते हुए कहा गया है—

सच्चिदानन्दरूपाय विश्वोत्पत्त्यादिहेतवे।
तापत्रयविनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नुमः॥

अर्थात् सत्, चित्, आनन्दस्वरूप, विश्वकी उत्पत्ति, पालन एवं संहारके कारणभूत तथा दैहिक, दैविक और भौतिक—त्रितापोंके विनाशक श्रीकृष्णकी हम वन्दना करते हैं।

जहाँ भी कृष्णके साथ श्रीका प्रयोग होता है, वहाँ श्रीराधाजी विद्यमान रहती हैं। **श्रिया सहितः कृष्णः—श्रीकृष्णः।** श्रीरूप तो श्रीराधाजी ही हैं, अतः इस श्लोकमें राधासहित श्रीकृष्णको प्रणाम ही अभिधेय है।

श्रीकृष्ण सत्-चित् और आनन्दस्वरूप हैं। वैष्णव सन्तोंने सत्से वृन्दावनधाम, चित्से चित्स्वरूप भगवान्की लीलाकी परम सहायिका योगमाया और आनन्दसे श्रीकृष्णकी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधाको व्याख्यायित किया है। भाव यह है कि नित्य वृन्दावनधाम (गोलोक), नित्य योगमाया और नित्य श्रीराधिका ही हैं, जिनकी नित्य लीला सदैव संचालित होती रहती है। कहा गया है—

'रासे संभूय गोलोके या दधाव हरेः पुरा।'

गोलोकमें रासके समय जो श्रीकृष्णके समीप धावन करके पहुँचीं, वे राधाके रूपमें प्रख्यात हुईं।

राधा और श्रीमद्भागवत—श्रीमद्भागवतके रचनाकार भगवान् वेदव्यासने राधा या अन्य किसी भी गोपीका नामोल्लेख नहीं किया है। **'अनयाराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः'** यहाँ राधाका नाम संकेतितमात्र है। राधा—इस नामका उल्लेख न करनेका कारण व्यासजी स्वयं जानते थे कि राधाजी उनके पुत्रकी परमगुरु एवं आराध्य हैं। यदि उनका नामोल्लेख होता तो भगवान् शुकदेवजीको समाधि लग जाती। प्रेमविह्वलतामें वे मूर्च्छित हो जाते तो फिर कैसे आगे बढ़ती भागवतीकथा और कैसे होता राजा परीक्षित्का उद्धार; क्योंकि—

'राधास्मरणमात्रेण मूर्च्छा षाण्मासिकी भवेत्'

छः माहकी मूर्च्छा आ जाती कथाकार शुकदेवजीको। तबतक तक्षक अपना कार्य पूर्ण कर लेता। कैसे होती परीक्षित्के बहाने कोटि-कोटि जनोंको मृत्युसे निर्भयताकी प्राप्ति? अतः भागवतमें राधानामका उल्लेख नहीं किया गया।

राधा और ब्रह्मवैवर्तपुराण—श्रीराधाका परिचय ब्रह्मवैवर्तपुराणमें वर्णित है, वहाँ श्रीकृष्णके साथ उनके विवाहका प्रसंग भी वर्णित है। स्वयं ब्रह्माजीने मन्त्रोच्चार करके राधा-श्रीकृष्णका विवाह सम्पन्न कराया।

श्रीकृष्णकी प्रेमस्वरूपा श्रीराधाका समर्पणभाव—एक बार भगवान् श्रीकृष्णने स्वयंके प्रति श्रीराधाके समर्पण एवं प्रेम को जगजाहिर करनेके लिये बीमारीका बहाना किया। अनेक चिकित्सकोंद्वारा भी रोगका निरसन नहीं हुआ, दवा तो रोगकी होती है, रोगके बहानेकी नहीं। देवर्षि नारदजी भगवान्की स्वास्थ्यसम्बन्धी जानकारीके लिये उपस्थित हुए तो भगवान् श्रीकृष्णने बताया कि मेरा रोग सामान्य औषधिके सेवनसे नहीं जा सकता, उसके लिये तो मेरे किसी समर्पित प्रेमी भक्तजनकी चरणधूलिको मलनेसे मेरी पीड़ा शान्त हो सकती है। आप कृपया किसी प्रेमी भक्तकी चरणधूलि ले आइये। नारदजीने सोचा कि श्रीकृष्णके अनन्य भक्त प्रेमीजन तो वृन्दावनमें निवास करते हैं। अतः नारदजी स्वयं वृन्दावन पहुँचे और गोप-गोपियोंसे अपनी चरणधूलि प्रदान करनेके लिये कहा, किंतु कोई भी अपनी चरणधूलि भगवान्को देकर नरक भोगनेको तत्पर नहीं हुई। अन्तमें यह समाचार श्रीराधाजीके पास पहुँचा तो वे तत्काल चरणधूलि देनेको तत्पर हो गयीं। उन्होंने कहा कि यदि मेरे प्रियतमको मेरी चरणधूलिसे थोड़ा भी सुख प्राप्त होता है तो मैं एक बार नहीं हजार बार चरणधूलि देनेको तैयार हूँ, फिर चाहे मुझे जन्म-जन्मान्तरके लिये नरककी भी कठोरतम वेदना क्यों न सहन करनी पड़े। यह था श्रीराधाका कृष्णके प्रति तत्सुख-सुखित्वका—प्रेमास्पदके सुखमें स्वसुखवांछाका भाव।

इसी प्रकार सूर्योपरागके समय समस्त ब्रजवासी कुरुक्षेत्रमें स्नानार्थ गये, जिसमें समस्त गोप-गोपियाँ और स्वयं राधाजी भी थीं। उधर द्वारकासे भी समस्त द्वारका-निवासीजन और स्वयं श्रीकृष्ण अपनी रानियों-पटरानियोंसहित उस स्थानपर पहुँचे। श्रीरुक्मिणीजीको जब यह मालूम हुआ कि श्रीवृन्दावनसे हमारे पतिकी सहचरी श्रीराधाजी भी पधारी हुई हैं तो उन्होंने राधाजीको अपने निजी महलका अतिथि बनाया एवं सब प्रकारके आतिथ्यका उत्तरदायित्व स्वीकार किया। अन्य सेवा-टहलके साथ वे रात्रि-विश्रामके समय स्वयं अपने हाथोंसे उन्हें दूध पिलाया करती थीं। एक रात श्रीकृष्णके पादसंवाहन करते हुए श्रीरुक्मिणीजीने उनके चरणोंमें कुछ फफोले देखे तो वे आश्चर्यचकित हो गयीं, वे बार-बार श्रीकृष्णके चरणोंमें उभरे फफोलोंके विषयमें प्रश्न करने लगीं। अन्तमें श्रीकृष्णने जो उत्तर दिया, वह आश्चर्यजनक था। वे रुक्मिणीजीसे बोले कि आज कदाचित् तुमने राधाजीको अधिक गर्म दूध पिला दिया है, अतः ये फफोले पड़ गये। श्रीरुक्मिणीजी कुछ समझ न सकीं, बोलीं कि राधाजीको गर्म दूध पिलाने और आपके चरणोंमें फफोलोंसे क्या सम्बन्ध?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्पष्टतया बताइये, आप बहाना कर रहे हैं। तब श्रीकृष्णने कहा कि श्रीराधाके हृदयारविन्दमें मेरे चरणारविन्द विराजित रहते हैं और तुमने उन्हें अधिक गर्म दूध पिला दिया, अत: मेरे चरणोंमें फफोले पड़ गये—

श्रीराधिकाया हृदयारविन्दे
पादारविन्दं हि विराजते मे।
अहर्निशं प्रश्रयपाशबद्धं
लवं लवार्द्धं न चलत्यतीव॥
अद्योष्णदुग्धप्रतिपानतोंघ्रा-
वुच्छालकास्ते मम प्रोच्छलन्ति।
मन्दोष्णमेवं हि न दत्तमस्यै
युष्माभिरुष्णं तु पयः प्रदत्तम्॥

(गर्गसंहिता, द्वारकाखण्ड १७। ३५-३६)

—ऐसा था श्रीराधाका श्रीकृष्णके प्रति समर्पणभाव। श्रीराधाजीके जीवनमें सर्वाधिक भक्तिके भाव जाग्रत् थे, जो आजतक किसी भक्त में नहीं पाये गये। यह था स्वसुख-वांछाविरहित केवल कृष्णैकसुखस्वरूपा श्रीराधाजीका चिन्तन।

निश्चल, निश्छल, नि:स्वार्थ, सर्वस्व समर्पित भावनासे अभिभूत हृदयवाली श्रीराधारानी ही थीं। भक्तिकी अविरल धारा श्रीराधा। यही कारण है कि जहाँ श्रीराधा हैं वहीं श्रीकृष्ण, जहाँ श्रीकृष्ण हैं वहीं श्रीराधा। राधाकी बात तो जाने दीजिये, राधा शब्दमें यदि 'र' न होता तो क्या होता, देखिये कविकी वाणी—

राधे कै रकार जो न होतो राधेश्याम माहि।
मेरे जान राधेश्याम आधेश्याम रहते॥

अन्तमें कवि बिहारीके शब्दोंमें शतशः प्रणाम—

मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोय।
जा तन की झांई परे स्याम हरित दुति होय॥

श्रीप्रेमभिक्षुजी महाराजका अमृतोपदेश

हिन्दू-संस्कृतिका यह सिद्धान्त है कि सभी चराचर जीवोंमें भगवान् व्याप्त हैं। जीवरक्षाकी भावना मणिकी भाँति अमूल्य है। भगवान्‌के किसी नामका आश्रय लेना जीवकी रक्षा है। अधिकांश जीव अनेक जन्मोंतक शरीर तथा इन्द्रियोंके विषयोंमें भटकते रहते हैं, उन्हें भगवत्प्रेमकी साधनाका कुछ भी ज्ञान नहीं रहता। कलिकालके सारे दोषोंसे बचनेके लिये रामनामकी साधना सर्वश्रेष्ठ है। रामनाम स्वयं मणि है, अत: राम-नामका आश्रय लेना भक्तिमणि है।

परमपूज्य महाराजश्रीने कहा है कि तुलसीदासजी महाराजने अपने श्रीरामचरितमानसमें भक्तिमणिकी विशेष महिमा गाकर मानवमात्रका अत्यन्त कल्याण किया है। तुलसीदासजीकी भक्तिमणिमें ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य, सदाचार, चरित्र-निर्माण तथा सारी दैवी प्रवृत्तियोंका प्रवेश है। निष्काम भावसे रामनामकी साधना करनेपर मनुष्यमें सारे दैवी गुण स्वत: आ जाते हैं। इसी उद्देश्यसे तुलसीदासजी महाराजने कहा है—

भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अबिद्या नासा॥
भोजन करिअ तृपिति हित लागी। जिमि सो असन पचवै जठरागी॥
असि हरि भगति सुगम सुखदाई। को अस मूढ़ न जाहि सोहाई॥

(रा०च०मा० ७। ११९। ८—१०)

भजनके रूपमें भगवान्‌ने अपने आनन्दकी लीलाके लिये भक्तिमणिकी सृष्टि की है। चेतन जीव ही भगवान्‌का अंश है और वही भगवान्‌की भक्ति कर सकता है। जो भी भगवान्‌के आश्रित होकर उनका भजन करता है, वह उनके भावमें विलीन हो जाता है। भगवान्‌ने गीता (४। १०)-में स्वयं ही कहा है—

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः॥

भगवान्‌का भजन करनेसे ज्ञान और वैराग्यके दिव्य गुण स्वत: आ जाते हैं, अत: रामनामकी साधना करते-करते ज्ञान-वैराग्ययुक्त भक्ति स्वत: प्राप्त हो जाती है, जिसे 'भक्तिमणि' की संज्ञा दी जाती है।

अज्ञानके कारण ही हमें अपने सच्चिदानन्दस्वरूपकी अनुभूति नहीं होती। हमारा शरीर ही भगवान्‌का धाम है। इस धाममें भगवान्‌की लीला ही होती है। ज्ञानी भक्तोंको भगवान्‌की लीलाका अनुभव होता है।

भक्तिभावकी महिमाका वर्णन तुलसीदासजीने भक्तिमणिके रूपमें किया है—

राम भगति मनि उर बस जाकें। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताकें॥
चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं। जे मनि लागि सुजतन कराहीं॥
सो मनि जदपि प्रगट जग अहई। राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई॥
सुगम उपाय पाइबे केरे। नर हत भाग्य देहिं भटभेरे॥

(रा०च०मा० ७। १२०। ९—१२)

भगवान्‌की शरणमें जाकर उनका भजन करनेसे उनका अनुभव हृदयमें स्वयं ही प्राप्त हो जाता है। भगवान्‌का भजन करना ही भक्तिमणिकी प्राप्ति है। भक्तिमें भगवान् हृदयमें प्रकट हो जाते हैं; क्योंकि वे पहलेसे ही हृदयमें रहते हैं। अभागे लोग भगवान्‌का भजन नहीं करते हैं। बुद्धिमान् मनुष्य वही है, जो भगवान्‌का भजनकर उन्हें प्राप्त कर लेता है।

[प्रे०—श्रीरामानन्दप्रसादजी]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मचिन्तन

(श्रीप्रकाशनारायणजी शर्मा)

साधु-सन्त शास्त्रोंका निष्कर्ष निकालते हैं कि आत्मा अजर-अमर है, शरीर मरता है; फिर भी विश्वास नहीं होता। गीताका उपदेश है—**'तस्मात् योगी भव'** अर्थात् तू योगी बन। किसी संरचनामें जुड़। किसी सकारात्मकताको चुन।

नियम है कि जिस वस्तुका भलीभाँति चिन्तन होता है, वह मिलती है। मन चुम्बक है, वह मनोरथोंको साध लेता है। परिपक्वावस्थामें मृत्युका चिन्तन भी ऐसा ही है। जीवनभर उपदेश देनेवाला भी अन्तिम दिनोंमें चिन्तित हो जाता है। वह अपने आपसे टूट जाता है। भ्रम और सन्देहमें पड़ जाता है। यह स्वाभाविक भी है। अभीष्ट और मनोरथप्राप्तिकी इच्छाका परिणाम चिन्ता है। अधीरको कुछ प्राप्त नहीं होता। मृत्यु निश्चिन्तता है। जो ऐसा विश्वास करता है, वह कष्ट नहीं पाता, उसे रोग-शोकका भय नहीं सताता।

कर्मका फल अन्य जन्मोंमें मिलता है; जो अभी निर्धन अथवा धनवान् हैं, वे पूर्वजन्मोंका फल भोग रहे हैं। इस जन्मका फल तत्काल नहीं मिलता।

यह रहस्य सन्त, महात्मा जानते हैं। वे दरिद्रतासे ग्रस्त होते हुए भी मृत्युपर्यन्त ईश्वरस्मरण, भजन, सन्ध्या, वन्दना, सत्संगादि करते रहते हैं। प्रारब्धके तीव्रतम प्रभावको भोगकर ही पूरा करना होता है। अतः निश्चिन्त रहना चाहिये। अति प्रबल प्रारब्धके उदय होनेपर मानवकी रक्षा औषधि, मन्त्र, होम, जप, तप, दान और बन्धु-बान्धव भी नहीं कर पाते—

न मन्त्रा न तपो दानं न मित्राणि न बान्धवाः।
शक्नुवन्ति परित्रातुं नरं कालेन पीडितम्॥

(पद्मपुराण, भूमिखण्ड ८१।३३)

जीवनका सार सत्य है और वह सत्य श्रीभगवान् हैं, जिनसे हमारी उत्पत्ति हुई है। जो मनुष्य सत्स्वरूप यथार्थ ज्ञानको प्राप्त कर लेते हैं, वे धैर्यपूर्वक विवेकसे स्थिरचित्त हो अपने कर्तव्य-पथपर चलते रहते हैं। जिन्हें यथार्थका ज्ञान नहीं होता, वे राग-द्वेषमें आसक्त अपने चित्तको शोक-सन्तप्त करते रहते हैं और विलाप उनकी नियति बन जाती है।

आत्माको अजर-अमर बताकर गीतामें श्रीकृष्णने अर्जुनको मोह त्यागकर कर्म करनेकी, शोक न करनेकी शिक्षा दी है। नाना जन्मोंमें नाना कर्मोंके अनुसार प्रारब्धके फल भोगनेके लिये जीव कई योनियोंमें विचरण करता है। जो इस रहस्यको जानता है, वह शोकसन्तप्त नहीं होता। अनन्त जन्मोंमें अनन्त सुख-दु:ख और उसकी सामग्रीकी लम्बी सूची है। बन्धु-बान्धवोंका लम्बा इतिहास है, किसे स्मरण करे और किस-किसके लिये रोये।

इस यथार्थको जानकर तद्भिन्नताका संकल्प छोड़कर एक ब्रह्ममें स्थिर होनेका चिन्तन करना चाहिये। भगवान् श्रीकृष्णने जनसाधारणको गीताके माध्यमसे कर्तव्य-अकर्तव्यका बोध दिया। वर्तमान दुश्चिन्ताएँ गीताके सारको समझनेपर दूर हो सकती हैं, किंतु व्यक्ति जीवनकी ऊहापोहके भ्रमजालमें मकड़ीका जाला बनाते-बनाते स्वयं उसमें फँसकर त्रस्त हो जाता है। वह विचार ही नहीं करता कि यह निराशा भीतरके प्रकाशकी कमीसे हो रही है।

सकारात्मक चिन्तन आत्माकी ऊर्जा है। जैसे घृतसे दीपककी लौ तेज हो जाती है, वैसे ही सकारात्मक दृष्टिकोणसे चिन्ता-निराशाका अन्धकार स्वतः कम हो जाता है। सभी वस्तुएँ अपने-अपने स्थानपर ठीक हैं। इसकी समझ आनेपर विरोध छूट जाता है। अकारण विरोध तनाव पैदा करता है। राहमें कंकड़-पत्थर, कीचड़-गड्ढे, काँटे, नदी-नाले समझो तो अवरोध पैदा करते हैं, परंतु ज्ञानी इन्हें प्रकृतिका अंग मानकर मनसे स्वीकारकर उन्हें मित्रवत् ले लेता है, जिससे वे अप्रिय नहीं लगते।

जीवनमें, घरमें और आस-पड़ोसमें ऐसी कई अप्रिय वस्तुएँ घटनाको तब जन्म देती हैं, जब विवेककी बत्ती बुझने-जैसी हो जाती है। उसी क्षण जो अपने-आपको झकझोरे, वस्तुस्थितिको सम्हाले तो उसकी आत्मामें प्रकाश हो जाता है। गीता सार-असारको समझाती है। यही ब्रह्मविद्या है। परम लक्ष्यके प्रति आशावान् बनें तो निराशा कभी पास नहीं फटकती। मन आशासे रहित होनेपर व्याकुल होता है। आशा आत्माका सुरक्षा-कवच है, इसे किसी भी परिस्थितिमें नहीं त्यागना है—यह संकल्प लेना चाहिये। सत्संकल्पकी पूर्तिमें स्वयमेव प्रभु सहायक होते हैं, अतः संकल्प-विकल्पात्मक मनकी वृत्तियोंको समेटकर बुद्धिद्वारा उनपर विवेकरूपी नियन्त्रण लगाकर एकमात्र उस परमसत्ताके चिन्तनमें लीन हो जाना ही यथार्थ आत्मचिन्तन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोर-मुकुट

स्वप्न और जाग्रत्की प्रशान्त सन्धिमें बाँसुरीकी स्वरलहरीके साथ ठुमक-ठुमककर पादविन्यास करते हुए उन्होंने प्रवेश किया। स्थितिमें गति, एकतामें अनेकता एवं शान्तिमें एक मधुर क्रान्तिका संचार हो गया। वह अनन्त शान्ति, वह रहस्यरस और वह एकरस ज्ञानका अनन्त पारावार न जाने कहाँ अन्तर्हित—अन्तर्दृष्टिके एकान्तमें विलीन हो गया? न जाने कहाँ? नहीं नहीं, यह तो भूल थी। वह प्रत्यक्ष आँखोंके सामने अमूर्त्तसे मूर्त्त होकर, निराकारसे साकार होकर और निर्गुणसे अनन्त दिव्य-गुण-सम्पन्न होकर अपनी रसभरी चितवनसे मुझे अपने साथ रमण करने—खेलनेका प्रणयाह्वान करने लगा।

अब मैंने देखा। हमारी आँखें चार हुईं। परंतु यह क्या? एक क्षणमें ही मेरी आँखें लज्जासे अवनत क्यों हो गयीं? बात ऐसी ही थी। मैं अपराधी था। सचमुच जब प्राप्त करनेवाले और प्राप्त करनेयोग्य वस्तुके भेदसे रहित उस विचित्र वस्तुकी प्राप्ति इस प्रकार स्वयं ही प्राप्त हो गयी, तब मैं चकित-सा रह गया। एकाएक विश्वास न कर सका। एक हल्की-सी अवहेलना हो ही गयी। परंतु दूसरे ही क्षण सँभल गया। ऐसा सँभला, ऐसा सँभला, मानो ज्ञानवान् होनेके पश्चात् **'वासुदेवः सर्वमिति'** की ही तत्त्वत: अनुभूति हो गयी हो। एक महान् प्रकाश फैल गया और मानो उसने कहा भी—'अब उनके साथ रमण होगा। अबतक आनन्दका उपभोग तुम कर रहे थे, भले ही वह भोक्तृत्वहीन रहा हो। परंतु अब? अब तो तुम्हारा उपभोग होगा। अब रासक्रीडा होगी।' मैंने भाष्य कर लिया—'वास्तवमें प्रेम या आनन्द भोग अथवा भोक्तृत्वहीन भोग (मोक्ष)-में नहीं है, वह तो उनका भोग्य हो जानेमें ही है। इसीको तो प्रेमभक्ति कहते हैं।'

उस प्रकाशमें मैंने क्या देखा? हाँ, अवश्य कुछ देखा तो था। हाँ, वही मेरे प्राणप्यारे श्यामसुन्दर बाँसुरी बजाते हुए ठुमुक रहे थे। चरणोंकी किंकिणी **'रुनझुन'** की उल्लासपूर्ण ध्वनिसे चिदाकाशको मुखरित कर रही थी। पीताम्बर फहरा रहा था। परंतु उनका मुँह पीछेकी ओर था। सुन्दर अलकावलीसे दिव्य पुष्पोंकी वर्षा हो रही थी, परंतु उनमेंसे एक भी मेरी ओर नहीं आ रहा था। ऐसा क्यों? वे स्वयं मेरी ओर आ रहे थे। मैंने सहमकर एक बार उस अनूपरूपराशिको सर्वांग देखना चाहा, परंतु देख न सका। बीचमें ही मुसकराकर उन्होंने आँखोंको विवश कर दिया। वे एकटक वहीं लग गयीं। न आगे बढ़ीं, न पीछे हटीं। न चढ़ीं और न उतरीं। न जाने कितना समय बीत गया। गजबकी मुसकराहट थी! अजब जादू था!!

अब मुझे ध्यान आया। भगवान् स्वयं मेरे सामने खड़े-खड़े मन्द-मन्द मुसकरा रहे हैं। अरे! अबतक मैंने कुछ स्वागत-सत्कार नहीं किया। अर्घ्य-पाद्यतक न दिया। हाँ, हुआ तो ऐसा ही। परंतु यह क्या? उन्होंने स्वयं अपने हाथों स्वागत-सत्कारका आयोजन कर लिया है? ऐसा ही जान पड़ता है। प्रकृतिके आत्यन्तिक लयके पश्चात् यह नूतन प्रकृति कहाँसे आयी? हाँ, हाँ, यही इनकी दिव्य प्रकृति है। यह चिन्मय है, इनकी लीलाकी सहकारिणी है। हाँ, इसमें तो सजीव स्फूर्ति है, नवीन ही जागृति है और भरा हुआ है दिव्यजीवन। इसका स्वागत भी अपूर्व है।

अब मैंने उस ओर दृष्टि डाली। हाँ, तो पैरोंके तले हरे-हरे दिव्य दूर्वादलके कालीन बिछे हुए हैं। तारामण्डित गगनका बड़ा-सा वितान तना हुआ है। सफेद चाँदनीकी ठंडी और उजली रोशनीसे पत्ते-पत्तेमें जगमग ज्योति झिलमिला रही है। अधखिली कलियोंका सौरभ लेकर हवा पंखा झल रही है। वृक्षोंने अपने रसभरे फलोंसे झुकी हुई डालियाँ सामने कर दी हैं। परंतु वे, वे तो बस पूर्ववत् बाँसुरीके रसीले रन्ध्रोंसे राग-अनुरागके समुद्र उँड़ेलनेमें लगे हैं। मैं चकित-स्तम्भित होकर केवल देख रहा था।

मैंने स्तुति करनेकी ठानी। परंतु मेरे 'ठानने' का क्या महत्त्व? भ्रमरोंने अपनी गुंजारको उनके वेणुनादसे मिलाकर गुनगुनाना प्रारम्भ किया। कोयलोंने अपनी 'कुहू-कुकू' की मंजुल ध्वनि निछावर कर दी। थोड़े-से साँवले-साँवले बादलोंने तबलोंकी तरह मन्द-मन्द ताल भरनेकी चेष्टा की, परंतु दो-चार क्षणमें ही वे कुछ नन्हीं-नन्हीं सफेद बूँदोंके रूपमें 'रस' बनकर चरण पखारने आ गये। अबतक झुण्ड-के-झुण्ड मयूर आकर थिरकने लगे थे।

अब वे घिर गये। चारों ओर मयूरोंका दल अपने पिच्छ फैलाकर नाच रहा था और बीचमें श्यामसुन्दर अबाधगतिसे पैंजनीसे स्वरसाम्य रखते हुए बाँसुरी बजानेमें तल्लीन थे। मैं अनुभव कर रहा था—उनके लाल-लाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधरोंसे निकलकर अणु-अणु, परमाणु-परमाणुमें मस्ती भर देनेवाले मोहन-मन्त्रका! हाँ, तो सब मुग्ध थे, सब-के-सब उस अनुरागभरे रागकी धारामें बह गये थे। किसीको तन-बदनकी सुध नहीं थी। सुध रखनेवाला मन ही नहीं था। हाँ, वे, बस वे, सबकी ओर देखते हुए भी मुझे ही देख रहे थे। बिना जतनके ही मेरे रोम-रोमसे वही वेणुके आरोह-अवरोह-क्रमसे मूर्च्छित स्वरलहरी प्रवाहित हो रही थी। शरीर, प्राण, हृदय और आत्मा सब-के-सब उस रागके अनुरागमें रँगकर किसी अनिर्वचनीय रसमें डूब गये थे। सबकी आँखें मोहनके मुखकमलपर निर्निमेष लग रही थीं। बहुत समय बीत गया होगा। परंतु वहाँ समय था ही कहाँ?

अच्छा, एकाएक मुरलीध्वनि बन्द हो गयी। ऐं, ऐसा क्यों हुआ? परंतु हुआ ऐसा ही। जबतक सबकी आँखें खुलें, होश सँभले, तबतक उन्होंने झपटकर एक मयूरके गिरे हुए पिच्छको अपने कर-कमलोंसे उठाकर सिरपर लगा लिया। सबकी आँखोंमें आँसू आ गये, सभीका हृदय पिघल गया। सबके हृदयने एक स्वरसे कहा—

'प्रियतम! तुम्हारा प्रेम अनन्त है। तुम्हारी रसिकता अनिर्वचनीय है। आजसे तुम मोर-मुकुटधारी हुए।' उन्होंने मुसकराकर आँखोंके इशारेसे स्वीकृति दी।

उसी समय उनके पास कई ग्वालबाल आते हुए दीख पड़े और वे उनमें मिलकर खेलते-कूदते दूसरी ओर निकल गये।

अब मुझे मालूम हुआ कि वास्तवमें यह जाग्रत्-स्वप्नकी सन्धि वृन्दावन है और इसमें वे लीला करते हैं।

'तू प्रार्थना कर'

(श्रीइन्दरचन्दजी तिवारी)

हे नाथ! मुझमें शक्ति नहीं है। मैं टूट गया हूँ। मुझसे चिन्तन, मनन, भजन, पूजन—कुछ भी नहीं हो पा रहा है। मैं प्रमादी हूँ। मैं आलसी, अहंकारी, पतित एवं नीच कर्मोंमें दिन-रात निरन्तर रत रहता हूँ। मेरे चारों ओर दुःख, दारिद्र्य, रोग, शोकके बादल छाये हुए हैं। पापोंका अपार पारावार मेरे सम्मुख लहरें मार रहा है। किनारे खड़ा मैं थपेड़े-पर-थपेड़े खाता चला जा रहा हूँ। कोई आशा नहीं है। इस निपट अपार सघन अन्धकारमें प्रकाशका कहीं एक भी चिह्न दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है।

किंतु बीच-बीचमें इस सघन अन्धकारमें आपकी कृपाकी दामिनी अवश्य दमक जाती है। प्रभो! मैं जानता हूँ कि वह मेरे किसी प्रकारके सत्कर्मोंके कारण नहीं, वह मात्र आप करुणावरुणालयकी अहैतुकी, अकारण कृपामात्र है।

कहाँ जाऊँ, क्या करूँ? कोई मार्ग दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है!

अचानक इस अगाध झंझावातके बीच एक दिव्य आवाज गूँजी—'प्रार्थना कर, तू केवल प्रार्थना कर। सच्चे निर्मल पवित्र मनसे तू पुकार। वे दयामय, करुणामय, प्रेमके अगाधसागर तेरी आवाज सुनेंगे, तेरी करुण पुकार सुनेंगे, अवश्य सुनेंगे। तू सच्चे मनसे एक बार पुकारकर तो देख!'

ओह! यह तो आत्माकी आवाज प्रतीत होती है। यह गलत नहीं हो सकती। यह झूठ नहीं हो सकती। ठीक है, ठीक है। मैं प्रयास करता हूँ।

हे करुणामय, हे दयामय, मेरी सहयता करो। मुझे अमाकी इस तममय गहन रात्रिसे बाहर करो। अपने गुरुपद-नख-मणिगणज्योतिके प्रकाशसे भटक गये मार्गसे उजालेमें ले जानेकी कृपा करो। मैं अज्ञानी, कुचाली, कुकर्मी ठीकसे तुझे पुकारनेके शब्द भी तो नहीं जुटा पा रहा हूँ। मुझे शब्द दे, शक्ति दे। मेरा उद्धार कर।

अब तुझे छोड़कर मैं जाऊँ तो कहाँ जाऊँ? किसके पास जाऊँ? कौन सुनेगा मुझ दीनकी पुकार। मुझ अधमकी पुकार। सिवा तेरे कौन है सुननेवाला मेरी यह दुर्गतिकी कहानी?

अचानक चारों ओर प्रकाशके सहस्र दीप जगमगा उठे। परम शीतल ज्योतिर्मयी ज्योति चारों ओर छिटक गयी।

अच्छा तो ले सुन, पहले तू जान ले कि तुझे क्या करना है?

* तू प्रार्थना कर, चूँकि प्रार्थनामें समस्त महान् दिव्यता—अपार दिव्यता छिपी हुई है, जिसको अपनाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तू स्वयं दिव्य हो जायगा। दिव्यताको प्राप्त हो जायगा।

❀ तू प्रार्थना कर, इससे समग्र क्लेश भस्मीभूत हो जायँगे।

❀ तू प्रार्थना कर, चूँकि प्रार्थनासे अघटित घटित हो जायगा। असम्भव सम्भव हो जायगा।

❀ तू प्रार्थना कर, चूँकि प्रार्थनासे ही अन्तसका तम नष्ट हो जायगा और हो जायगा दिव्य प्रकाश। उग आयेगा ज्ञानका अपूर्व भव्य-दिव्य सूर्य। फैल जायगी पूर्व दिशामें अद्भुत लालिमा, खिल जायगा उरमें दिव्य कमल, गुनगुनाने लगेंगे भ्रमरवृन्द और प्रारम्भ हो जायगा अनुपम, अपूर्व संगीत, थिरक उठेंगे तेरे पाँव, बँध जायँगे उनमें घुँघरू और तू भी नाचने लग जायगा बावरी मीराकी भाँति और गाने लग जायगा करमें इकतारा लेकर सूरकी भाँति मदोन्मत्त होकर, तू आनन्दमग्न हो जायगा चैतन्यमहाप्रभुकी भाँति।

अत: उठ, तू प्रार्थना कर, प्रार्थना कर, प्रार्थना कर अब देर न कर, जाग जा, उठ जा।

❀ तू प्रार्थना कर, चूँकि प्रार्थनासे खिलेंगे ऐसे मादक सुगन्धित पुष्प, जिनकी गन्धसे महक उठेगी यह धरती, यह अम्बर एवं समग्र ब्रह्माण्ड और क्षार-क्षार हो जायगी नफरत, क्षार-क्षार हो जायेगा अहं, भस्मीभूत हो जायँगे तेरे समग्र पाप और तू निखर जायगा दिव्य सुगन्धित स्वर्णकी भाँति।

❀ तू प्रार्थना कर, चूँकि प्रार्थनासे तेरे अन्तसकी शुद्ध शक्ति जाग्रत् हो जायगी और जितनी हृदयकी शुद्धता तुझे सुलभ हो जायगी, उतनी ही अपार, अद्भुत शक्ति जाग्रत् हो जायगी; तेरी प्रार्थनामें।

❀ तू प्रार्थना कर, ताकि तेरे उरके प्रेमसागरकी दिव्य ऊर्मियाँ आनन्दके सागरमें हिलोरें लेने लगें।

❀ तू प्रार्थना कर, ताकि तेरे हृदयमें अपूर्व दिव्य सृजन होने लगे। अर्चन होने लगे, वन्दन होने लगे।

❀ तू प्रार्थना कर, ताकि तू और प्रभु एकाकार हो जायँ। आनन्दसागरमें लीन हो जायँ। प्रार्थनासे ही तेरी सारी इच्छाएँ पूर्ण हो जायँगी। तुझे भटकना नहीं पड़ेगा। भागना नहीं पड़ेगा। भ्रमित नहीं होना पड़ेगा। चूँकि तेरे हृदयसे भावविह्वल प्रार्थना ही सर्वोपरि होकर तेरे चारों ओर फैल जायगी और तू उसीमें समा जायगा तथा वह तुझमें समा जायगा।

संगीतके सप्त स्वर जागकर लय-तालबद्ध होकर कह रहे हैं कि तू प्रार्थना कर। गुनगुनाते भ्रमरवृन्द, पुष्पोंकी धीमी-धीमी मादक सुगन्ध बराबर यही गीत गा रही है, यही सन्देश समग्र वातावरणमें फैला रही है कि तू प्रार्थना कर, तू प्रार्थना कर, तू प्रार्थना कर। तुझे प्रार्थना ही उबार सकेगी। तुझे प्रार्थना ही उबार सकेगी।

अज्ञानमें मानते हो, ज्ञानमें जानो

(साधुवेषमें एक पथिक)

करोड़ों नर-नारी ज्ञान-अज्ञान का भेद नहीं जानते। अशिक्षित और शिक्षित—दोनों श्रेणीके लोग सारा जीवन सुखी रहनेके लिये कुछ देखते रहना चाहते हैं, कुछ सुनते रहना चाहते हैं, इच्छानुसार स्वादिष्ट भोजन चाहते हैं, कामोपभोग चाहते हैं, सुन्दर संयोग, भवन, धन चाहते हैं, सम्मान-प्रतिष्ठा चाहते हैं और नाम चाहते हैं। कोई महिमा, उदारता, दया आदि की चर्चा सुनकर यदि भगवान्‌की आराधना, प्रार्थना, पूजा करते हैं तो ऐसे लोग भी भगवान्‌को नहीं चाहते, बल्कि भगवान्‌से ही कुछ-न-कुछ पूर्ति चाहते हैं और वे ऐसे ही भगवान्‌को पसन्द करते हैं, जो सस्ती पूजा, प्रार्थना, स्तुतिसे ही प्रसन्न होकर मनकी पूर्ति कर देता हो।

पूजाघरोंमें धन, भोग, संयोग, सम्मान, अधिकार चाहनेवालोंकी ही भीड़ अधिकतर मिलती है, उसमेंसे दाताको धन्यवाद देनेवाले और कुछ न माँगनेवालोंको खोजना मुश्किल है।

अत: इस बातको ध्यानमें रखना चाहिये कि यदि तुम मोही, लोभी, अभिमानी बने हो तो अवश्य ही तुमने किसी मोही, लोभी, अभिमानीके द्वारा सुना है कि यह वस्तु तुम्हारी है; ये माता-पिता, भाई-बहन, यह परिवार तुम्हारा है अथवा यह अधिकार तुम्हारा है इत्यादि जो कुछ तुम्हें सुनाया गया है, वही तुमने मान लिया है, इसीलिये तुम उन्हीं सम्बन्धियोंकी तरह वस्तुओंके लोभी बन गये हो, कुछ व्यक्तियोंके मोही बन गये हो और अपनेको मालिक मानकर अथवा अपना अधिकार मानकर अभिमानी बन गये हो।

यदि तुम कहीं दु:खी होते हो, अशान्त होते हो, भयातुर होते हो तो अपनी ही मान्यताके कारण भीतर भरे हुए मोह, लोभ, अभिमानके कारण ही दु:खी होते हो। दु:खी होकर अपने अहंकारके दोषोंको देख नहीं पाते हो;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि दोष न हों तो वियोगका, हानिका, अपमानका दुःख हो ही नहीं सकता।

जब तुम्हें अपने भीतरके दुःख देनेवाले दोष दीखते नहीं हैं तब दूसरोंको दुःखदाता मानकर तुम उनपर क्रोध करते हो, उनकी निन्दा करते हो, उनसे घृणा करते हो। ऐसी स्थितिमें तुम्हारे जप, पूजा-पाठ, कीर्तन या मन्दिरोंमें भगवान्‌के दर्शन आदि शुभ कर्मोंसे उन दोषोंकी निवृत्ति नहीं होती, इसीलिये भगवान्‌की सुनो और सम्यक् ज्ञानद्वारा अज्ञानको दूर करो।

दोषोंसे मुक्त होनेके लिये हमें बहुत ही सरल मन्त्र मिले हैं—

यदि अन्य किसीके दोष तुम देखोगे तो तुम्हें अपने दोष नहीं दीखेंगे। ध्यान रखो कि यदि कोई परदोषकी चर्चा करे तब तुम करुणा भावसे कह दो कि विवश होकर उससे ऐसा कर्म बना है। जब उसमें त्यागकी शक्ति आयेगी, उस समय वह निर्दोष हो जायगा। आत्मा निरन्तर दोषरहित ही है, जितने दोष हैं, वे अनित्य क्षेत्रमें हैं, विनाशीमें हैं, अहंकारमें ही दोष हैं।

यदि तुम अपनी दृष्टिसे दोषी होकर दूसरोंकी दृष्टिमें निर्दोष बने रहना चाहते हो तो याद रहे तुम महादम्भी हो। गुणोंका झूठा अभिमान छोड़े बिना दम्भसे और पाखण्डसे मुक्ति नहीं मिलती।

भगवान्‌ने कहा है, किसीसे क्षुभित न होओ और किसीको क्षुभित न करो—यह तथ्य साधकको स्मरण रखना चाहिये।

तुम्हारे मनमें यदि अनुकूलताका लालच न रहे और प्रतिकूलताका भय न रहे तब दम्भादि दोषोंसे बच सकते हो। तुम जाने हुए दोषोंके त्यागी और गुणोंके अभिमानसे रहित तभी हो सकोगे, जब फलासक्ति छोड़कर निष्काम सेवा करोगे। निष्काम सेवासे ही चित्त शुद्ध होगा।

जो ज्ञानरूपी अमृतसे तृप्त है, जो आत्मज्ञानसे कृतकृत्य है, उसके लिये कुछ भी करनेयोग्य कर्म नहीं है। भगवान्‌ने कहा है जो आत्मामें ही तृप्त है, जिसकी आत्मामें ही प्रीति है और जो आत्मामें ही सन्तुष्ट है, उसे कुछ करना शेष नहीं रहता।

सद्‌गुरु बताते हैं कि आनन्द-परमानन्द-बोधस्वरूप तुम ही हो। तुम यह देह नहीं हो। देहको तुम मेरी कहते हो, परंतु देह कभी नहीं कह सकती कि मैं तुम्हारी हूँ; क्योंकि देह जड़ है और तुम नित्य चेतन हो।

बन्धनका अभिमानी बँधा ही रहता है और मुक्तिका अभिमानी मुक्त हो जाता है। जैसी मति होती है, वैसी ही गति होती है। तुमने बिना विचारे ही दूसरोंसे—अज्ञानीजनोंसे सुन-सुनकर जैसा मान लिया है, वैसे ही बन गये हो। अपने सत्-स्वरूपको जान लो तो तुम माने हुए बन्धनोंसे मुक्त हो जाओगे।

यदि तुम बँधे ही रहना चाहते हो तो कोई मुक्त न कर सकेगा। वस्तुओंके, व्यक्तियोंके तथा देहके छूट जानेपर भी तुम मेरी-मेरी ही रटे जाओ, तब मुक्तिका कोई उपाय नहीं। तब तो तुम अपने ही शत्रु हो।

तुम कुछ भी चाहो ही नहीं, जो प्रभुके विधानसे आये, उसे स्वीकार कर लो। जब तुम अपने सर्वज्ञ प्रभुसे कुछ माँगते हो तब इसका अर्थ यही निकलता है कि समर्थ प्रभु जानते ही नहीं कि इस समय तुम्हें क्या चाहिये?

निष्काम प्रेमी यही समझकर आनन्दित रहता है कि मुझे जो भी मिला है, यही मेरे हिस्सेका है, मेरा हित इसीमें है। प्रेमी उपासक अपने तन-मनको प्रभुके ही आश्रित छोड़ देता है।

अभिमानी व्यक्ति अहंकार एवं अज्ञानवश अपने तनका बोझा तो ढोता ही है, लेकिन जब उसका विस्तार बढ़ता है, तब वह परिवारका भार भी सँभालता है और स्वयंको ही कर्ता-भर्ता समझने लगता है। उसकी दृष्टिमें ईश्वरकी प्रकृतिसे कुछ भी होता हुआ नहीं दीखता। वह सोचता है—भूमि, जल, अग्नि, वायु, सूर्यसे कुछ नहीं हो रहा है, सारा जीवन मैं ही चला रहा हूँ; तन, प्राण तथा जीवनकी मैं ही सुरक्षा कर रहा हूँ—यही है अभिमानी कर्ताके अहंकारकी मूढ़ता।

एक सन्त कहते थे कि जो सुख चाहे, वह भोगी है, जो दुःखको भोगे नहीं, पहलेसे ही देखे, वह त्यागी होता है। जो सुख-दुःखका साक्षी रहे, वह हंस है।

यह निश्चय करो कि यदि तुम कहीं चिन्ताग्रस्त हो तो अवश्य ही कर्तव्यपालनमें आलसी-प्रमादी हो। यदि तुम कहीं पश्चात्तापसे पीड़ित हो तो अवश्य ही तुम अविचारवश भूलोंसे घिरे हुए हो। यदि तुम कहीं किसीके प्रति कटु शब्दोंका प्रयोग करते हो, अपमान करते हो तो अवश्य तुममें कठोर स्वभाववाली आसुरी प्रकृति दृढ़ है। तुम्हारा किसी प्रकारका दुःख इसी बातको सिद्ध करता है कि तुममें दोष हैं और तुम्हारे दोष इस बातके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि तुम अज्ञानमें कर्म करते हो। यदि ऐसा है तो सावधान होकर अपने अज्ञानको ज्ञानमें देखो। **[प्रेषक—श्रीमहेशचन्द्रजी]**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योगवासिष्ठका उत्पत्तिप्रकरण

(श्रीरघुनाथप्रसादजी सराफ)

*[योगवासिष्ठ ब्रह्मतत्त्व-विचारका अत्यन्त प्रामाणिक ग्रन्थ है। इसमें अनेक आख्यानों एवं उपाख्यानोंका रूपक प्रस्तुतकर ब्रह्मतत्त्वकी मीमांसा की गयी है। यह महारामायण तथा वासिष्ठरामायणके नामसे भी प्रसिद्ध है। इसके प्रवक्ता महर्षि वसिष्ठजी और श्रोता भगवान् श्रीराम हैं। योगवासिष्ठ बताता है कि शम, विचार, सन्तोष और साधुसंगके सम्यक् सेवनसे सहज ही मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है। यह ग्रन्थ छ: प्रकरणोंमें विभक्त है, जिनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—१-वैराग्य, २-मुमुक्षुव्यवहार, ३-उत्पत्ति, ४-स्थिति, ५-उपशम तथा ६-निर्वाण। इसका उत्पत्तिप्रकरण विशेष महत्त्वका है। इसमें मुख्यरूपसे दृश्य जगत्के मिथ्यात्वका प्रतिपादन, मनके स्वरूपका विवेचन, ज्ञानसे परासिद्धि, ज्ञानके उपायोंमें सत्संग एवं शास्त्राभ्यासकी महत्ता, जीवन्मुक्तिका लक्षण, जगत्के अत्यन्ताभावका प्रतिपादन, मण्डपोपाख्यान, लीला-सरस्वतीका आख्यान, वासनायुक्त मनके दोष, मनोनाशके उपाय तथा ज्ञानकी सप्त भूमिकाओंका विवेचन आदि बातें निरूपित हैं। यहाँ इस उत्पत्तिप्रकरणकी कुछ बातें संक्षेपमें दी जा रही हैं—**सम्पादक**]*

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—हे रघुनन्दन! सोनेके आभूषण का सच्चा स्वरूप—जैसे सोना होता है, उसके दृश्यमान स्वरूपको उसका स्वभाव नहीं कह सकते; उसी प्रकार हमें अपने सच्चे स्वरूपका बोध न होनेसे ही बन्धन है। दृश्यप्रपंचके अस्तित्वको ही द्रष्टाका बन्धन कहा गया है और दृश्यप्रपंचका निवारण ही बन्धनसे मुक्ति है। निर्विकल्प समाधि दृश्यप्रपंचके रहते सम्भव नहीं और यह दृश्य-जगत् तुम्हारे हृदयमें ही स्थित है।

जागतिक प्राणियोंके दो शरीर होते हैं—आतिवाहिक और आधिभौतिक। अर्चि आदि मार्गके द्वारा लोकान्तरमें पहुँचना 'अतिवहन' कहलाता है। इस अतिवहन कर्ममें कुशल अत्यन्त सूक्ष्म शरीरको 'आतिवाहिक' कहते हैं। ब्रह्माके केवल आतिवाहिक शरीर है। अन्तःकरण ही उनका स्वरूप है। प्रतिभास ही उनकी आकृति है। उन ब्रह्मासे उत्पन्न होनेके कारण यह दृश्यमान सृष्टि भी प्रतिभासरूप ही है। मन ही ब्रह्माका स्वरूप है जो कि संकल्परूप है। मनने ही परमात्मामें पृथ्वी आदिकी कल्पना की है। मन, दृश्यवर्ग और द्रष्टा—इनका जबतक विवेक नहीं होता, तबतक अज्ञान नहीं मिटता और दृश्यवर्गकी प्रतीति बनी ही रहती है। दृश्यका अभाव हो जानेपर ज्ञातामें ज्ञातृभाव भी शान्त हो जाता है। ज्ञाताका ऐसा कैवल्य ही उसका मोक्ष कहा गया है।

श्रीरामने पूछा—भगवन्! मन ही जगत्का विस्तार करता है, उसका स्वरूप कैसा है?

वसिष्ठजीने कहा—श्रीराम! मन संकल्पात्मक है। जड़वत् एवं शून्य है। इसका मात्र नामके अतिरिक्त कोई दूसरा (वास्तविक) रूप नहीं है, जैसे कि आकाशका नामके सिवाय कोई रूप नहीं दिखता। मनको संकल्प-मात्र समझो। वह स्वयं असत्-रूप ही है। चंचल शक्तिसे युक्त होनेके कारण केवल यह मन ही स्वयं स्फुरित होता, उछलता, कूदता, आता, जाता, याचना करता, घूमता, गोते लगाता, संहार करता और अपकर्षको प्राप्त होता है। महाप्रलयके समय एकमात्र परब्रह्म परमेश्वर ही शेष रहते हैं। वे ही ब्रह्ममें ब्रह्मकी प्रतिष्ठा हैं; क्योंकि केवल शान्तस्वरूप ब्रह्म ही सर्वत्र व्याप्त हैं।

श्रीराम पूछते हैं—भगवन्! किस उपायसे परमात्माके ज्ञानकी शीघ्र उपलब्धि हो सकती है?

वसिष्ठजीने कहा—श्रीराम! तुम्हारा प्रश्न बहुत उत्तम है। परमात्मदेवके यथार्थ ज्ञानसे ही मोक्षकी प्राप्ति होती है और जन्म-मरणके कष्ट बाधा नहीं दे पाते। सत्-शास्त्रोंका अभ्यास और सत्पुरुषोंका संग—ये दो प्रधान औषधियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसाररूपी रोगका नाश करनेवाली हैं। इनकी प्राप्तिमें एकमात्र पुरुषप्रयत्न ही साधन है। इनसे प्राप्त विवेकसे अज्ञानका निवारण हो जाता है और मनुष्य मुक्त हो जाता है।

श्रीरामने पूछा—हे मुनीश्वर! जिनके साक्षात्कार (ज्ञान)-से मन मोहशून्य हो जाता है, उनका यथार्थ स्वरूप कैसा है?

वसिष्ठजीने कहा—परमात्माका स्वरूप ज्ञानरूपी महासागर ही है, जिसमें संसारका अत्यन्त अभाव सिद्ध होता है। अत्यन्त सूक्ष्मका अज्ञानियोंके लिये स्थूलरूप प्रतीत होना तथा अजड़ (चिन्मय) होते हुए भी मूढ़ोंको जड़वत् जान पड़ना—परमात्माका स्वरूप ही है।

इस दृश्यजगत्के अत्यन्त अभावका निश्चय हो जानेपर ही परमार्थ वस्तुका बोध होता है; क्योंकि वही शेष रहता है। ब्रह्ममें ही जगत्-सम्बन्धी भ्रम है। इस भ्रमका निवारण दृढ़तापूर्वक हो जाय तब ब्रह्मका स्वरूप ज्ञात होता है।

हे राघवेन्द्र! एकमात्र ज्ञानमें ही जिनकी निष्ठा है, जो परस्पर परमात्मतत्त्वका बोध कराते हुए परमात्माकी ही चर्चा करते हैं, उसीमें रत रहते हैं, जगत् जिन्हें शून्य प्रतीत होने लग जाता है, जो राग-द्वेष-शोकादिसे निवृत्त हैं, वे जीवन्मुक्त कहलाते हैं। ऐसा साधक चित्तयुक्त होकर भी वस्तुतः चित्तसे रहित है—**'यः सचित्तोऽपि निश्चित्तः स जीवन्मुक्त उच्यते॥'**

जिसका साक्षात्कार न होनेसे भ्रान्तिजनित संसाररूपी सर्पका भय बना रहता है और जिसका ज्ञान हो जानेपर सारी आशाएँ एवं सम्पूर्ण भय सब ओर भाग जाते हैं, उसे चिन्मय परमात्मा समझो। द्रष्टा, दृश्य और दर्शनके मध्यमें साक्षीरूपसे जिसका दर्शन होता है, उसे तुम एकाग्रचित्त होकर अपना आत्मा ही समझो।

यह जगत् न तो कभी परब्रह्मसे उत्पन्न होता है और न उसमें लीन ही होता है। इस प्रकार केवल सद्ब्रह्म ही सदा अपने आपमें प्रतिष्ठित है। जैसे महासागरके जलमें बड़ी-बड़ी लहरें विद्यमान रहती हैं, वैसे ही निराकार ब्रह्ममें उसीके समान यह विश्व स्थित है। पूर्ण-से-पूर्णका ही प्रसार होता है। जो पूर्णमें स्थित है, वह पूर्ण ही है। अतः विश्व कभी उत्पन्न ही नहीं हुआ, जो उत्पन्न हुआ-सा दिखायी देता है, वह तत्स्वरूप अर्थात् ब्रह्मरूप ही है।

जैसे आकाशमें वन एवं वन्ध्याके पुत्र कभी नहीं होते, उसी प्रकार यह सम्पूर्ण दृश्यजगत् तीनों कालोंमें कभी अस्तित्वमें नहीं आता। यह जगत् सर्वात्मक-ब्रह्ममय ही है, ब्रह्मसे भिन्न कदापि नहीं। जगत्-रूपमें जो इसकी प्रतीति होती है, वह सर्वथा असत् है। परमात्मा अद्वितीय है, एक ही है। उसके विषयमें द्वितीय होनेकी कोई कल्पना नहीं है। वही व्यष्टि तथा समष्टिरूप जगत् है। दृश्य वस्तुओंके दर्शन और मननीय वस्तुओंके मननके जो-जो प्रकार हैं, उनके रूपमें वह स्वयं ही उदित और विलीन होता रहता है। उसीके आविर्भाव और तिरोभाव होते रहते हैं।

मनोमय शरीरधारी जीव मनको ही आत्मा समझता है और जैसे मिथ्याभूत स्वप्नमें झूठे ही अपना उड़ना प्रतीत होता है, उसी प्रकार असत्य जगत्-रूपी भ्रममें ही यह जीवात्मा मिथ्या विकासको प्राप्त होता जान पड़ता है। जैसे बाहर होनेपर भी हम दर्पणके भीतर स्थित जान पड़ते हैं, दूरतक सुनायी देनेयोग्य शब्द भी गुफा आदिमें अवरुद्ध होकर भीतर ही रह जाते हैं, बाहर नहीं फैल पाते तथा जैसे स्वप्न और मनोरथके विषय बाहर होनेपर भी देहके भीतर अन्तःकरणमें भासित होते हैं, उसी प्रकार सूक्ष्म शरीरके भीतर स्थित हुआ यह जीवात्मा वासनामय देहादि-व्यवहारका अनुभव करता है। प्रलयकालमें जो संहार होता है, वह भी स्वप्नावस्थामें प्रतीत होनेवाले अपने ही मरणके समान मिथ्या है।

ब्रह्म ही सबसे प्रथम होनेवाला हिरण्यगर्भ है। वही विराट् है और विराट् ही सृष्टिस्वरूप है। चेतनकी चमत्कारिणी जो चितिशक्ति है, वह स्वयं अपने-आपमें जिस सुन्दर चमत्कारकी सृष्टि करती है, उसीका नाम जगत् रख दिया गया है। जो वस्तु जिस वस्तुका विलास होती है, वह उससे कभी भी भिन्न नहीं होती। जगत्का चेतनसे प्रतीतिमात्रसे ही भेद है, वास्तवमें भेद नहीं है। जहाँ सब भेदोंका लय हो गया है, वही परमात्मा ही जगत् है। इस प्रकारका तत्त्वज्ञान हो जानेपर 'मैं अच्छेद्य हूँ, अदाह्य हूँ, अशोष्य हूँ तथा मैं नित्य, सर्वव्यापी, सुस्थिर और अचल हूँ' इसका निश्चय हो जाता है।

जगत् ब्रह्मरूपसे सत् है और जगत्-रूपसे असत् है। अर्थात् परमात्माकी सत्तासे ही जगत्की सत्ता है, स्वतन्त्र नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याणकारी कामधेनु

(डॉ० अंजनिजी सरीन)

या लक्ष्मीः सर्वभूतानां सर्वदेवेष्ववस्थिता।
धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु॥
नमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च।
नमो ब्रह्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमो नमः॥

गोमाता मातृशक्तिकी साक्षात् प्रतिमा हैं। गाय हमारे हिन्दू समाजमें सभी पशुओंसे उच्च एवं पवित्र मानी गयी है। गौएँ संसारमें सर्वश्रेष्ठ हैं; क्योंकि वे सारे जगत्को जीवन प्रदान करती हैं। समुद्रमन्थनके समय क्षीरसागरसे लोकोंकी मातृस्वरूपा कल्याणकारिणी जो पाँच गौएँ उत्पन्न हुई थीं, उनके नाम थे—नन्दा, सुभद्रा, सुरभि, सुशीला और बहुला। ये सभी गौएँ सभी लोकोंके कल्याणके लिये उत्पन्न हुई थीं। वेद कहते हैं कि जो एक बार गौकी प्रदक्षिणा करके उसे प्रणाम करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। गायको स्पर्श करनेसे मानवमात्रमें शान्ति एवं पवित्रताके भाव उत्पन्न होते हैं। गायको कामधेनु कहा गया है। भारतीय समाजमें गायको इहलोकसे मुक्ति दिलाकर परलोकमें शान्ति दिलानेका माध्यम माना गया है। गाय हमारी श्रद्धाकी प्रतीक है।

भगवान् श्रीकृष्णकी बाललीलामें मुख्य पात्र गौएँ ही थीं। भगवान् श्रीकृष्णका गाय चराने जाना, उनकी मधुर वंशीध्वनिपर गायोंका उनकी ओर भागते चले आना, सीखना एवं प्रसन्न होना, गायोंके मक्खनको चुराकर खाना—ऐसी ही न जाने कितनी बाललीलाओंसे हृदय आनन्दित हो जाता है। गाय चाहे उजली, काली या लाल हो मात्र स्वप्नमें दर्शन होनेसे व्यक्तिके सारे कष्ट दूर हो जाते हैं।

भगवान्का छोटी उम्रमें हठ करके गायका दूध दुहना

भगवान् श्रीरामके राज्यकालमें गौएँ पूज्या थीं, उनकी सेवा राजधर्म था। आनन्दरामायणमें लिखा है कि भगवान् श्रीराम सोकर उठते ही देव-द्विज, गुरु, माता-पिता एवं कामधेनुका स्मरण करते थे। सीताजी नित्य ही सोनेके पात्रमें पूजनकी सामग्रियाँ लेकर कामधेनुकी पूजा करके विविध पकवान खिलाती थीं। कामधेनु प्रसन्न होकर विविध प्रकारके भोज्य पदार्थ प्रदान करती थीं।

सामान्य तृण-पत्तों, घास आदिको चरकर गाय प्रतिदिन दूध देती है, उसके दूधसे घी, दही आदिका निर्माण होता है। जिसकी आहुतियोंसे देवता भी सन्तुष्ट होते हैं, ऐसी गाय सदैव वन्दनीय है। गायसे प्राप्त होनेवाला प्रत्येक पदार्थ जीवनके लिये अत्यन्त आवश्यक एवं लाभकारी है। आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धतिके अनुसार 'गायका दूध मनुष्यके लिये सम्पूर्ण आहार है।' दुग्धवर्ग ७-८ में कहा गया है—

'गोदुग्ध, रस और पाकमें मधुर, शीतल, वात-पित्त और रक्तविकारको नष्ट करनेवाला, दोष, धातु-मल तथा नाड़ियोंको आर्द्र करनेवाला, भारी तथा सतत सेवन करनेवालेके समस्त रोग और बुढ़ापेको मिटानेवाला है।'

दहीके विषयमें भावप्रकाशमें दधिवर्गमें कहा गया है—'गायके दूधका दही मीठा, खट्टा, रुचिकर, पवित्र, जठराग्नि (भूख) बढ़ानेवाला, हृदयको प्रिय, पुष्टिकारक तथा वातनाशक होता है।'

भावप्रकाश नवनीतवर्गमें मक्खनको मनुष्यके लिये बहुत हितकारी बताया गया है—'गायके दूधका मक्खन वर्णको उज्ज्वल करनेवाला, बलकारी, वात-पित्त-रक्त-विकारको मिटानेवाला तथा क्षय (टी०बी०), बवासीर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्दितवात (लकवा) एवं खाँसी आदि रोगोंको नष्ट करनेवाला है।'

गौका घी औषधिके समान है। घृतवर्ग ४—६ में घीके विषयमें कहा गया है—'गौका घी नेत्रोंके लिये हितकारी, वीर्यवर्धक, पाकमें मधुर, शीतल, वात-पित्त-कफनाशक, बुद्धि-लावण्य, कान्ति-ओज तथा तेजको बढ़ानेवाला, अलक्ष्मी एवं पापको नष्ट करनेवाला, अवस्थाको स्थिर रखनेवाला, भारी, बलकारी, पवित्र, आयुवर्धक, मंगलरूप, रसायन, सुगन्धयुक्त तथा रुचि-वर्धक है।' गायका घी ऐन्टीसेप्टिक होता है। चोट एवं घावमें यह बहुत लाभकारी है। गायके घीसे यज्ञ करनेपर वायुमण्डलमें एटामिक रेडीएशनका प्रभाव कम हो जाता है।

भावप्रकाश—निघण्टुके मूत्रवर्गमें गोमूत्रकी विशेषताओंका वर्णन किया गया है—

'गोका मूत्र चरपरा, कड़वा, तीक्ष्ण, गर्म, खारा, कसैला, हल्का, मेधाके लिये हितकारी, पित्तकारक, कफ, वात, शूल, उदररोग, अफारा, खुजली, नेत्ररोग, मुखरोग, कुष्ठभेद, मूत्ररोध, श्वास, कर्णशूल, सूजन तथा ग्रह-बाधाओंको भी दूर करनेमें सक्षम है।'

गायका गोमय (गोबर) भी कृमिनाशक, लक्ष्मीदायक, आणव-विध्वंसक प्रभावको समाप्त करनेवाला एवं प्रबल उर्वरक है। गायके गोबरसे लीपे गये मकानोंपर विद्युत् गिरनेकी सम्भावना बहुत कम होती है। परमाणु बमोंके विस्फोटसे प्रभावित धूलिकण भी गोमय (गोबर)-के सम्पर्कसे प्रभावहीन हो जाते हैं। विज्ञानने गोबरगैसका आविष्कार किया है। इसके कारण ईंधनकी काफी बचत होती है। इससे गाँवमें बिजलीके बल्ब, ट्यूबलाइट तथा पंखे भी चलाये जा रहे हैं।

भारतीय जनजीवनके हर क्षेत्रमें—चाहे वह कृषि हो, व्यापार हो, संस्कृति हो, साहित्य हो, विज्ञान हो या धर्म हो; गायका विशेष महत्त्व रहा है। जन्मसे लेकर मृत्युतकके संस्कारोंमें गाय सदा पावन, पूज्य और पवित्र है। गायके शरीरके हर अंगपर देवताओंका वास माना गया है। बृहत्पराशरस्मृतिमें कहा गया है—

'गौके सींगोंके मूलमें ब्रह्माजी और दोनों सींगोंके मध्य भागमें भगवान् नारायणका निवास है। सींगोंके ऊपरी भागमें भगवान् शिवका निवास है। गौके माथेके आगे भागमें देवी पार्वती तथा नाकके मध्यमें कुमार कार्तिकेयका निवास है। गौके दोनों कानोंमें कम्बल और अश्वतर नामके दो नाग रहते हैं। सुरभि गौकी दाहिनी आँखमें सूर्य और बायीं आँखमें चन्द्रमा विद्यमान हैं। दाँतोंमें आठों वसु हैं। जीभमें भगवान् वरुणका निवास है। गौकी हुंकार (आवाज)-में माँ सरस्वती रहती हैं और गालमें यम और यक्ष निवास करते हैं। गौके रोमकूपोंमें ऋषि रहते हैं। गोमूत्रमें भगवती गंगाके पवित्र जलका निवास है। गोमय (गोबर)-में भगवती यमुना तथा सभी देवता रहते हैं। गौके उदर (पेट)-में गार्हपत्य अग्निका निवास है। उसके हृदयमें दक्षिणाग्निका निवास है। गौके मुखमें आहवनीय नामकी अग्नि तथा कुक्षियोंमें सभ्य और आवसथ्य नामक अग्नियाँ रहती हैं।'

कहा गया है कि जबतक देशमें गायकी पूजा होती रहेगी, तबतक यह देश ओज, तेज, बुद्धि और सम्पन्नतामें सबसे आगे रहेगा। यह बात दिखायी भी देती है। प्राचीन-कालसे वर्तमानतक जैसे-जैसे गायका महत्त्व मनुष्यकी दृष्टिमें कम हुआ है, वैसे-वैसे ही देशका गौरव भी कम हुआ है। गायको प्रत्येक धार्मिक संस्कारमें महत्त्वपूर्ण माना गया है। गायकी सेवा करना भारतीय संस्कृति और

गोग्रास

परम्पराका एक अंग है। अपने भोजनका पहला भाग गायको खिलानेकी परम्परा आज भी है।

गायको पूजनीय मानते हुए हमारे देशमें कई पर्व मनाये जाते हैं, बहुलाचतुर्थी भाद्रपद कृष्णचतुर्थीको मनायी जाती है। इसमें गाय एवं बछड़ेका पूजन करके सन्ध्या समय कथा सुनी जाती है। गोत्रिरात्रव्रत भादों माहके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुक्लपक्षमें तेरहवीं तिथिसे पन्द्रहवीं तिथितक होता है। इसमें गाय-बछड़ेकी पूजा होती है। इसमें राजा दिलीपकी नन्दिनी गायकी सेवासे संतानप्राप्तिकी कथा सुनी जाती है। गोपाष्टमी कार्तिक शुक्लकी अष्टमीको मनायी जाती है। उत्तर भारतमें दीपावलीके अगले दिन गोवर्धनपूजा होती है। भगवान् कृष्णने इसी दिन गोवर्धनपर्वतको अपनी कनिष्ठिका (छोटी उंगली)-पर उठाकर देवराज इन्द्रके क्रोधसे सभी व्रज-निवासियों एवं गायोंकी रक्षा की थी।

गायकी पूजाके सम्बन्धमें सोमायन व्रत, सान्तपनव्रत, महासान्तपनव्रत, तप्तकृच्छ्रव्रत, शीतकृच्छ्रव्रत आदि भी किये जाते हैं। गायकी सेवासे व्यक्ति सम्पन्नता, पुत्र, ऐश्वर्य और मोक्षतकको प्राप्त कर सकता है। गायकी महिमाके सम्बन्धमें कहा जानेवाला गंगाजीका यह प्रसंग बहुत महत्त्वपूर्ण है। गंगाजीने धरतीपर आनेके लिये मना कर दिया। उन्होंने कहा कि मनुष्य मुझमें स्नान करके मुझे अपवित्र करेंगे। तब ब्रह्माजीने गंगाको समझाते हुए कहा कि लोग तुम्हें कितना भी अपवित्र करें, लेकिन गायके पैर लगनेसे तुम पवित्र होती रहोगी। जहाँसे गंगाकी धारा निकलती है, उसका नाम गंगोत्री है। गंगोत्रीका मुख गायके समान है। जिस प्रकार चन्द्रमाकी सोलह कलाओंके भिन्न-भिन्न नाम हैं, उसी प्रकार भगवान् सूर्यकी एक प्रधान किरणका नाम 'गौ' है।

गायके शरीरमें रीढ़की हड्डीके अन्दर सूर्यकेतु नामक नाड़ी होती है। जब सूर्यकी किरणें गायके शरीरको स्पर्श करती हैं, तब यह नाड़ी सूर्यकी किरणोंसे सोना बनाती है। इसी कारण गायके दूधमें पीलापन होता है। इस दूधको पीनेसे शरीर पूर्णरूपसे रोगमुक्त हो जाता है। गायके दूधको गर्म करनेपर भी इसके पोषक तत्त्व वैसे ही बने रहते हैं। शरीरके विषैले प्रभावको नष्ट करनेमें गायका घी बहुत काम आता है। यथा—जहरीला कीड़ा काटनेसे, चोट लगनेसे शरीरपर होनेवाले किसी भी विषैले प्रभावको गायका घी नष्ट कर देता है।

इस प्रकार गाय वैदिक कालसे ही भारतीय धर्म, संस्कृति, सभ्यता और श्रद्धाका प्रतीक रही है। बहुतसे राजाओंने गोमाताकी सेवा करके राजपाट एवं सम्पन्नतामें वृद्धि की है। राजा दिलीपने नन्दिनी गायकी सेवा करके ही पुत्ररत्नकी प्राप्ति की थी।

गायके शरीरमें तैंतीस करोड़ देवताओंका वास है। गाय परम पूजनीय, वन्दनीय और भारतीय धर्म एवं साहित्यकी मूल आधार है। गायको कभी मारना नहीं चाहिये और न ही अपना जूठा खिलाना चाहिये। गाय बिना पक्षपातके अपना दूध देकर सबका पालन करती है। प्रत्येक दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण होनेके कारण गायके पालन और उसकी रक्षाकी परम आवश्यकता है। जहाँ देवता वास करते हैं, वहीं स्वर्ग है। इस प्रकार साक्षात् गाय ही स्वर्गलोक है। स्वयं वेद गायको नमन करते हैं।

'हे अवध्य गौ! तेरे स्वरूपके लिये प्रणाम।'

'जमुन-तट बिहरत कृष्ण गोपाल'

(डॉ० श्रीरुद्रमणिजी देवांगन, एम०ए०, पी-एच०डी०-संगीत)

जमुन-तट बिहरत कृष्ण गोपाल।
नील सरोज स्याम तनु सुंदर, सिर घुँघराले बाल॥
शुक नासिका, कपोल ललित हैं, अधर बिंब सम लाल।
भौंहें धनुकमान सम टेढ़ी, राजिवनयन विशाल॥
कटि कछनी, पग नूपुर राजत, वक्षस्थल बनमाल।
धेनु चरावत, बेनु बजावत, भगतबछल नंदलाल॥
बाल सखन्ह सँग खेलत-नाचत, चढ़ कदंब की डाल।
स्वाँग रचत जमुना-जल भीतर, कालिय नाग बेहाल॥
कान्हा की अद्भुत लीला लखि, मोहित गोपिन्ह ग्वाल।
'मणि' जसुमति सुत चरित मनोहर, गाकर होहु निहाल॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संत-चरित—

अवधूत स्वामी श्रीब्रह्मानन्दजी सरस्वती 'कुरुक्षेत्री'

(डॉ० श्रीबाबूरामजी, डी०लिट०)

प्राचीनकालसे ही भारतमें ऋषि-मुनियों, साधु-संन्यासियों और संत-फकीरोंकी परम्परा रही है। यह परम्परा युगान्तरसे आज भी प्रचलित है। धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्रकी पावन भूमि चुहड़मुनि (चुहड़माजरा)-पर स्वामी ब्रह्मानन्दजीका जन्म एक धार्मिक परिवारमें २४ दिसम्बर सन् १९०८ ई० को हुआ। इनमें वैराग्यकी भावना बाल्यकालसे ही बहुत अधिक थी। ये निरन्तर एकान्तवास करते थे और पीपल वृक्षके नीचे बैठकर ध्यानमग्न हो जाते थे। गृहस्थीके कार्य-कलापोंमें इनकी रुचि कम थी। गायोंसे इनका बचपनसे ही बड़ा प्रेम था। ये गायोंको चरानेके लिये जंगलमें चले जाते थे।

जब घरवालोंने इनकी इस वैराग्य-वृत्तिको देखा तो उन्हें बड़ी निराशा हुई। एक रात अचानक ये घर छोड़कर पैदल ही गुरुकुल-कुरुक्षेत्रमें विद्याध्ययनके लिये पहुँच गये। कुछ समय पश्चात् ये यहाँसे भी विरक्त होकर हरिद्वार चले गये और मोहन-आश्रममें रहने लगे। प्रातः और सायंकाल गंगातटपर जाकर ध्यानमग्न हो जाते थे। इनको प्रबल वेगसे बहती हुई गंगाकी धारामें संसारकी नश्वरताके दर्शन होते थे। यहाँपर इनकी आध्यात्मिक शक्ति जाग्रत् हो जाती और ये समाधिस्थ हो जाते। इसीलिये संतोंने इन्हें 'ब्रह्मानन्द' कहना शुरू कर दिया। कुछ समयतक गंगाद्वारपर रहनेके बाद ये हिमालयके जंगलोंमें चले गये।

ये निर्भय होकर वन्यजन्तुओंमें रहते थे। पर्वतीय निवासी इनकी अवधूतके रूपमें पूजा करने लगे। स्वामीजी साधनामें रत हो गये। बहुधा सुना जाता है कि सन्त-महात्माओंके जीवनमें कभी-कभी चमत्कार भी होते हैं। एक दिन ये जब ध्यानमग्न थे तो तीन देवियाँ शक्तिके रूपमें प्रकट हुईं और उन्होंने इनको पंचरंगा झण्डा प्रदान करके मायासक्त मानवोंके कल्याणके लिये समाजमें जानेका आदेश दिया।

ऐसा प्रतीत होता है कि स्वामीजी पूर्वजन्मके ही अवधूत थे। इनका जन्म केवल लोककल्याणके लिये ही हुआ था। घूमते-घूमते करनाल जनपदके असंधके पास कई गाँवोंके जंगलके बीचमें पहुँच गये और वहाँ गुरुकुल ओम्पुराकी स्थापना की, जिसमें विद्यार्थियोंको प्राचीन गुरुकुलप्रणालीपर धार्मिक शिक्षा देनेका कार्य प्रारम्भ किया। वहाँ इन्होंने एक गोशालाकी स्थापना की। विद्यार्थियोंमें ज्ञानवर्धनके लिये पुस्तकालय भी खोला, जिसमें सन् १९४५-४६में गीताप्रेस गोरखपुरसे प्रकाशित प्रतिष्ठित पत्रिका कल्याण भी आती थी। ये आयुर्वेदाचार्य और ज्योतिषाचार्य भी थे।

तत्पश्चात् स्वामीजी परिव्राजकके रूपमें भारतके अनेक तीर्थों और लोककल्याणके लिये अनेक स्थानोंपर भ्रमण करने लगे। ये जहाँ भी जाते थे, यज्ञानुष्ठान करते थे और प्रसाद-वितरणके लिये भण्डारा भी। जब इन्होंने यह देखा कि भारतभूमिका पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है तो इन्होंने उसका निराकरण करनेके लिये समाजमें वृक्षारोपण तथा यज्ञानुष्ठानपर अधिक जोर दिया।

स्वामीजीने अपने जीवनमें भारतके विभिन्न स्थानोंपर लगभग २०० अखिल विश्वकल्याणकारी शान्ति-महायज्ञोंका आयोजन किया। हरिद्वार, नासिक, उज्जैन और प्रयागराजके महाकुम्भोंके पावन अवसरपर इन तीर्थोंकी यात्राएँ कीं और सदुपदेश दिये।

स्वामीजीका व्यक्तित्व बहुआयामी था। वे पुरातन वैदिक धर्म और संस्कृतिके प्रबल प्रचारक थे। वे उपनिषदों और श्रीमद्भगवद्गीताकी दार्शनिक विचारधारासे बहुत प्रभावित थे। उनका मत था—**'भूमा वै सुखं नाल्पे सुखमस्ति'** अर्थात् विराट्में ही सुख है, अल्पमें नहीं। इसी कारण वे काम, क्रोध, मोह, अहंकार आदि विकारोंसे बड़े दूर थे।

स्वामीजीने ब्रह्मानन्दपचासा, ब्रह्मविचार, नीतिविचार और शारीरकोपनिषद् आदि ग्रन्थोंकी रचना की। इन्होंने ब्रह्मानन्दपचासामें गीताके सारको जनताके सामने लोकभाषामें प्रस्तुत किया। ये ओम् तत्सत्का सम्बोधन करते थे। इनका मानना था कि स्वतन्त्र भारतकी राजनीतिका आधार केवल भारतकी करोड़ों जनताकी सेवा ही होना चाहिये। ये अवसरवादी और सिद्धान्तहीन राजनीतिको देशके लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घातक मानते थे।

इनकी मान्यता थी कि समाजकी नि:स्वार्थ सेवा ही भगवान्‌की सच्ची भक्ति है। ये देववाणी संस्कृतके बड़े प्रबल पक्षधर थे। इनका मत था कि संस्कृत ही भारतीय धर्म और संस्कृतिका मूलाधार है। विश्वप्रेमकी भावना इनमें कूट-कूटकर भरी हुई थी। सन्तजी इस उक्तिके कट्टर समर्थक थे—'**आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः।**' वे स्वराज्यको ही देशके हितमें मानते थे। विदेशियोंका राज अधर्म और अत्याचारपर ही आधारित होता है। उसका भारतसे उन्मूलन होना चाहिये और भारतको एक स्वतन्त्र राष्ट्रके रूपमें विश्वमंचपर उदय होना चाहिये। ये राष्ट्रभाषा हिन्दीको ही भारतकी एकताके लिये हितकर मानते थे। इनका कहना था कि साधुसमाजके लिये आत्मकल्याणकी अपेक्षा जनकल्याण ही श्रेयस्कर है।

इनके पंचरंगे झण्डेसे तात्पर्य था कि यह मानवशरीरका प्रतीक है, जो पाँच तत्त्वों—अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी और आकाशसे निर्मित है। इसमें ओंकार आत्मा-परमात्माका प्रतीक है। जीवात्मासे परमात्माका एकाकार होना ही मुक्ति है। यह संसार त्रिगुणात्मक मायासे आवृत है। ज्ञान और वैराग्यरूपी प्रबल अस्त्रोंसे इसका उच्छेदन हो सकता है। इसीलिये वे गीताके इस दर्शनसे बहुत प्रभावित थे कि सच्चे सन्त-महात्माको जलमें कमलवत् रहना चाहिये। मानवजीवन बड़ा दुर्लभ है। यही मोक्षका द्वार है, जिसके लिये देव भी लालायित रहते हैं। स्वामीजीका निर्वाण बुद्धपूर्णिमा १६ मई सन् १९७३ को धर्मक्षेत्र-कुरुक्षेत्रकी पावन भूमिपर ही हुआ। स्वामीजी बालब्रह्मचारीके रूपमें एक अवधूत थे। उनका युगबोध और आत्मबोध बड़ा विस्तृत था।

शाकाहारकी उपयोगिता

(आचार्य श्रीराजकुमारजी जैन)

मनुष्यका सहज और स्वाभाविक आहार है—शाकाहार। शाकाहारसे अभिप्राय उस आहारसे है, जो हमें विभिन्न वनस्पतियों या वानस्पतिक द्रव्योंके माध्यमसे मिलता है। विभिन्न प्रकारके अनाज, दालें, शाक-सब्जी और फल शाकाहारमें समाहित हैं। इसके अतिरिक्त घी, दूध और इससे निर्मित विविध पदार्थ भी इसके अन्तर्गत आते हैं।

जंगलोंकी कमी और मनुष्योंकी बढ़ोत्तरीसे अब फलोंका उत्पादन तो प्राय: कम होता जा रहा है और वे महँगे मिलने लगे हैं, इसलिये दूसरी श्रेणीका आहार जिसके अन्दर विभिन्न प्रकारके शाक आते हैं, को शाकाहारके रूपमें अपनाया जा सकता है। ऐसे कितने ही सुपाच्य शाक हैं, जिनके फल, फली, कन्द, मूल, पत्ते, गूदा आदिका उपयोग प्राकृतिक स्थितिमें या थोड़ा उबालकर आसानीसे किया जा सकता है। शाक खरीदनेमें सस्ते और पकानेमें आसान भी पड़ते हैं। उन्हें घरोंमें छोटी-छोटी क्यारियोंमें भी उगाया जा सकता है। फलोंके बाद उन्हींकी संगति शरीरके साथ ठीक बैठती है। विभिन्न ऋतुओंमें होनेवाले मौसमी फलों—केला, पपीता, आम, अमरूद, बेर, खरबूज, तरबूज आदिको भी अपने दैनिक भोजनका प्रमुख अंग बनाया जा सकता है। दूध, दही, छाछ भी हमारे दैनिक आहारमें सम्मिलित रहें तो अच्छा है, इनका सेवन शरीर तथा मनकी स्वस्थताके लिये आवश्यक है। मिठासके लिये सफेद चीनीके स्थानपर गुड़, शक्कर (खाँड़), किसमिस, अंजीर, खजूर आदिको प्रयोगमें लाया जा सकता है। इससे बहुत कुछ अंशोंमें मधुमेह होनेकी सम्भावना कम हो जाती है। पेट खाली हो जानेपर और तेज भूख लगने पर यदि देर तक चना चबाकर खाया जाय तो यह विशेष गुणकारी हो जाता है। सामान्यतः दिनमें दो बार भोजन लेना चाहिये और दोनों भोजनोंका अन्तराल लगभग छः-से-आठ घंटे होना चाहिये। दिनभर मुँह चलाते रहनेकी आदत अच्छी नहीं है, इससे पाचनशक्ति प्रभावित होती है और वह बिगड़ जाती है। जलपानमें दूध-छाछ-जैसे द्रव-प्रधान द्रव्य आहारमें लेना पर्याप्त एवं उपयोगी होता है, प्रातःकालीन नाश्तेमें ठोस आहारका परिहार करना चाहिये।

पानीका उचित सेवन भी हमारे शरीरके लिये उपयोगी एवं आवश्यक आहारके रूपमें माना जाता है। भोजनके दौरान थोड़ा पानी पीना उपयोगी होता है। भोजन करनेके एक-दो घंटे बादसे लेकर दूसरा भोजन लेनेतक पाँच-छः गिलास पानी पीते रहनेसे पेट और रक्तकी सफाई होती रहती है।

हमारे दैनिक भोजनमें अन्नकी मात्रा यदि शाक और दूध की तुलनामें कम रखी जाय तो यह हमारे शरीरकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दैनिक आवश्यकताको पूर्ण करनेके लिये पर्याप्त है और यह हमारे स्वास्थ्य-संरक्षणमें सहायक होती है। हमारे दैनिक आहारमें यदि एक-तिहाई या चौथाई अन्न रहता है तो ठीक है, इससे अधिक अनाजका भार उदरकी पाचनशक्तिपर नहीं डाला जाना चाहिये। यह एक तथ्यपरक स्थिति है कि अनाज हो या शाक-फल आदि हों, उनके छिलकोंमें पोषक तत्त्व अपेक्षाकृत अधिक रहते हैं। अत: विभिन्न अनाज, दालों और फलोंका उपयोग यदि छिलकासहित किया जाता है तो वह अधिक लाभदायक और स्वास्थ्यवर्धक होता है। गेहूँका दलिया बनाकर खानेसे वह सुपाच्य और बलदायक बन जाता है।

यह तथ्यपरक वस्तुस्थिति है कि गेहूँका पिसा आटा छानकर प्रयोग करनेसे उसके पुष्टिकारक और बलवर्धक तत्त्व चोकरमें निकल जाते हैं और आटा सारहीन बन जाता है। अत: सदैव चोकरयुक्त आटेका ही प्रयोग करना चाहिये और आटा अति महीन नहीं होना चाहिये। महीन आटेकी रोटी आदि सुपाच्य नहीं होती और आँतोंके लिये हानिकारक होती है, अत: आटा थोड़ा मोटा और चोकरयुक्त होना चाहिये। इसी प्रकार मूँग और उड़दकी दालोंका छिलकासहित ही सेवन करना चाहिये। सेव-जैसे फलोंको भी बिना छिलका उतारे ही खाना चाहिये, छिलका उतारकर खाना स्वास्थ्यकी दृष्टिसे लाभदायक और उपयोगी नहीं होता।

अनेक वैज्ञानिक खोजोंसे यह सिद्ध हो चुका है कि मनुष्यके सामान्य जीवन-यापनके लिये मांसाहार कतई उपयोगी और आवश्यक नहीं है। मांस, मछली और अण्डा आदि केवल धार्मिक दृष्टिसे ही अभक्ष्य पदार्थ नहीं हैं, अपितु स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी ये उपयोगी, आवश्यक या हितकारी नहीं हैं। पहले इन पदार्थोंमें विटामिन और प्रोटीनकी अधिक मात्रा समझी गयी और मनुष्यके लिये इन्हें उपयोगी माना गया था, किंतु जैसे-जैसे खोजें गहरी होती गयीं, वैसे-वैसे इन पदार्थोंकी अनुपयोगिता सिद्ध होती पायी गयी।

मनुष्य प्रकृतिसे अहिंसक प्राणी होनेसे शाकाहारी है, तदनुसार ही उसके शरीरकी रचना, दाँतोंकी आकृति आदि पायी जाती है। मांसाहारके पाचनमें सामान्यत: जिन पाचक रसोंकी आवश्यकता होती है, वे हिंसक पशुओंमें ही पाये जाते हैं। उनके दाँतकी बनावट तथा आँतोंकी लम्बाई उसीके अनुसार होती है, जिससे वे मांसको पचा सकें। मनुष्यके लिये यह अति कठिन है। यदि किसी प्रकार पच भी जाय तो उसकी प्रतिक्रिया ऐसी होती है, जिससे मनुष्यके स्वास्थ्यको हानि पहुँचती है और उसकी जीवनीशक्ति प्रभावित होती है। मनुष्यके शरीरमें निर्मित एवं स्रवित होनेवाले पाचक रस केवल शाकाहारके पाचनकी ही क्षमता रखते हैं। उन पाचक रसोंका स्वभाव ऐसा होता है कि वे शाकाहारको ही ठीक तरहसे पचा सकते हैं।

नोबेल पुरस्कार-प्राप्तकर्ता डॉ० माइकल ब्राउनने मांसाहारके सभी वर्गोंका विश्लेषण किया है। उनकी खोजसे स्पष्ट हुआ है कि अण्डा नुकसानदायक कोलेस्ट्रोल रसायन उत्पन्न करता है, अत: इसका सेवन अत्यन्त हानिकारक है। हमारा आहार सन्तुलित होना चाहिये। हम भारतीयोंको इस बातपर गर्व है कि हमारी सांस्कृतिक परम्पराएँ हमारी विरासत हैं। वे परम्पराएँ न केवल हमारे सामाजिक जीवन और देशके उत्कर्षमें योगदान करती हैं, अपितु मनुष्यके व्यक्तिगत जीवनके उत्कर्ष, शारीरिक एवं मानसिक विकास तथा पारिवारिक समुन्नतिमें भी सहायक हैं। उन्हीं परम्पराओंमें हमें इस प्रश्नका समाधान मिलता है कि हमारा आहार कैसा होना चाहिये?

यह निर्णीत सिद्धान्त है कि आहार सात्त्विक होना चाहिये। सात्त्विक आहार शरीरको तो स्वस्थ रखता ही है, साथ ही वह मस्तिष्कको अविकृत और मनको सन्तुलित भी रखता है। सबसे बड़ी बात यह है कि सात्त्विक आहारके मूलमें अहिंसाका भाव निहित है जो प्राणिमात्रके प्रति कल्याणके व्यापक दृष्टिकोणका परिचायक है। यह सम्पूर्ण प्राणिजगत्‌की समानताके आधारका निर्माण करता है। यह अनिवार्यताके सिद्धान्तको प्रतिपादित करता है, जिसके अनुसार हमें वह भोजन लेना चाहिये, जो जीवन-धारणके लिये अनिवार्य है। जिसकी अनिवार्यता न हो, उसे नहीं लेना चाहिये। मात्र स्वादकी दृष्टिसे जिह्वाकी लोलुपताके वशीभूत होकर ऐसा आहार नहीं लेना चाहिये, जो दूसरे प्राणियोंकी हिंसाद्वारा प्राप्त हो। कौन-सा आहार ग्राह्य है—इसके लिये द्रव्यकी शुद्धि, भावकी शुद्धि तथा क्रियाकी शुद्धिपर भी विचार करना अत्यन्त आवश्यक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो मित्रोंका आदर्श प्रेम

एक देशमें दो आदमी दुर्भाग्यसे गुलाम बन गये थे। एकका नाम एन्टोनिओ था और दूसरेका नाम रोजर। दोनों एक ही जगह काम करते, खाते-पीते तथा उठते-बैठते थे। धीरे-धीरे उनमें परस्पर घना प्रेम हो गया। छुट्टीके समय दुःख-सुखकी बातें करनेसे उनको गुलामीका असह्य दुःख कुछ कम जान पड़ता था।

वे दोनों समुद्रके किनारे एक पर्वतके ऊपर रास्ता खोदनेका काम प्रतिदिन करते थे। एक दिन एन्टोनिओने एकदम काम छोड़ दिया और समुद्रकी ओर नजर करके एक लम्बी साँस छोड़ी। वह अपने मित्रसे कहने लगा—'समुद्रके उस पार मेरी बहुत-सी प्यारी वस्तुएँ हैं। हर एक क्षण मुझे ऐसा लगता है कि मानो मेरी स्त्री और लड़के समुद्रके किनारे आकर एक नजरसे इस ओर देख रहे हैं और यह निश्चय करके कि मैं मर गया हूँ, रो रहे हैं। मेरी इच्छा होती है कि मैं तैरकर उनके पास पहुँच जाऊँ।' एन्टोनिओ जब भी उस जगह काम करने जाता, तभी समुद्रकी ओर दृष्टि डालते ही उसके मनमें ये विचार उत्पन्न होते थे। बादमें एक दिन एक जहाजको जाते देखकर उसने रोजरसे कहा—'मित्र! इतने दिनों बाद अब हमारे दुःखोंका अन्त आ गया है। देखो, वह एक जहाज लंगर डालकर खड़ा है। यहाँसे दो-तीन कोससे अधिक दूरीपर नहीं है। हम समुद्रमें कूद पड़ें तो तैरते-तैरते उस जहाजतक पहुँच जा सकते हैं। यदि नहीं पहुँच सकेंगे और मर जायँगे तो इस दासत्वकी अपेक्षा वह मौत भी सौ गुनी अच्छी होगी।'

यह सुनकर रोजरने कहा—'तुम इस तरह अपनेको बचा सको तो इससे मैं बड़ा खुश होऊँगा। तुम देशमें पहुँच जाओगे तो मुझे भी अधिक दिन दुःख नहीं भोगना पड़ेगा। यदि तुम सही-सलामत इस दुःखसे छूटकर घर पहुँच जाओ तो मेरे घर जाकर मेरे माँ-बापकी खोज करना। बुढ़ापेके कारण तथा मेरे शोकसे शायद वे मर गये हों। पर देखना, यदि वे जीते हों तो उनसे कहना कि··· इतना कहते-कहते एन्टोनिओने उसे रोक दिया और वह बोला—'तुम ऐसा क्यों सोच रहे हो कि मैं तुमको इस अवस्थामें अकेला छोड़कर जाऊँगा? ऐसा कभी नहीं हो सकता, तुम और मैं जुदा नहीं। या तो हम दोनों छूटेंगे या दोनों ही मरेंगे।' एन्टोनिओकी बात सुनकर रोजर बोला—'तुम जो कहते हो, वह ठीक है; पर मैं तैरना नहीं जानता, इसलिये तुम्हारे साथ कैसे जा सकता हूँ?' एन्टोनिओने कहा—'इसके लिये न घबराओ। तुम मेरी कमर पकड़ लेना। मैं तैरनेमें कुशल हूँ, इसलिये बिना किसी हरकतके तुमको लेकर जहाजतक पहुँच जाऊँगा।' रोजरने कहा—'एन्टोनि! इसमें कोई आपत्ति नहीं, पर कदाचित् भयभीत होकर मैं तुम्हारी कमर छोड़ दूँ या खींचतान करके तुमको भी डुबा दूँ। इसलिये ऐसा करना जरूरी नहीं है। मेरे भाग्यमें जो होना होगा, वह होगा। तुम अपने बचावका उपाय करो और व्यर्थ समय न गँवाओ। आओ, हम अन्तिम भेंट कर लें।'

इतना कहकर रोजरने आँसूभरी आँखोंसे एन्टोनिओका आलिंगन किया। तब एन्टोनिओने कहा—'दोस्त! यह रोनेका समय नहीं, बार-बार ऐसा अवसर न प्राप्त होगा।'

एन्टोनिओने इतना कहकर अपने मित्रका उत्तर सुननेकी बाट न जोहते उसको ढकेलकर समुद्रमें गिरा दिया और अपने भी उसके पीछे कूद पड़ा। रोजरने समुद्रमें गिरते ही घबराकर जीवनकी आशा छोड़ दी, पर एन्टोनिओने उसको हिम्मत दिलाकर बहुत मेहनतसे अपनी कमर पकड़ा दी और वह तैरते हुए जहाजकी ओर जाने लगा।

उस जहाजके आदमियोंने इन दोनोंको पहाड़परसे कूदते हुए देखा था, पर इतनेमें ऐसा मालूम हुआ कि गुलामोंकी सँभाल रखनेवाले आदमी उनको पकड़नेके लिये नौका लेकर आ रहे हैं। रोजर इससे घबराकर बोला—'मित्र एन्टोनि! तुम मुझे छोड़कर अकेले चले जाओ। वह नाववाला मुझे पकड़ने लगेगा, इतनेमें तुम बिना हरकत जहाजपर पहुँच जाओगे। इसलिये अब तुम मेरी आशा छोड़कर अपना ही बचाव करो। नहीं तो वे हम दोनोंको पकड़कर वापस ले जायँगे।'

इतना कहकर रोजरने एन्टोनिओकी कमर छोड़ दी। पर उत्तम प्रेमका प्रभाव देखिये! एन्टोनिओने उसको कमर छोड़कर पानीमें डूबते हुए देखा और तुरंत ही उसको पानीसे बाहर निकालनेके लिये डुबकी मारी। थोड़ी देरतक वे दोनों पानीके धरातलपर दीख न पड़े। इससे नौकावाले आदमी यह निश्चय न करके कि किधर जायँ-रुक गये। जहाजके आदमी डेकसे इस अद्भुत घटनाको देख रहे थे। उनमेंसे कुछ खलासी भी एक नावको समुद्रमें डालकर उनकी खोज करने लगे। उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थोड़ी देरतक चारों ओर बेकार प्रयत्न किया। फिर देखा कि एन्टोनिओ एक हाथसे रोजरको मजबूतीसे पकड़े हुए है और दूसरे हाथसे नौकाकी ओर जानेके लिये बहुत मेहनत कर रहा है। खलासियोंने यह देखकर दयासे गद्‌गद होकर अपनेमें जितना बल था, उतने डाँड़ मारना शुरू किया। देखते-देखते वे वहाँ पहुँच गये और उन दोनोंको पकड़कर उन्होंने नावमें बैठा लिया।

उस समय एन्टोनिओ इतना थक गया था कि मिनटभर और देर लगती तो वे दोनों पानीमें डूब जाते। 'तुम मेरे मित्रको बचाओ'—कहते-कहते वह अचेत हो गया। रोजर भी तबतक अचेत था, परंतु उसने कुछ ही क्षणोंमें आँखें खोलीं और एन्टोनिओको अचेत अवस्थामें पड़ा देखकर वह बहुत ही व्याकुल हो गया। एन्टोनिओके अचेतन शरीरका आलिंगन करके वह आँसू बहाते हुए कहने लगा—'मित्र! मैंने ही तुम्हारा वध किया है। तुमने मेरी गुलामी छुड़ाने और मेरा प्राण बचानेके लिये इतनी मेहनत की, पर मेरी ओरसे उसका यही बदला मिला। मैं बहुत ही नीच हूँ। नहीं तो, तुम्हें मरा देखकर मैं क्यों जी रहा हूँ? तुमको खोकर अब मेरे जीनेसे क्या लाभ?'

इस प्रकार शोकातुर होकर वह एकदम खड़ा हो गया और यदि खलासी उसे बलपूर्वक रोक न लेते तो वह समुद्रमें कूद पड़ा होता। फिर वह बहुत ही विलाप और पश्चात्ताप करके कहने लगा—'क्यों तुम लोग मुझे रोकते हो? मेरे ही कारण इसके प्राण गये हैं।' इतना कहकर वह एन्टोनिओके शरीरके ऊपर पड़कर कहने लगा—'एन्टोनि! मैं जरूर तुम्हारा साथी बनूँगा। प्यारे खलासियो! तुम्हें परमेश्वरकी शपथ है, तुम अब मुझको न रोको। मुझे अपने मित्रका साथी बनने दो।'

पर इतनेमें एन्टोनिओने एक लम्बी साँस ली। रोजर उसे देखकर आनन्दसे अधीर हो उठा और उच्च स्वरसे बोला—'मेरा मित्र जीता है। मेरा मित्र जीता है। जगदीश्वरकी कृपासे अबतक इसके प्राण नहीं गये हैं।' खलासी उसको होशमें लानेके लिये बहुत प्रयत्न करने लगे। थोड़ी देरके बाद एन्टोनिओने आँखें खोलकर अपने मित्रकी ओर दृष्टि डालते हुए कहा—'रोजर! तुम्हारी प्राणरक्षा हो गयी—इसके लिये जगदीश्वरको धन्यवाद दो।' उसके अमृत-जैसे वाक्य सुनकर रोजर इतना प्रसन्न हुआ कि उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी।

थोड़ी देरमें वह नाव जहाजपर पहुँच गयी। जहाजके सभी आदमी खलासियोंके मुँहसे सारी बातें सुनकर उनके ऊपर बहुत स्नेह दिखलाने लगे। वह जहाज माल्टाकी ओर जा रहा था। वहाँ पहुँचनेपर दोनों मित्रोंको किनारे उतार दिया गया और वहाँसे वे अपने-अपने घर गये और सुखसे रहने लगे।

मैं ईश्वरके चरणोंकी धूलके बराबर भी नहीं हूँ

पुराने समयकी बात है—इंग्लैण्डके राजा कैन्यूटके दरबारमें ऐसे लोगोंका जमघट लगने लगा था, जो राजाकी प्रशंसाके पुल बाँधकर ओहदे तथा धन पानेके आकांक्षी थे। एक खुशामदीने एक दिन कहा—'सम्राट्! आपकी कीर्ति पूरे संसारमें फैल चुकी है, आप तो धरतीपर ईश्वर हैं, आपके आदेशको समुद्र भी नहीं टाल सकता।'

एक सन्तको जब इसका पता चला तो उन्होंने दर्शन करने आये राजा कैन्यूटको चेताते हुए कहा—'इन खुशामदियोंसे बचकर रहो। तुम्हें ईश्वर बताकर ये तुम्हारा अहंकार बढ़ा रहे हैं। इनकी जिह्वापर लगाम कसो।'

कैन्यूटने अगले ही दिन अपनेको ईश्वर बतानेवाले दरबारीको पास बुलाया और उसे वे समुद्रतटपर घुमाने साथ ले गये। समुद्रतटपर पहुँचकर राजा बोले—'मैं ईश्वर होनेके नाते तुम्हें आदेश देता हूँ कि समुद्रकी लहरोंमें कूद पड़ो। यदि तुम डूबने लगे तो मैं समुद्रको आदेश दूँगा। उसकी लहरें तुम्हें समुद्रतटपर छोड़ जायँगी।'

राजाके शब्द सुनते ही मृत्युके भयसे वह लम्पट खुशामदी पसीनेसे तर-बतर हो उठा।

राजाने कहा—'तुम छली-चापलूसोंकी चालको मैं अच्छी तरह जानता हूँ। तुम मुझे ईश्वर बताकर लाभ उठाना चाहते हो। जबकि सच यह है कि मैं तो ईश्वरके चरणोंकी धूलके बराबर भी नहीं हूँ। आजसे मेरे पास आनेका दुस्साहस न करना, वरना जीवन जेलमें गुजारना होगा।'

सम्राट् कैन्यूटने उसी दिनसे चापलूसोंसे मुक्ति पा ली।—श्रीशिवकुमारजी गोयल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधनोपयोगी पत्र

बुद्धि और श्रद्धा

प्रिय महोदय, सप्रेम हरिस्मरण! आपने लिखा कि मैं ईश्वरको न तो भूला हूँ और न भूलनेकी आशंका है, रास्ता चाहे दूसरा हो। सो भाई! बहुत अच्छी बात है, रास्तेकी तो कोई बात नहीं; सभी रास्ते अन्तमें जाकर उस एक ही लक्ष्यमें समा जाते हैं। ईश्वरको नहीं भूलना और किसी भी मार्गपर उसे उपलब्ध करनेके लिये मनुष्यको दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ते रहना चाहिये। जगत्के शास्त्रसम्मत सभी धर्मोंमें एक ही सत्य समाया हुआ है। बाह्य रूपोंमें अन्तर होनेपर भी मूलत: और परिणामत: सबका समन्वय है। अवश्य ही आपको और भी विशेष चेष्टाके साथ लगना चाहिये। परमात्माके साधनमें आलस्य करना, समयकी प्रतीक्षा करना और अधूरी स्थितिको ही पूर्ण मान लेना यथार्थ स्थितिकी प्राप्तिमें बहुत बाधक हुआ करता है। मनुष्य-जीवन नश्वर और क्षणभंगुर है, अतएव विशेष प्रयत्न करना आवश्यक है।

आपका यह लिखना बहुत ठीक है कि 'मनुष्यको अपनी बुद्धिसे काम लेना चाहिये, जहाँ अपनी बुद्धि काम न दे, वहाँ बड़ोंसे या जिनपर अपनी श्रद्धा हो—पूछकर उनकी अनुमतिसे काम करना चाहिये। आपका यह लिखना भी बहुत उचित है कि 'यद्यपि अच्छे पुरुष जान-बूझकर अनुचित नहीं कहते, पर भूल तो सबसे ही होती है।' ये दोनों ही बातें ठीक हैं। तथापि बुद्धि और श्रद्धा दोनोंकी ही आवश्यकता है और प्राय: जगत्के सभी क्षेत्रोंमें इन दोनोंसे ही लाभ उठाया जाता है। बुद्धिवाद भी इतना बढ़ जाना बहुत हानिकर होता है, जहाँ अभिमानवश अपनी बुद्धिके सामने सबकी बुद्धिका तिरस्कार किया जाने लगे। और श्रद्धा भी इस रूपमें नहीं परिणत हो जानी चाहिये जिससे ईश्वर, सत्य और सदाचारके विरुद्ध मतको किसीके कहनेमात्रसे स्वीकार कर लिया जाय। मर्यादित रूपसे बुद्धि हो और यह भी माना जाय कि ईश्वरकी सृष्टिमें ईश्वरकी संतानोंमें सम्भवत: मुझसे भी अधिक बुद्धिमान् पुरुष हो चुके हैं और हो सकते हैं।

बुद्धिवाद घोर अभिमान, उच्छृंखलता और नास्तिकतामें परिणत नहीं होना चाहिये। मेरी धारणामें तो बुद्धिवादकी अपेक्षा श्रद्धा बहुत ही ऊँची और उपादेय वस्तु है, परंतु उसकी कसौटी यही है कि ईश्वर या सत्यका श्रद्धालु कभी पापका आचरण नहीं कर सकता—श्रद्धामें यह शर्त जरूर रहनी चाहिये।

बुद्धिवादियोंमें भी यह भाव रहना आवश्यक है कि वे अपने लिये अपनी बुद्धिसे काम लेनेका जितना अधिकार समझते हैं, उतना ही दूसरोंके लिये भी मानें, चाहे वे दूसरे उनके अधीनस्थ निम्नश्रेणीके लोग माने जाते हों या कम विद्या प्राप्त हों। यदि मैं किसीपर श्रद्धा करना आवश्यक नहीं समझता तो मुझे ऐसा चाहनेका भी अधिकार नहीं होना चाहिये कि दूसरे कोई मुझपर श्रद्धा करें या मेरी ही बुद्धिको मान दें। जैसे दूसरेसे गलती हो सकती है, वैसे अपनेसे भी तो हो सकती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आँख मूँदकर तो किसीकी बात नहीं माननी चाहिये, तथापि कुछ ऐसी बातें भी जगत्में होती हैं, जो हमारे समझमें नहीं आतीं, पर सत्य होती हैं और जिसपर हमारा भरोसा होता है, उसके विश्वासपर हमें उनको स्वीकार भी करना पड़ता है और स्वीकार करना भी चाहिये। वर्तमान वैज्ञानिक युगमें तो ऐसी बहुत-सी बातें हैं।

इसी प्रकार ईश्वरीय साधन-क्षेत्रमें भी है—इस बातका यदि मुझपर कुछ भी विश्वास है तो मैं आपको विश्वास दिलाकर कह सकता हूँ। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आजकल ढोंग बहुत ज्यादा बढ़ गया है, जिससे यह निर्णय नहीं हो सकता कि श्रद्धा किसपर की जाय। जिसपर श्रद्धा की जाती है, प्राय: वही ठग, स्वार्थी, कामी, क्रोधी या लोभी निकलता है। भेड़की खालमें भेड़िया साबित होता है। इसलिये विश्वास तो खूब ठोक-पीटकर करना चाहिये और यथासाध्य सचेत रहना तथा अपने अन्दर भी ईश्वर और ईश्वरकी शक्ति है—इस बातपर भरोसा करके अपनी बुद्धिसे पूरा काम लेना चाहिये। ईश्वरका आश्रय लेकर अपनी बुद्धिसे काम लेनेवाला निरहंकारी पुरुष कभी नहीं ठगा सकता। शेष प्रभुकृपा!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०६८, शक १९३३, सन् २०१२, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-ऋतु, फाल्गुन कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें २। १६ बजेतक	बुध	आश्लेषा दिनमें १।१७ बजेतक	८ फरवरी	सिंहराशि दिनमें १। १७ बजे।
द्वितीया ,, १२।४९ बजेतक	गुरु	मघा ,, १२।४१ बजेतक	९ ,,	मूल दिनमें १२। ४१ बजेतक।
तृतीया ,, ११।२ बजेतक	शुक्र	पू०फा० ,, ११।४६ बजेतक	१० ,,	भद्रा दिनमें ११। ५५ बजेसे रात्रिमें ११। २ बजेतक, कन्याराशि सायं ५। २८ बजे।
चतुर्थी ,, ९ बजेतक	शनि	उ०फा० ,, १०।३२ बजेतक	११ ,,	संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत चन्द्रोदय रात्रिमें ९। २८ बजे।
पंचमी ,, ६।४६ बजेतक	रवि	हस्त ,, ९।४ बजेतक	१२ ,,	तुलाराशि रात्रिमें ८। १६ बजे।
षष्ठी सायं ४।२५ बजेतक	सोम	चित्रा प्रात: ७। २७ बजेतक स्वाती रात्रिशेष ५।४७ बजेतक	१३ ,,	भद्रा सायं ४। २५ बजेसे रात्रिमें ३। १४ बजेतक, कुम्भ संक्रान्ति सायं ५। २६ बजे।
सप्तमी दिनमें २। ४ बजेतक	मंगल	विशाखा ,, ४।९ बजेतक	१४ ,,	वृश्चिक राशि रात्रिमें १०।३३ बजे, सौर फाल्गुन मासारम्भ, अष्टकाश्राद्ध।
अष्टमी ,, ११।४४ बजेतक	बुध	अनुराधा रात्रिमें २।३६ बजेतक	१५ ,,	मूल रात्रिमें २। ३६ बजेसे, बुधाष्टमी, श्रीजानकीजयन्ती, अन्वष्टकाश्राद्ध।
नवमी ,, ९। ३३ बजेतक	गुरु	ज्येष्ठा ,, १।१४ बजेतक	१६ ,,	भद्रा रात्रिमें ८। ३३ बजेसे, धनूराशि रात्रिमें १। १४ बजे।
दशमी प्रात: ७। ३३ बजेतक एकादशी रात्रिशेष ५।५२बजेतक	शुक्र	मूल ,, १२।७ बजेतक	१७ ,,	भद्रा प्रात: ७। ३३ बजेतक, विजया एकादशीव्रत (स्मार्त), मूल रात्रिमें १२। ७ बजेतक।
द्वादशी ,, ४।३१ बजेतक	शनि	पू०षा० ,,११।२२ बजेतक	१८ ,,	मकरराशि रात्रिशेष ५। १८ बजे, विजया एकादशीव्रत (वैष्णव)।
त्रयोदशी रात्रिमें ३।३३ बजेतक	रवि	उ०षा० ,, ११।३ बजेतक	१९ ,,	भद्रा रात्रिमें ३। ३३ बजेसे, राष्ट्रिय फाल्गुन मासारम्भ, प्रदोषव्रत।
चतुर्दशी ,, ३।५ बजेतक	सोम	श्रवण ,, ११।२ बजेतक	२० ,,	भद्रा दिनमें ३।१९ बजेतक, श्रीमहाशिवरात्रिव्रत, चतुर्दशलिंगपूजा, श्रीवैद्यनाथ जयन्ती, शतभिषा नक्षत्रका सूर्य प्रात: ७। २८ बजे।
अमावस्या ,, ३।७ बजेतक	मंगल	धनिष्ठा ,, ११।३५ बजेतक	२१ ,,	कुम्भराशि दिनमें ११। १८ बजे, स्नान-दानश्राद्धादिकी अमावस्या, भौमवती अमावस्या, पंचकारम्भ दिनमें ११। १८ बजे।

सं० २०६८, शक १९३३, सन् २०१२, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-ऋतु, फाल्गुन शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ३। ४१ बजेतक	बुध	शतभिषा रात्रिमें १२। ४० बजेतक	२२फरवरी	× × × ×
द्वितीया रात्रिशेष ४। ४३ बजेतक	गुरु	पू० भा० ,, २। १२ बजेतक	२३ ,,	मीनराशि रात्रिमें ७। ४९ बजे, चन्द्रदर्शन।
तृतीया ,, ६। १५ बजेतक	शुक्र	उ० भा० रात्रिशेष ४।१३ बजेतक	२४ ,,	मूल रात्रिशेष ४। १३ बजेसे।
चतुर्थी अहोरात्र	शनि	रेवती अहोरात्र	२५ ,,	भद्रा रात्रिमें ७। १० बजेसे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।
चतुर्थी प्रात: ८।५ बजेतक	रवि	रेवती प्रात: ६। ३१ बजेतक	२६ ,,	भद्रा प्रात: ८।५ बजेतक, मेषराशि प्रात: ६। ३१ बजे, पंचक समाप्त प्रात: ६। ३१ बजे।
पंचमी दिनमें १०। ११ बजेतक	सोम	अश्विनी दिनमें ९। ५ बजेतक	२७ ,,	मूल दिनमें ९। ५ बजेतक।
षष्ठी ,, १२। २० बजेतक	मंगल	भरणी ,, ११।४३ बजेतक	२८ ,,	वृषराशि रात्रिमें ६। २१ बजे।
सप्तमी ,, २। २१ बजेतक	बुध	कृत्तिका ,, २। १३ बजेतक	२९ ,,	भद्रा दिनमें २। २१ बजेसे रात्रिमें ३। १४ बजेतक, कामदासप्तमी , होलाष्टकारम्भ।
अष्टमी सायं ४। ६ बजेतक	गुरु	रोहिणी सायं ४। २८ बजेतक	१ मार्च	मिथुनराशि रात्रिशेष ५। २५ बजे।
नवमी ,, ५। २९ बजेतक	शुक्र	मृगशिरा रात्रिमें ६। २२ बजेतक	२ ,,	× × × ×
दशमी रात्रिमें ६। २४ बजेतक	शनि	आर्द्रा ,, ७। ४७ बजेतक	३ ,,	× × × ×
एकादशी ,, ६।४६ बजेतक	रवि	पुनर्वसु ,, ८। ४४ बजेतक	४ ,,	भद्रा प्रात: ६। ३५ बजेसे रात्रिमें ६। ४६ बजेतक, कर्कराशि दिनमें २। ३० बजे, आमलकी एकादशीव्रत सबका, श्रीकाशीविश्वनाथ शृंगार दिवस, पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्रमें सूर्य दिनमें १। ० बजे।
द्वादशी ,, ६। ३७ बजेतक	सोम	पुष्य ,, ९। ८ बजेतक	५ ,,	पुष्य नक्षत्रयुत गोविन्दद्वादशीयोग, प्रदोषव्रत, मूल रात्रिमें ९।८ बजेसे।
त्रयोदशी ,, ५। ५९ बजेतक	मंगल	आश्लेषा ,, ९। ६ बजेतक	६ ,,	सिंहराशि रात्रिमें ९। ६ बजेसे।
चतुर्दशी सायं ४। ५३ बजेतक	बुध	मघा ,, ८। ३५ बजेतक	७ ,,	भद्रा सायं ४। ५३ बजेसे, रात्रिशेष ४। ९ बजेतक, चौमासी चौदस जैन, व्रतपूर्णिमा, होलिकादाह रात्रिमें १२। ८ बजेसे रात्रिमें १। २० बजेतक, मूल रात्रिमें ८। ३५ बजेतक।
पूर्णिमा दिनमें ३। २३ बजेतक	गुरु	पू०फा० ,, ७। ४५ बजेतक	८ ,,	कन्याराशि रात्रिमें १। २७ बजे, स्नान-दानादिकी पूर्णिमा, श्रीचैतन्य महाप्रभु जयन्ती, काशीमें होली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०६८, शक १९३३-१९३४, सन् २०१२, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-ऋतु, वसन्त-ऋतु, चैत्र कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें १।३४ बजेतक	शुक्र	उत्तरा फाल्गुनी रात्रिमें ६।३४ बजेतक	९ मार्च	काशीसे अन्यत्र होली, वसन्तोत्सव, रतिकाम महोत्सव।
द्वितीया ,, ११।३० बजेतक	शनि	हस्त सायं ५।९ बजेतक	१० ,,	भद्रा रात्रिमें १०। २२ बजेसे, तुलाराशि रात्रिमें ४। २२ बजे।
तृतीया ,, ९।१३ बजेतक	रवि	चित्रा दिनमें ३।३३ बजेतक	११ ,,	भद्रा दिनमें ९। १३ बजेतक, संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ९। २४ बजे।
चतुर्थी प्रातः ६।५० बजेतक पंचमी रात्रिशेष ४। २७ बजेतक	सोम	स्वाती ,, १।५३ बजेतक	१२ ,,	रंगपंचमी।
षष्ठी रात्रिमें २।८ बजेतक	मंगल	विशाखा ,, १२।१४ बजेतक	१३ ,,	भद्रा रात्रिमें २। ८ बजेसे, वृश्चिकराशि प्रातः ६। ३९ बजे। वृद्धांगारकपर्व (बुढ़वामंगल)।
सप्तमी ,, ११।५४ बजेतक	बुध	अनुराधा ,, १०।३९ बजेतक	१४ ,,	भद्रा दिनमें १। ० बजेतक, मीन संक्रान्ति दिनमें १२। ४१ बजे खरमासारम्भ, वसन्त-ऋतु प्रारम्भ, मूल दिनमें १०। ३९ बजेसे।
अष्टमी ,, ९।५४ बजेतक	गुरु	ज्येष्ठा ,, ९।१४ बजेतक	१५ ,,	धनूराशि दिनमें ९। १४ बजेसे, श्रीशीतलाष्टमीव्रत, सौर चैत्रमासारम्भ।
नवमी ,, ८।१२ बजेतक	शुक्र	मूल ,, ८।४ बजेतक	१६ ,,	मूल दिनमें ८। ४ बजेतक।
दशमी ,, ६।५१ बजेतक	शनि	पू० षा० प्रातः ७।१४ बजेतक	१७ ,,	भद्रा प्रातः ७। ३१ बजेसे रात्रि ६।५१ बजेतक, मकरराशि दिनमें १। ७ बजे, उत्तराभाद्रपद नक्षत्रका सूर्य रात्रिमें ८। ५२ बजे।
एकादशी सायं ५।५४ बजेतक	रवि	उ० षा० ,, ६।४६ बजेतक	१८ ,,	पापमोचनी एकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी ,, ५।२६ बजेतक	सोम	श्रवण ,, ६।४३ बजेतक	१९ ,,	कुम्भराशि रात्रिमें ६।५७ बजे, पंचकारम्भ रात्रिमें ६।५७ बजे, सोमप्रदोषव्रत।
त्रयोदशी ,, ५। २८ बजेतक	मंगल	धनिष्ठा ,, ७।१० बजेतक	२० ,,	भद्रा सायं ५। २८ बजेसे रात्रिशेष ५। ४६ बजेतक, मासशिवरात्रिव्रत, वारुणीपर्वयोग प्रातः ७। १० बजेसे सायं ५। २८ बजेतक।
चतुर्दशी रात्रिमें ६।२ बजेतक	बुध	शतभिषा दिनमें ८।७ बजेतक	२१ ,,	मीनराशि रात्रिमें ३। १४ बजे, राष्ट्रिय चैत्र मासारम्भ, शक १९३४ प्रारम्भ।
अमावस्या ,,७।५ बजेतक	गुरु	पू० भा० ,,९।३६ बजेतक	२२ ,,	स्नान-दान श्राद्धकी अमावस्या, मन्वादि अमावस्या।

सं० २०६९, शक १९३४, सन् २०१२, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, चैत्र शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ८। ३५ बजेतक	शुक्र	उ० भा० दिनमें ११। २९ बजेतक	२३ मार्च	मूल दिनमें ११। २९ बजेसे, चान्द्र संवत्सर और वसन्तका नवरात्रारम्भ विश्वावसु नाम संवत्सर प्रारम्भ, अभिजित्-मुहूर्त्त दिनमें ११। ३६ बजेसे दिनमें १२। २४ बजेतक।
द्वितीया ,,१०। २५ बजेतक	शनि	रेवती ,, १।४५ बजेतक	२४ ,,	पंचक समाप्त दिनमें १।४५ बजे, मेषराशि दिनमें १।४५ बजे, चन्द्रदर्शन।
तृतीया ,, १२। २९ बजेतक	रवि	अश्विनी सायं ४।१७ बजेतक	२५ ,,	मूल सायं ४। १७ बजेतक, गणगौर, मत्स्यजयन्ती।
चतुर्थी ,, २। ३५ बजेतक	सोम	भरणी रात्रिमें ६।५५ बजेतक	२६ ,,	भद्रा दिनमें १। ३२ बजेसे रात्रिमें २। ३५ बजेतक, वृषराशि रात्रिमें १। ३३ बजे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।
पंचमी रात्रिशेष ४। ३४ बजेतक	मंगल	कृत्तिका ,, ९। २८ बजेतक	२७ ,,	श्रीरामराज्य महोत्सव।
षष्ठी अहोरात्र	बुध	रोहिणी ,,११।४७ बजेतक	२८ ,,	श्रीस्कन्दषष्ठी, सूर्यषष्ठी (विहार)।
षष्ठी प्रातः ६। १७ बजेतक	गुरु	मृगशिरा ,, १।४६ बजेतक	२९ ,,	मिथुनराशि दिनमें १२। ४६ बजे, भानुसप्तमी।
सप्तमी ,, ७।३१ बजेतक	शुक्र	आर्द्रा ,, ३।१८ बजेतक	३० ,,	भद्रा दिनमें ७। ३१ बजेसे रात्रिमें ८। ० बजेतक, महानिशापूजा।
अष्टमी दिनमें ८। २७ बजेतक	शनि	पुनर्वसु रात्रिशेष ४।२१ बजेतक	३१ ,,	कर्कराशि रात्रिमें १०।५ बजे, श्रीदुर्गाष्टमीव्रत, श्रीरामनवमीव्रत (स्मार्त्त) श्रीमहानवमी, रेवती नक्षत्रमें सूर्य प्रातः ७। २३ बजे।
नवमी ,,८।४७ बजेतक	रवि	पुष्य ,,४।५३ बजेतक	१ अप्रैल	मूल रात्रिशेष ४।५३ बजेसे, नवमीपर्यन्त हवनादि कार्य, श्रीरामनवमीव्रत (वैष्णव), दशमीमें नवरात्रव्रतकी पारणा।
दशमी ,,८।३६ बजेतक	सोम	आश्लेषा ,, ४।५७ बजेतक	२ ,,	भद्रा रात्रिमें ८। १५ बजेसे, सिंहराशि रात्रिशेष ४।५७ बजेसे।
एकादशी ,,७।५४ बजेतक	मंगल	मघा ,,४।३१ बजेतक	३ ,,	मूल रात्रिशेष ४। ३१ बजेतक, भद्रा दिनमें ७।५४ बजेतक, कामदा एकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी प्रातः ६।४५ बजेतक त्रयोदशी रात्रिशेष ५।१३ बजेतक	बुध	पू०फा० रात्रिमें ३।४५ बजेतक	४ ,,	प्रातः ६।४५ बजेतक एकादशीव्रतकी पारणा, प्रदोषव्रत, श्रीमहावीरजयन्ती (जैन)।
चतुर्दशी रात्रिमें ३।२१ बजेतक	गुरु	उ०फा० ,, २।३८ बजेतक	५ ,,	भद्रा रात्रिमें ३। २१ बजेसे, कन्याराशि दिनमें ९। २८ बजेसे।
पूर्णिमा ,, १। १५ बजेतक	शुक्र	हस्त ,,१।१६ बजेतक	६ ,,	भद्रा दिनमें २। १८ बजेतक, स्नान-दान-व्रतादिकी पूर्णिमा, श्रीहनुमज्जयन्ती, वैशाखस्नानारम्भ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृपानुभूति

दुर्घटनामें प्राणरक्षा

जीवनमें घटनाओं और परिस्थितियोंपर हमारा कोई नियन्त्रण नहीं है, हम इनके वशमें हैं। कुछ घटनाओंकी अनुभूति सुखद और कुछकी दुःखद होती है। कुछ घटनाएँ ऐसी भी होती हैं, जो हमारे जीवनपर दैवीय चमत्कारकी छाप छोड़ जाती हैं। इनसे ईश्वरकी सत्तामें श्रद्धा एवं विश्वास दृढ़ होता है और विशेष कृपाकी अनुभूति होती है। हमारा मन ईश्वरकी दयालुताके प्रति अपार श्रद्धासे भर जाता है। मेरे जीवनमें एक ऐसी घटना घटित हो चुकी है, जिससे ईश्वरमें मेरी आस्था और दृढ़ हुई है।

मेरा छोटा भाई रमेश कुमार एक खूबसूरत नौजवान था। बहुत खुशमिजाज था। सबके साथ हँसने-हँसानेवाला। उसका सपना था कि मैं एक दिन भारतीय सेनामें भरती होऊँगा और वह एक दिन प्रादेशिक सेनामें भर्ती हो भी गया। बहुत खुश था, उसे उसकी मंजिल जो मिल गयी थी। लगभग १० वर्ष प्रादेशिक सेनाकी नौकरी करके वह डी०एस०सी० (Defence security corps)-में चला गया। सन् २००४-०५ ई०में वह वायुसेना-केन्द्र जामनगर, गुजरातमें नियुक्त था। सुरक्षाबलोंकी विकट कार्यस्थिति, एकाकी जीवन एवं घरपर पत्नीके असहज व्यवहारसे वह कुछ अवसादग्रस्त हो गया था। अजीब तरहकी बातें करने लगा। काफी देरतक फोनपर बातें करता रहता। घरमें सोच-विचारकर मैं उसके साले सुभाषको साथ लेकर ४.११.२००५ को उससे मिलने जामनगर चला। हम ५.११.२००५ को उसकी प्लाटूनमें पहुँच गये, जहाँ उसके साथी सैनिक एवं अधिकारी कहने लगे—इसे घर ले जाओ; कुछ दिन परिवारमें बच्चोंके साथ रहेगा तो ठीक हो जायगा और हम तीनों ६.११.२००५ को वापस घरके लिये चल दिये, यह सोचकर कि भाईको दिल्ली कैंटमें सेना-अस्पतालमें दिखायेंगे, अगर भर्ती हो गया तो घरसे आ-जाकर उसे देखते रहेंगे। हम तीनों २९०३ गोल्डन टैंपल एक्सप्रेस गाड़ीसे वापस आ रहे थे। ७.११.२००५ को सुबहके समय मैं शौचालयमें चला गया। आकर सुभाषसे पूछा कि रमेश कहाँ है? तो उसने रास्तेकी तरफ इशारा कर कहा कि इधर गया है। मैंने सारी गाड़ीमें देखा, लेकिन वह नहीं मिला। तबतक गाड़ी कोटा-स्टेशन पहुँच चुकी थी और हमारे नामसे उद्घोषणा हो रही थी कि अमुक नामवाले व्यक्ति गाड़ीसे उतर जायँ, उनका साथी पीछे श्यामगढ़ स्टेशनके पास गाड़ीसे गिर गया है। होश आनेपर उसने नाम, पता आदि बता दिया था।

बहुत भारी संकट आ गया था। इतनी तेज गतिसे चलनेवाली गाड़ीसे गिरकर कोई बचेगा—यह सब सोचकर मैं बदहवास हो रहा था कि भाई अब जिन्दा नहीं मिलेगा। हिम्मतकर हमलोग RPF के कार्यालय पहुँचे, उन्होंने हमें बड़ी दिलाशा दिलायी, बड़ा सहयोग किया, किंतु बड़ी समस्या थी वापस श्यामगढ़ पहुँचनेकी। उस समय कोई गाड़ी नहीं थी। RPF वालोंने मालगाड़ीसे हमें श्यामगढ़ वापस पहुँचाया, जहाँ रेलवेके कर्मचारी हमारा इन्तजार कर रहे थे। सहृदय गार्डने हमें बहुत ढाँढ़स बँधाया।

भगवत्कृपासे भाईकी जान बच गयी थी—इसका पता हमें रेलकर्मियोंसे श्यामगढ़ पहुँचकर लगा। प्राथमिक उपचारके बाद उसे मन्दसौर, मध्य प्रदेशके सामान्य अस्पतालमें भेज दिया गया था। श्यामगढ़से हम टैक्सीद्वारा मन्दसौर पहुँचे। भाईको गम्भीर चोट लगी थी, उसके सिरपर गहरे घाव थे। रीढ़की हड्डीमें फ्रैक्चर हो चुका था। उसकी स्थिति बड़ी दयनीय थी। उपचार भी वहाँ उसके लिये कुछ नहीं था, सो वहाँसे दिल्लीके लिये रेफर कराकर एम्बुलेंससे हम दिल्लीके लिये चल पड़े। भाईकी हालत देखी नहीं जा रही थी। **'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे'** का मन्त्र-जप करते और भाईसे भी कराते हुए जैसे-तैसे जयपुरके सवाई मानसिंह अस्पताल पहुँचे। वहाँ डॉक्टरोंने कहा—घबराओ नहीं, दिल्ली ले जाओ, वहाँतक ये आरामसे पहुँचेगा। हमें विश्वास नहीं हो रहा था कि हम दिल्लीतक उसे सुरक्षित पहुँचा देंगे। राम-राम करते हम दिल्ली पहुँचे एवं ८.११.२००५ को भाईको सेना-अस्पताल, दिल्ली कैंटमें भर्ती करा दिया; जहाँ वह महीनोंतक उपचाराधीन रहा। इस प्रकार इतनी बड़ी दुर्घटनामें बच जाना परम प्रभु परमात्माकी कृपा ही थी, फिर दिल्लीमें सेनाके अस्पतालतक पहुँचना भी असम्भव प्रतीत हो रहा था, पर **'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥'**—इस महामन्त्रके प्रभावसे हमलोग उसे यहाँतक पहुँचा सके—यह ईश्वरीय कृपा ही थी।—**महेश कुमार**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

भाईका आदर्श

गंगाधरजीके दो लड़के थे—जगन्नाथ और बिलासीराम। उनकी पहली पत्नीके पुत्र जगन्नाथ थे और उस पत्नीका देहान्त हो जानेपर जो दूसरा ब्याह किया था, उसके बिलासीराम थे। बिलासीरामकी माँका भी कुछ दिनों बाद ही देहान्त हो गया। फिर गंगाधरजीने विवाह नहीं किया। लड़के दोनों विवाहित थे और उनके सन्तानें भी थीं। जगन्नाथ और बिलासीराममें परस्पर बहुत ही सद्भाव था। आश्चर्यकी बात तो यह कि दोनोंकी पत्नियोंमें आपसमें बड़ा प्रेम था। बिलासीरामकी पत्नी तो अपनी जेठानीका माँसे बढ़कर आदर करती थी। इतना होनेपर भी गंगाधरजीने यह सोचकर कि 'दोनों लड़के दो माताओंके हैं, आगे चलकर लड़ें नहीं' इसलिये इनका बँटवारा कर देना चाहा। पर जगन्नाथ, बिलासीराम और दोनोंकी पत्नियाँ गोदावरी बाई तथा मोहरी बाई अलग होना नहीं चाहते थे। आखिर पिताके बहुत कहने-सुननेपर दूकानका कारोबार तो साथ बराबरके हिस्सेमें रखा, पर जगह-जमीन, गहना, नगद रुपये आदिका बँटवारा बड़े प्रेमसे कर लिया गया। दोनोंने ही अलग-अलग मकानोंमें रहना स्वीकार नहीं किया, तब गंगाधरजीने यह निश्चय कर दिया कि 'रहें तो एक ही मकानमें, पर रसोई अलग-अलग।' घरका तथा बच्चोंके विवाह-शादीका खर्च अपना-अपना अलग-अलग लगे। दोनों भाइयोंने पिताकी आज्ञा समझकर स्वीकार कर लिया। इससे सबसे अधिक दुःख हुआ बिलासीरामकी पत्नी मोहरी बाईको। कुछ समय बाद गंगाधरजी भी चल बसे।

अब दोनों भाई अलग-अलग खर्च लगाते हुए बड़े प्रेमसे रहने तथा बराबरी हिस्सेदारीमें कारोबार करने लगे। इनका आसाममें व्यापार था। आमदनी भी उस जमानेके अनुसार अच्छी थी। दूकानका काम अधिकांशमें बिलासीराम ही सँभालते थे। वे अपने भाईका बड़ा आदर करते और उन्हें परिश्रमका काम नहीं करने देते। घरमें भी अलग-अलग रसोई होनेपर भी मोहरी अपनी जेठानीकी पाँचों लड़कियों तथा तीनों लड़कोंको एकमात्र पुत्रसे भी बढ़कर स्नेह करती तथा उनकी सार-सँभाल रखती।

जगन्नाथका बड़ा परिवार होनेसे घर-खर्च भी अधिक लगा और उस समय एक लड़कीके ब्याहमें दस हजार और दूसरीके विवाहमें चौदह हजार—इस प्रकार चौबीस हजार दो विवाहोंमें नाम लिखे गये। उधर खर्च सीमित होनेसे बिलासीरामकी पूँजी बढ़ती गयी। एक साल व्यापारमें इतनी मन्दी आयी कि कारोबारमें कुछ आमदनी तो हुई ही नहीं, बल्कि चावल खरीदकर रखे थे, बाजार मन्दा होनेसे उनमें पर्याप्त घाटा लग गया। परिणामस्वरूप घाटे तथा खर्चकी रकमें मिलाकर जगन्नाथकी जमाकी सारी पूँजी तो चली ही गयी, बारह हजार रुपये भी उनके नाम पड़ गये, इधर बिलासीरामके लगभग सवा लाख रुपये जमा हो गये। इस बातका पता लगनेपर मोहरी बाई बहुत दुःखी रहने लगी। वह बार-बार अपने स्वामी बिलासीरामके सामने अपना दुःख प्रकट करके कहती कि 'हम दोनों घर फिरसे एक हो जायँ। सारी पूँजी दोनोंकी बराबर रहे, रसोई एक साथ हो और घरका खर्च, बच्चोंकी पढ़ाई, विवाह आदिका खर्च भी सब बराबरके हिस्सेमें ही लगे। उनके बच्चे आपके ही तो बच्चे हैं। आप धनी हो जायँ और आपके बड़े भाई तथा उनके बच्चे गरीब हो जायँ, यह तो सर्वथा अनुचित है तथा बड़े ही दुःखकी बात है।' बिलासीराम तो इस मतके थे ही—पत्नीकी इन बातोंसे उन्हें बहुत सुख-सान्त्वना मिलती और पुनः एक साथ हो जानेका संकल्प दृढ़ होता जाता।

इधर रुपये नाम पड़ने तथा घरके खर्च एवं लड़कियोंके विवाहकी चिन्तासे जगन्नाथ उदास रहने लगे और आखिर उनको हल्का-सा ज्वर रहने लगा। अब तो बिलासीराम और उनकी पत्नीकी चिन्ता बहुत ही बढ़ गयी। पत्नीने बार-बार कहा और बिलासीरामसे भी नहीं रहा गया। वे अपना बहुत दिनोंका संकल्प पूरा करनेपर तुल गये और एक दिन वकीलके यहाँ जाकर सब दस्तावेज बना लाये और तदनुसार ही बहीखातोंमें भी जमा-खर्च कर लिया। तदनन्तर बिलासीराम आकर भाई जगन्नाथके पास बैठ गये। उनकी पत्नी मोहरी बाई भी अपनी जेठानी गोदावरीके समीप जा बैठी। बिलासीरामने बड़े भाई जगन्नाथके पैर पकड़ लिये और वे रोने लगे। उनकी आँखोंसे आँसू बहते देखकर जगन्नाथको बड़ा खेद हुआ और उन्होंने बड़े स्नेहसे इसका कारण पूछा। बिलासीरामने रोते हुए बड़े ही विनीत शब्दोंमें कहा—'भाईजी! आप बड़े हैं, मुझपर आपका अत्यन्त स्नेह है, इसीसे मैं आपके सामने बोलनेका साहस करता हूँ। मेरी धृष्टता क्षमा करें और मुझे कृपापूर्वक वचन दें कि आप मेरी प्रार्थनाको स्वीकार कर लेंगे।' जगन्नाथ स्नेह-गद्गद थे। उन्होंने कह दिया 'भैया! तुम रोओ मत। जो कुछ कहोगे—मुझे स्वीकार है।'—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिलासीरामने उत्फुल्ल हृदयसे दस्तावेज सामने रखकर हस्ताक्षर करनेकी प्रार्थना की। जगन्नाथने बिना ही कुछ पूछे उसपर हस्ताक्षर कर दिये। अब तो बिलासीरामके आनन्दका ठिकाना न रहा। वे बोले—'भाईजी! आपने बिना ही जाने-पूछे मेरी प्रार्थनापर अपने हस्ताक्षर करके मुझपर जो अपार विश्वास तथा कृपा की है, इसकी कहीं तुलना नहीं है। भाईजी! बात यह है कि पूज्य पिताजी बँटवारा कर गये थे। आपको याद होगा। उस समय भी हमलोग इसके विरुद्ध थे। पिताजीके चले जानेके बाद तो मुझे इससे बड़ी बेचैनी रहने लगी। आपकी बहू तो मुझसे भी ज्यादा दु:खी रही और मुझे बार-बार कहती रही। मेरा आपसे पूछनेका साहस नहीं होता। आप चिन्तासे बीमार हो गये—तब तो हम दोनोंकी चिन्ता और भी बढ़ गयी। मुझसे रहा नहीं गया। तब आपसे पूछे बिना ही मैंने ये दस्तावेज बनवा लिये। आपसे पूछता और आप अस्वीकार कर जाते तो फिर तो मेरा मरण ही हो जाता। भाईजी! इनमें यही लिखवाया गया है कि हम दोनों भाई अलग-अलग न रहकर पुनः पूर्ववत् एक साथ हो गये हैं। आपके नाम बारह हजार रुपये पड़ते थे, मेरे नामसे एक लाख पच्चीस हजार जमा थे। अतः उनमेंसे बारह हजार बाद देकर हमारी पूँजी एक लाख तेरह हजार दोनोंकी सीरमें रह गयी है। रसोई आजसे एक साथ ही होगी। आपकी बहूने उसकी सारी व्यवस्था कर ली है। रसोईका तथा और सब खर्च एक साथ ही घरमें लगेगा। लड़कियों तथा लड़कोंके विवाह-शादीका खर्च भी सब घरमें ही लिखा जायगा। मुझपर कृपा करके आपने दस्तावेजपर हस्ताक्षर तो कर ही दिये हैं! मैं प्रणाम कर रहा हूँ। आप मेरी पीठ ठोंककर और मेरे सिरपर हाथ फेरकर अपनी स्वीकृति दे दीजिये।' यों कहकर वे भाई जगन्नाथके चरणोंपर गिर आँसू बहाने लगे। जगन्नाथ क्या बोलते, वे तो कुछ सोच ही नहीं सके। पीठ ठोंककर सिरपर हाथ फेरकर उठाकर अपने हृदयसे लगा दिया। दोनों नेत्रोंसे अश्रुधारा बह चली। उधर जेठानीके पैर पकड़कर मोहरी बाई रोने लगी। जेठानीने उसे उठाकर हृदयसे लगा लिया।

उसी समयसे जगन्नाथका ज्वर जाता रहा। घरमें आनन्द छा गया। अब भी उनका सब कामकाज खर्च वैसे ही एक साथ है, जगन्नाथके आठों बच्चोंके तथा बिलासीरामके एक लड़केका विवाह हो चुका है। भरा-पूरा घर है। लड़के बड़े हो गये हैं; पर आपसमें बड़ा स्नेह है। अब अलग-अलग नहीं, दोनों भाइयोंके ही नौ लड़के-लड़कियाँ हैं।—ताराचन्द अग्रवाल

(२)

गोवर्धन-परिक्रमाक्षेत्रमें प्रभु श्रीकृष्णकी उपस्थिति

बात सन् १९७९ ई० की है। मेरे नानाजी जो कि लगभग ७२ वर्षके थे, मथुरामें मंडी रामदासस्थित अपने औषधालयमें बैठे गीताका '**नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति**' श्लोक समझा रहे थे कि दो २७-२८ वर्षके युवक आये और बोले—डॉक्टर साहब राम-राम! नानाजीने आशीर्वाद देते हुए कहा—'लाला! कहीं कू जाय रहे हो?' हाँ, डॉक्टर साहब, गोरधनकी परकम्मा कू जाय रहे, सोची डॉक्टर साहबसे मिलते भये निकलेंगे। नानाजी बोले—'बड़ी किरपा करी बेटा! मेरे सवा रुपया दान घाटी मन्दिरमें चढ़ाये दियो।' और बोले—'लाला, नेक धीरे-धीरे चलो तो मैं भी चल पड़ूँ।' युवक तुरन्त बोले—'नाय-नाय डॉक्टर साहब, गोरधनकी परकम्मा लम्बी हते, डोकरा-डोकरीके बसकी नाय, आप यहीं भजन करो, हमें क्षमा करो।' और कुछ कहा जाय, वे इससे पहले ही चल दिये।

मैं अपने नानाजीको डोकरा—बूढ़ा कहे जानेसे गुस्सेमें था। साथ ही, अपने ज्ञानी नानाजीको मूरख युवकोंके लिये हाथ जोड़नेसे दुखी भी था। मैंने नानाजीसे कहा—'गोवर्धनकी परिक्रमामें ऐसा क्या है, जो आप इन युवकोंके आगे गिड़गिड़ा रहे थे?' वे बोले—'बेटा, सात वर्षकी आयु से अपने दादाके साथ परिक्रमा प्रारम्भ की थी, अब शरीर शिथिल हो गया है, वरना हर पूर्णिमापर गोवर्धन-परिक्रमा लगाता था।' मैं आपको ले चलता हूँ, मैंने जोशसे कहा। मेरा इतना कहना था कि नानाजीने दवाखाना बन्द कर दिया और अपनी छड़ी उठाकर चलनेके लिये तत्पर हो गये। यह उत्साह देख मैं चकित था।

हमलोग बसद्वारा गोवर्धन पहुँच गये। नानाजीने मानसी गंगामें स्नानकर सन्ध्या की एवं राधा-कृष्णके प्रेमके निमित्त परिक्रमाका संकल्प लिया। मुझे भी कराया और परिक्रमा प्रारम्भ की। मैं अपनी जिज्ञासाके कारण प्रश्न-पर-प्रश्न झोंके जा रहा था। अचानक नानाजीने क्रोध करते हुए कहा—'मूरख लड़के! तुझे परिक्रमा लगानेकी अक्ल नहीं है।' मैं भी गुस्सेसे बोला, 'जैसे सब चलते हैं, वैसे मैं भी चल रहा हूँ।'

बोले—'चलना तो शरीरका तप है, मनका क्या कर रहे हो? बकवाससे मन तो कोरा रह जायगा।' 'क्या करूँ?'—मैंने कहा। 'तो तुम्हें परिक्रमा करनेका सही तरीका नहीं मालूम' वे बोले 'आपने कभी बताया।' और गुस्सेसे बोले—'मुझसे भूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई' कहकर उन्होंने एक कागज मुझे दिया।

'श्रीराधाकृष्ण के गह चरण, श्रीगिरिवरधरण की ले शरण।'

बहुत पुराने कागजपर यह पंक्ति लिखी थी। नानाजीने बताया यह लिखायी उनके दादाजीकी है और बोले—'इस मन्त्रका जप करते रहो, कभी प्रभुकी कृपा हो गयी तो तर जाओगे।' मैं फिर बोला—'आपपर हुई है क्या?' नानाजीने कहा—'ये बातें बतायी नहीं जातीं।' मैंने कहा—'आप भी नहीं बतायेंगे तो कौन बतायेंगे?' 'विचार करूँगा' नानाजीने कहा—अब तुम जप के साथ परिक्रमा करो।

हम धीरे-धीरे आनौरकी ओर पहुँचे। नानाजी एक मन्दिरके बाहर विश्रामके लिये बैठ गये।

थोड़ी देर विश्रामके बाद नानाजी बोले—७० वर्षसे अधिकका हो गया हूँ। लगभग दस वर्ष और शरीर चलेगा, अतः तुम्हें एक गोपनीय घटना बताता हूँ ताकि हमारे वंशमें विश्वास रहे। ध्यानपूर्वक हृदयमें धारण करो। आजसे तीस वर्ष पूर्व यहाँसे थोड़ा आगे हलका वन था और कच्चा रास्ता था। बरसातमें यहाँ पानी और दलदल हो जाता था। एक पूर्णमासीको मैं परिक्रमा करने आया तो गाँवके लोग बोले—मौसम खराब है और आनौरके आगे दलदल है, परिक्रमा सुबह लगा लो, पर मैं दूकान बन्द करनेसे बचनेके लिये रात्रिमें ही परिक्रमा प्रारम्भ कर बैठा। कुछ ही देरमें बादल हो गये और पूर्णिमाका चन्द्रमा छुप गया। अन्धकार हो गया। मैं फिर भी दृढ़ निश्चयके साथ चलता रहा। मनमें एक अलग ही आनन्द था, दूरतक मेरे अलावा कोई नहीं था।

धीरे-धीरे भूमि नरम होने लगी। मैंने अपने अनुभवसे मार्ग थोड़ा बदला। धीरे-धीरे पानी घुटनोंतक हो गया। मैंने अगला कदम रखा तो पूरा अन्दर चला गया। पीछे आनेकी कोशिश की तो पैर कीचड़से नहीं निकल रहा था। कुछ समझूँ तबतक कमरसे नीचेका भाग डूब चुका था। शेष भी धीरे-धीरे अन्दर जा रहा था। मैंने एक हाथ पानीमें डाला तो वह भी फँस गया। अब मैं समझ गया कि लोग ठीक कह रहे थे। अन्तिम समय नजदीक जानकर मैं जोर-जोरसे ***'श्रीराधाकृष्ण के गह चरण, श्रीगिरिवरधरण की ले शरण'*** का जप करने लगा। बीच-बीचमें 'हे गोपाल, हे वंशीलाल, अपने चरणोंमें स्थान देना' का आर्तनाद भी कर रहा था।

अचानक वहाँ एक बाल आवाज आयी—'को है' (कौन है?) मैं तत्काल जोरसे चिल्लाया—'बेटा! मैं एक परिक्रमाका यात्री हूँ, कल कोई पूछे तो बताना कि डॉ० साहब दलदलमें लीन है गयै। लाला तेरी बड़ी कृपा होगी, नहीं तो परिवारवाले परेशान होंगे।' अरे! अभी तो तोये बहुत डाक्टरी करनी है, लै मेरे लकुटिया पकड़ और बाहर निकल—बालक बोला। 'नाय-नाय लाला, मेरे बोझसे अगर तू भी दलदलमें फँस गयो तो मोकू बड़ो ही पाप लगैगो, तूने अभी पूरी जिन्दगी बितानी हतै है।' मैंने अपना ज्ञान दिखाया—नानाजी बोले।

मेरी चिन्ता छोड़ लकुटिया पकड़, मोये देर है रही है, मय्या मारेगी—बच्चेकी आवाजमें कुछ था। उसकी लाठी पकड़ी, और मैं एक तिनकेकी तरह बाहर आ गया।

'लाला इतनी रातमें बाहर नाय निकलैं खतरा रेवै', नानाजी बालकको समझा रहे थे—'तेरी मय्या तोहे लाडमें ये बाँसुरी और मोरपंखी लगाय दई है, पर यासे कोई कृष्ण थोड़े ही बन जाय है, चल मैं तोकू तेरे घर पहुँचा आऊँ।' मेरी चिन्ता छोड़ तोकू या दगरे (मार्ग) से पार कराय दूँ फिर जाऊँगा—बालक बोला। 'अरे! तू तो बड़ा ही हठी बालक है, का करै है?' यहीं गोवर्धन पर्वतमें डोलूँ और गय्या चराऊँ, कभी तेरे-से मूरखनकी मदद करूँ—बालकने हँसते-हँसते कहा। लाला! तेरी मय्या बड़ी भागवान है, जो कलयुगमें ऐसो बेटा पाया है। तेरे परिवारमें गिर्राज बाबाकी बड़ी कृपा है। नानाजीने आशीष दी। बेचारे तो पे कृपा नाय का? बालक बोला। लाला हमारी किस्मत कहाँ? अब देख परिक्रमा-जैसे शुभ काममें दलदलमें फँस गयो हतो, नानाजी चलते-चलते बोले। अब ठीक मारग आय गयो है। अपना जप कर और परकम्मा लगा, मैं चला—बालककी आवाज आयी। ठीक है बेटा, सुखी रह और अपनी मय्या कू मेरी राम-राम कहियो, कहते-कहते नानाजी बालककी ओर पीछे मुड़े, वे चकित थे। मार्ग सुनसान था। अब नानाजीका विवेक जाग्रत् हुआ, स्वयं प्रभु आये थे। फिरसे पुकारा काफी समय उस स्थानपर बैठकर जप किया, रजमें लोट लगायी, अपनी मूर्खतापर रोये अपने भाग्यपर हँसे, ऐसा नानाजीने बताया।

पर नानाजी भगवान्‌ने आपको इतने संकेत दिये, फिर भी आप नहीं समझे—मैंने पूछा। नानाजीने बताया, प्रभुके सामने बुद्धि साथ नहीं देती।

अगर मेरा अनुभव भी आप-जैसा हो गया तो मैं तो यहीं घर बना लूँगा—मैंने कहा। नानाजी बोले—बेटे! जब मन निर्मल होगा तो कुछ नहीं करना होगा, आओ, अब मौन होकर परिक्रमा पूर्ण करें।—**राकेश कुमार**

(३)

'अन्त मति सो गति'

सन् १९६२ ई०में मैं अप्रैलसे जुलाईतक भगवान् केदारनाथ और बदरीनाथ मन्दिरोंके आडिटके लिये केदारनाथ मन्दिरके शीतकालीन मुख्यालय ऊखीमठमें था। लगभग दो माहके पश्चात्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहाँसे बदरीनाथ जाना था। मेरे मनमें आया कि क्यों न इस अवसरका लाभ उठाया जाय। मैंने अपने घर बलिया जिलेमें अपने बड़े भाईको पत्र लिखकर निवेदन किया कि वे माताजी, पिताजी और भाभीजीको लेकर आ जायँ तो भगवान् केदारनाथ और बदरीनाथके दर्शन कर लिये जायँ। चूँकि मैं मन्दिरके आडिटके ही कार्यसे गया था, तो दर्शन-पूजन और यात्राकी विशेष सुविधा उपलब्ध थी।

माताजी अपने स्वास्थ्यके कारण उक्त यात्राके लिये राजी नहीं हुईं। उन्हें दिखायी भी कम देता था और शरीर भी भारी था। अतः वे नहीं आयीं। भाभी, पिताजी और गाँवकी एक चाचीजी तथा अपने परिवारसे लगाव रखनेवाली एक बूढ़ी कोइरिनको लेकर भाईसाहब ऋषिकेश होते हुए उत्तरकाशी पहुँचे। प्रोग्राम ऐसा ही बनाया गया कि मैं अपनी आडिट टीमके साथ उसी समय उत्तरकाशी पहुँचा। वहाँतक ही बस चलती थी और वहाँसे दो दिनका रास्ता तय करके पैदल ही केदारनाथ पहुँचा जा सकता था। मुझे यात्राके लिये घोड़ा-व्यय मिला था। मैंने भाई साहबको घोड़ा दे दिया। पिताजी छोटे कदके हल्के वजनवाले थे, अतः उनके लिये कण्डी (पीठपर रखनेवाली टोकरी) भाड़ेपर करा दी। बाकी मुझे लेकर और चपरासीके साथ पाँच व्यक्ति पैदल ही चले। सीतापुरचट्टीपर मन्दिरकी ओरसे रात्रि-विश्रामका प्रबन्ध कर दिया गया था। वहाँतककी यात्रा तो आनन्दपूर्वक कट गयी, परंतु मेरी चाचीका पैर सूज गया था और वे चल नहीं सकती थीं। मैंने उनके लिये भी घोड़ा कर दिया, परंतु ग्रामीण स्वभावके कारण वे घोड़ेपर चढ़नेके लिये राजी नहीं हो रही थीं। मेरे लिये बड़ी मुसीबत उत्पन्न हुई कि क्या करें। समझा-बुझाकर घोड़ा सँभालने और उन्हें पकड़कर चलनेकी घोड़ेवालेकी सलाहपर वे तैयार हुईं। पिताजीकी आयु उस समय ७२ वर्षकी रही होगी। किसान थे, घरपर स्वस्थ रहते थे, परंतु सीतापुरचट्टीसे चलते समय ही उन्हें तेज बुखार हो चला था। किसी प्रकार उनका उपचार कराते हम तीसरे दिन केदारनाथधाम पहुँचे। दर्शनकी विशेष व्यवस्था की गयी थी। दर्शनके समय पिताजीकी तबियत कुछ अधिक खराब होने लगी। वैद्य बुलाये गये, उन्होंने हृदयाघात समझकर उन्हें औषधि दे दी, उससे कुछ आराम हुआ। पिताजीका पूरा ध्यान बदरीनाथके दर्शनपर ही लगा रहा। उन्होंने मुझसे पूछा 'बेटा, हमलोग बदरीनाथ आये हैं। दर्शन हो गया?' मैंने बताया कि पिताजी! यहाँसे अभी तीन दिनके बाद हम बदरीनाथधाम पहुँचेंगे। दूसरे दिन जोशीमठतककी यात्रा हुई। बीचमें पाण्डुकेश्वरचट्टीपर रात्रि-विश्राम हुआ और वहाँसे बदरीनाथके लिये प्रातः प्रस्थान किया गया। वहाँसे फूलोंकी घाटी निकट ही थी। मेरी बड़ी इच्छा थी फूलोंकी घाटी देखनेकी, परंतु पिताजीकी दशा देखकर यह सम्भव नहीं हो सका। लगभग एक बजे दिनमें हम बदरीनाथधाम पहुँचे। नारायण धर्मशालामें मन्दिरके ठीक सामने हमें ठहराया गया। थोड़ी देर बाद मन्दिरका प्रसाद—केसरयुक्त मीठा चावल एक बड़े थालमें लाया गया। सबने भरपेट प्रसाद ग्रहण करनेके पश्चात् विश्राम करना प्रारम्भ किया।

इसी बीच पिताजीने फिर पूछा—'बेटा, बदरीनाथ आये या नहीं?' मैं उन्हें काका ही कहता था। मैंने बताया—'काका! आ तो गये हैं, परंतु आराम करके सायंकाल दर्शन करेंगे।' उन्होंने कहा—'जब हम पहुँच गये हैं तो भगवान् मुझे अपने यहाँ बुला लेते तो अच्छा होता।' इतना कहकर वे चेतनाशून्य हो गये। ये ही उनके अन्तिम शब्द थे। घरसे चलनेके समयसे बदरीनाथ पहुँचनेतक उनकी लौ लगी रही कि बदरीनाथ ही पहुँचकर उनके चरणोंमें अपना जीवन अर्पित कर दूँगा।

उनकी साँस उल्टी चलने लगी। मैंने अपनी आँखोंके सामने किसीको प्राण-त्याग करते इसके पहले कभी नहीं देखा था। साथमें मेरे गाँवकी बूढ़ी कोइरिन अनुभवी थी। उसने कहा—'बद्री बाबू! पिताजीको शीघ्र भू-शय्या दीजिये। उनकी साँस उलटी हो गयी है।' तुरन्त मन्दिरके डॉक्टर बुलाये गये। हाथ-पैर ठंडे पड़ रहे थे। वे तो मेरी आँखोंके सामने ही अन्तिम साँसें ले रहे थे और पन्द्रह-बीस मिनट पश्चात् उन्होंने अपनी अन्तिम यात्रा अपने इच्छानुसार बदरीनाथधाममें पूरी कर ली थी। हम सब लोग सन्न रह गये।

प्रभुने उन्हें अपनी शरणमें ले लिया था। उनका शव मन्दिरकी सीढ़ियोंके निकट रखा गया। भगवान्‌के विग्रहसे छुड़ाया गया लगभग एक किलो चन्दनका लेप उनके शरीरपर लगाया गया। उसके पूर्व भगवान्‌के स्नानसे निकले हुए जलसे उनके पूरे शरीरको धोया गया। मन्दिरके सेक्रेटरीसहित सारा स्टाफ उनकी शवयात्रामें सम्मिलित हुआ। ऋषिगंगा और अलकनन्दाके संगमपर शवदाह हुआ। लगभग दस-पन्द्रह किलो चन्दनकी लकड़ी, अगरबत्ती, ८-१० किलो शुद्ध घी उनकी चितामें डाला गया। यह सब उनकी अन्तिम इच्छासे भी अधिक ढंगसे हुआ था। मेरी तत्समयकी स्थिति ऐसी नहीं थी कि उनकी अन्तिम यात्राको इस प्रकार सुसम्पन्न भावसे पूरा करता।

भाई साहबने उनको मुखाग्नि दी और तत्पश्चात् गाँव लौटनेपर उनका श्राद्धकर्म सम्पन्न कराया। पिताजीकी अन्त समयमें जैसी लालसा थी, उसी अनुरूप उन्हें मुक्ति मिल गयी—**'अन्त मति सो गति'**।—**बद्रीनारायण सिंह**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनन करने योग्य

(१)

गरीबके दानकी महिमा

गुजरातकी प्रसिद्ध राजमाता मीनल देवी बड़ी उदार महिला थीं। वे सवा करोड़ सोनेकी मोहरें लेकर सोमनाथजीका दर्शन करने गयीं। वहाँ जाकर उन्होंने स्वर्ण-तुलादान आदि दिये। माताकी यात्राके पुण्य-प्रसंगमें पुत्र राजा सिद्धराजने प्रजाका लाखों रुपयेका लगान माफ कर दिया। इससे मीनलके मनमें यह अभिमान आ गया कि मेरे समान दान करनेवाली जगत्में दूसरी स्त्री नहीं है। रात्रिको भगवान् सोमनाथजीने स्वप्नमें कहा—'मेरे मन्दिरमें एक बहुत गरीब स्त्री यात्रा करने आयी है, तू उससे उसका कुछ पुण्य माँग।'

सबेरे मीनल देवीने सोचा, 'इसमें कौन-सी बड़ी बात है। रुपये देकर पुण्य ले लूँगी।' राजमाताने उस गरीब स्त्रीकी खोजमें आदमी भेजे। वे लोग यात्रामें आयी हुई एक गरीब ब्राह्मणीको ले आये। राजमाताने उससे कहा—तुम अपना पुण्य मुझे दे दो और बदलेमें अपनी इच्छाके अनुरूप धन ले लो। पर उसने किसी तरह भी इसे स्वीकार नहीं किया। तब राजमाताने कहा—तुमने ऐसा क्या पुण्य किया है—मुझे बताओ तो सही।

ब्राह्मणीने कहा—'मैं घरसे निकलकर सैकड़ों गाँवोंमें भीख माँगती हुई यहाँतक पहुँची हूँ। कल तीर्थका उपवास था। आज किसी पुण्यात्माने मुझे जैसे-तैसे बिना नमकका थोड़ा-सा सत्तू दिया। उसके आधे हिस्सेसे मैंने भगवान् सोमेश्वरकी पूजा की, आधेमेंसे आधा एक अतिथिको दिया और शेष बचे हुएसे मैंने पारणा की। मेरा पुण्य ही क्या है? आप बड़ी पुण्यवती हैं, आपके पिता, भाई, स्वामी और पुत्र सभी राजा हैं। यात्राकी खुशीमें आपने प्रजाका लगान माफ करवा दिया। सवा करोड़ मोहरोंसे शंकरजीकी पूजा की। इतना बड़ा पुण्य करनेवाली आप मेरा अल्प-सा दीखनेवाला पुण्य क्यों माँग रही हैं? मुझपर नाराज न हों तो मैं कुछ आपकी सेवामें निवेदन करूँ।'

राजमाताने वैसा विश्वास दिलाया। ब्राह्मणीने कहा—'मैं रुपयोंके बदलेमें पुण्य क्यों देती। देखिये, यह बात अवश्य है कि बहुत सम्पत्ति होनेपर भी नियमोंका पालन करना, शक्ति होनेपर भी सहन करना और दरिद्र होकर भी दान करना—ये बातें थोड़ी होनेपर भी अधिक पुण्यप्रद होती हैं।'

ब्राह्मणीकी इन बातोंसे राजमाता मीनल देवीका अभिमान नष्ट हो गया। उन्हें विश्वास हुआ कि शंकरजीने ही कृपाकर ब्राह्मणीको भेजा था।

(२)

महात्माका जीवन-चरित्र कैसे लिखना चाहिये?

एक विद्वान् व्यक्ति किन्हीं महात्माके अनन्य भक्त थे। किसी मित्रने उनसे पूछा—'पण्डितजी! महात्माजी महान् योगी और पहुँचे हुए महापुरुष थे। उनके जीवनकी बहुत-सी छिपी हुई बातोंको भी आप जानते हैं, फिर आप उनका जीवन-चरित्र क्यों नहीं लिखते?' पण्डितजीने गम्भीरताके साथ कहा—'मैं महात्माजीका जीवन-चरित्र लिखनेके प्रयत्नमें लग रहा हूँ, मैंने कुछ आरम्भ भी कर दिया है।' उस मित्रने फिर आतुरताके साथ पूछा—'जीवन-चरित्र कबतक प्रकाशित हो जायगा, पण्डितजी?' यह सुनकर पण्डितजीने मुसकराकर कहा—'आपने शायद यह समझा होगा कि मैं महात्माजीका जीवन-चरित्र कागजोंपर लिख रहा हूँ। ऐसी बात नहीं है। आप भूल रहे हैं। मेरे विचारसे तो महात्माजीका जीवन-चरित्र अपने जीवनमें उतारकर लिखा जाना चाहिये और मैं तो यथासाध्य उनके आचरणोंको अपने जीवनमें उतारनेका ही प्रयास कर रहा हूँ।'

(३)

स्वार्थ-त्याग

इंग्लैण्डकी रानी एलिजाबेथके समय इंग्लैण्डकी लड़ाईमें प्रसिद्ध लेखक और वीर सर फिलिप सिडनी घायल हो गये थे और प्यासके मारे छटपटाते हुए पड़े थे। कुछ सिपाहियोंने बहुत दूरसे थोड़ा-सा जल लाकर उन्हें दिया। उन्होंने जलका प्याला मुँहके सामने किया ही था कि उनकी दृष्टि बगलमें पड़े हुए एक घायल सिपाहीपर पड़ी। वह बड़ी आतुर दृष्टिसे जलके प्यालेकी ओर देख रहा था। सर फिलिप सिडनीने बड़ी प्यास लगी होनेपर भी जलकी एक बूँद नहीं पी और पूरा प्याला सिपाहीको देकर कहा—'भाई! इस समय मेरी अपेक्षा तुम्हें जलकी अधिक आवश्यकता है।' यह है उच्चकोटिका स्वार्थ-त्याग! धन्य!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ श्रीहरिः ॥

(भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचार-सम्बन्धी सचित्र मासिक पत्र)

'कल्याण'

-के ८५वें वर्ष (वि०सं० २०६७-६८, सन् २०११ ई०)-के दूसरे अङ्कसे बारहवें अङ्कतकके

निबन्धों, कविताओं और संकलित सामग्रियोंकी वार्षिक विषय-सूची

(विशेषाङ्ककी विषय-सूची उसके आरम्भमें देखनी चाहिये, वह इसमें सम्मिलित नहीं है।)

निबन्ध-सूची

विषय — पृष्ठ-संख्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय	पृष्ठ-संख्या

विषय	पृष्ठ-संख्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय	पृष्ठ-संख्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद्य-सूची

संकलित-सामग्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आचारः परमो धर्मः'

जीवनमें आचार-विचारका बड़ा महत्त्व है। आचारको परम धर्म कहा गया है अर्थात् मुख्य धर्म माना गया है। कोई भी सत्कर्म तबतक सफल नहीं हो सकता, जबतक उसे करनेवाला आचारवान् न हो, इसीलिये आध्यात्मिक अथवा भौतिक किसी भी प्रकारके कृत्यकी सुचारुरूपसे सम्पन्नताके लिये सत्पात्रकी खोज होती है। सत्पात्र वही है, जो आचारवान् हो। अपने शास्त्रोंमें आचारके दो विभाग हैं—'एक सदाचार तथा दूसरा शौचाचार।' बाह्यशुद्धिको शौचाचार कहते हैं और आन्तरिक शुद्धिको सदाचार कहा जाता है। जीवनमें दोनोंका महत्त्व है। बाह्यशुद्धिका तात्पर्य है जल, मिट्टी, अग्नि, वायु आदि पंचभूतोंसे अपने शरीर एवं पदार्थों आदिको शुद्ध रखना। अपने शास्त्रोंमें शौचाचारकी प्रक्रिया बतायी गयी है। शौच आदिके बाद मिट्टीसे इतनी बार हाथ धोना, बारह बार कुल्ला करना, भोजनके बाद सोलह बार कुल्ला करना आदि। एक सज्जन लिखते हैं—'दो-चार कुल्लेसे काम चल सकता है तो इतने कुल्ले क्यों किये जायँ?' इस सम्बन्धमें ब्रह्मसूत्र ग्रन्थमें एक शास्त्रार्थ है। वहाँ भी यह प्रश्न उठाया गया है और उसका उत्तर भी दिया गया है, जिसका तात्पर्य है कि शरीरकी नश्वरता और अपवित्रताको निरन्तर ध्यानमें रखनेके लिये अर्थात् देहमें ही आत्मभाव और आसक्ति न हो जाय, इसके लिये शास्त्रोंमें बाह्यशुद्धिकी व्यवस्था की गयी है। हमें अपने कल्याणके लिये शास्त्राज्ञाका पालन करना चाहिये। अपने शास्त्र हर परिस्थितिपर विचार करते हैं। यदि हम घरसे बाहर हैं, मार्गमें हैं अथवा अस्वस्थताकी अवस्थामें हैं तो शौचाचारकी सीमा आधी या चौथाई हो जाती है।*

131852

भौतिक लाभके लिये भी शौचाचारकी आवश्यकता है। इसकी जानकारी सामान्यतः सबको नहीं रहती। एक सज्जनने किसी अनुभवी दन्तचिकित्सकसे पूछा—दाँत जल्दी क्यों हिलने लगते हैं और उनमें पीड़ा क्यों होने लगती है? चिकित्सकने उत्तर दिया—कुल्ला कम करनेके कारण दाँतके रोग होते हैं। एक वृद्ध सज्जनने अपने अनुभवके आधारपर बताया कि शास्त्रोक्त विधिसे कुल्ला आदि करनेसे कमरके दर्दमें लाभ होता है। अतः सर्वतोभावेन अपने लाभके लिये शौचाचारका पालन सबको करना चाहिये। परंतु शौचाचार साध्य नहीं है, अर्थात् मुख्य उद्देश्य नहीं है। यह साध्यको प्राप्त करनेका साधन है। साध्य है सदाचार।

Central Library Gurukul Kangri University Hardwar-249404 (U.A.)

सदाचारका तात्पर्य है कि हम चोरी, हिंसा तथा असत्यके आश्रयसे दूर रहें। सत्यतापर चलें, इसके साथ ही आन्तरिक दुर्गुणों—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, ईर्ष्या, राग-द्वेष आदिसे बचें। इन दुर्गुणोंसे वही बच सकता है, जिसका अन्तःकरण पवित्र होगा। अन्तःकरण पवित्र उसीका होगा, जो बाह्य शौचाचारका भी पालन करे।

बाह्य शौचाचारकी सबसे मुख्य बात है अर्थकी शुद्धि। अपने शास्त्र कहते हैं कि केवल मिट्टी और जलसे पूर्ण शुद्धि नहीं होती, अर्थकी शुद्धिसे ही पवित्रता आयेगी। इसीलिये कहा गया है कि 'अन्नशुद्धौ सत्त्वशुद्धिर्न मृदा न जलेन वै' (लिङ्गपुराण ८५। १४०) अर्थात् अन्न (भोजन) आदिकी पवित्रतासे ही अन्तःकरणकी शुद्धि होती है। अन्नकी शुद्धिका मतलब है कि अपनी शुद्ध कमाईके पैसेसे यदि अपना जीवनयापन करते हैं तो हमारे भीतर सात्त्विकभाव आयेंगे और हमारा अन्तःकरण भी पवित्र होगा। भ्रष्टाचारका तात्पर्य है बेईमानीपूर्वक धनोपार्जन करना।

आजकल देशमें भ्रष्टाचार समाप्त करनेकी मुहिम चल रही है। यह भ्रष्टाचार सर्वत्र व्याप्त है, फिर भी सभी कहते हैं कि भ्रष्टाचार समाप्त होना चाहिये। परंतु यह भ्रष्टाचार तबतक समाप्त नहीं होगा, जबतक हम आचारवान् न बनें। आचारवान् हम तभी बन सकते हैं जब अपने ऋषि-महर्षियोंके द्वारा बताये गये मार्गका अनुसरण करें। 'आचारः परमो धर्मः' के अनुसार अपने जीवनमें शौचाचार और सदाचार दोनोंको प्रमुखता दें। धनोपार्जनमें सत्यताका आश्रय लेनेके लिये साहस और दृढ़ताकी आवश्यकता है। कदाचित् कभी कठिनाईका भी अनुभव हो सकता है, परंतु इस पथपर चलनेवालेके लिये परिणाममें परमलाभ और कल्याण निश्चित है। —राधेश्याम खेमका

* स्वगृहे सकलाचारः तदर्धं परवेश्मनि। तदर्धं तीर्थयात्रायां पथि शूद्रवदाचरेत्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीताप्रेससे प्रकाशित योग एवं आरोग्यकी पुस्तकें
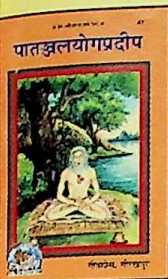
पातञ्जलयोगप्रदीप—सचित्र, सजिल्द, (कोड 47) ग्रन्थाकार— श्रद्धेय श्रीओमानन्दजी महाराजद्वारा प्रणीत इस ग्रन्थमें पातञ्जलयोग-सूत्रोंकी व्याख्या तत्त्ववैशारदी, भोजवृत्ति तथा योगवार्तिकके अनुसार विस्तृत रूपसे की गयी है। इसमें उपनिषदों तथा भारतीय दर्शनोंके विभिन्न तत्त्वोंकी सुन्दर समालोचना है। इसकी व्याख्या सरल तथा सुगम है। भूमिकारूपमें षड्दर्शनसमन्वय तथा तत्त्वविश्लेषण प्रणालीसे यह ग्रन्थ और भी उपयोगी हो गया है। मूल्य रु० १३०, डाकखर्च एवं पैकिंगखर्च रु० ३५ अतिरिक्त।

योगाङ्क—सचित्र, सजिल्द, (कोड 616) ग्रन्थाकार— योग आध्यात्मिक एवं अतीन्द्रिय विकासका अनुपम मार्ग है। योग ही ज्ञानका सर्वोत्तम प्रणाली है। इस ग्रन्थमें योगकी व्याख्या तथा योगका स्वरूप-परिचय एवं प्रकार और योग-प्रणालियों तथा उसके अङ्ग-उपाङ्गोंपर विस्तारसे प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त इसमें अनेक योगसिद्ध महात्माओं और योग-साधकोंके जीवन-चरित्रका वर्णन है। योगके साधकों तथा अन्वेषकोंके लिये यह पुस्तक स्वाध्याय एवं संग्रह करनेयोग्य है। मूल्य रु० १३०, डाकखर्च एवं पैकिंगखर्च रु० ३५ अतिरिक्त।

आरोग्य-अङ्क—सचित्र, सजिल्द, (कोड 1592) ग्रन्थाकार— विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों, घरेलू औषधियों तथा स्वास्थ्य रक्षापर संगृहीत अनेक उपयोगी लेखोंके इस विशेषाङ्कमें साधारण अङ्कोंमें प्रकाशित लेखों एवं नवीन सामग्री समाहित होनेके कारण यह पाठकोंके लिये विशेष उपयोगी है। आरोग्य-सूत्रोंकी तो यह अनुपम कुंजी है। इसमें आयुतत्त्व-मीमांसा, आहार-विहार, यम-नियम, आचार-विचार, निरोग रहनेके लिये प्राकृतिक प्रयोग आदिका विस्तारसे विवेचन किया गया है। मूल्य रु० १५०, डाकखर्च एवं पैकिंगखर्च रु० ४० अतिरिक्त।

गीताप्रेससे प्रकाशित बालोपयोगी प्रकाशन—पढ़ें एवं पढ़ायें

शिक्षाप्रद पुस्तकें

कोड	पुस्तक-नाम	मू०रु०
37	वीर बालक (रंगीन)	१२
51	गुरु और माता-पिताके भक्त बालक (रंगीन)	१२
50	सच्चे और ईमानदार बालक (रंगीन)	१०
49	दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ (रंगीन)	१०
18	वीर बालिकाएँ (रंगीन)	१०
[illegible]	आदर्श ऋषि-मुनि	६
97	आदर्श देशभक्त	६
93	आदर्श सम्राट् [गुजराती भी]	६
102	आदर्श सुधारक	६
99	आदर्श संत	६
16	आदर्श चरितावली	६

रोचक कहानियाँ

कोड	पुस्तक-नाम	मू०रु०
1669	पौराणिक कहानियाँ	१२
1624	पौराणिक कथाएँ	१२
1673	सत्य एवं प्रेरक घटनाएँ	१८
1093	आदर्श कहानियाँ	८
137	उपयोगी कहानियाँ	१०
147	चोखी कहानियाँ	६
656	गीता-माहात्म्यकी कहानियाँ	१०
122	एक लोटा पानी	१५
1308	प्रेरक कहानियाँ	८
680	उपदेशप्रद कहानियाँ	१०
888	परलोक और पुनर्जन्मकी सत्य घटनाएँ	१५
283	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	७
651	गोसेवाके चमत्कार	१२

बालोपयोगी पाठ्य पुस्तकें

कोड	पुस्तक-नाम	मू०रु०
1316	बालपोथी (शिशु), रंगीन	१२
461	,, ,, भाग-१	४
212	,, ,, भाग-२	४
684	,, ,, भाग-३	४
764	,, ,, भाग-४	१०
765	,, ,, भाग-५	१०
125	,, ,, रंगीन, (भाग-१)	५
1690	बालकके गुण, रंगीन, ग्रन्थाकार	२५
1692	बालककी दिनचर्या ,,	२०
1689	आओ बच्चो, तुम्हें बतायें ,,	२०
1693	बालकोंकी सीख ,,	२०
1694	बालकके आचरण ,,	२०
696	बाल-प्रश्नोत्तरी [गुजराती भी]	४

नोट—डाकखर्च एवं पैकिंगखर्चसहित रु० १३० का ड्राफ्ट भेजकर एक साथ रु० १०० तककी अपनी पसन्दकी पुस्तकें डाकद्वारा मँगा सकते हैं।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र० ति० २०-११-२०११
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2011-201
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2011-201

'कल्याण' के वार्षिक ग्राहकोंसे नम्र निवेदन

दिसम्बर मासके इस अङ्कके साथ ही 'कल्याण' के वार्षिक सदस्योंसे प्राप्त सदस्यता-शुल्ककी अवधि समाप्त हो गयी है। आगामी वर्षका विशेषाङ्क **'श्रीलिङ्गमहापुराणाङ्क'** का प्रेषण जनवरी मासके प्रथम सप्ताहसे प्रारम्भ करनेका प्रयास है। सदस्यता-शुल्क अग्रिम प्राप्त हुए ग्राहकोंको प्राथमिकतापर विशेषाङ्क रजिस्ट्रीसे एवं शेष अन्य ग्राहकोंको सदस्यता-शुल्कमें रु० १० अतिरिक्त डाकव्यय जोड़कर वी०पी०पी०से प्रेषित किया जायगा।

सदस्यता-शुल्क मनिआर्डरद्वारा अथवा गोरखपुरमें देय बैंक ड्राफ्ट/मल्टीसिटी चेकद्वारा 'कल्याण' के नामसे निम्नलिखित पते* पर भेज सकते हैं। (गीताप्रेसकी निजी दूकानों एवं स्टेशन स्टॉलोंपर छपी रसीद लेकर भी शुल्क जमा किया जाता है।) चेक/ड्राफ्टके पीछे अपना नाम व पता तथा वर्तमान ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या आदि अवश्य अङ्कित करें। 'कल्याण' का प्रतिनिधि बतानेवाले किसी अपरिचित व्यक्तिको शुल्क न देवें। किसी कारणवश सदस्यता जारी नहीं रखना चाहते हों तो शीघ्र सूचित कर दें, जिससे वी०पी०पी० का प्रेषण रोका जा सके।

'कल्याण' के सम्मानित दसवर्षीय/ पञ्चवर्षीय सदस्य जिनकी सदस्यता अवधि दिसम्बर २०११ में पूरी हो रही है, उन्हें इसकी सूचना पत्र भेजकर दे दी गयी है। यदि उन्होंने अभीतक अपनी सदस्यता-शुल्क नहीं भेजी है तो उपरोक्तानुसार पञ्चवर्षीय/ वार्षिक सदस्यता-शुल्क शीघ्र भेज देवें।

पञ्चवर्षीय सदस्यता-शुल्क जमा कराकर आप किसी भी सम्बन्धी/संस्था आदिको पाँच वर्षतक 'कल्याण' प्रेषित करवाकर 'कल्याण' के प्रचार-प्रसारमें सहयोगी बन सकते हैं। वार्षिक ग्राहक स्वयं भी **पञ्चवर्षीय शुल्क** जमा कराकर पाँच वर्षतक नियमित 'कल्याण' प्राप्त कर सकते हैं।

सदस्यता-शुल्क—**वार्षिक रु० १७० (सजिल्द रु० १९०); पञ्चवर्षीय रु० ८५० (सजिल्द रु० ९५०)**

* व्यवस्थापक—**'कल्याण-कार्यालय', पो०-गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर (उ०प्र०)**

सर्वोपयोगी महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

जैमिनीकृत महाभारतमें भक्तोंकी गाथा (कोड 1771) पुस्तकाकार—इस पुस्तकमें महाराज युधिष्ठिरके अश्वमेध यज्ञके वर्णनके साथ धर्म, नीतिके सुन्दर उपदेश तथा भक्त चन्द्रहास और सुधन्वा आदिकी विचित्र कथाएँ दी गयी हैं। मूल्य रु० ५० (डाकखर्च रु० ३० अतिरिक्त)।

नवीन प्रकाशन—छपकर तैयार—भगवत्प्राप्तिके सुगम साधन (कोड 1923)—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके प्रवचनोंसे संगृहीत इस पुस्तकमें साधनोंका रहस्य, सुखी होनेका रहस्य, सत्संगकी बहुमूल्य बातें आदि विभिन्न प्रकरणोंके माध्यमसे भगवत्प्राप्तिके साधनोंकी सरल व्याख्या की गयी है। मूल्य रु० ८

गोरक्षा एवं गोसंवर्धन (कोड 1922)—गोमाताकी सेवा स्वार्थ और परमार्थ-सिद्धिका महत्त्वपूर्ण साधन है। प्रस्तुत पुस्तकमें गोरक्षा एवं गोसंवर्धनकी शास्त्रीय आलोकमें विलक्षण व्याख्या की गयी है। मूल्य रु० ६

पाठकोंसे एक निवेदन

☞ चालू वर्ष एवं आगामी वर्षके 'कल्याण' के लिये **'कल्याण-कार्यालय', पो०-गीताप्रेस—273005, गोरखपुर (उ० प्र०)** © (0551) 2334721 / 2333030 Ext.237, 238 पर सम्पर्क करें और ड्राफ्ट, मनीआर्डर आदि भी उन्हें ही भेजें।

☞ 'कल्याण' के पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क एवं गीताप्रेस-प्रकाशनोंके लिये **पुस्तक-प्रचार-विभाग, पो०-गीताप्रेस—273005, गोरखपुर (उ० प्र०)**, © (0551) 2331250, फैक्स 2336997 पर सम्पर्क करें और ड्राफ्ट, मनीआर्डर आदि भी उन्हें ही भेजें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar